

वीर मरुतोंका काव्य ।

वीररसपूर्ण काव्यके मनन से उपलब्ध बोध ।



हम पहले ही मरुत-देवता के मन्त्रों का अन्वय, अर्ध और शिवाजी महोदय के पुके हैं। वनों के अर्धका विचार, सुभाषितों का निर्देश एवं पुनरुक्त मन्त्रों का समन्वय भी प्यानपूर्वक हो चुका है। अब हमें संश्लेष में देवता है कि उन सब का प्यानपूर्वक अन्वयन कर लेनेसे हमें कीर्तना बोध मिल सकता है। हम मरुत-काव्य में अन्वय काव्योंकी अपेक्षा तो एक अन्की विभिन्नता हीक पहचानी है, यह बो है कि इस काव्य में-

महिलाओंका वर्णन नहीं पाया जाता है ।

हिमी भी वीर-गाथा में भारिणों का उल्लेख एक न एक रंग से अन्वय ही उपलब्ध होता है। पंचमदाशय्य या अन्य काव्यों का निरीक्षण करनेपर ज्ञान होता है कि उन में वीरों के वर्णन के साथ ही साथ उनकी प्रिययियों का बन्धान अवश्य ही किया है। शिवाजी का वर्णन न किया हो ऐसा सापेक्ष एक भी वीर-काव्य नहीं पाया जाता है। यदि हम निवम या कोई अवयव भी दो, तो उससे हम निवमकी ही विज्ञता होती है, ऐसा कहना पडेगा। उदा-भाग ३७ ऋषिर्षिने ह्य मरुदेवता-विषयक वाचक का रत्न किया है ऐसा जान पडता है (देवी गृह १९४)। और अगर हम संख्या में मन्त्रिणों का भी अन्तर्भाव किया जाय तो समूचे ऋषिर्षिों की संख्या ३७ हो जाती है। यह सब ही भाष्यों की बाप है कि इतने इन ३७ ऋषिर्षिों के निर्मित काव्य में एक भी जगह मन्त्रों के रत्नगाव का निर्देश नहीं किया है। ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि कवि रत्नगाव का वर्णन ही न करते थे, क्योंकि इन्हीं ऋषिर्षिों ने इन्द्रका वर्णन करते समय किन्हीं संतोंमें उभय पर रत्नगावका आरोप किया है। मिन ऋषिर्षिोंने इन्द्र का रत्नगाव बालाने में आनाहानी नहीं की, वे ही मन्त्रों का वर्णन करनेमें उभयका बन्धा मात्र भी उल्लेख नहीं करते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि मन्त्रों के अनुनामनपूर्ण वर्णन में रत्नगाव के लिए बिलुप्त जगह नहीं थी। प्यान में रहे कि मरुत इन्द्र के सेनिट हैं और वे अपने सेनिकीय जीवन में रत्नगाव से ओतों दूर रहते थे। आज हम योरप के तथा आस्ट्रेलिया सरस समय गिने जानेवाले राष्ट्रों के सेनिकों का अवलोकन करते हैं, तो पता चडता है कि यदि वे नगरों में पुरमने-दिने लगे और कहीं मरिडालों पर उनकी निगाह पड जाए तो आत्मन्य एवं उष्णमल्लापुर्ण वर्णन करने में दिच-दिचाने नहीं। यह बात सबको ज्ञात है, अन् हम मन्त्रगाव

में अधिक लिराना उचित नहीं जँचता । हाँ, इतना तो निस्सन्देह कहा जा सकता है कि इन सभ्य पाश्चात्त्यों को अपने सैनिकों के महिष्ठा-विषयक संयम के पार में अभिमानपूर्वक कहना दूभर ही है ।

लेकिन मरतों के वैदिक काव्य में रथगत्य के वर्णन का पूर्णतया अभाव है । यह तो विमुक्त वीरकाव्य है । ऐसा वह बिना नहीं रहा जाता कि इस भारतीयों के लिए यह वटे ही गौरव एवं आत्मसंमान की बात है । यूँ वहने में कोई भापति नहीं प्रतीत होती है कि, जो संयमपूर्ण जीवन मिताना सुलभय योधीय सैनिकों के लिए अशंभव तथा दूभर हुआ, वही इन मरतों के लिए एक साधारणसी बात थी ।

इस समूचे काव्यमें नारिणाँवे सम्बन्धमें सिर्फ १६ उल्लेख पाये जाते हैं, जिनका यहाँपर विचार करना उचित जान पड़ता है ।

नारीके तुल्य तलवार ।

गुहा चरन्ती मनुषो न योवा । (ऋ० ११८७३)

' वीरों की तलवार (परदेमें रहनेवाली) मानव-स्त्रीके गुण्य लुक छिपकर भिद्यान में रहती है ।' यहाँ निर्देष्ट है कि कुछ मानव-नारिणाँ पर में गुप्त रूप से निवास करती थीं । येनाच, यह वर्णन तो परदा-प्रथा के समकक्ष वीर पड़ता है । तलवार तो हमेशा भिद्यान में पड़ी रहती है, लेकिन केवल छद्माई के माँपेपर ही बाहर आ जाती है, वीर उसी प्रकार परों में अदृश्य एवं गुप्त रूप से रहनेवाली महिलाएँ धार्मिक अवसरों पर ही सभासमाजों में चली आती थीं, यही इस उपना का आशय दिखाई देता है । प्रतीत होता है कि उस काल में ऐसी प्रथा प्रचलित रही हो कि किन्हीं खास अवसरों पर जैसे धर्मोत्सव या सम्मेलन आदि के समय स्त्रियों को उपस्थित होने में कुछ भी बाधा नहीं थी, परन्तु अन्यथा देविणाँ परों के भीतर ही का-यापन करती थीं ।

उपयुक्त वर्णन से सती साध्वी महिला के लिए लागू पड़ता है और इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार की स्त्री को ' साधारण स्त्री ' कहा गया है । जिसने सतीत्व में सुंद मोड़ दिया हो वह ' साधारण स्त्री ' कहलाती थी ।

साधारण स्त्री ।

साधारण्या इव मरतः सं मिमिक्षुः ।

(ऋ० ११८७४)

' वायुगण चाहे जिस भूमि पर जल की वर्षा करते छुटते हैं, जिस प्रकार साधारण कोटि का पुरुष साधारण स्त्री से यथेच्छ वर्ताव करता है ।' इस उपमा में साधारण स्त्री का उल्लेख भाया है । स्वभिचारवर्गमें प्रवृत्त पुरुष किसी भी साधारण स्त्री से समागम करता है; उसी तरह भेष चाहे जिस तरह की भूमि हो, उसपर वर्षा करता है । परन्तु जो सदाचरणी मानव है, वह अपनी कुलीनसंपन्न नारी से ही नियमित ढंगसे व्यवहार करता है । इस वर्णनके बृतेपर स्त्रियों एवं पुरुषों के दो तरह के विभेद हमारे सामने उठ खड़े होते हैं—

१. एक विभाग में उन स्त्रियों का वर्णन है, जो हमेशा घर के अन्दर अन्तःपुर में निवास करती हैं और एकदम मौके पर धार्मिक समारंभों में ही समाजों में प्रकट होती हैं । ऐसी स्त्रियों से सदाचरणी वलि धर्मानुष्ठान व्यवहार प्रचलित रहते हैं ।

२. दूसरी श्रेणी में साधारण स्त्रियों का अन्तर्भाव हुआ करता है, जो कि हमेशा बाहर घूमा करती तथा पुरुषों से अनियमित वर्ताव रख लेतीं ।

वेदने प्रथम विभाग में आनेवाली (गुहा चरन्ती योवा) अन्तःपुर में निवास करनेवाली महिलाओं की प्रथा की है और अन्य साधारण स्त्रियों की निम्ना की है । पहिले प्रकार की सती साध्वी महिलाएँ जब सभासमाजों में आ इग्नित होती हैं, तब (माते पशुशुकी इशान् । ऋ. ८।३३।१९) उन की दोग तथा पिंडलियाँ रहिगोचर न रहने पायें, ऐसी भासा वेदने दी है । वेद में ऐसे भी आदेश पाये जाते हैं कि जनता के मध्य संचार करने समय नारिणाँ को सतर्क रहना चाहिये किं कहीं उन का अंतोपगम होय न पड़े इसलिये अपना समूचा शरीर अलीगोचर बच्चों से ढँकना चाहिये ।

उत्तम माताओंके पित्लाडी पुत्र ।

शिशाळाः न क्रीळाः सुमातरः (ऋ. १०।७।१६)

' उत्तम श्रेणी के माताओं के पुत्र बिल्गधी होते हैं ।'

ये उत्तम माताएँ अर्थात् ही ऊपर बतलायी हुई साध्वी महिलाओं में पाई जाती हैं। इन्हें 'सुमाता' कहा है। दूसरी जो साधारण महिलाएँ होती हैं, व सुमाता नहीं बन सकती। इस से स्पष्ट है कि, उत्तम मरतान होने के लिये सयमशील वतां की आवश्यकता है।

महिलाओं के समान वीर अलंकृत तथा विभूषित होते हैं।

मरतों के वर्णन में अथवा वार वेगा वर्णन आया है कि, ये वीर सैनिक अपने आपकी वियों के समान विभूषित होते हैं—(प्रयेदुग्मन्तजनयो न। क्र ११८५।) 'सिंघों की तरह' ये वीर अपने शरीरों की मजाबट रूब कर लेते हैं। हम देखते हैं कि आधुनिक युगमें योरपीय प्रणालीके अनुसार सुमंगल होनेवाले सैनिक भी महिलाओं की तरह ही रूब बनावर्तित्कार करते हैं। प्रत्यक्ष आभूषण दर किस्मका हथियार, दरदरु तरद या कपडा साफ सुधरे, रूब हाथपोछ कर रये हुए, स्वपरिधान तथा चमकीले धातुकी ही रूब मच्छी तरह दीर्घ पडे इस ढंग से धारण कर ली पादिपु। इन अनुशासनका पालन वर्तमानकालीन सैन्या में स्पष्ट दिव्याई देता है। महिलाएँ जिस प्रकार आईने में बारबार अपनी आकृति देखकर पेशभूषा कर लेती हैं और साकेदारुषक साजवर्तित्कार कर सुकोवर ही रूब बन टावर मादर खली जाती हैं, ठीक ऐसे ही ये वीर सिपाई यथेष्ट अलंकृत हो रूब टाट-वाट या साजवर्तित्कार मयमगाने-वाले हथियारों को तथा आभूषणों को धारण कर यात्रा करने निकल पडते हैं।

इहाँपर, आधुनिक कोरवीय सैनिकों के वर्णन में तथा येद में दर्शाये उग से मरतों के वर्णन में विश्लक्षण समानता दिव्याई देती है जो कि सचमुच प्रेशणीय है। मरतोंके इस सिंगारके सपथमें और भी उल्लेख पाये जाते हैं जिगमें से पुत्र पुत्र उद्भूत किये जान टै, सो देखिए—

यक्षरुश न दुग्मयन्त मर्या ।

(क्र ७१६।१६) (३६०)

गोमातर. यत् दुग्मयन्ते अञ्जिभि ।

(क्र ११८।१३) (१२५)

'यक्ष-सामारुभ देखने के लिये भये हुए लोग जिस प्रकार अलंकृत होकर अपनी पेशभूषा से सुमंगल बनकर

आया करते हैं, उसी प्रकार मातृभूमि की माता माननेवाले वीर अपने गणवेश से सजे हुए रहते हैं।' मरत जो पेशभूषण करते हैं तथा अपनी जो शोभा पडाते हैं, वह सारी उनसे अपने गणवेशपर ही निर्भर है। मरतों का गणवेश उन सब के लिये समान (अर्थात् सुनिर्णय के लीरपर पाया हुआ) रहता है। उन के जो शस्त्रास्त्र एवं वीरभूषण हैं, उन से ही उनकी पेशभूषा एवं सजावट सिद्ध हो जाती है। ये वीर मरत चाहे जैसी भूषा नहीं कर सकते, अथिगु टा का जो गणवेश निर्धारित हो चुका हो उभी से वह अलंकृति बननी पडती है। इस वर्णन से स्पष्ट है कि, आधुनिक सैनिकों के तुल्य ही इन्हें अपना गणवेश साफसुधरा एवं जममगानेपात्रु बनकर रखार पडता था। इसी वर्णन को और भी देखिए—

स्त्रायुघात इविगण सुनित्का ।

उत स्वयं तन्वः दुग्मगाना ॥

(क्र ७१६।११) (३५५)

सस्य चित् दि तन्वः दुग्मगाना ।

(क्र ७१६।१०) (३८०)

इयक्षत्रेभि. तन्वः दुग्मगाना ।

(क्र ११६।५५) (४८४)

'टाट्ट हथियार धारण करीदारे, अथ मालाएँ पहनने-वाल तथा वेगपूर्वक आगे उडनेवाले ये वीर पुत्र ही अपने शरीरोंको सुशोभित करते हैं। यद्यपि ये सुगुप्त जगट रहते हैं, तथापि अपनी शरीरभूषा बराबर अलुपण चलाये रखते हैं। अपने अन्दर विद्यमान क्षत्रोत्तले शरीरशोभा को ये उद्दिगा करते हैं।'

इस प्रकार इन मूर्तों में हम इन वीरों के निगो बाह्य शारीरिक भूषा तथा अलंकृति के मध्यमें उल्लेख पाते हैं।

पिशा इन् सुपिशा । (क्र ११६।४०) (११५)

जनु श्रिय धिरे । (क्र ११६।६१०) (१६७)

सुचन्द्रं सुपेदासं वर्णं दधिरे ।

(क्र २१३।१३) (२११)

महान्त चि राजय । (क्र ५१५।५१२) (२६६)

रुपाणि विप्रा द्दर्या । (क्र ५१५।१११) (२०७)

'ये वीर बडे ही गोमायमान दिव्याई देते हैं, यही शारी शोभा इन में है, अथिपानीवाली सुन्दर कविधारण

करते हैं । ये बहुत सुहाते हैं, घड़े सुन्दर दीख पड़ते हैं । ' इस भाँति इन का वर्णन किया है । इन वर्णनों से इन वीरों की चारता पर स्पष्ट आलोकित्वा पड़ती है । इस से एक बात स्पष्ट होती है कि ये वीर मन्त्र भद्रपन से कोसों दूर रहा करते थे, सदैव अपने सुन्दर गणवेश से विभूषित हो स्ववशियत दग से रहा करते थे, अतएव उनका प्रभाव अत्रुर्दिक् फैल जाता था ।

उपयुक्त वर्णन से स्पष्ट दिखाई देता है कि, आधुनिक सैनिकों के समान ही वीर मरतों का रहन-सहन था । इस सम्बन्ध में और भी कौनसी जानकारी प्राप्त होती है, सो देख लेना चाहिये ।

एक ही घर में रहनेवाले वीर ।

सभी मरतों के निवास के लिए एक ही घर बनाया जाता था, या एक बड़े निवास घर में ये समूचे वीर रहा करते थे । इस सम्बन्ध के उल्लेख देखिए—

समोक्ल' इयुं दधिरे । (क १८४१०) (११७)
ऊरक्षया. सगणा मानुपासः ।

(अर्थ ७७७३) (४४७)

ए उर सदा वृत्तम् । (क ३८५१६) (१२८)

उर सदाः चक्रिते । (क ३८५१७) (१२९)

समानस्मारसदसः । (क ५८७१४) (३२१)

' एक घर में रहनेवाले ये वीर बाण धारण करते हैं ।

इन के लिए बहुत बड़ा विस्तृत मकान तैयार किया जाता था । ' उसी प्रकार—

सनीळा मया स्वभ्या नरः ।

(क ५५६११) (३६५)

सययस. सनीळा. समान्या । (क ११९५११)

(इन्द्र ३२५०)

' (स-नीळा) एक घर में रहनेवाले (मया) के आने के लिए तैयार वीर अच्छे धोड़ोंपर बैठते हैं । ये सभी समान समान के योग्य हैं और समान अवस्थावाले हैं । ' यह समूचा वर्णन आधुनिक सैनिकों के वर्णन से मेल खाता है । आज दिन भी सैनिक एक मकान में (एक बैरक में) रहते हैं, सब की अवस्था भी लगभग एकसी रहती है, सब एक ही धेणी के होने के कारण अत्रिपम रूप से समान के योग्य समझ जाते हैं, उन में उंच

नीच के भाव नहीं के बराबर होते हैं, क्योंकि उन की समानता सर्वमान्य होती है ।

संघ बनाकर रहनेवाले वीर ।

ये वीर मरत सांघिक जीवन बिताने के भादी थे । सात सात की कतार में चलते हुए, चढाई करते समय सब मिलकर एक कतार में शयुद्धपर टूट पड़नेवाले थे । इस के उल्लेख देखिए—

मास्तया शार्घाय हृष्या मरध्वम् ।

(क ८१२०१९) (९०)

मास्तं शार्घं अभि प्र गावत । (क. १३७११) (६)

मास्तं शार्घः उत् शंस । (क ५१५१८) (२२४)

घन्दस्व मारतं गणम् । (क. १३६८१) (३५)

मारतं गणं नमस्य । (क ५१५२१३) (२२९)

सप्तय मरतः । (क ८१२०१३) (१०४)

गणधियः मरतः । (क ३६४१९) (११६)

' मरतों के सघ के लिए भग का समझ करो, मरतों के संघका वर्णन करो, मरतों के समुदाय के लिए अभिवादन करो, सात सात की पंक्ति बनाकर ये चलते हैं और समुदाय में ये सुहाते हैं । ' उसी प्रकार—

मारतं गणं सधत । (क ३६४१३) (११९)

पृप-द्रातासः पृपतीः जयुध्वम् ।

(क १८५१४) (१२६)

स हि गणः युवा । (क १८७१४) (१४८)

पृपा गण अविता । (क. १८७१४) (१४८)

द्रातं द्रातं अनुक्रामेम । (क ५१५१११) (२४४)

' मरतों के समुदाय की प्राप्त करो । यह सघ (पृप-मातास) चलिष्ठों का है । यह अपने रथ की पंढनेवाली घोड़ियों या हानिनियों जोतता है । यह युवकों का समुदाय है जो हमारी रक्षा करा है । इस समुदाय के साथ अनुक्रम से हम चलने रहें । '

उपयुक्त मन्त्रोंमें दर्शाया है कि ये वीर सांघिक जीवन बितानेवाले और सामुदायिक उमपर कार्य करनेवाले हैं । सघ बनाकर रहना, तुल्य वेद्य धारण करना, सात सातकी कतार में चलना, सब के सब युद्ध होना या समान अवस्थावाले होना मर्णात् हमें छोटे षालक एवं वृद्ध मनुष्यों का अभाव तथा समूची जाता की रक्षा करने का

गुहार कार्यभार कंधे पर ले लेना, यह सारा का सारा
वर्णन वर्तमानकालीन सैनिकों के वर्णन के तुल्य ही है ।

(१) शार्ध, (२) द्रात और (३) गण, इस प्रकार इनके
समुदाय के तीन प्रकार हैं । गण में ८०० या ९०० सैनिकों
की संख्या का अन्तर्भाव होता होगा, ऐसा पृष्ठ ९६ पर
दर्शाने की चेष्टा की है । पाठक ध्यान रखें । उसी
प्रकार पृष्ठ १६४-१६६ पर एक चित्रद्वारा यह बतलाने का
प्रयत्न किया है कि इन गणों में मरुत किस ढंग से खड़े
रहा करते थे । पाठक उस समूचे वर्णनको अवश्य देख लें ।
हमारा अनुमान है कि शार्ध और द्रात में संख्या कुछ अंश
तक अपेक्षा कृत म्यून हो । कुछ भी हो, अधिक निश्चिन
प्रमाण मिलने तक इस संशयपूर्ण निष्कर्षपर कुछ नहीं कहा
जा सकता है ।

इससे एक बात मुनिश्चित ठहरी कि मरुत संघ बनाकर
रहा करते थे । इनका ज्ञान लेने से यह सहज ही में ज्ञात
हो सकता है कि वे एक ही घर में रहा करते थे और एक
पंक्ति में सात सात वीर खड़े हुआ करते थे ।

सभी सहश वीर ।

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास पते ।

सं भ्रातरो वावृधुः सौमगाय । (क. ५।६०।५)

ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उन्निवो-

ऽमध्यमासो महसा विवावृधुः । (क. ५।५९।६)

' वे सभी वीर मरुत साम्यवादी हैं क्योंकि इनमें कोई
भी (अज्येष्ठासः) उच्चपद पर बैठनेवाला नहीं तथा (अ-
कनिष्ठासः) न कोई निम्नश्रेणी में गिना जाता है और
(अमध्यमासः) कोई मँसले दर्जेका भी नहीं पाया जाता
है । ये सब (भ्रातरः) भावस में भ्रातृत्व बर्ताव करते हैं,
ये साम्यावस्था का उपभोग लेनेवाले धनुगण हैं । ये सभी
इकट्ठे होकर (सौमगाय सं वावृधुः) अपने उत्तम आश्रय
के लिए अविरोध-भाव से मली भौति चेष्टा करते हैं ।'

मवलय यही है कि, ये सभी वीर समान योग्यतावाले
हैं । समान भासुवाले, समान डीलदौलवाले तथा एक ही
अभ्युदय के कार्य के लिए आत्मसमर्पण करनेवाले ये वीर
हैं । पाठक अवश्य देख लें कि, यह समूचा वर्णन आधुनिक
सैनिकों के वर्णन से कितना भिन्न है । सब का गणवेश
समान, सब का रहनसहन समान, सबके हथियार समान,

रहने के लिये सब को एक ही घर, एक ही उद्देश्य की
पूर्ति के लिये सब वीरों का एक कार्य में सतर्कतापूर्वक जुट
जाना, इस भाँति यह मरुतोंका वर्णन अर्थात् ही आधुनिक
सैनिकों के वर्णन से आश्चर्यजनक साम्य रखता है । दोनोंमें
किसी तरह की विभिन्नता दृष्टिगोचर नहीं होती है ।
अपितु अनूठी समता दिखाई देती है ।

मरुतों का गणवेश (या युनिफार्म) ।

मरुत देवराष्ट्र के सैनिक हैं । देवना चाहिए कि, इनका
गणवेश किय तरह का हुआ करता था ।

सरपर शिरस्त्राण ।

वे वीर अपने सरपर शिरस्त्राण पर सारा रख लेते
थे । शिरस्त्राण लोहे का बनाया हुआ तथा सुनहली बेल-
तुटी से सुशोभित रहता और अगर साफा पहना जाता तो
वह रेशमी होता तथा पीठपर उस का कुछ अंश छूटा
रहता था । इस विषय में देखिए—

शीर्षेणु हिरण्ययोः शिप्राः व्यञ्जते ।

(क. ८।७।२५) (७०)

हिरण्यशिप्राः याध । (क. २।३।१३) (२०१)

शीर्षेणु नृम्णा । (क. ५।५।७।६) (२८९)

शीर्षेणु वितता हिरण्ययोः शिप्राः ।

(क. ५।५।११) (२६०)

' सरपर रखा हुआ शिरस्त्राण सुनहली बेलतुटीसे सुशो-
भित हुआ करता और रेशमी साँके भी पहने जाते थे ।'
इस से ज्ञात होता है कि, उन के गणवेश में शिरोभूषण
किस ढंग का रहा करता था ।

सबका सहश गणवेश ।

ये अञ्जिभिः अजायन्त । (क. १।३।७।२) (७)

एषां अञ्जि समानं रुफमासः विश्राजन्ते ।

(क. ८।२।०।११) (२९)

वपुषे चित्रैः अञ्जिभिः व्यञ्जते ।

(क. १।२।६।१४) (१११)

गोमातरः अञ्जिभिः शुभयन्ते ।

(क. १।८।५।३) (१२५)

यक्ष.सु रुक्मा अंसेषु पताः रमसासः अञ्जयः ।

(क. १।१६।१।०) (१६७)

ते क्षोणीभिः अरण्यभिः अञ्जिभिः ववृधुः ।

(ऋ २।३।३) (२११)

अञ्जिभिः सचेत । (ऋ. ५।५२।१५) (२३१)

ये अजित्पु रुम्नेषु रादिषु स्रक्षु थायाः ।

(ऋ. ५।५३।४) (२३७)

‘ ये वीर अपने अपने वीरभूपणोंके साथ प्रकट होते हैं । इनके गणवेश सब के लिए सद्य बनाये दीए पड़ते हैं और इनके गलेमें सुवर्णहार सुहाते हैं । भौति भौति के आभूषणोंसे वे अपने शरीरों को सुशोभित करते हैं । भूमि को माता समझनेवाले ये वीर अपने गणवेशोंसे स्वयं सुशोभित होते हैं । इनके वक्ष स्थल पर मालाएं तथा कर्णों पर गणवेश दिए जाते हैं । वे केसरिया वर्ण के गणवेशोंसे युक्त होकर अपनी शक्ति प्रकटते हैं । ये सदा गणवेशोंसे युक्त होते हैं और वे वस्त्रालकार, स्वर्णसुद्धाओंके हार, वलयकटक एवं मालाएं पहनते हैं । ’

उपशुक्त अवतरणोंसे उनके गणवेश की वलना भा सकती है । ‘अञ्जि’ पदसे गणवेशका बोध होता है । उनके कपड़े केसरिया वर्ण के तथा तनिक रक्तिम आभावाले होते थे । ‘अरण्येभि क्षोणीभिः’ इन पदोंसे स्पष्ट सूचना मिलती है कि उनका पहनावा अरण्य-केसरिया वर्णवाला हुआ करता था । वे वक्ष स्थलों पर स्वर्णसुद्धा सदा अलंकारोंके गहने पहनते जो उनके केसरिया कपड़ों पर खूब सुहाते लगते थे । हाथोंमें तथा पैरोंमें वलयसदृश आभूषण सुहाते थे । प्रायः ये विशेष कार्यवाही करनेके निमित्त मिले हुए वीरवदंतके आभूषण हों । इनके अतिरिक्त ये पुष्प-मालाएं भी धारण कर लेते । इनके हृत् गणवेश के धारे में निम्न मन्त्र देखनेयोग्य है ।

शुभ्रस्योदय ... एजथ । (ऋ ८।२०।४) (८५)

रक्षमवक्षसः । (ऋ ८।२०।२) (२००)

(ऋ २।३।२)

यक्ष सु शुभे रक्षमान् अधियेतिरे ।

(ऋ. ३।६४।४) (१११)

यक्ष सु विरफमतः दधिरे ।

(ऋ १।८।३) (१२५)

रुम्ने आ धियुत असृक्षत ।

(ऋ ५।५२।३) (२०२)

पासु पादपः वक्ष सु रक्षमाः ।

(ऋ ५।५४।१) (२६०)

रक्षमवक्षसः वयः दधिरे । (ऋ. ५।५५।३) (२६५)

रक्षमवक्षसाः अश्वान् आ युञ्जते ।

(ऋ. २।३।८) (२०६)

‘ इनके वक्ष स्थल पर स्वर्णसुद्धाओंके हार रहते हैं । पैरों पर नूपुर और उरोभाग में मालाएं रहती हैं जो कि जगमगाती हैं । ये आभूषण बिल्कुल स्वच्छ एवं शुभ्र होते हैं और बिजलीके तुल्य चमकते हैं । गलेमें हार धारण करनेवाले ये वीर अपने रथोंमें घोड़े जोतते हैं । ’

इस वर्णनसे इनके गणवेश की कल्पना की जा सकती है । शरीरपर केसरिया रंग के कपड़े, वक्ष स्थलपर स्वर्ण-सुद्धाहार, हाथपैरोंमें वीरवनिदर्शक वलयकटक या कंगन सभी साफ सुधरे, चमकीले एवं दामिनीके तुल्य जगमगानेवाले रहा करते । ये सातसातकी पंक्ति बनाकर खड़े रदा करते और दोनों ओर दो पार्श्वरक्षक अनस्थित रहते । इस भौति सात पतारोंका सूजन हो जाता और जब बड़ी सज्जब एवं शूटयाट से ये वीर सज्ज हो जाते तो (गण-धियः) सबके कारण ये बहुत सुहाते लगते । उनकी शोभा आधुनिक सुसज्ज सेनाके समकक्ष हो जाती है ।

हथियार ।

भाले ।

ये ऋष्टिभिः अजायन्त । (ऋ० १।३।४) (७)

वाहुषु अधि ऋष्य दधिद्युतति ।

(ऋ ८।२०।१) (२२)

अंसेषु ऋष्य नि मिमुक्षु । (ऋ. १।६४।४) (१११)

आजटष्यः उञ्जिघ्नते । (ऋ. ३।६४।१) (११८)

आजटष्यः स्वपे महिर्ष्यं पनयन्त ।

(ऋ १।८।३) (१४७)

आजटष्यः दृब्धानि चित् जनुच्यवुः ।

(ऋ ३।१६।४) (१८६)

आजटष्यः मरुतः आगन्तवः ।

(ऋ. २।३।५) (२०३)

आजटष्यः वय दधिरे । (ऋ ५।५५।३) (२६५)

ये ऋष्टिभिः विभ्राजन्ते । (ऋ १।८।५) (१२६)

कश्चिदग्निः रथेभिः जायात ।

(ऋ. १।८।१) (१५१)

सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिक्

ऋष्टिः येपु सं मिष्यक्ष । (ऋ. १।१६।३) (१७४)

ऋष्टिविद्युतः सरतः । (ऋ. १।१६।५) (१८७)

ये ऋष्टिविद्युतः नमस्य । (ऋ. ५।५२।३) (२२९)

युधा आ ऋष्टीः अस्सृत । (ऋ. ५।५२।६) (२७७)

यः अंसेपु ऋष्टयः, गमस्त्वोः अग्निम्राजस विद्युतः ।

(ऋ. ५।५४।११) (२६०)

‘ये वीर अपने भाले लेकर प्रकट होते हैं । इनकी भुजा-
धोर तथा कंधोंपर भाले द्योतमान हो उठे हैं । तेजःपुञ्ज
हथियारों से युक्त होकर ये वीर अपने महत्त्व को बढ़ाते
हैं । चमकनेवाले हथियार लेकर ये वीर रथपरसे भाते हैं ।
इन के हथियार बडिया, मुट्ट, सुतीक्ष्ण, सोने के
तुल्य चमकनेवाले होते हैं । चमकीले भालों से युक्त
ये वीर स्थिर वायुको भी विकम्पित कर देते हैं । कंधोंपर
भाले रखे हुए हैं और इनके हाथों में तलवार रहती है ।’

ऋष्टि का अर्थ है भाला, कुल्हाड़ी, परशु या तक्षम मुष्टि
में पकड़नेयोग्य हथियार । जब क्षैत्रिक भाले लेकर खड़े
होते हैं तब कंधों पर अपने भालों को रख लेते हैं । उस
साथ का वर्णन इन मंत्रों में है ।

कुठार या परशु ।

ये वाशीभिः अजायन्त । (ऋ. १।३।०) (७)

हिरण्यवाशीभिः अग्नि स्तुपे । (ऋ. ८।१।२) (७७)

ते वाशीमन्तः । (ऋ. १।८।५) (१५०)

धः तनूपु अधिवाशीः । (ऋ. १।८।३३) (१५३)

ये वाशीपु धन्वसु श्रायाः । (ऋ. ५।५३।४) (२३७)

‘वाशी का अर्थ है कुल्हाड़ी या परशु । यह मर्तों का
एक शस्त्र है । परनुसहित ये वीर प्रकट होते हैं । इन
कुल्हाड़ियों पर सुनहली पच्चीकारी की जाती थी । ये
वीर हमेशा अपने पास कुठार रख लेते हैं । समीप तीक्ष्ण
कुठार एवं बडिया धनुष्य रखते हैं ।

इन वर्णनों से पाठकों को इनके कुठारों की कल्पना
आजायगी । इनके हथियारोंमें भाले, कुठार एवं धनुष्यो
का अन्तर्भाव हुआ करता था । साथ ही तलवार भी रहा
करती थी ।

तलवार, वज्र ।

वज्रहस्तैः अग्नि स्तुपे । (ऋ. ८।१।२) (७७)

विद्युद्धस्ता । (ऋ. ८।१।२) (७७)

हस्तेषु कृतिः च सं दधे । (ऋ. १।१६।३) (१८५)

स्वधितिवान् । (ऋ. १।८।१) (१५०)

‘ये वीर हाथ में तलवार या वज्र धारण करनेवाले हैं ।
बिजली के तुल्य हथियार इन के हाथ में पाया जाता है ।
तेज धारवाली, तुल्य काट देनेवाली तलवार ये वीर
धारण करते हैं ।’

‘कृति’ का अर्थ है, तीक्ष्ण धारवाली तलवार । वज्र
भी एक हथियार है जो पहिये के आकारवाला होता हुआ
तेज दन्द्दानेदार बनता है । पर कई स्थानोंपर अत्यन्त
सुतीक्ष्ण तलवार को भी वज्र कहा है ।

हथियार ।

ऋमुक्षण ! हयं वनत । (ऋ. ८।१।९) (५४)

ऋमुक्षणः ! प्रचेतसः स्थ । (ऋ. ८।१।२) (५७)

ऋमुक्षणः ! सुदीतिभिः धीळुपविभि आगत ।

(ऋ. ८।२।०) (८३)

गमस्त्वोः शृणुं दधिरे । (ऋ. १।६।१०) (११७)

हिरण्यचक्रान् अयोदंष्ट्रान् पश्यन् ।

(ऋ. १।८।५) (१५५)

यः किविदंतां दियुत् रदति ।

(ऋ. १।१६।६) (१६३)

यः अंसेपु तविपाणि आहिता ।

(ऋ. १।१६।९) (१६६)

पविवु अधि क्षुराः । (ऋ. १।१६।१०) (१६७)

यः ऋञ्जती शरु । (ऋ. १।१७।२) (१९६)

चक्रिया अवसे आववर्तत् । (ऋ. २।३।१४) (२१२)

धन्वता अनु यन्ति । (ऋ. ५।५३।६) (२३९)

विद्युता सं दधति । (ऋ. ५।५४।२) (२५१)

यः हस्तेषु कशाः । (ऋ. १।३।३) (८)

‘ये शस्त्रपारी वीर हैं । बडिया, तीक्ष्ण धारावाले शस्त्र
लेकर तुम शर आओ । तुम हाथ में बाण धारण करते हो ।
तुम्हारे हथियार सुवर्णविभूषित कौहद की-बनी दंष्ट्रानुल्य
विभागों से अलंकृत हैं । तुम्हारा दन्दानेदार बिजली की

उरुह वेजस्वी शस्त्र शत्रुके डुकडे कर रहा है । तुम्हारे कंधों पर हथियार लटक रहे हैं । तुम्हारे हथियार तीक्ष्ण धाराओं से युक्त हैं । तुम्हारा हथियार वेगपूर्वक शत्रुदल पर जा गिरता है । तुम्हारे पहिये जैसे दिखाने देनेवाले आयुध से तुम जनता की रक्षा करते हो । धनुषांसी बन कर तुम यात्रा करते हो । तुम्हारा सघ वज्रवृक्षी चर्मों से सुसज्ज होता है । तुम्हारे हाथों में चाकू है ।'

इन मन्त्रों में मरुतों के अनेक हथियारों का निर्देश देवने मिलता है । इन्द्रानेदार वज्र और पहिये, बाण, धार, धनुष्य, तलवार, छोटमोटे लंबी या छोटी मूढवाले हथियारों का उल्लेख है । इस से मरुतों के हथियारों एवं उन के गणवेश की अच्छी कटरना की जा सकती है ।

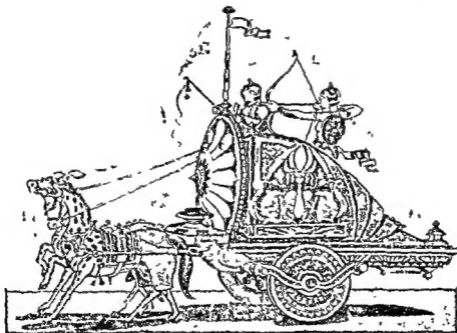
सुदृढ मजबूत हथियार ।

व जायुधा स्थिरा । (ऋ. ३।१।२) (३७)

वः रथेषु स्थिरा धन्वानि आयुधा ।

(ऋ. ८।२।१२) (२३)

' मरुतों के हथियार बड़े ही सुदृढ हुआ करते और उन के रथों पर स्थिर याने न हिलनेवाले धनुष्य बहुतसे रखे जाते थे ।' यहाँपर चल तथा स्थिर दो प्रकार के धनुष्य हुआ करते ऐसा जान पड़ता है । स्वजस्तर्भों से बाँधे धनुष्य स्थिर और पीरोने अपने साथ रखे हुए धनुष्य चल कहे जा सकते हैं । स्थिर धनुष्योंपर दूरतक फेंकनेके लिए बड़े बाण एवं घड़के से टूट गिरनेवाले गोळक भी लगाये जाते । चल धनुष्यों से प्रायः सभी परिचित होंगे । ऐसा जान पड़ता है कि, केवल महारथी या अतिमहारथी ही स्थिर धनुष्यों को काम में ला सकते थे ।



मरुतों का घोड़े जोता हुआ रथ ।

मरुतों का रथ ।

मरुतां रथे शुभं शर्थं जमि प्रगायत ।

(ऋ. १।१।१) (६)

' मरुतों का पल रथों में सुदानेवाला है ।' वह सच-

मुच वर्णन करनेयोग्य है । ये और रथों में बैस्कर अपना थल प्रकट करते हैं ।

एषां रथा- स्थिरा सुसंस्कृताः ।

(ऋ. १।१।१२) (३२)

मर्तः घृषणभ्येन घृषप्सुना घृषनामिना रथेन
आगत । (ऋ ८१०१०) (९१)

घन्धुरेषु रथेषु घः आ तस्थौ ।

(ऋ १६७१९) (११६)

विद्युन्मग्निं स्वर्कैः ऋष्टिमद्भिः अश्ववर्णं, रथेभि
आ यात । (ऋ १०८८१) (१५१)

घः रथेषु विश्वानि भद्रा । (ऋ ११६६१९) (१६६)

वा अक्ष चक्रा समया वि ववृते ।, , ,

मर्तः रथेषु अश्वान् आ युंजते ।

(ऋ १०७१८) (२०६)

रथेषु तस्थुः, यतान् पक्ष ययुः ।

(ऋ ५१५३१२) (२३५)

युष्माकं रथान् अनु दधे । (ऋ ५१५३१५) (२३८)

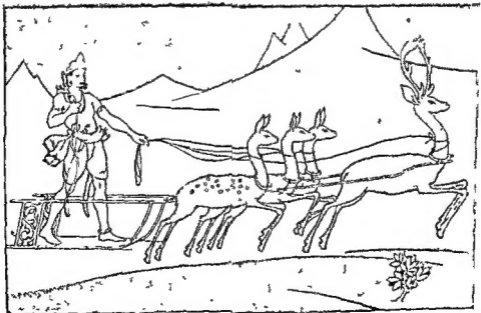
शुभं यातां रथाः अनु अवृस्तत ।

(ऋ. ५१५३११-९) (२६५-२७३)

इन घोरों के रथ बड़े ही सुदृढ़ हुआ करते हैं । इनके
रथों के घोड़े बलिष्ठ और उनके पहिये मजबूत दगवे बनाये

होते हैं । इनके रथों में बैठने की जगह कई होती है ।
इनके रथों में तेजस्वी तथा बटिया इधियार रचे जाते हैं
और घोड़े भी जोते जाते हैं । इनके रथों में सब कुछ अच्छा
ही होता है । इनके रथों का धुरा एवं उसके पहिये की
समय पर घूमते रहते हैं । ऐसे रथों में बैठनेवाले इन घोरों
के समीप भला कौन जा सकता है ? हम तुम्हारे रथों के
पीछे चले आते हैं । मलाई करने के लिए जानेवाले तुम्हारे
रथों को देखकर जनता उनके पश्चात् चलने लगती है ।

इस वर्णन से मर्त्यों के रथ की कल्पना की जा सकती
है । बैठने के लिए मर्त्यों के रथों में कई स्थान रहते हैं,
जिन पर रथारोही घोर बैठ जाते हैं । मर्त्यों के रथ बड़े
सुदृढ़ दग से तैयार किए जाते हैं अर्थात् उनका छोटाना
हिस्सा भी मुटियम नहीं रहता है चाहे पहिया, धुरा या
अन्य कोई कीलपुजां हो । युद्धभूमि में भीषण सबदं तथा
मार काट में वे ठिक सकेँ इस हेतु को ध्यान में रखकर वे
अत्यन्त स्थायी स्वरूप के बनाये जाते हैं । इन रथों में
घोड़े तथा कभी कभी हरिनियाँ भी जोती जाती थी ।
देखिए वे उल्लख-



मर्त्यों का चक्ररहित और हरिणवृक रथ ।

हरिणां से खींचे जानेवाले रथ ।

मरुतोंके रथ हरिनियों एवं बारहसौनोंसे खींचे जाते थे
ऐसा वर्णन निम्न मंत्रांशोंमें है। पाठक उनका विचार करें।

ये पृथ्वीभिः अजायन्त । (ऋ. १।३।१२) (७)

रथेषु पृथ्वीः अयुग्ध्वम् । (ऋ. १।३।१६) (४१)

एषां रथे पृथ्वीः । (ऋ. १।८।५५) (७३)

रथेषु पृथ्वीः प्र अयुग्ध्वम् । (ऋ. ८।१।२८) (१२७)

रथेषु पृथ्वीः आ अयुग्ध्वम् ।

(ऋ. १।८।५४) (१२६)

पृथ्वीभिः पृक्षं याय । (ऋ. २।३।४३) (२०१)

संमिश्राः पृथ्वीः अयुक्षत । (ऋ. ३।२।६४) (२१४)

रोहितः प्रथीः वहति । (ऋ. १।३।१६) (४१)

प्रथीः रोहितः वहति । (ऋ. ८।१।२८) (७३)

‘ रथ में धड़बेवाली हरिनियों जोड़ी हुई हैं और उनके
आगे एक बारह सौगा रथा हुआ है । यह एक इस भाँति
दशिनयुक्त मरुतों का रथ है जो पहियों से रहित होता
है । देखो—

सुपोमे शर्यणावति आर्जाके पश्यावति ।

ययु' निचक्रयां नरः । (ऋ. ८।१।२९) (७४)

‘ चक्ररहित रथपर से पहिया सोम जहाँपर होता हो,
उसी स्थानपर शर्यणा नदी के समीप कर्जीक के प्रदेश में
मरुत् जाते हैं । ’

जिस स्थानपर पहिया सोम मिलता है वह समुद्र की
सतहसे १६००० फीट ऊँचाईपर रहता है । यहाँ का सोम
आयुःशुद्ध माना जाता है । चूँकि यहाँ ‘ सु-सोम ’ कहा
है इसलिये ऐसे स्थानों का निचार करने की कोई आवश्यक-
कता नहीं रहती है जहाँपर घटिया दूँों वा सोम मिलता
हो । इतने अत्युच्च भूविभाग में ये मरुत् पहियोसे रहित
रथपर से संचार करते हैं । कोई आश्रम की घात नहीं अगर
वह स्थान वर्ष से पूर्णतया ठंका हो । ऐसे हिमाच्छादित
भूभागों में चक्रीय वाहनों को कृष्णसारशृंग वा हरिनियों
खींचती हैं और आज दिन भी यह दृश्य देखा जा सकता
है । रूस के उत्तर में जहाँपर खूप बर्फ जमी रहती है इस
उपर ही गादियों, जिन्हें अश्व भाषा में (Sledge)

‘ स्लेज ’ कहते हैं, आज भी प्रचलित है जिन्हें बारह सौगा
या हरिनियों खींचती हैं ।

इस से प्रतीत होता है कि, मरुत् वर्षाके स्थानों में
रहते हो । मरुतों के रथों में घोड़ों तथा घोड़ियों को भी
जोतते थे । शायद, बर्फ का अभाव जहाँपर हो ऐसे स्थानों
में पहुँचनेपर इस दंग के रथोंका उपयोग किया जाता हो
और हिमाच्छादित, निविड हिमस्तलों की जहाँ प्रचुरता हो
ऐसे प्रदेशों में ऊपर बतलाये हुए हरिणोंद्वारा खींचे जाने-
वाले रथों वा उपयोग होता हो ।

अश्वरहित रथ ।

इस के लिये मरुतों के समीप ऐसा भी रथ विद्यमान
था जो बिना घोड़ों के चलता था, अर्थात् चालू की भाव-
श्यकता नहीं हुना करती थी । देखिये, यह मन्त्र सूँ दै—

अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्वन्भवांश्चिद्रुयम-
जत्परधी' । अनयसो अनमीशू रजस्तुर्वि
रोदसी पथ्या याति साधन् ॥

(ऋ. ६।६।१०) (३४०)

‘ हे वीर मरुतो ! यह तुम्हारा रथ (अन्-एनः) शिक-
जुक निर्दोष है और (अन्-अथ) इस में घोड़े जोते नहीं
हैं तिसपर भी वह (मजति) चलता है, संचार करता
है तथा उसे (अ-रथी) रथ में बैठनेवाला वीर न हो
तो भी अर्थात् एक साधारण सा मनुष्य भी चला सकता
है । (अन्-अयसः) इसे किसी पृष्ठ-रक्षक की आवश्यक-
कता नहीं रहती है, (अन्-अभीष्टु) यह लगाम, बधा
आदि से रहित है, ऐसा यह रथ (रजरत्) बड़े वेग से
गई उड़ाना हुआ (रोदसी पथ्या) भावना एवं पृथ्वी के
मध्य विद्यमान मार्गों से (साधन् याति) अपना अभीष्ट
सिद्ध करता हुआ चला जाता है ।

यह मरुतों का रथ आधुनिक ‘ मोटर ’ के तुल्य कोई
साधन हो ऐसा हील पढ़ता है जो घोड़े, लगाम तथा पृष्ठ-
रक्षक के अभाव में भी चूक उड़ाना हुआ वेगपूर्वक भागे
सकता है । अश्वों के न रहने से साथ लगाम रखने की
कोई आवश्यकता नहीं है और खींचनेवाले न रहनेपर भी
भीतर रखे हुए यांत्रिक साधनों से धूमिलय नभ करता
हुआ यह रथ वेग हीरता है । चूक उड़ाने वाले का मत्त-

क्य वही है कि, उस का वेग बड़ा ही प्रचंड है । क्योंकि तीम वेग के न होनेपर धूमि का उड़ाया जाना संभव नहीं है ।

(रजस्तूः) का दूसरा अर्थ योंही हो सकता है कि अंत-रिक्षमें से स्वरापूर्वक जानेवाला । ऐसा अर्थ कर लेने से, (रजस्तूः रोदसी पश्चा याति) सुकोरु एरं भूकोरु के साथ अन्तरिक्ष की राहसे यह रथ चला जाता है, ऐसा अर्थ हो सकता है । ऐसी दृश्यां इस रथ को आकाशवायु, 'एभरोप्लेन' मानना आवश्यक है । अगर इसे हम कबिकरवना मानें, तो भी विमानों की सूचना स्पष्टतया विद्यमान है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । इस मन्त्र में निर्दिष्ट यह रथ भले ही विमान हो, या मोटर हो, पर स्पष्ट तो यही है कि बिना अर्थों की सहायता के यह बड़ी क्षीयता से गतिमान हुआ करता है ।

कहूँ मंत्रों में ' याज पंथी की तरह वीर मरत आते हैं ' ऐसा वर्णन किया है । यह निर्दोष भी मरतों के आराध-संचार को और अधिक स्पष्ट करता है ।

अब तक के वर्णन से पाठकों को स्पष्ट विदित हुआ ही होगा कि मरतों के समीप चार प्रकार के वाहन थे, [१] अश्वसंचालित रथ, [२] हरिणियों तथा कृष्णसार मृग से खींचा हुआ, घनीभूत हिम के स्तरपर से घसीटते जाने-वाला रथ, [३] बिना अश्वोंके परन्तु बड़े वेगसे चतुर्दिक् धूमि उड़ाते हुए जानेवाले रथ और [४] आरामानमें उड़ते जानेवाले वायुपान ।

शत्रु पर किया जानेवाला आक्रमण ।

मरत वायुसेना पर हमले करने में बड़े ही प्रवीण थे और इनकी इस भाँति चढ़ाई के बारेमें किया हुआ विविध वर्णन देखनेयोग्य है । माननी के वीर पर देव जीजिष्-

प यामः चित्रः । (क्र. १।१६६।७; १।१७२।१)
(१६१; १९५)

यः चित्रं याम चेतिते । (क्र. २।३७।१०) (२०८)

' तुम्हारा हमला बड़ा ही अचम्बे में डालनेवाला होता है । ' जिससे जनता आश्चर्यचकित हो दाँतोंतले ऊँमली प्याये पैड़ी रहे, ऐसे आक्रमण का सञ्चालन वे वीर मरत करते हैं । उसी मन्त्र-

ध उग्राय यामाय मन्यवे मानुष नि दध्रे ।

(क्र. १।३७।७) (१७)

येषां यामेषु पृथिवी भिया रेजते ।

(क्र. १।३७।८) (१८)

व. यामेषु भूमि. रेजते । (क्र. ८।२०।५) (८६)

य यामाय गिरि नि येमे । (क्र. ८।७।५) (५०)

य यामाय मानुषा अवीभयन्त ।

(क्र. १।३९।६) (४१)

' तुम्हारी चढ़ाईके मौकेपर मानव नहीं न कहीं किसी के सहारे रहने लगते हैं । तुम्हारे हमले से पृथ्वीतक काँपने लगती है । तुम्हारे आक्रमण से पहाड़तक क्षुब्धचप हो जाते हैं ताकि वे न गिर पड़ें । तुम जब धावा तुम्हारे हो तब मानव भयभीत हो उठते हैं । '

इन वीरों का ऐसा प्रबल आक्रमण दुर्भा करता है । इस विजुदाक्रमण के सम्मुख बलिष्ठ वायु भी तुम्हान में तिनके के समान कहीं के कहीं उड़ जाते हैं और अ-पदस्थ हो जाते हैं । देखिए न-

धीर्घं पुंशुं यामभि प्रच्यावयसि ।

(क्र. १।३७।११) (१६)

यत् यामं अचिध्वं पर्यता नि अहासत ।

(क्र. ८।७।२) (४७)

यत् यामं अचिध्वं इन्दुभि मन्दध्वे ।

(क्र. ८।७।१४) (५९)

' तुम्हारी चढ़ाईको के फलस्वरूप बड़े तथा सुदृढ वायु को भी तुम पदभ्रष्ट करते हो और पहाड़ भी विकम्पित हो उठते हैं । जब तुम आक्रमणार्थ बाहर निकल पड़ते हो तो पहले सोमपान कराये क्षिप्त होते हो और पश्चात् वायु पर दूट पड़ते हो । '

इससे विदित होता है कि एव बार यदि मरतों का आक्रमण हो जाय तो वायु का संपूर्ण विनाश होना ही चाहिए, दुर्जयम पूरी तरह मटिषायेट होगा इतना प्रभाव-शाली वह होता है ।

मरत मानव ही थे ।

पहले मरत मर्यं, मानवचोटि के थे, परन्तु उन्होंने अपनी दूरवा से भाँति भाँति के कर्म कर दिखलाये, अतः

वे भ्रमरपन को पाने में सफल हो गये । देखिए—

य्यं मर्तास स्यातन, ॥ स्तोता अमृतः स्यात् ।

(ऋ. १।३।८।३) (२४)

रुद्रस्य मर्यां दिव्य जघ्निरे । (ऋ. १।६।३।२) (२०९)

‘ तुम मर्यां हो लेकिन तुम्हारा स्तोता अमर होता है ।

तुम रुद्र के पाने वीरभद्र के मानव हो, मरणधर्मां हो, पर तुम कार्यं इत तरह करते कि मानों तुम्हारा जन्म स्वर्गों में पुण्य में हुआ हो । ’ उसी प्रकार—

मरुत सगणा मानुपास ।

(अथर्व. ७।७।१५) (४४७)

मरुत- विश्वकृष्टयः । (ऋ. ३।२।६।५) (२१५)

सभी गणों के साथ समवेत वे मरुत मानव ही हैं और सभी कृषिकर्म करनेवाले काश्तकार हैं । ये गृहस्थाश्रमी भी हैं । देखिए—

गृहमेधास आगत मरुतः । (ऋ. ७।५९।१।०) (३९२)

‘ ये मरुत गृहस्थाश्रम में श्रवण करीयेवाले हैं, वे हमारी भोर भा जायें । ’ निस्स देह, ये विवाहित हैं अतएव इन्हें पत्नीपुत्र कहा गया है ।

युधान निमिस्ता पञ्जा युधर्तां शुमे अस्थापयन्त ।

(ऋ. १।१६।७।६) (१७७)

श्विरा चित् घृषमना अहंयु सुमागा जनी
घहते । (ऋ. ३।१।१।७।०) (१७८)

तुम युवक वीर निम्न सदाशाल में रहनेवाली, पत्नीपद् पर भाकर पुरती को शुभपत्रकर्म में साथ ले चलते हो और इसे अच्छे कर्म में लगाते हो । तुम्हारी पत्नी अच्छी भाग्यवालिनी ही और यह अच्छी सन्तान से युक्त हैं । ’

इससे स्पष्ट है कि ये विवाहित हैं ।

मरुतों की विद्याविलासिता ।

वीर मरुत ज्ञानी और द्रवि ये वेदा चर्चन उपलब्ध होता है । देखिए—

ज्ञानी ।

प्रचेतस मरुत न आ गन्त ।

(ऋ. ३।३।१।०) (४४)

प्रचेतस मानवति । (ऋ. ३।६।३।८) (२१५)

ते श्रध्वास दिव्यः जघ्निरे । (ऋ. १।६।३।२) (२०९)

‘ वीर मरुतो! तुम विद्वान् हो, तुम हमारे निकट चले आओ, तुम उरुचक्रोक्ति के ज्ञानी हो । ’ विद्वान् होने के कारण ये मरुत दूरदर्शी भी हैं ।

दूरदर्शी ।

दूरे द्रवा परिस्तुभ । (ऋ. ३।१।६।१।१) (१६८)

‘ ये वीर दूरदर्शियों से संपन्न होने के कारण पूर्णतया सराहनीय हैं । ’ विद्वता तथा दूरदर्शिता से भक्तकृत होने के कारण ये अच्छी प्रभावशाली यक्षवृत्ता देने की क्षमता रखनेवाले हैं ।

धुवांधार यक्षतृता देनेवाले ।

सुजिह्वा आसभि स्वरितार ।

(ऋ. ३।३।६।१।१) (१६८)

‘ उन वीर मरुतों की वाणी बड़ी अच्छी है अतः उनके मुँहसे मधुर एवं सुरभर यक्षतृता धाराप्रवाहरूप से निकलती है । इन मरुतों में कविधरिताक्ति पाई जाती है ।

कवि ।

ये ऋष्टिचिपुत, कथय सन्ति देघस ।

(ऋ. ५।५।२।१।२) (२२९)

नरो मरुत सख्यधुत कथयो युधान ।

(ऋ. ५।५।७।८) (२९१)

मरुत कथयो युधान । (ऋ. ५।५।८।३) (२९४)

(ऋ. ५।५।८।८) (२९९)

स्वतयस कथय मरुत । (ऋ. ७।५।१।१) (३९३)

कथयो य इन्वथ । (अथर्व. ७।२।७।६) (४४९)

श्रुतका (२०१) घेघस (२५५) विचेतस (२६२)

‘ ये मरुत ज्ञानी, कवि एवं अपनी सत्यनिष्ठाके लिये विख्यात हैं । ये युवक तथा शक्तिष्ठ हैं । बुद्धिमत्ता भी इन में शूद्रतरक मरी होती है, उदाहरणार्थ—

बुद्धिमानी ।

य्यं सुचेतुना स्मर्ति विपर्तन ।

(ऋ. ३।१।६।१।६) (१६३)

धियं धियं देवया वक्षिष्ये ।

(ऋ. ३।३।६।१) (१८३)

॥ सुमति ओसु जिगातु ।

(ऋ २।३।१५) (२३३)

सूर्य मे प्रघोचन्व । (ऋ ५।५।२।१६) (२३०)

‘ ये अपनी अगुनी बुद्धिमत्ता के कारण जनता में सु-बुद्धिका प्रचार एवं बुद्धि करते हैं, इन में हरएक मे दिव्य-भावयुक्त बुद्धि निवास कारी है, ये अच्छे विद्वान्, उच्च कोटिके वक्ता और सुबुद्धि देनेवाले भी हैं । ’ बुद्धिमानीके साथ इन में साहसिकता भी पर्याप्त मात्रामें विद्यमाना है ।

साहसीपन ।

धृष्टयुथा पाप्ति । (ऋ ५।५।२।२) (२१८)

‘ ये अपने धैर्ययुक्त धर्षणसामर्थ्य से सब का संरक्षण करते हैं । ’ ये बड़े सामर्थ्यवान् हैं—

सामर्थ्यवन्ता ।

शाक्तिन मे शतां ददु । (ऋ. ५।५।२।१७) (२३३)

‘ इन सामर्थ्यशाली वीरोंने मुझे सौ गावों का दान दिया । ’ इस प्रकार इन की शक्तिमत्ता का वर्णन है । ये बड़े उसाही वीर हैं ।

उत्साह तथा उमंग से लवालब भरे ।

समन्यव ! मापदधात । (ऋ ८।२०।१) (८०)

समन्यव मरुत ! गाव मिध रिहते ।

(ऋ ८।२०।२) (१०९)

समन्यव ! पृक्षं याध । (ऋ २।३।३) (२०१)

समन्यव ! मरुत. न सघनानि आगन्तव ।

(ऋ २।३।६) (२०४)

‘ (स-मन्यव) हे उसाही वीरो ! तुम हम से दूर न रहो । तुम्हारी गौर्षे प्यारसे एक दूसरेको चाट रही हैं । तुम भक्त का सम्रह करने जाओ । ’ ‘ स-मन्यवः ’ का मतलब है उसाही, क्रोधपूर्ण, जोशीला याने जो दूसरों के किए अपमान को बरदाश्त नहीं कर सकते ऐसे वीर । इन वीरोंमें उग्रता भरी पड़ी है ।

उग्र वीर ।

उप्रास तनूपु नकि येतिरे ।

(ऋ. ८।२०।१२) (९३)

धमा मरुत ! तं रक्षत ।

(ऋ १।१६।८) (१६५)

‘ ये उग्रस्वरूपवाले वीर अपने शरीरों की कुछ भी परवाह नहीं करते । हे उग्र मरुति के वीरो ! तुम उस की रक्षा करो । ये वीर बड़े उद्योगी भी हैं ।

उद्यम में निरत ।

शिमीषतां शुभं विध हि । (ऋ ८।२०।३) (८४)

‘ इन उद्योग मे लगे वीरों का बल हमें विदित है । ’ परिश्रमी जीवन बिताने के कारण इन का बल बढ़ा-चढ़ा होता है । निरलस उद्यम करने से जो बल बढ़ता है वह मरुती में पाया जाता है । ये बड़े कुशल भी हैं ।

कुशल वीर ।

ये वेधस नमस्य । (ऋ. ५।५।२।१४) (२२९)

येधस ! य शर्ध अम्राजि (ऋ ५।५।२।१५) (२५५)

सुमाया मरुत न आयांतु ।

(ऋ. १।१६।१२) (१७३)

मायिन तयिपी. अयुग्धम् ।

(ऋ १।६।४०) (११४)

‘ ये वीर शानी हैं, इसलिये इन्हें प्रणाम करो । हे शानी वीरो ! तुम्हारा सभ बहुत सुहाग है । ये अच्छे कुशल मरुत हमारी ओर आजावें । ये कारीगर अपनी शक्तियों से युक्त हैं । ’ इस प्रकार उनकी कुशलताका वर्णन किया हुआ है । ये बड़े कथाप्रिय भी हैं अर्थात् कहानियों सुनना इन्हें बहुत भाता है ।

कथाप्रिय ।

[हे] कथप्रिय । य सखित्ये क ओहते ।

(ऋ ८।५।३१) (७६)

‘ हे प्यार से कहानी सुननेवाले वीरो ! कौनसा मित्र भला तुम्हें मिय है । ’ कथाप्रिय पद का आशय है भौतिक भौतिक की वीरों की कथाएं या वीरगाथाएं सुन लेना जिन्हें अच्छा लगता हो । इस कथाप्रियता में ही इन की शूरता का आदिप्लोत रखा हुआ है । वीरारों के वपचार करने में भी ये प्रवीण हैं ।

रोगियों की सेवा करने में प्रवीणता ।

माघतस्य भेषजस्य आ यद्दत्त ।

(क. ८१२०।२३) (१०४)

यत् सिन्धौ भेषजं, यत् असिन्ध्यां, यत् समुद्रेषु
यत्पर्वतेषु चिन्धं पदयन्तो विभृथा तनुष्या । नः
आतुरस्य रपः क्षमां विन्दुतं पुनः इष्कते ।

(क. ८१२०।२६) (१०७)

‘ पवनमें जो औषधियुक्त है उसे यहाँ ले आओ । सिन्धु, समुद्र, पर्वत, असिन्धी नामक स्थलों में जो कुछ दवाई मिल जाए उसे तुम देख लो तथा प्राप्त करो । वह समूचा निराल कर अपने समीप संग्रह कर रखो । हममें जो बीमार पड़ा हो उस के देह में जो युक्ति हो उसे इन औषधों से दूर करो और कुछ टूटाफूटा हो वो उसकी मरम्मत कर दो ।

तिलाली ।

इन धीरों में तिलालीपत्र की कुछ भी न्यूनता नहीं है ।
इन संबंध में कुछ प्रमाण देखिए—

क्रीळं मावतं शर्धं अमि प्रगायत ।

(क. ११२०।१) (६)

यत् शर्धं क्रीळं प्रशंस । (क. ११२०।५) (१०)
ते क्रीळयः स्वयं महित्वं पनयन्त ।

(क. ११८०।२) (१४७)

क्रीळा विदधेषु उपक्रीळन्ति ।

(क. ११२६।२) (१५९)

‘ क्रीडा में श्रद्ध होवेयाला मरतों का सामर्थ्य सधनुष्य परमणीय है । ये क्रीडामक मनोवृत्तियाँ हैं इससे उनकी मद्दनीयता प्रकट होती है । मुझ में भी ये इस तरह जगते हैं कि मार्गों पे खेल ही रहे हों । वीर हमेशा तिलाली बने रहते हैं । इनके तिलालीपत्रमें भी वीरता एवं शौर्यका ही आविर्भाव हुआ करता है । ’

नृत्यप्रियता ।

नृत्यः मरतः । मरतः यः भ्रातृत्वं आ अयति ।

(क. ८१२०।२२) (१०३)

‘ मरत् नृत्य में बड़े हुसल हैं । भावन तक इनसे हसी कारण निराला प्ररथावित करना चाहते हैं । ’ साधारण

मनुष्य भी ऐसे उच्च कोटि के वीरों के संपर्क में बिना उनकी नृत्यघातुरी के कारण आना चाहता है । इससे ज्ञात होता है कि इनकी कुशलता में भाकरपंगविक क्षिति बनी होगी ।

गानेबजाने में प्रावीण्य ।

येवा हील पठता हे कि वे वीर बाजा बजाने में भी कुशल थे, देखिए—

हिरण्यये रये कोशे पाण अज्यते ।

(क. ८१२०।८) (८९)

धार्णं धमन्तः रण्यानि चक्रिरे ।

(क. ११८५-१०) (१३९)

‘ सोने से सटे हुए रथ में बैठकर ये पाण नामक बाजा बजाने लगते हैं और चेतोहारी गायन का प्रारंभ करते हैं । इस भाँति वीर मरत् गायनवादन-पत्रता के कारण बड़ाही सुसहाल जीवन बिताने हैं और दुःख या उदासीनता इनके पास फटकने नहीं पाती ।

अगर वीर मरतोंमें विद्यमान सद्गुणोंका दिग्दर्शन किया जा चुका है । आशा है कि पाठकवृन्द के समुल्लस मरतोंका व्यक्तिमत्त्व स्पष्टतया स्पष्ट हुआ होगा । पाठकों से प्रार्थना है कि वे स्वयं भी इस संबंध में अधिक सोच लें ।

प्रबल शत्रु को जटमूल से उखाट फेंक
देनेवाले वीर ।

ये वीर मरत् इतने प्रभावशाली हैं कि स्थिरीभूत शत्रु को भी अपनी जगह परसे समूह उखाट देते हैं । देखिए—
(हे) नरः ! यत् स्थिरं पराहत् ।

(क. ११२५।३) (३८)

शुक्र धर्तयथा । (क. ११२५।३) (३८)

स्थिरा चित् नमयिष्णवः । (क. ८१२०।१) (८२)

यत् पन्नय, द्विपानि चि पापतत् ।

(क. ८१२०।४) (८९)

अच्युता चित् ओजसा प्रच्ययन्तः ।

(क. ११८५।४) (१२६)

एषां अजमेपु मूमिः रेजने । (क. ११८०।३) (१४७)

‘ हे नेता वीरो ! तुम स्थिर बुद्धिमत् को भी दूर हटाते

हो, यद्ये प्रयत्न शत्रु को भी हिंसा देते हो, रियर शत्रु को भी हृत्काले हो । जय तुम चढाई करते हो, तब शत्रुतक गिर पड़ते हैं । अविचलित शत्रु को अपनी शक्ति से विकषित करा देते हो । इनके भाक्रमण के समय जमीन तक दिक डबती है ।'

इस प्रकार ये वीर अपने प्रभाव से समूचे शत्रु को तहसतहस कर डालते हैं ।

भय आकृतियाँले वीर ।

मर्त्यों की आकृति यही भय हुआ करती थी, इस विषय के वर्णन देखिये ।

ये शुभ्रा घोरघर्षस सुश्रमासो रिशादस ।

क्र ८१०३१७ (अग्नि २४४७)

सरवान घोरघर्षस । (१०९) क्र. ११६४२

मृगा न भीमा । (१९९) क्र २३४१३

' ये वीर गौरवर्णाले पृथ भय शरीरों से युक्त हैं । वे अन्धे क्षणिय हैं और शत्रु का पूर्ण विनाश करनेवाले हैं । वे बलिष्ठ तथा बृहदाकार शरीरवाले हैं । सिंह की न्याईं ये भीषण दिशाईं देते हैं ।'

वीर कहा जा चुका है कि, ये सभी युववृद्धा में विद्यमान हैं । यह बात सचको विदित है कि, सेनाओं में युवक ही गर्वीं किये जाते हैं ।

रक्तिमामय गौरवर्ण ।

मर्त्यों के वर्णन से जान पड़ता है कि, ये गौर वदन वाले पर तनिक छालिमामय आभासे युक्त थे । देखिये—
शुभ्राः । (७०), क्र ८१०२५, (७३), ८१०२८
(५९), ८१०१४, (१२५), ११८५३, (१७५), ११६७४
अहणत्सय । (५२) ८१०७

एवम् हुआ कि, मरुत् गौरकाय थे, एव छालिमापूर्ण छवि उन के शरीरों से फूट निकलती थी ।

अपने तेज से चमकनेहारे वीर ।

ये सदा अपने तेज से द्योतमान हो उठते थे, ऐसा वर्णन उपलब्ध है ।

ये स्वभानवः अजायन्त । (७), क्र १३०२

स्वभानव धन्वसु ध्याया । (१३७), क्र ५५३३४

मरुत् प्र० ३

स्वभानवे वाचं प्र अनज । (२५), ५५४१

त्वेपं प्राकृतं गर्णं चन्द्रस्य । (३५) १३८१३५

ते भानुभिः त्रि तक्षिरे । (२३), ८१०८

चित्रमानवः तविपी अयुग्ध्वम् ।

(११४) क्र. ११६४१०

चित्रमानव अवसा आगच्छन्ति ।

(१३३) क्र १८५११

अहिमानव मरुत । (१९५) ११७२११

अग्निश्रियः मरुतः । (२१५) ३१२६५

' ये वीर मरुन अपने निजी तेज से प्रकट होते हैं । ये धनुष्यों का आश्रय लेकर पराक्रम कर दिखलाते हैं । उन तेजस्वी वीरों का वर्णन करो । समूचे मर्त्यों का तब तेजस्वी है । ये अपने तेज से विशेष दग से चमकी हैं । उन का तेज अनोखे दग से चमकता है । ये अग्निद्वय तेजस्वी हैं और उन का तेज कभी न्यून नहीं होता ।'

यह सारा वर्णन उन ही तेजस्विता को हीन तरह बालता है ।

अन्न उत्पन्न करनेहारे वीर ।

यहले बहा जा चुका है कि, [मरुत विश्व-कृष्टयः । (२१५) क्र ३१२६५] मरुत् सभी किसान ह । अतः स्पष्ट है कि धान्य का उत्पादन कराने उन के अनेकविध ऋत्यों में अन्तर्भूत था । निम्न मर्त्यों देखनेयोग्य हैं—

धयः धातार । (८०) क्र ८१०३५

विप्युर्वी इपे धृक्षन्त । (४८) क्र. ८१०३

ते इव अग्नि जायन्त । (१८६) क्र ११६८१२

नमस इत् घृधासः । (१२४) क्र ११७३१२

धयोवृध परिज्ञय । क्र ५५४१२

' मरुत् अन्न का धारण करते हैं, पुष्टिकारक अन्न का उत्पादन करते हैं । ये अन्न का उत्पादन करने के लिए ही उत्पन्न हुए हैं । ये अन्न की वृद्धि करनेवाले होते हुए वीर मरुत् चारों ओर घूमते रहते हैं ।'

ऐसे वर्णन पाय जाते हैं, जिन से वीर मर्त्यों का अन्नोत्पादन विदित होता है, अतः स्पष्ट है, ये सभी (कृष्टय) याने कृषिकर्म में निरत कारनकार हैं ।

‘गायोंका पालन करते हैं ।

कृपक होने के कारण मरुत् सेती करते हैं, धान्य की उपज बढ़ाते हैं, अन्नदान करते हैं, तथा गोपालन भी करते हैं । इस सम्बन्ध में देखिए—

घः गावः पृथ न रथ्यन्ति ? (१२) ऋ. ११८।२

‘ तुम्हारी गायें भला क्रिधर नहीं रँभाती हैं ? ’ अर्थात् मरुतों की गायें हर जगह घूमती हैं और सहर्ष रँभाती हैं । उसी प्रकार—

इन्धन्मभिः रथ्यद्भूमि धेनुभिः आगन्तव ।

(१०३) ऋ. २।३।५।

धेनुं ऊधनि विप्यत् । (२०४) ऋ. २।३।४

पृथ्व्याः ऊधः दुहुः । (२०८) ऋ. २।३।१०

‘ तेजसी एवं प्रसंतनीय घड़े घड़े धनों से युक्त गीलों के साथ दूसरे समीप आओ । गौके धन को दूधभरा वर ढालो । उन्हेंही गौके धन का दोहन किया । ’ ऐसे वर्णन मरुत्सूक्तों में पाये जाते हैं । ये वीर गायको मातृ-वत् पूज्य समझते हैं । देखिए—

गां मातरं घोचन्त । (१२२) ऋ. ५।५।१।१

‘ गौ हमारी माता हैं, ’ ऐसा वे कह चुके । गौ का दोहन कर के ये दूध पीते हैं और पुष्ट होते हैं ।

पृथ्निमातरः ! घः स्तोता अमृतः द्यात् ।

(२४) ऋ. १।३।४

पृथ्निमातरः इयं धुक्षन्त । (४८) ऋ. ८।७।३

पृथ्निमातरः उद्दीरते (६२) ऋ. ८।७।७

पृथ्निमातरः धियः दधिरे । (१२४) ऋ. १।८।५।२

गोमातरः अजिभिः शुभयन्ते । (१२५) ऋ. १।८।५।३

‘ गोमातरः ’ तथा ‘ पृथ्निमातरः ’ दोनों पदों का अर्थ गौ को माता माननेहारे और भूमि को माता समझनेवाले ऐसा हो सकता है । यहाँ दोनों अर्थ लिप्य जा सकते हैं । कारण, ये वीर गोभक्त तो ये ही, लेकिन मातृभूमि की उपासना भी बड़ी लगन से किया करते थे । मातृभूमि की सेवा करनेके लिए ये हमेशा अपना प्राण निटावर करने को तैयार रहा करते थे । इनके वर्णन पढ़ने से साफ साफ प्रतीत होता है कि, रामु को दूर हटाकर मातृभूमि को सुखी एवं संपन्न करने के लिए ही इनकी सम्पत्ती प्युष्टा, वीरता

तथा धैर्य का उपयोग हुआ करता ।

चूँकि ये कृपक, सेती करनेवाले एवं अन्न की उपज बढ़ानेहारे थे, इसलिये गौ की रक्षा करना इन के लिए अनिवार्य था, क्योंकि गौओं की उधति होने से कृषिकार्य के लिए आवश्यक, उपयुक्त बैलों की मृष्टि हुआ करती है ।

मरुतों के घोड़े ।

मरुतोंके समीप बटिया, भली भँडि तिलावे हुए भरपेट घोड़े थे । हमने देख लिया कि, ये गायों को रख लेते थे और गो-पालनविद्या में निष्णात थे । भव जग के अर्थों का विचार कर लेना चाहिये ।

घः अर्थाः स्थिराः सुसंस्कृताः । (३२) ऋ. १।१।१३

द्विरप्येपाणिभिः अभ्यैः उपागन्तव ।

(७२) ऋ. ८।७।२७

पृथणभ्वेन रथेन आ गत । (९१) ऋ. ८।२०।१०

आदणीपु तथिषीः अयुग्मवम् । (११४) ऋ. १।१५।७

घः रथ्यन्तः ससयः आ घहन्तु । ऋ. १।८।५।९

सः गणः पूषव्भः । (१५१) ऋ. १।८।१।१

ते अरणोभिः पिशंगैः रथ्यन्तिः अभ्यैः आ यान्ति ।

(१५२) ऋ. १।८।१।२

अरयान् इय अभ्यान् उक्षन्ते

आशुभिः आजिपु सुरयन्ते । (२०२) ऋ. २।३।३।३

‘ तुम्हारे घोड़े सुदृढ तथा सुसंस्कृत हैं । जिन घोड़ों के पैरों में सुवर्णरहित अलंकार ढाले गये हों, ऐसे घोड़ों पर बैठकर इधर आओ । जिस में बलिष्ठ घोड़े लगाये हों, ऐसे रथ से इधर आओ । लाल रंगवाली घोड़ियों में जो बलिष्ठ घोड़ियाँ हों, उन्हें ही रथ में जोड़ो । शीघ्र गतिवाले घोड़े तुम्हें इधर ले आयें । इस मरुत्सूक्तके समीप धरनेवाले घोड़े हैं । शक्ति आभावाके तथा भूरे रंगवाले घोड़ों से रथ शीघ्र चलकर तुम इधर आओ । घुटदौड़ में घोड़े जैसे बलिष्ठ बनाये जाते हैं, वैसे ही तुम अपने घोड़ों को पुष्ट रखो । तबतित जानेवाले घोड़ों से ये वीर लड़ाई में जय-प्राप्ति करते हैं, बहुत शीघ्र युद्ध में जाते हैं । ’

इन वचनों में मरुतों के घोड़ों का पदाति वर्णन है । ये घोड़े लाल रंगवाले, भूरे, धन्नेराले और बहुत बलवान होते हुए घुटदौड़ के घोड़ों के समान त्वरणशील होते हैं ।

ये टीक टीक विनाये हुए भल सभी लक्ष्मणों से युक्त होते हैं । युद्धों में इन घोड़ों की चरकटा दृष्टिगोचर हुआ करती है । इन वर्णनों से महर्षी के घोड़ों के सम्बन्ध में अनुमान करना कठिन नहीं है । और भी देखिए-

पुण्ड्रभ्यास आ घवक्षिरे । (३००) क १३३४७
पुण्ड्रभ्यास विद्वधेषु गन्तारः । (३०६) क १३३५१
अभ्ययुजः परिजय । (३११) क ५५४१२

घः अग्रा ॥ ध्रधयभ्त । (२५९) क ५५४१०

सुयम्रिभिः आशुभिः उभवे ह्यगन्ते ।

(२६५) क ५५५५१

मगत रघुेषु अभ्याम् आ युजते । (२०६) क १३३४८

' धरबेबाहे घोड़े जोतकर व वीर वर्जों में वा युद्धों में चले जाते हैं । घोड़े सेवार रख व कट्टे और घूमते हैं । तुम्हारे घोड़े भल नहीं जागे । रघुवीर रहनेवाले एव वराहचक्र जानेवाले घोड़ों से वे यात्रा करते हैं । मरु वीर रथों में घोड़े जोत लिया करते हैं । ' इसी प्रकार-

घ अभीशब्द दिधरा । (३२) क १३८१२

' तुम्हारे लगाम रिधर बागे न दूहनेवाले होते हैं । '

इन घघनोंसे पाठकपूर्व भली भाँति कहाना कर सकते हैं कि, वीर महर्षी के घोड़े किस उम्र के हुआ करते थे ।

इन वीरों का बल ।

महर्षी के वर्णनों में महर्षी के बल का उल्लेख अनेक बार पाया जाता है । कुछ मन्त्रान देखिए-

मादन्ते बलं अभि प्र भाषत । (६) क १३०११

मादन्ते दार्ये ह्यप म्रये । (१९८) क. २१३०१११

पुष्पाकं तपिवी पनीयसी । (३७) क. १३२१०

घ बलं जनान् अचुरुपवीतन । गिरीन् अचुरुच्य

पीतन । (१७) क. १३०११२

वप्रवाह्य तनूप नकि येतिरे ।

(९३) क ८१२०११२

' महर्षी के बल का वर्णन करो, उन का सामर्थ्य मराद-नीप है; उन का बल सारे शत्रुओंको हिला देगा है, पहाड़ों को भी विकरित करा देगा है, उस का बाहुबल बड़ा भारी है और लड़ते समय वे अपने शत्रुओं की तनिक भी पकड़ नहीं करते हैं । '

हम भौतिक वीर बलिष्ठ और अपनी शरीररक्षा की तनिक भी पकड़ न करते हुए लड़नेवाले थे, अतएव घटा ही प्रभावोत्पादक युद्ध प्रवर्तित कर लेते थे । भय तो उन्हें कभी प्रतीत ही नहीं हुआ करता । निर्भयतासे ये मूर्तिमान भवतार ही थे । विभ्रन मन्त्रान महर्षी के, मन की हिनमित करनेवाले तथा दिक्बध गहरा प्रभाव डालनेवाले, सामर्थ्य का रसक निरदेश करते हैं-

मदतां उग्रं दार्यं विभ्र हि । (८४) क ८१२०१३

अमघन्त मदि धियं यदन्ति ।

(८८) क ८१२०१७

शूराः शयसा अहिमन्यय ।

(११६) क ११६४९

अनन्तशुभमा-तपिवीमि संमिहता ।

(११७) क ११६४१०

ते स्वतयसाः अवर्धन्त । (१२९) क ११८५१७

घ साभि सना पौरुष्या । (१५७) क ११२२९१८

वीरस्य प्रथमानि पौरुष्या विदु ।

(१६४) क. ११२६१७

नपेषु बाहुषु भूरीणि मन्त्रा ।

(१६७) क ११२६१७

घ शयस अन्तं अन्ति आरात्ताच्चित्तु

मदि नु आपु । (१८०) क ११२७१९

तुविजाता हृद्भानि अचुच्यसु ।

(१८६) क ११२६१७

धृष्णु ओजस गा अवाधुपगत ।

(१९९) क २१३४११

ओजसा अर्द्धि भिन्दन्ति । (२०५) क ५५५२१०

घ वीर्यं दीर्घ ततान । (२५४) क. ५५५४१५

" महर्षीके उग्र सामर्थ्यसे हम परिनिता हैं, ये सामर्थ्य-घाती होनेके कारण बड़ा भारी यश पाते हैं, वे दूर हैं और अपने अन्दर विद्यमान सामर्थ्य से वे हजोगराह कभी नहीं बनते हैं; हमने सामर्थ्यों की कोई सीमा या अन्त नहीं, तथा इनकी शक्तियाँ भी बहुदली हैं; भग्न सामर्थ्य से वे बढते हैं वे तो इतके हमेशाके पौरुषपूर्ण कार्यकलाप हैं; वीरों के ये प्रारम्भिक पौरुष हैं । इन वीरों के बाहुभूमि में बहुत से द्वितकार्य सामर्थ्य स्थि पवे हैं; तुम्हारे बल का

अन्त ममश जेना, चाहे दूर से हो या समीर से, असमय ही है; बल के लिए विरतात ये वीर प्रबल दुश्मनों को भी विचलित कर देते हैं, दगदग दिखा देते हैं, अपनी शक्तिसे ही तो इन्होंने शत्रुओं के बचन से गौर्भों को छुड़ा दिया और भोजविरता के कारण पड़ाइ को भी तोड़ टाकते हैं, तुम्हारा सामर्थ्य बहुत दूर तक फैला है । ”

इन मन्त्रभागोंमें इन वीर मरुतों के प्रभावोत्पादक बल एवं सामर्थ्यका वर्णन किया हुआ पाठकों को दिखाई देगा, जो कि सचमुच मननीय है ।

मरुतों की संरक्षणशक्ति ।

वीर मरुत बलवान् बल शूर होर हृदयनताया संरक्षण करने वा भार अपने ऊपर के लेनेमें तत्परता दर्शाते हैं । इन समय में भागे दिये हुये वाक्य देखने योग्य हैं—

(हे) महत ! अस्मिभि उक्तिभि न आगन्त ।

(४४) क १३१५

ऊतये युष्मान् नक्तं दिवा ह्यथामहे ।

(५१) क ८१५६

पृथक्त्यै इन्द्रं अनु आयन् । (६९) क ८१०२४

स य उक्तिपुत्रमग आस । (९६) क ८१०१५

ऊमास राय योयं अरासत ।

(१६०) क ११६९३

य अभि=हुते अघात् आयत, अ जनं

तनयस्य पुष्टिपु पाथन, स शतभुक्तिभि-

पूर्भि रक्षत । (१६५) क ११६६८

मरुत उयोभि आ यान्तु ।

(१७३) क ११६०१२

घ ऊर्ना चित्र । (१९५) क ११७०२१

न रिप रक्षत । (२०७) क २३३५९

स्वेषं अच ईमहे । (२१५) श ३१५

ते यामन् रमना सा पान्ति (२१८) ५१५२१२

ये मानुषा युगा रिप आ पान्ति । (२२०) ५१५२१४

(हे) सद्य ऊतय 'द्रुविणं यामि । (२६४) ५१५३१५

य प्रापये स सुधीर असति । (२४८) ५१५३१५

“ हे वीर मरुतो ! अपनी समूची संरक्षणशक्तियों से मुझ होकर तुम दगावे पाम आओ, हमारे संरक्षण हों,

इसलिए हम तुम्हें रातदिन बुलाते हैं, शत्रु का वध करते समय इन्द्र को तुमने मदद दी, वह तुम्हारी संरक्षण—छत्र छाया से सौभाग्यशाली हो गया, संरक्षण करनेहारे इन धीरोंने धन की पुष्टि कर डाली; जित्ते, तुमने विनाश और पाप से बचाया था और जिसे तुमने इस देतु से बचाया था कि वह अपने पुत्रपौत्रों का संरक्षण भली भाँति कर ले, उसे तुम सँकड़ों उपयोगमाधनों से परिपूर्ण गर्दों से सुरक्षित रख लेते; अपने संरक्षक साधनों से युक्त होकर मरुत हमारे निकट आ जायें, तुम्हारा संरक्षण बड़ा अनुग्रह है, ईंसकों से हमें बचाओ, हमें तुम्हारे तेजस्वी संरक्षण की आवश्यकता है, वे हमका करते समय स्वयं ही रक्षा का प्रबंध कर लेते हैं। वे वीर सभी मानवी युगोंमें ईंसकों से बचाते हैं, हे तुम्हारे बचानेवाले वीरों ! मैं ब्रह्म पाता चाहता हूँ, निम की तुम रक्षा करते हो, वह उत्कृष्ट वीर बनता है । ”

इस से स्पष्ट होता है कि, इन्द्र को भी मरुतों की मदद मिल चुकी थी और उसी तरह अन्य लोग भी मरुतों की सहायता से काम उठाते आये हैं । पान में रहे कि, ये वीर अपनी शक्तियोंसे और संरक्षण की आयोजनाओंसे अविद्यमानता से सब को सहायता देते हैं । कभी दुर्ग में रहते हुए तो कभी स्थारुद होकर यात्रा करते हुए स्वयं घटनास्थलपर उपस्थित रहकर ये रक्षार्थियोंको संरक्षण देते हैं । इन सूक्तों में निर्देश मिलता है कि, कर्हणोंको मरुतों की मदद मिल चुकी थी, जो कि इस दृष्टिकोण से देखनेयोग्य है । यहाँपर प्रमुख बात यही है कि, रक्षार्थी चाहे शत्रु हो या साधारण मानव पर सभी समान रूपसे मरुतों की सहायता से शांतिवित हो चुके हैं ।

मरुतों की सेना ।

मरुत जो सुद ही सैनिक हैं । ये साठसात की पक्ति बनाकर घला करत हैं और इनकी पृथी कतारें ७ रहा करती हैं । सब मिलाकर ४९ सैनिकों का एक छोटा विभाग बन जाता । इन कतार में दोनो पार्श्वभागों के लिए दो पार्श्वरक्षक नियुक्त होते थे । सात पक्षियों के १४ पार्श्वरक्षक रहते । सैनिक ४९ और १४ पार्श्वरक्षक मिलाकर ६३ मरुत एक छोटे से सच में पाय जाते । ६३ मरुतोंके

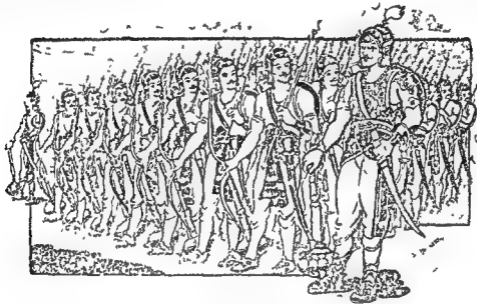
इस संघ को 'शार्ध' नाम दिया गया है । (६३ × ७) = ४४१ सैनिकों का अथवा ७ दशकों का एक 'व्रात' और (६३ × १४) = ८८२ सैनिकों या १४ दशकों का या दो दशकों का एक 'गण' हुआ करता । इस प्रकार हा सैनिकों की यह संघमेंलया है, जो ऐसी बनी हुई है कि, इस में क्या न्यून या अधिक है, सो अन्य प्रमाणों से ही विधारित करना ठीक होगा । इस दृष्टि से मंत्रोंमें पाये जानेवाले इन दशकों का मर्म जानना चाहिये । अस्तु, मरतों की सेना के बारे में निम्नलिखित वचन देखिये-

रथानां शार्धं प्रयन्ति । (२४३) क ५।५३।१०

'तुम्हारे सशय के लिये लड़नेवाले सैनिकों को प्राप्त करे; तुम्हारे शार्ध और गणविभागों के पीछे हम तुम्हें ही चलते हैं, वे वीर रथों के विभाग को पहुँचते हैं ।'

इस स्थानपर सिपाहियों के विभाग को सूचित करने-वाले 'शार्ध तथा गण' दो पद पाये जाते हैं । इन सैनिकों का प्रभाव किस ढंग का बना रहता है, सो देख लीजिए-

(८७) क ८।२०।६



मरतों का एक संघ ।

पृथिनः मरतां रथेषु अनीकं अस्तु ।

(१९१) क १।१५।८५

'मातृभूमिने मरतों के इस तेजस्वी सैन्य को उत्पन्न किया । अर्थात् यह सेना मातृभूमि के लिये ही अस्तित्व में आती है और इस सेनाका भली भाँति संगठन हो चुकने पर मातृभूमि तथा उस के सभी पुत्रों याचे समूची जनता का संरक्षण करने का गुदतर कार्यभार इस के दशकों में पाया दिया जाता है । देखिए-

घ. श्रुतस्य शार्धान् जिन्वत । (६६) क ८।०।२।१

यः शार्धशार्धं गणगणं अनुक्रामेम

(७४४) क ५।५३।११

'तुम्हारे भेदिक भागे यह चकें, इस दंतु आरात ऊँचा ऊँचा हो जाता है ।' इस तरह तुम्हें आकाश ही इस सेना को आगे निकल जाने के लिये सुक मार्ग बना देता है । मरत सेनाका प्रभाव इतना सर्वव्यप और प्रमाथी है । जिस किसी दिशा में यह सेना चली जाए, उधर इसे रुकावट नहीं महसूस करनी पड़ती है और प्रगति के लिये मार्ग खुला दील रहता है । यह सशय कुछ प्रभावशाली शौर्य का ही नतीजा है ।

विजयी वीर ।

वे वीर सर्वत्र विजयी बनते हैं, तथा इनका प्रभाव भी बड़ा ही पचट है । इस विषय के कारण इनकी सेना में

एक तरह की भनोसी शोभा फैलती है—

अनीकेषु अधि धियाः । (१३) ऋ. ८।२०।१२

‘ इन के सैनिकों के मोर्चेपर विशेष शोभा या विजयभी रहती ही है ’ अर्थात् इनकी सेनामें इतना प्रभाव बिद्यमान रहता है कि, निधय से विजयभी मिलेगी, ऐसा कहा जा सकता है ।

धारायरा गा अपावृषयत । (११९) ऋ २।३।४१

‘ युद्ध के मोर्चेपर—भ्रममाण पर—अपरिचित हो खेच उड़ते हुए वीर शत्रु के कारागृह से गाँवोंको सुरा देवे है । ’
ये वीर—

श्रामजित अश्वरन् । (२५७) ऋ ५।५।४८

‘ शत्रु से गाँव जीत लेनेपर बड़ी भारी गर्जना करते हैं । ’ यह निस्सन्देह विजय पाने की गर्जना या वृहदाह है ।

(हे) जीरदानव । युष्माकं रथान् अनुद्वेघे ।

(२३८) ऋ ५।५।३५

जीरदानव । पृथिवी मरुद्भ्य प्रवश्यती ।

(२५७) ऋ ५।५।४८

जीरदानवः । आ घयक्षिरे । (२०२) ऋ २।३।४७

‘ तीव्र विजय पानेहारे वीरो । तुम्हारे रथों के पीछे मैं चलाता हूँ, मैं तुम्हारा अनुमरण करता हूँ, पृथिवी मरुतों के छिप सरह भाँरा सोपा मार्ग बना देती है । ’

चाहे जिधर वे मरुत् चले जायें, उन्हे कहीं भी विजय बाधा या अडचनरोंके नहीं रखती । इन के मार्ग पर के सभी ऊपटलाबट स्थान, बीहड़ पहाड़ या दीले दूर हुआ करते भीरे ये वीर इच्छित स्थानतक इतनी भावना से जा पहुँचते हैं कि, मार्गों ये सभी सीधी राहपर से जा रहे थे ।

शत्रुओं का विध्वंस ।

इन मरुतों का एक प्रमुख कार्य अर्थात् ही शत्रुओं का विनाश करना है और इन के वर्णनपरक सूक्तों में इस का पलान ॥ जगद क्रिया है । इस सम्बन्ध में मन्त्रों अथ देखिए—

रिशादसः ! य शत्रु न विविदे ।

(३९) ऋ १।१९।४

रिशादस । (११२) ऋ १।६।४५

‘ ये शत्रु को समूह विध्वस्त करनेहारे वीर सैनिक हैं, अतः इन्हें ‘ शत्रुमक्षक = (रिशादस) ’ कहा है । ये शत्रु को मार्गों खा जाते हैं, अत कोई शत्रु शय नहीं रहने पाता । ये कहीं भी गमन करें, पर शायद ही इन्हें किसी एकाध जगह दुश्मन मिले ।

विश्वं अभिमातिनं अपवाधन्ते ।

(१६५) ऋ १।८।५३

तं तपुषा चन्द्रिया अभिवर्तयत, अश्वसः

घघ आ हन्तन । (२०७) ऋ २।३।४९

‘ ये वीर समूह दुश्मनों को मार भगते हैं, वे वीरो । तुम दुश्मन को परित्याग देनेहारे पट्टियेश्वर हथियार से घेर लो और वेद शत्रु का विध्वंस करो । ’

इस भौति, पूरी तरह शत्रु को मटियाभेद कर देने की जो क्षमता वीर मरुतों में है, इस का मित्र वेदके सूक्तों में पाया जाता है ।

दुश्मनों को रलानेवाले वीर ।

मरुतों को रुद्र भी कहा है, जिसका आगत्य है, (रोद-यति इति) रलानेवाला बाने दुरासना पृथ दुर्जन शत्रुओं को रलानेवाला । चूँकि ये शूर तथा शत्रुदल का अपूर्ण विध्वस्त करनेवाले हैं, इसलिए यह नाम किलबुल सार्थक जान पड़ता है । देखिए—

(हे) रुद्राः ! तपियो तगा अहनु ।

(३९) ऋ १।१९।४

इस के अतिरिक्त (४२) ऋ १।९।७, (५७) ऋ. ८।७।१२ (८३) ऋ ८।२०।२, (१५९) ऋ १।१।६।१, (२०७) ऋ २।३।४९ इन में तथा इसी भौति के अनेक मन्त्रों में मरुतों को ‘ रुद्र ’ नाम से पुकारा है । अतः, यह शब्द उन की प्रबल जीरता को व्यक्त करता है ।

मरुतों की सहनशक्ति ।

ध्यान में रहे कि, दो प्रकार का सामर्थ्य वीरों में पाया जाता है । जब वीर सैनिक शत्रुदल पर आक्रमण का सूत्र पात कर दें, तो उस तीव्र दमले को बरदास्त न कर सकने के कारण शत्रुसेना विनष्ट हो जाए । इसे ‘ असहा ’ सामर्थ्य कहना चाहिए और दूसरा भी एक सामर्थ्य इस विरस का होना है कि, दुश्मन चाहे कितना ही प्रबल

हमका चढाना शुरू की, लेकिन अपनी जगह भटक पनं अदिग रूप से रहना और अपना स्थान किसी तरह न छोड देना, सम्भव होता है । यह सामर्थ्य 'सह या सह-मान' पदों से सूचित किया जाता है । यह भी मरुतों में पूर्णरूपेण विद्यमान है । देखिए—

मुद्रिहा इय सहाः सन्ति । (१०२) क्र. ८।१०।२०

'मुद्रियुद्ध खेलनेवाले वीर की तरह ये सभी वीर सहनशक्ति से युक्त हैं ।' यह सुवरा आवश्यक है कि, धीरों में सहिष्णुता पर्याप्त मात्रा में रहे, क्योंकि उग्रद विभिन्न तथा प्रतिक्लृप्त दशाओं में भी अविचल रूप से बडे रहकर कार्य करना पडता है । शीतोष्ण सहिष्णुता याने कडाके का जाड और झुकसानेवाली धूप बरदाश्रत करना पडता, जैसे ही शत्रु के तीव्रतम आघातों की पर्याप्त न करते हुए बडे रहने की भी जरूरत होती है । इस तरह कई ढंग से सहनशक्ति काम में लाई जा सकती है ।

ये वीर पर्वतों में घूमा करते ।

पहाडों में संचार करने, धीहट जंगलों में घूमने आदि कार्यों से और इषायाम से शरीर सुदृढ तथा कष्टसहिष्णु बनता है । इसीलिए वीर सैनिक पार्वतीय भूमिमागों में चलते फिरते हैं, इस विषय में निम्न निर्देश देखिए—

पर्यतेषु वि राजध । (४६) क्र. ८।७।१

यनिनं ह्यसा गुणीमसि । (११९) क्र. १।६।१।२

'वीर मरुत पहाडों में जाते हैं और यहाँ सुहाते हैं, वनों में गये हुए मरुतों का वर्णन करता हूँ ।' ऐसे वृन के वर्णन देखने पर यह स्पष्ट होता है कि, ये वीर पर्वतों का संचार मरुतों में संचार किया करते थे । शीतों को और शिशोपतया सैनिकों को इस प्रकार का पर्यतसंचार करना बहुत हितकारक तथा आवश्यक होता है । क्योंकि ऐसा करने से कष्टसहिष्णुता बढ जाती है ।

स्वयंशासक वीर ।

ये वीर स्वयं ही अपना शासन करनेवाले हैं । इन पर अन्य किसी का शासन प्रस्थापित नहीं हुआ था । इस बात का निर्देश करनेवाले मंत्रांश नीचे दिये हैं ।

अराजिनः घृणिण पौरुष्यं चक्राणाः

घृत्रं पर्यशः वि ययुः । (६८) क्र. ८।७।२३

'के अराजक वीर बडा भारी पौरुष करते हुए वृत्र के टुकडे टुकडे कर चुके ।' मरुतों के लिए यहाँ पर 'अ-राजिनः' पद आया है । जिन में राजा का अभाव हो, ये 'अ-राजिनः' कहलाते हैं । आज भी भारत में राज-निहीन जातियाँ पाई जाती हैं, जिन में एक प्रमुख शासक नहीं रहता, अपितु समूची जाति ही अपने शासन का प्रबन्ध थाप कर लेती है, जिसे महाराष्ट्र में 'देव' कहते हैं । अर्थात् सारी जाति ही जयित का शासन करती है । जिन गिरोंहों में ऐसा प्रबन्ध नहीं रहता उन में कोई न कोई एक नियन्ता या शासक के पद पर अभिषिक्त रहता है और ऐसे मानयसमूहों को 'राजिक' याने राजा से युक्त कहते हैं । जिन मानयसमूहों में राजसंस्था का अभाव हो, वे स्वयंशासित हुआ करते, इसीलिए इन्हें 'स्व-राजः' ऐसा भी कहते हैं ।

ये आश्वत्थाः अमयत् घृह्मते

उत ईशिरे अमृतस्य स्वराजः ॥

(१२२) क्र. ५।५।८।१

अस्य स्वराजः मरुतः पिवन्ति ॥

(३९८) क्र. ८।१४।४

'ये सुद ही अपना शासन करनेवाले मरुत जहद जानेवाले घोडों पर बैठकर जाते हैं और अमृतस्य के अभि-पति हैं, ये स्वयंशासक मरुत इस सोम के रसका आस्वाद लेते हैं ।' यहाँ पर 'स्वराज' पद का अर्थ है, स्वयंशासक या अपने निजी प्रकाश से शोतमान । ये स्वयं ही अपने ऊपर शासन चला केते थे, इस विषय में दूसरे बचन देखिए—

स हि स्वसुत् युवा गणः ।

तविपीमिः आवृत्तः अया ईशानः ॥

(१४८) क्र. १।८।७।४

ईशानकृतः । (११२) क्र. १।६।५।५

'यह युवक मरुतोंका संघ अपनी निजी मेरणासे चलने-वाला और विविध शक्तियों से युक्त है, इसीलिए वह समुद्र (ईशानः) स्वयं अपना ईश है, अर्थात् सुद ही शासक बना हुआ है; ये वीर शासकों का सृजन करनेवाले हैं ।' यह बडे ही महत्व की बात है कि, जो विविध सामर्थ्यों से युक्त तथा स्वयंप्रेरक होता है, वह स्वयं ही अपना प्रभु

बनता है और शासकों का सृजन करता है; मत्स्य यही कि, उस पर अन्य कोई प्रभुत्व नहीं रख सकता, क्योंकि उसमें इतनी क्षमता विद्यमान है कि राजा का निर्माण कर ले । ये वीर अपना निर्धनत्व स्वयं ही कर लेते हैं ।

स्वयतासः षष्ठ्यजन् (१६१) ऋ. १।१६६।७

‘ ये खुद ही अपना नियमन करते हैं और दुश्मनों पर वेगपूर्वक हमला चढ़ाते हैं । ’

इस भौमि यह सिद्ध हुआ कि, मरुत् गणदेव हैं याने इन में गणशासन प्रचलित है और कोई एक व्यक्ति इन का शासन नहीं करता है, लेकिन ये सभी मिलकर इन्द्र को सहायता पहुँचाते हैं । वैदिक साहित्यमें मरुतों के विद्या भव्य कई गणदेव पाये जाते हैं, उदाहरणार्थ, वसु, रद्र, आदित्य आदि जिन का विचार उस उस देवताके प्रसंग में किया जायगा । यहाँपर तो हमें सिर्फ मरुतों का ही विचार करना है ।

मरुत्-गण का महत्त्व ।

वैदिक वाङ्मय में मरुत्गण का महत्त्व बताने के लिये सूत्र बड़ा बड़ा वर्णन किया है । देखिए—

ते महिमानं आशात । (१२४) ऋ. १।८५।२

ते स्वयं महित्वं पनयन्त । (१४७) ऋ. १।८७।२

ये महा महान्तः । (१६८) ऋ. १।१६६।११

एषां मरुतां सारयः महिमा अस्ति ।

(१७८) ऋ. १।१६७।७

महान्तः विराजयः । (२६६) ऋ. ५।५२।२

‘ ये वीर मरुत् बह्मण्यन को प्राप्त होते हैं; वे स्वयं ही अपने कार्य से बह्मण्यन पाते हैं; वे अपने मित्रों बह्मण्यनसे महान हो चुके हैं, इन मरुतों का बह्मण्यन सारय है, बड़े होकर वे प्रकाशमान हुए हैं । ’

‘ यान में रहे कि वैदिक सुक्तों में इनके महत्त्व की जो मान्यता मिल चुकी है, वह केवल इनके शूरतापूर्ण विविध पराक्रमी कार्यकलाप के कारण ही है ।

अच्छे कार्य करते हैं ।

यह विनये प्रेक्षणीय बात है कि, ये वीर मरुत् हमेशा शुभ कार्य करने के लिए बड़े सतर्क रहा करते; देखिए—
यत् इ शुभे युञ्जते । (१४७) ऋ. १।८७।३

शुभे वरं कं आयान्ति । (१५२) ऋ. १।८८।२

शुभे संमिश्राः । (२१४) ऋ. ३।२६।४

शुभे त्मना प्रयुञ्जत । (२२४) ऋ. ५।५२।८

शुभं यातां रथा अन्ववृष्टसत । (२५७) ऋ. ५।५४।८

‘ ये वीर शुभ कार्य करने के लिए सज्ज होते हैं; ये वीर शुभ कृत्य तथा श्रेष्ठ कल्याण करने के लिए ही भाते हैं; शुभ कार्य पूरा करने के लिए ये हकूठे हुए हैं; ये खुद ही अच्छे कार्य के लिए लुट जाते हैं; शुभ कार्यसमाप्ति के लिए जब ये जाते हैं, तब इनके रथ पीछे चल पड़ते हैं । ’

शुभ कार्यसे वात्सर्व्य है, जनताका कल्याण हो ऐसा कार्य जिसे कर्तव्य समझ कर ये वीर करने लगते हैं, देखिए—
तृणस्कन्दस्य विशाः परिवृद्धाः, तः ऊर्ध्वान्कर्त । (१९७) ऋ. १।१७२।२

‘ तिनके की नाईं यही विनष्ट होनेवाले प्रजाजनों की रक्षा पारों ओरसे कीजिये और हमारी प्रगति कीजिए । ’ साधारणतया मान लो ऐसी है कि, जनता तिनके के समान बिली हुई होने से आसानी से विनष्ट हो सकती है, पर जिन तरह विचारे तिनकों को एक जगह बाँध लेनेसे एक रस्ता बनता है, जो हाथी को भी जकड़ता है; वैसे ही प्रजा में भी ऐसी शक्ति है, परन्तु अगर वह बिलर जाए, तो विनष्ट होती है । इन प्रजाजनों का विनाश न हो, इसलिये उन्हें पूर्णतया वेष्टित कर पड़ना के सूत्र में विरोध से उनकी प्रगति करना सुगम होता है और यही शुभ कार्य है । इसी प्रकार—

नृपायः मरुतः । (११६) ऋ. १।१६।९

‘ मानवों के साथ रहकर उनकी सहायता करनेवाले वीर मरुत् हैं । ’ शूर वीरों का यही श्रेष्ठ कर्तव्य है कि वे मानवों के निकटतम संपर्क में रहे और उन्हें प्रगति का मार्ग दर्शाये । चूँकि ये वीर मरुत् अपना कर्तव्य पूर्ण करते हैं, इसीलिये इनके महत्त्व का वर्णन वेद में हुआ है ।

शत्रुदल से युद्ध ।

मरुत् (मरु-उत्) मरनेवाक, मौतके मुँह में समाये जानेवाक उठकर शत्रुसेना से जुड़ते हैं अथवा (मा-रुत्=मरुत्) रोने बिलखने के बजाय प्रतिकार करने में अपनी सारी शक्ति लगा देने हैं । इसी कारण से ये मरुतों

शूरा के लिए विरथात हो चुके हैं । इन का युद्ध-कोशल यथा ही विस्मयजनक है । निम्ननिर्देश देतिष्ठ—

अग्निगायः पर्वता इव भ्रमना प्रच्याययन्ति ।

(११०) ऋ ३६४३

युवानः भ्रमना प्रच्याययन्ति ।

(११०) ऋ ३६४३

‘ आगे बहनेवाले ये धीर अपनी जगह पहाड़ की भाँति स्थिर रहकर अपने मामर्थ से दुश्मन को हिला देते हैं । ’

ये धीर—

पर्वतान् प्र वेपयन्ति । (४०) ऋ, ११२९५

‘ पहाड़ की तरह सुस्थिर एवं अग्नि शत्रुओं भी यरघर कापमान बना देते हैं । ’ इन का पराक्रम इतना प्रचण्ड है और उसी प्रकार—

(हे) तपिपीथयः ! यत् यामं अस्मिन्

पर्वताः नि उहासत । (४७) ऋ ८७१२

‘ हे बलिष्ठ वीरो ! जब तुम हमके चरणों को, तब पहाड़ के तुल्य स्थिर प्रतीत होनेवाले मयल शत्रुओं को भी बगडग हिला देते हो । ’

दुणिण पौंस्यं चक्राणां पर्वतान् वि ययु ।

(८८) ऋ ८७१२३

‘ पटा भारी वीर्य करनेवाले तुम धीर सैनिक पहाड़ों को भी तोडकर भागे निकल जाते हो । ’

अयासः स्थसूतः षडज्ज्युतः दुध्रकृतः प्राज-

दृष्टय आपथयः न पर्वतान् हिरण्ययेभिः

पविभिः उपिजघ्नन्ते ॥ (११८) ११६४११

‘ हमला करनेवाले, अपनी आघोरता के अनुसार प्रगति करनेवाले, स्थायी युद्धमनों को भी उखाड़ फेंकनेवाले, जिनके भागे जाना दूसरों के लिए अभय है ऐसे, तेज पुंज हथियार धारण करनेवाले, राहवर पटा हुआ टिमका जिस तरह इटाया जाता है, जैसे ही पर्वतों को, सुवर्णभिभूयित इव के पदियों ने या चक्राकारवाड़े हथियारों से उड़ा देने हैं । ’ इन का पराक्रम ऐसा ही विलक्षण है ।

(हे) धृतयः ! मार्गं परावतः इत्यां ॥ अत्यथ ।

(३६) ऋ ११२९१

‘ हे शत्रुवृक्ष को विकृत करनेवाले वीरो ! तुम अपना हथियार बहुत दूर से भी हथर फेंक देते हो । हम तरह तुम्हारा अस्त्र फेंक देने का सामर्थ्य है । ’

(हे) धृतयः ! परिमन्यते इषु न द्विषं सृजत ।

(४५) ऋ ११२९१०

‘ हे शत्रुवृक्षको हिला देनेवाले वीरो ! चारों ओरसे वेरनेवाले शत्रु पर जिस तरह बाग छोड़े जाते हैं, जैसे ही तुम तुम्हारे शत्रुको ही दूसरे शत्रुपर छोड़ दो । अर्थात् तुम्हारा एक दुश्मन उस दूसरे शत्रुसे लड़ने लगेगा, जिसके फल-स्वरूप दोनों आपसमें युद्धरत हतयल हो जायेंगे और उनके क्षीण होनेपर तुम्हारी बिजय आसानी से होगी । ’ शत्रुको शत्रुसे भिद्यन्त करने का यह उपाय सधसुध बहुत विचारणीय है । युद्धका यह एक यथा ही महत्त्वपूर्ण दाय-पेच है ।

पर्यां यामेषु पृथिवीं भिया रेजते ।

(१३) ऋ, ११३७१८

‘ इन वीरोंके शासकण के समय समूची पृथ्वी मारे हर के काँप उठती है । ’ इन का हमला हमला तीव्र हुआ करता है ।

शूरा इव युयुधय न जग्मयः, शयश्ययं न

पूतनास्तु येतिरे । राजानः इव स्त्रैपसंहशः

नरः, मरद्भव-धिग्वा भुवना भयन्ते ॥

(१३०) ऋ ११८५१८

‘ शूरोके समान और युद्धो-शुरु रणवीरु लियेदिवो के तुल्य शत्रुसेना पर टूट पड़नेवाले तथा यथा की हज्ज करनेवाले वीरोंके जैसे वे धीर मरर समरभूमि में यजी भारी शूरात दिपाते हैं । गरोको के तुल्य तेगभरे दिखाने देनेवाले ये धीर हैं, इसीलिए सारे भुत इन धीर महर्षी से भयभीत हो उठते हैं । ’

इस भाँति हा वीरोंकी युद्धचेष्टाओंके वर्णन वेदमंत्रों में पाये जाते हैं, जो कि सभी ध्यानपूर्क देखनेयोग्य हैं ।

मरुत वीरों का दातृत्व ।

धीर मरुत चडे ही उदार प्रकृतिवाले हैं, तथा रान गुने दिल से दान देने के कारण ‘ सु-दानव ’ पद से इन्हें सम्बोधित किया है, जिस का कि अर्थ है ‘ पडे मरुते दाता । ’ मरुतों के चको में यद विशेषण इन्हें पहँ वार दिया गया है ।

सुदानवः । (५) ऋ. १।५।२; (४५) ऋ. १।३९।१०; (५७) ऋ. ८।७।१२; (६४) ऋ. ८।७।१९ आदि। इस तरह यह पद महर्षों के लिए अनेक बार सूक्तों में प्रयुक्त हुआ है। उसी प्रकार—

एषां दाना मद्रा । (१५) ८।२०।१४

यः दानं व्रतं दीर्घम् । (१६९) ऋ. १।१६६।१२

' इन वीरों का दान बहुत बड़ा है और देने देने का मत बड़ा प्रचंड है। ' इन के दाएव्य का वर्णन मरव्य-सूक्तों में इस तरह पाया जाता है। वीर पुरुर हमेशा उदारचेता बने रहते हैं। जिस अनुपात में शूरता अधिक, उतने अनुपात में उदारता भी ज्यादा पाई जाती है। यह स्पष्ट है कि, महर्षों की शूरता उच्च कोटिकी थी और दाएव्य भी बहुत बड़ाचड़ा था।

मानवों का हित करनेहारे वीर ।

' नर्य ' पद, (नराणां हिते रत) मानवों के हित करने में तत्पर, हम अर्थ में वेद में अनेक बार पाया जाता है। मरवों के लिए भी इस पद का प्रयोग किया है। ऐवो (१६७) ऋ. १।१६६।५ और उसी प्रकार—

नर्येषु दाहुषु भूरीणि मद्रा । (१६७) ऋ. १।१६६।१०

' मानवों के हितार्थ कार्यनिम्नन होने वीरों की भुजाओं में बहुतसे हितकारक सामर्थ्य विद्यमान है। ' ये वीर मानवों को सुख देने हैं, इस संबंध में यह मंत्र-भाग देखिए—

(हे) मयोभुयः । शिवाभिः नः मयः भूत ।

(१०५) ऋ. ८।२०।२४

' सब को सुख देनेवाले हे महर्षों ! अपनी कल्याण-कारक शक्तियों से हमें सुख देनेवाले बनो । '

अस्मे इत् व. सुमनं अस्तु । (१४२) ऋ. ५।५३।९

' हम सभी को तुम्हारा सुख प्राप्त होवे । ' मरव्य समूची मानवजाति को सुख देते हैं और यह हमें उस से मिल जाय। सुख देना महर्षों का धर्म ही है और वे हमेशा उस धर्म को निभाते ही रहेंगे; परन्तु ठीक समयपर उनके साथ रह कर यह उन से प्राप्त करना चाहिए। ये सदैव साधर्म करते रहते हैं।

सुद्वंससः प्र शुभ्रन्ते । (१२३) ऋ. १।८५।१

' ये शुभ धर्म करनेवाले वीर अपने शुभ कार्यों ही

सुहाते हैं। ' मानवों के हित जिनसे हों, वे ही शुभ कार्य हैं।

कुलीन वीर ।

वीर मरव्य उष्ण परिवार में जन्म लेते हैं, इसलिए वेदने उन्हें ' सुजाताः ' उपाधि से विभूषित किया है।

सुजातासः नः भुजे नु । (८९) ऋ. ८।२०।८

सुजाताः मरुतः तुविद्युग्नासः अद्रि धनयन्ते ।

(१५३) ऋ. १।८८।३

सुजाताः मरुतः ! यः तत् महित्वनम् ।

(१६९) ऋ. १।१६६।१२

' उष्ण परिवार में उत्पन्न ये वीर बहुत बड़े हैं। वे स्वयं तेजस्वी होने के कारण परंतु को भी घम्य करते हैं। ये कुलीन वीर अपनी शक्ति से महर्षों को प्राप्त होते हैं। ' इस प्रकार इनकी कुलीनताका बखान वेदने किया है।

ऋण चुकानेवाले ।

ध्यानमें रहे, ये वीर ऋण करते नहीं रहते, अपितु तुरन्त उसे चुकाते हैं। इनकी मनोवृत्ति ऐसी है कि किसी के भी ऋणों न रहें, इसलिए उष्ण होनेकी चेष्टा करते हैं। देखिए—

ऋण-याचा गणः अविता । (१४८) ऋ. १।८७।४

' ऋण को चुकानेवाला यह वीरों का संघ सब का संरक्षण करनेवाला है। ' यहाँपर बतलाया है कि ऋण चुकाना महर्षवर्ण गुण है, जो इनके वीरत्व के लिए बड़ा ही भूषणास्पद है। निरसम्भेद, ऋण चुकाना नागरिक लोगोंके लिए बड़ा भारी गुण है।

निर्दोष वीर ।

अवतक का महर्षोंका वर्णन देता जाय, तो स्पष्ट मतीत होता है कि ये पूर्ण रूपसे दोषरहित हैं। किसी भी प्रकार की त्रुटि या म्यूनता बन में नहीं पाई जाती है। इस संबंध में निम्नलिखित वेदमन्त्र देखिए—

अनवद्योः गणैः । (३) ऋ. १।६।८

स हि गणः अनेद्यः । (१४८) ऋ. १।८७।४

ते अरेपसः । (१०९) ऋ. १।६४।२

अरेपसः स्तुहि । (१३६) ऋ. ५।५३।२

' मरवों का यह संघ निताम्य निर्दोष पूर्व अनिन्दनीय

है। पाप से कोसों दूर तथा अपवादरहित हैं। ऐसे निरा-
गस वीरों की सराहना करो।'

जो वीरों से बिलकुल अलूते हों, उन की ही स्तुति
करनी चाहिए। यूसुफी किमी की सुशामद या चापलुवी
करना ठीक नहीं। जैसे ये वीर निर्दोष आचरणवाले
होते हैं, वैसे ही ये निर्मल या साधसुधरे भी रहा करते।
उदाहरणार्थ—

अरेणयः दृढहानि अनुच्युधः ।

(१८६) क्र. ११६८।४

'ये साधसुधरे वीर सुदृढ विरोधियों को भी पदच्युत
कर देते हैं।' यहाँपर 'अ-रेणयः' पदका अर्थ है वे, जिन
के शरीरपर धूल न हो, देहपर, कपड़ोंपर, दयियारोंपर
धूलिकण नहीं दिखाई पड़े। ऐसे वीर जो अत्यन्त सफाई
तथा बलबलपान अनुष्ण बनाये रहते हैं। उसी तरह—

ते पररण्यां शुभ्युध. ऊर्णां घसत ।

(२२५) क्र. ५।५२।२

'ये वीर परणी नदी में नहा धोकर साधसुधरे बनकर
ऊनी कपड़े पहन लेते हैं।' इस ऊनी यस्त्राचारण के प्रमाण
से स्पष्ट होता है कि ये वीर शीत कटिबंध में निवास
करते थे। परणी नदी शीतप्रधान भूमिभाग में बहती
है, सो स्पष्ट ही है। पहले रथों का बलान करते हुए हम
बतला चुके हैं हरिणोंद्वारा खींचे जानेवाले तथा पहियों
से रहित याहनों का उपयोग वीर मरुत कर लिया करते
थे। ऐसे याहन पकाले भूभागोंपर ही अधिक उपयुक्त
हुआ करते, अतः यह भी एक प्रमाण है कि ये वीर शीत-
कटिबंध के निवासी थे।

मरुतों का संपर्क ।

सूँची मरुतों में इतने विविध सद्गुण विद्यमान हैं, अतः
उनके सहवास में रहने से सभी लाभ उठा सकते हैं, वह
पशाने के किये निम्न नघर्न उद्भूत किये जाते हैं।

य आपित्वं सदा निम्रुवि अस्ति ।

(१०३) क्र. ८।२०।२२

यस्य क्षये पाघ स सुगोपातमो जनः ।

(१३५) क्र. १।८९।१

स मरुतं सुभगः अस्तु, यस्य प्रयासि पर्यथ ।

(१४१) क्र. १।८९।०

'इन वीरों की मित्रता स्थिर स्वरूप की है, इनकी
मित्रता चिरंतन स्वरूप की है। जिस के घर में ये सोमरस
का पान करते हैं, वह पुष्प अत्यन्त सुरक्षित रहता है,
जिसके घर जाकर ये वीर अन्नग्रहण करते हैं, वह सचमुच
भाग्यवान् बने।'

य था नूनं असति, स वः ऊतिपु सुभगः आस ।
(९६) क्र. ८।२०।१५

'जो इन वीरों का ही बनकर रहता है, वह इनके
संरक्षणों से अकुतोभव होकर भाग्यवादी बन जाता है।'
उसी तरह—

युष्माकं युञ्जा आधुये त्विषी तना अस्तु ।

(३९) क्र. १।३०।२

'जो तुम्हारे साथ रहता है, उस का पल तुम्हें ही
धर्मिणों उदानी के किये बढता ही रहता है।'

यस्य वा ह्यया घीतये आगय, सः युम्नै
याजसातिभिः य सुम्ना अभि नशत् ।

(५७) क्र. ८।२०।१६

'हे वीरों! जिस के घर में तुम हविष्यान्न या मसादका
सेवन करने के लिये जाते हो, वह रसों से और अन्नो से
तुम्हारे दान किये हुए विविध सुखों का उपभोग करता है।'
इस प्रकार, मरुतों के अनुयायी होने से कामाग्मित्य बन
जाने की सूचना वेदने दी है।

मरुतों का धन ।

धन में रहे वि मरुत विगधी वीर हे, जिन के दम्भ-
सम्रह में पराभव के लिये स्थान नहीं है और बड़े भारी उदार
होते हुए अनुभव दानश्रुता व्यक्त करते हैं, अतः ऐसा
अनुमान करने में कोई आपत्ति नहीं कि असीम धनवैभवं
उन के निकट हो। देखा चाहिए कि मरुतों में उाकी
घनिकता के बारे में क्या कहा है—

मरुत-अंग्रमग्रह (२) १।६।६ में 'विद्दहस्तु' ऐसा
गुणबोधक पद इन वीरों के लिये प्रयुक्त हुआ है। इस पद
का अर्थ धन की योग्यता मन्त्री भौति जाननेवाला याने धन
पाना और उसकी योग्यता पदच्यनना भी स्पष्टतया सूचित
होता है। मरुतों में बह गुण विद्यमान है, सो उनके धन-
संग्रह पाने तथा धन का वितरण करने से स्पष्ट होता है।

घन किस भाँति वा हो, इस संबंधमें निम्न मन्त्र बड़ा अच्छा बोध देता है ।

(६) महतः ! मद्भूतं पुरुषं विश्वघायसं
रयिं आ इत्यतः । (५८) ऋ. ८।१।१२

' हे वीर मरनों ! शत्रु के घमंड को हटानेवाले, हमें पर्याप्त प्रतीत होनेवाले, सब का धारणपोषण करनेवाले घन का दान करो । ' यहाँ पर डीक सौर से बताया है कि घन विन तारह का हो । जिस घन से शत्रु वा घमंड वा वृषा भिमात् उतर जाए, इस ढग की धारणा हमें घटानेवाला पर हम में घमंड न पैदा करनेवाला घन हमें चाहिए । सभी तरह की धारणात्मिक को सुद्धात करनेवाला, हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति भली भाँति करनेवाला घनकेभव प्राप्त हो । अर्थात् ही जिस घनको पाने से गर्व, अभिमान घटकर भाँति भाँति के प्रमाद हो, जो अपर्वास होता है, तथा जिस से अपनी शक्ति क्षीण होगी रहे, पूरा घन हम से कोसो दूर रहे । हर ओर ही घन के दान शत्रुओं को सोचकर देले । ऐसे इच्छुत घनको मरर हमेशा साथ रख लेते हैं ।

रयिभिः विश्ववेदसः । (११७) ऋ. १।६।१०

ऐसे घन मरनों के निकट पर्याप्त मात्रा में रहते हैं, इसीलिए कहा है कि ' मरत् सर्वधनसम्पन्न है । ' घन के शत्रुओं एवं अशत्रुओंको यत्नानेवाला द्रुक और मंत्र देखिए-

(६) महत ! जश्मासु स्थिरं वीरघनं श्रुतीनाहं
दातिनं सहस्रिणं दृशुयांसं रयिं धत्त ।

(१२२) ऋ. १।६।१५

' हे वीर महतो ! हमें यह घन दो, जो स्थायी स्वरूप का हो, गीरीं से युक्त हो शत्रु का पराभव करने के सामर्थ्य से पूर्ण तथा सैकड़ों और हजारों तरह का यश देनेवाला हो । ' घन का स्वरूप कैसे रहे, तो यहाँपर बताया है । घन तो किसी तरह मिल गया, लेकिन गुणवत् खर्च होने से चला गया, ऐसा धनमगुर न हो, यह पुत्रपुत्रपुत्र विध्वान हो और विरहात्तक उस का उपभोग किया जा सके । वर वीरतापूर्ण भाव बढ़ानेवाला हो, नकि कायरताके विचार । घन कमाने में याद उस की रक्षा करने का सामर्थ्य भी बढ़ता रहे और घनकी मात्रा बढ़ने से अधिक वीर सत्ता उपलब्ध हो । नहीं तो ऐसी अनवस्था होगी कि हथ पर धनकेभव नष्ट हो, पर विपुत्रिण वा सन्नाहीन हो

जाने का दर है । विरोधियों का प्रतिकार करने की क्षमता भी बढ़ती रहे और यत्नविता भी प्रतिफल यथिष्णु हो । जिस घन से ये सभी अभीष्ट बातें प्राप्त हों, वही घन हमें मिल जाए । यह घन सहस्रविध दुभा करता है, जिस की आवश्यकता सब को प्रतीत होती है । घन का तात्पर्य सिर्फ रचना, भाषा, पाठ में नहीं अपितु जिससे मानव धन्य हो जाए, वही सच्चा घन है । उसी तरह-

सर्ववीरं अवस्थसाचं श्रुत्यं रयिं
दिवेदिये नशामहे । (१२८) १।१०।११

' सभी वीरों से, पुत्रपौत्रों से अभिषिक्त, यश देनेवाला घन प्रतिदिन हमें मिल जाए । ' श्रुणा देना जाता है कि घन अधिक प्राप्त होने पर शूरला घट जाती है और सत्ता न पैदा करने की शक्ति भी न्यून हो जाती है । यह दोष रक्षासहन तुष्टिमय होने से हुआ करता है । ऐसा दोष न हो और घन पानेके साथ ही उसकी रक्षा करनेका बल भी तथा सुसत्ता उपलब्ध करने का सामर्थ्य भी यथिष्णु होता रहे, इस भाँति सामर्थ्यशाली घन वा महद किया जाय । और भी देखिए-

यत् राघ ईमहे तत् विश्वायु सौमगं
अस्मभ्ये पशुन । (२४६) ऋ. ५।५।१३

' जिस घन की कामना हम करते हैं, वह दीर्घ जीवन देनेवाला एवं पादिया सौभाग्य बढ़ानेवाला हो । ' उसी तरह-
यूयं स्पर्हवीरं रयिं रक्षत । (२६३) ऋ. ५।५।१४
' तुम रक्षणीय वीरों से युक्त घनका संरक्षण करो । '

अनवभ्रराधस । (१६४) ऋ. १।१६।७

अनवभ्रराधस आ पयश्चिरे ।

(२०२) ऋ. २।३।४

' (अन्व भ्र राधस,) जिस का घन कोई छीन नहीं सकता, जो घन पतन की ओर नहीं ले जाता, यह घन प्राप्त हो । ' घन जरूर समीप रहे, लेकिन यह इस तरह प्रगतिवा पोषण रहे । घनके आधिक्यसे अपने प्रगति-पथपर रोड़े नहीं उठ सके होने चाहिए । घन के बारे में जो यह चेतावनी दी गयी है, यह सभी को श्वापूर्वक सोचनेयोग्य है और चूँकि ऐसा रक्षणीय घन वीर मरनों के निकट रहना है, इसीलिए वैदिक श्रुतों में मरनों का महत्त्व बताया है ।

मरुतों का स्वभाववर्णन ।

उपयुक्त वर्णन से इतना स्पष्ट हुआ है कि ये वीर लैंगिक मरुत् एक घासे- (Parrack) बैरफ में निवास करते थे; मदिहाराओं की तरह विभूषित तथा अलंकृत हो, यदी सज्जध से बाहर निकल पडते, अपने टखों, हथियारों तथा आभूषों को साफसुवरे एवं चमकीले रखते, संघ बना कर यात्रा करते और सांघिन या सामूहिक हमले चढाया करते । शत्रुदल पर सामूहिक चढाई करने के कारण इन वीरों के सम्मुख डटकर लडना शत्रु के लिए असम्भव तथा क्लेशप्रद हुआ करता । इसलिए शत्रुसेना जटार-नवमस्तक हो, टिकना असम्भव होनेसे, आत्मसमर्पण करती या हट जाती । सभी मरुत् साधुवाद को पूर्ण रूप से कार्यरूप में परिणत करते थे, अर्थात् किसी तरह की विपयता उनमें नहीं पायी जाती थी । सभी युवावस्था में रहते थे और इनका स्वरूप उम्र तथा प्रक्षरों के दिक् में लौकिक नीतियुक्त भाद्र वा सुजन परनेवाला था । इन का दीर्घजीव भाग्य था ।

मरुतों पर शिरशत्राण रखे होते वा कभी रेशमी साधे धाँपा करते । सब वा पहनावा पुष्परूप हीन पडता था । भाला, परछी, कुडार, धनुस्वबाण, पशुं, दण्ड, स्यङ्ग एवं चक्र आदि आभूष इनके निकट रहते । ये सारे शस्त्रास्त्र घडे ही सुदृढ एवं कार्यक्षम रहते । इनके रथों तथा गाइनों को कभी घोडे धाँची, तो कभी चारहसिंगे वा कुल्लसार मृग धाँच लेते । यहाँले प्रदेशों में चक्रुडिन रथों का और कभी बिना घोडोंके यत्रसंचालित ण्य घडे वेरसे गद उढाते जानेवाले पाइनों वा भी उपयोग किया जाता था । शायद ये पछी की मद्द से आनाश्रमार्ग से जानेवाले गायुयान सशस्त्र रथों का काम में लाते । इनके वाहन इस प्रकार चार साइ वे हुआ करते थे ।

ये बडे ही विलक्षण वेग से शत्रुपर धावा करने और उनके हम अचरमे में डालनेवाले वेग से शत्रु को हक्का-पक्का रद जाता, पर अन्य सत्तार भी क्षणमात्र थरा उठता । यदी कारण था कि इनके प्रबल आक्रमणों के वा विद्युद् बुद्ध (Blitz) के सम्मुख क्या मजाल कि कोई शत्रु टिक सके । इनका आघात इतना प्रसर हुआ करता कि चिराङ्ग से अपना आसन स्थिर स्थिर हुप शत्रु को भी

वे विचलित तथा घरासायी बना देते ।

मरुत् मानवकोटि के ही थे, परन्तु ऊन्हा पराक्रम दर्शाने से इन्हें देवत्व का अधिकार प्राप्त हुआ था । वेद में ऋशुभो के बारे में भी ऐसे ही डेक्त्रिन उपादह स्पष्ट उल्लेख पाये जाते हैं, अर्थात् प्रारम्भ में ऋशु शिष्टविद्यानिष्णात कारी मर मातव थे, परन्तु भागे चलकर उन्हें देवों के शप में नागरिकरुप के पूर्ण अधिकार प्राप्त हुए थे ।

ऐसा दिवाई देता है कि मरुतों के बारे में भी एतु कुछ ऐसी ही घटना हुई हो । देवों के लघ में जान पडता है कि विशेष अधिकार सब को समान रूप से नहीं प्राप्त हुआ करते, जैसे 'अश्विनो' यक्षशीव व्यवसाय में लगे रहने और ये दोनों सभी मानवों के घर जाकर चिरिरसा कर लेते, इसलिए उन्हें यक्षमें हथिनीग नहीं मिला करता था । डेक्त्रिन कुछ काल के उपरान्त प्ययन प्रापि को बुदापे के उंगुल में लुधकर फिर युवा बाने से उसके प्रपत्नों के परस्वरूप अश्विनो को उद अधिकार प्राप्त हुआ । पाठरों को अश्विनी की प्रस्तावना में यह देखने मिलेगा । डीक उसी प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि मरुत् मर्यं, मानव वा सभी वाहनकार थे, लेकिन जन उन्हींने वीरतापूर्ण कार्यकलाप कर दिखाये, वय अथवा विशेषतया इन्हींके सङ्घ में सम्मिलित होनेपर व देवदत्तर अधिष्ठित हुए ।

मरुतों में विद्वेषा, चतुराई, वूरदांगता, सुद्विमत्ता ण्य साहमिकता दूर दूर कर भरी थी और ये उद्यमी, उत्साही तथा पुठ्यार्थी थे । वे वीरतापार्थी को दिलचस्पी से सुन केत थे और साहसी कथाओंके सुननेमें लहोनी हुआ कर* । वीरमार्गों की चिरिरसा प्रथमोपचारप्रणाली से परने में वे प्रवीण थे और हम सवध में उन्हें कुछ औपधियो का ज्ञान था ।

त्रिविध क्रीडाओं में वे कुशल थे, तथा तृत्वविधासे भी भली भाँति परिचय थे । बाने यज्ञाते हुए, तराने गाये हुए और राहपरसे चलते हुए भी वाद्य यज्ञाते, तथा गीत गाते हुए निकट पडते ।

ये मरुत् अति भय्य आकृतिवाले तथा गौरवर्ण से युक्त एवं लौकिक रक्तिम धामामे विभूषित थे । अरने अन्दर विद्यमान तासर्ण से इनका वेज बडा हुआ था । ये वृषि कार्यमें सरस होकर पड, साक एवं विविध खाद्य चीजोंकी

उपज्ज बढ़ाते थे। ये गोपालन के व्यवसाय को बड़ी अच्छी तरह निभा लेते थे, क्योंकि गोदुग्ध इनका बड़ा प्यारा पंच था। सोमरस में गायका दूध, गोदुग्ध का बना दही और सच्चा का आटा मिलाकर पी जाते थे। गाय तथा भूमि को मातृतुल्य भावुर की निगाह से देख लिया करते और मौका आनेपर मातृवत् गौ एवं मातृभूमि के लिए मीपण समर भी छेड़ दिया करते, जिन के फलस्वरूप इनकी ये माताएँ शत्रु के चंगुल से मुक्त हो जातीं।

मरुतों के घोड़े बहुधा ध्वजेवाले हुआ करते और सुदृढ़ होते हुए पहाड़ों पर चढ़ने में बड़े कुशल होते थे। ये वीर अपने अश्वों को मजतून बनाकर अच्छी तरह सिलाया करते थे। मरुत् वीर अश्वविद्या में तथा गोपालन-कला में बड़े ही निपुण थे। वे जानते थे कि क्रेन उषाओं से गाय अधिक दूध देने लगती है, अतः इनके निकट दुधारु गायों की कोई न्यूनता नहीं थी। ये वीर जिधर चले जाते, उधर अपने साथ ही भावदयकताशुसार गायों के झुंड ले जाया करते। युद्धभूमि में भी इन के साथ गोयूथ विद्यमान होते, क्योंकि इन्हें ताजा गोदुग्ध पीनेके लिये अति आवश्यक था, ताकि इन धीरों की थकावट दूर हो बल एवं उरसाह बढ़ जाय।

ध्यानमें रहे कि वीर मरुतोंका बल बड़ा ही प्रचंड था, जिसका उपयोग वे केवल जनताके संरक्षणार्थ ही कर लिया करते थे। इसी कारण से मरुतों का सैन्य अत्यन्त प्रभावशाली माना जाता था और इस सैन्यका विभजन ग्रार्ध, प्रात तथा रात नामक संघों में किया जाता था, जिन में क्रमशः ६३, ४४१ तथा ८४४ सैनिक संघटित किये जाते थे।

युद्ध में ठीक शत्रु के मुँह बाँधें रखे रहकर अपने जीविन की कुछ भी पर्वाह न करके दुश्मनपर दृढ़ बढ़ना मरुतों के बायें दायका खेल था। अतः इनके मीपण योगवान घावे के सम्मुख शत्रु की दगा बड़ी दयनीय हुआ करती। मरुत् अगर शत्रुओं पर हमले चढाते, तो शत्रु जान बचाकर भाग निकलते। पर यदि शत्रु ही स्वयं मरुतों पर आक्रमण करने का साहस कर लें, तो वीर मरुत् इन आक्रमणों को विफल बनाकर दृष्टाते। इस भाँति मरुतों में द्विविध ताकि विद्यमान थी।

ये वीर चनों एवं पर्वतों पर सभेष्ट विहार कर लेते, क्योंकि समूचे भूमंडल पर इनके लिए आगम्य या भीहद स्थान था ही नहीं। इनके दिल में किसी विनिष्ट स्थान में जाने की लालसा उठ सखी हुई कि तुरन्त ये उधर जा पहुँचते; कारण सिर्फ वही था कि इन्हें रोकनेवाला तो कोई था ही नहीं। इनका मय इस तरह शत्रुर्तिक फैला हुआ था।

ये गणशासक थे। इनका सारा संघ ही इन पर दासन चला होता था और इन में श्रेष्ठ, मध्यम अथवा कनिष्ठ इस तरह भेदभाव नहीं था। जो कोई इनके संघ में प्रवेश कर लेता, वह समान अधिकारों से पानेपाठा सदृश्य माना जाता था।

सभी मरुत् वीर समूची जनता का कवचाण करने का शुभ कार्य भी भाँति निभाते थे और इन्द्र के साथ रहकर पृथ्वपसरथ महासमर में इन्द्र को सहायता पहुँचाते। कभी कभी रत्नदेव के अनुशासन में रहकर लडाईं छेड़ देते, अतः इन्हें 'रत्न के अनुयायी' नाम से विख्यात मिथ सुकी थी।

सारे ही वीर मरुत् कुलीन याने अष्टे प्रतिष्ठित परिवार में उत्पन्न थे। ध्यान में रखना कि किसी भी हीन कुल में उत्पन्न साधारण व्यक्ति को इस संघ में स्थान ही नहीं मिलता था। ये सचाई के लिए लड़नेवाले थे और कभी किसीसे ऋण किया हो, वो ठीक समयपर उसे चुकाते थे, इस कारण उनका साज अष्टा बना रहता।

इन का यथाँव शोषरहित हुआ करता, रहनसहन सुवर्ग साफसुधरा था। समूचा पहनावा अत्यन्त जगमगानेवाला था, इस कारण दुश्कोंपर इन का रोह-दाह बडाही अष्टा पडता था। मरुत् धन का उत्पादन करनेवाले एवं धनकी योग्यता समझनेवाले थे, अतः अतीव उदारचेतु और दान देने में कभी पीछे नहीं रहा करते।

घषधि वीर मरुत् मार्ये, मानवश्रेणी के थे, तो भी इन का चरित्र इतना दिव्य तथा उच्च कोटिका होता था कि जो कोई इनके काम्य का स्वजन करता, वह अमर हो पाता। यह सारा इनका स्वरूप-धर्मन है और जो पाठक मरुतोंके स्वर्णों का पठन ध्यानपूर्वक करेंगे, उन्हें यह यखान स्थान स्थानपर पढ़ने मिलेगा। पाठक विभिन्न मरुत्-सूक्तोंमें वसे

पढ़कर मरुतों की दूरता के वास्तविक महत्त्व को जान कें और धीमत्त्वपूर्ण क्षात्रकर्म में मरुतों के आदर्श को अपने समुल्लस लें ।

मरुतों के सूक्तों में वीरों के काव्य का दर्शन ।

जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, मरु-काव्य वीरसंपूर्ण प्राचीनतम वीरगाथा है, जिसे पढ़ते समय धीरत्वपूर्ण तेजवी शालोकरेखा मानस-क्षितिजपर जगमगाने लगती है ।

इस सभ्य में कुछ मरुतों के आशय नीचे अबलोकनार्थ दिये जाते हैं ।

१२. हे वीरो ! तुम्हारे उत्साहपूर्ण आक्रमण से भयभीत होकर मानव तो किसी जगह आशय या पनाह पाने के लिये जाते ही हैं; लेकिन पहाहतक थरारने लगते हैं ।

१३ जिस समय तुम शत्रुपर धावा करते हो, तब किसी जराजीम वृद्ध की नाईं समूची पृथ्वी धरधर कँपने लगती है ।

१४ शत्रुओं की घजियाँ उडानेवाले हे वीरो ! शुलोकमें, अन्तरिक्ष में वा भूमिदलपर कहीं भी तुम्हारा शत्रु शेष नहीं रहा है । जो तुम्हारे साथ रहते हैं, उन में भी शत्रुविषयस करने की शक्ति पैदा हुआ करती है ।

१५, हे दानी तथा दूर मरुतो ! तुम अन्तक सामर्थ्य एवं भविकक बल से पूर्ण हो । हे शत्रु को विकपित करनेवाले वीरो ! ज्ञानी पुरवों-सज्जनोंका द्वेष करनेहारे दुष्ट शत्रुओं का घब हो इसलिये तुम दूसरे किसी दुश्मन को उन पर बाण को नाईं छोड दो, ताकि तुम्हारा एक शत्रु तुम्हारे दूसरे शत्रु से उचरस्त हो जाय ।

१६, बल से निष्पन्न होनेवाले पौरुषमय कार्य पूर्ण करने वाले और स्वयंशासक इन वीरोंने वृत्र के टुकडे टुकडे करने पहाडों में से भी राह बना डाली ।

१७ विजली की तरह जगमगानेवाली शस्त्रसामग्री धारण करके लडनेवाले ये वीर जो तेजस्वी और गौरवर्णवाले दिखाई देते हैं, अपने मस्तकोंपर सुवहली बामा से कानि मान निरस्त्राण धारण करते हैं ।

१८ हे तेजस्वी तथा साफसुमेरे आभूषण धारण करनेहारे वीरो ! जब तुम शत्रुपर चढाई करते हो तब तुम्हारी राह में आनेवाले टाप भी टूट गिरते हैं; रोडे अटकानेके लिये कोई अग्नर खडा रहे, तो उह सकटमस्त हो जाते हैं, इस आक्रमण

के मौकेपर शाकास तथा पृथ्वी बँप उठती है और गर्द भी बहुत जोर से उडा करती है ।

१९ हे रणचौक्रे मरतो ! वीरो ! जिस वक्त तुम अपनी सारी शक्ति बटोरकर शत्रुपर आक्रमण करते हो, तब ऐसा जा पडता है कि उस ओरका आकाश ही गुद दूर होकर शुद्ध जाने के लिये मार्ग बना देता है ।

२० हे बहादुरो ! तुम तब वा गणवेश समान है, तुम्हारे गले में सुवर्णहार पडे हैं और तुम्हारी भुजाओंपर हथियार चोतमान हो उडे हैं ।

२१ ये उन्नत एवं बलिष्ठ वीर अपने शरीरोंके रक्षण की पर्वाह न करते हुए अपना सुन्दकार्य प्रपञ्चित रचते हैं । हे वीरो ! तुम्हारे रथोंपर स्थिर धनुष्य सुसज्ज हैं और सेना के अग्रभाग में तुम विजयी बनते हो ।

२२ अपने शरीरों की सुन्दरता बढाने के लिये ये विविध धीरभूषण पहन लेते हैं, उनके वक्ष स्थलपर सुवर्ण-विरचित हार लटक रहे हैं, कर्धोंपर आले सुहाते हैं । इस वक्त के ये वीर मानो सचमुच अपने अन्दरे बल के साथ रणार्थसे इस भूतलपर उतर पडे हो, ऐसा प्रतीत होता है ।

२३ सामुदायिक शोभा से सुहानेवाले, लोकसेवा करनेहारे, दूर, बलिष्ठ होने से निमन्त्रा उत्साहकभी घटता ही नहीं ऐसे महान वीरो ! तुम अपने पराक्रम की वजह से शुलोक एवं भूमिदल सुखरित तथा निनादित बना देते हो । जब तुम अपने रथोंमें निजी आसनोंपर बैठते हो, तब तुम, मेघमदल में चोपियाती हुई दामिनी की दमक के तुट्य, अतीव सुहाते हो ।

२४ विविध येश्यों ने शोभायमान, एक घर में निवास करनेवाले, भौंनि भौंति के बलों से सामर्थ्यवान प्रतीत होनेवाले, विशेष बलवान, शत्रुदलपर चतुराई से हथियार चँकते हुए, असीम बल से पूर्ण, वीरोंके आभूषणों से अलङ्कृत इन नेताओंने अथ अपने हाथों में शत्रु का विनाश करने के लिये बाण का धारण कर लिया है ।

२५ उनताके हितप्रद कार्य में जुटे हुए इन वीरों के याहुओं में बहुवली कल्याणकारक शक्तियाँ टिपी पडी हैं । उनके वक्ष स्थलपर हार तथा कर्धोंपर विविध धीरभूषण एवं हथियार हैं । उन के वज्र की कई धाराएँ हैं और पछियोंके देनों के तुल्य उन की घोभा बडी मली जान पडती है ।

१७४. ठीक तरह हाथों पकड़ी हुई, सुन्दर आभावाली, सुवर्ण के समान चमकनेवाली तलवार, मेघ में विद्यमान बिजली की तरह हमेशा इन वीरों के निकट सुहावी है; भन्त-पुर से रहनेवाली सापरी गारी जैसे गुप्त रूपसे भीतर ही मर्द्रेय संचार करती है, पर यज्ञ के अवसर पर समाज में व्यक्त होती है, वैसे ही उनकी तलवार भी हमेशा अपने मियान में गुप्त पड़ी रहती है, पर लड़ाई के मौकेपर यादर आकर चमकने लगती है ।

१७५. हाँ, मातृभूमिने ही अपने संरक्षणार्थ, मठे भारी समर का सूत्रपात करने के लिए इन वेगवाली वीरों का यह पडा भारी सैन्य उपरान्त रिया है । एक ही समय मिलजुलकर हमला पड़ानेवाले इन वीरोंने बहुत बड़ा सामर्थ्य प्रकट कर डाला है और इन समूचे वीरोंने इसी सामर्थ्य में अपने अन्न की धारकक्षाफि का अनुभव ले लिया है ।

१७६. युद्ध के मोर्चेपर श्रेष्ठ ठहरे हुए, शत्रु का पूर्ण पराभव करनेवाले सामर्थ्य से युक्त, सिंहके समान भीषण दिग्दर्श देनेवाले, अपने प्रचंड बल से सब की निगाह में चूनवीय धने हुए, अस्त्रितुल्य तेजस्वी, वेगवान, प्रभाषो-त्पादक सामर्थ्य से युक्त, ये वीर शत्रुओं के धन्डीपुट से अपनी गायों को छुड़ाते हैं ।

१७७. ये साहसी वीर शत्रुध्न्य बलसे युक्त हैं और ये शत्रु पर चडाई करने समय हमेशा ही विजयशील सामर्थ्य से युक्त होकर समूची जगत् का संरक्षण करते हैं ।

१७८. विशेष रूपसे सराहनीय कर्म करनेवाले, तेजस्वी हथियार धारण करनेवाले, यज्ञःस्थल पर माला पहननेवाले ये वीर बहुत बड़ा बल धारण करते हैं । अच्छी तरह स्वाधीन रहकर राम्य करनेवाले ये वीर योद्धावर बैदरर धर आते हैं । उनके रथ लोकहितार्थ जाते हुए उन्हीं की इष्ट स्थान तक पहुंचाते हैं ।

१७९. ये अपने सामर्थ्य से शत्रु का पूर्ण विनाश करते हैं और अपने आक्रमणों से पर्वततुल्य लुहदाकार दुर्गोंको भी मटियामेट कर डालते हैं ।

१८०. भूमि की माता माननेवाले हे वीर ! तुम्हारे निकट कुटार, भाले, धनुष्य, चण्णर, घोड़े, रथ, हथियार सभी बडिया दूजेंके साधन हैं । तुम अकूट ज्ञानी हो और तुम हमेशा अच्छे कार्य ही करते हो ।

१८१. हे नेता वीर ! तुम बहुत धनाढ्य, अमर, राय-निष्ठ, यशस्वी, कवि, ज्ञानी, युवक तथा प्रसंगनीय हो, तुम हमारी मदद करो ।

१८२. हे वीर ! तुम जिसकी रक्षा करने हो और लडाईं में जिसे तुम बचा लेते हो, उसका विनाश कभी नहीं होता है । यह जो तुम्हारी अपूर्ण दंग की रक्षा करने की बुद्धि है, यह हमें मिल जाए । तुम जट्ट हमारे पास आओ ।

१८३. ये वीर, शत्रु जैसे लिनके को उडा देता है उसी प्रकार शत्रुओंको उडा देते हैं और वेगवान होते हुए अस्त्रितुल्यतुल्य तेज युद्ध द्दिक पड़ते हैं । ये योद्धा अपने कवच पहनकर तथा युद्धों में जाकर बहुत ही प्रसंगनीय कार्य करते हैं; पिता के आशीर्वाद-तुल्य इनके दाम आधरत साहाय्यकारी होते हैं ।

१८४. रथों को धक्केवाले घोड़े जोतनेवाले, भूमि को माता माननेवाले, लोककल्याण के लिए हलचल करनेवाले, युद्धों में सहर्ष जानेवाले, अस्त्रितुल्य योद्धमान, विचारशील, सर्ववत् तेजस्वी ये वीर अपने सभी देवी सामर्थ्यों के साथ हमारे निकट आ जायें ।

१८५. हे वीर स्वरूपवाले वीर ! तुम ऐसे भीषण संग्राम में डटकर खड़े हुए हो, आगे बढ़ो, शत्रुओं का पक्ष करो, दुश्मनों का पूर्ण पराभव करो । ये सराहनीय वीर हमारे शत्रुओं का पक्ष कर डालें, इनका दूत भी शत्रुपर चढ जाए और उन का विनाश कर डाले ।

१८६. हे वीर ! यह जो शत्रुकी सेना बडे वेगसे हमें सुनाती देती हुई हमपर टूट पड़ने आती है, उस सेना को भूशत्रु से भेधना बनाकर इस दंगसे विद्व कर डालो कि समूची शत्रु-सेना भ्रष्ट हो जाए और सभी सैनिक एक दूसरेको न पहचानते हुए बिलकुल सहभेसहमे रह जायें ।

१८७. हे शत्रु को रुझानेवाले वीर ! तुम जब शत्रुपर हमला करने के लिये धक्केवाली हरिणियाँ अपने रथों में जोत लेते हो और रथपर चढ जाते हो, उस समय मारे डरके सारे जंगल हिल जाते हैं तथा समूची पृथ्वी एवं अटल पर्वत भी थरथर काँपने लगते हैं ।

१८८. हे रणवीर योद्धा लोग ! तुम में कोई भी श्रेष्ठ या कनिष्ठ नहीं है, तुम सभी एक दूसरे से भाई-चारे का बर्णन रखते हो और अपनी उसजि के लिये एक

हो प्रयत्न करते हो; रुद्र तुम्हारा पिता है और भूमि तुम्हारी माता है जो तुम्हें प्रकाशका मार्ग दिखलाती है ।

इस प्रकार इस वीर-काव्य में विद्यमान भोजस्वी विचार यहाँ माननी के तौगपर दिखे हैं । यहाँपर इस काव्य का बिल्कुल शब्दशः अर्थ दिया है, तथा साधारणतया स्पष्ट दिखाई पड़नेवाला भावार्थ भी दिया है । शब्दशः अनुवाद अभ्यासक लोगों के लिए अत्यंत आवश्यक है और भावार्थ भी उन्हीं के लिये उपयुक्त है । जो विशेष अध्ययन करना चाहते हैं उनके लिए निम्नो सहायक प्रतीत होगी पर जो वेदमंत्रों का विशेष गहन अध्ययन करना नहीं चाहते या जिन के समीप इतना अध्ययन करने के लिये समय नहीं उनके लिये सरल अनुवाद आवश्यक है । ऐसे सरल अनुवाद में भातेपीठे के सन्दर्भके अनुसार अधिक निम्नता पड़ता है और यथान्तक कवि के मन का आशय पाठकोंके दिल में बैठ जाय इस हेतु कुछ अधिन पात सन्दर्भ के अनुसार लिपनी पड़ती है । हमने जानसूत्रकर यहाँ स्वतंत्र और लगातार लिखा हुआ अनुवाद नहीं दिया और इस प्रथम संस्करण में शब्दशः अनुवाद निम्नियों तथा अन्य साधनों के साथ स्वाभाविकीक पाठकों के लिये प्रस्तुत कर रखा है । द्वितीय संस्करण के आन्तर पर संभव हुआ तो वैसा सीधा अनुवाद दिया जायगा ।

वेद का अध्ययन ।

भाजकल सब लोगों की यह धारणा घनी हुई है कि, वैदिक संहिताओंके अध्ययन का अर्थ सिर्फ मन्त्र कठरथ कर लेने है और यह धारणा सदृशों यहाँ से चली आ रही है । इस का नतीजा पू हुआ है कि संहिताओं के अर्थ की ओर अधिक लोगों का ध्यान आकर्षित नहीं होता है । पद्यवि बहुत अर्थ से विद्वान् माहज इन संहिताओं को कठरथ करते आये हैं पर अर्थके बारेमें अधिकों का औदासीन्य ही दृष्टिगोचर होता है । वर्तमान काल में ऋग्वेद (शाकल), यजुर्वेद (तैत्तिरीय, वाजसनेयी एवं काण्व), सामवेद (काथुनी) और अथर्ववेद (शौनक) संहिताओंका अध्ययन प्रचलित है । अर्थात् कुछ माहज इन का पठन करते हैं लेकिन ऋग्वेद की संश्लेषण एवं बाष्कल संहिता, यजुर्वेदकी मैत्रायणी, काठक, काण्विष्ठक, कठ संहिता, सामवेद की राणायणी एवं जैमिनीय संहिता तथा अथर्व-

वेदकी विष्णुसंहिता इव संहिताओंका अध्ययन तुलनाय ही है । अच्छा, जिन संहिताओं का पठन प्रचलित है ऐसी ऊपर पढ़ा गया है उन का अध्ययन भी बहुत से विद्वान् करते हैं, ऐसी बात नहीं । समूचे भारतपर्यं में ऐसे अच्छे वेदपाठी चाहे या पाँच सौसे अधिक नहीं हैं और उच्चकोटि वेदपाठकों तो पूरे सौ भी मिलना कठिन ही है । मालूम यही कि, आदिन वेदाध्ययन का लोप यहाँ तक हुआ है ।

इस से स्पष्ट होगा कि, आधुनिक युग में वेदपठन का भविष्य या वर्तमानदृष्टांतनिक भी उजल नहीं है, पर्यंकि वेदाध्ययन तुल्य होता जा रहा है । जना न ही वेदपाठी माहज के लिये तनिक आदर रहा हो तो भी यह नहीं के बराबर है क्योंकि उस ज्ञान का व्यवहार में तनिक भी उपयोग नहीं है, ऐसी ही तार्बधिक धारणा गचलित है ।

अगर प्राचीन कालस सार्थ वेदाध्ययनकी प्रथा जारी रह जाय तो बहुत कुछ समय था कि, व्यवहार में उस का उपयोग स्पष्ट हुआ होत और आज जो यह गलतफहमी संनसाधारणमें पायी जाती है कि, वेदाध्ययन द्वारा निरुपयोगी है, निर्मूल उद्गरीय या उत्पन्न ही नहीं होती । इन प्रविवादन को स्पष्ट करने के लिये इन मर्त्योंका के मन्त्रों का उदाहरण लेंगे । यदि मर्त्यों के सुनों का अथ संहित अध्ययन करने की प्रणाली प्राचीनकाल से अस्तित्व में रहती तो समय था कि उन में सुनिष्ठ ढंग से सीखें की संविष्ठ शिक्षा वा प्रबध करने की वदना किमी न किमी को सुहाती और ज्ञान्यद गरीयों के संमनों में सातसात की पक्ति करना, सब का मिलकर समान गति से कूच करना, सब का पहाताय तदय होना और आठमी नऊवीं सिपादियों वा समूह बनाकर हमले चढाना आदि महत्त्वपूर्ण प्रथामों का प्रपणन शुरु होना ।

पर क्या कहें ? हिन्दुधर्म एवं हिन्दुत्व की रक्षा के लिये अस्तित्व में आये हुए विनयनगर के साम्राज्य में या उत्तुपगत-त कई क्षतादिश्यों के पश्चात् प्रस्थापित हुए मारदों के अथवा पेशवाओं के शासनकाल में मरुजोधी सी सैनिक शिक्षा-प्रणाली कार्यरूप में परिणत नहीं हो सकी । विनयनगरके राज्य में वेदोपर भाष्य लिखनेवाले सायण साधन सदत बड़े आचार्य हुए जिन के वेदभाष्य प्रकृत होनेपर भी वेदाध्ययन केवल यज्ञोत्क ही सीमित रहा । उस समय

भी वेदमन्त्रों एवं श्रद्धा से सांघिक सामर्थ्य बढ़ाने-
हारा मन्त्रों का यह सैनिकीय शिक्षा का अनुशासन प्रत्यक्ष
व्यवहारमें नहीं आ सका, अथवा भूँ कहें कि धर्म-क्रिया के
ध्यान में यह बात नहीं आयी कि वैदिक सिद्धांतों को
व्यावहारिक स्वरूप दिया जा सकता है, तो यह प्रतिपादन
सच ई से दूर नहीं होगा ।

हाँ, भी छत्रपति शिवाजी महाराज के काल से लेकर
अखिर स्वतंत्र सातारा-नरेशानक या प्रथम पेशवा से के
१८१८ तक के मराठी साम्राज्य के काल में वेदाध्ययन के
लिए लक्षावधि दरवोंका व्यवस्था हुआ, वेद कंठ्य रत्नवाले
प्राणियोंको लख नक्षत्रा मिला पर अन्तमें क्या हुआ? अन्तमें
की बात इतनी ही है कि, किसी को भी यह कल्पना नहीं
पूरी कि, अर्धमदित वेदाध्ययन करनेवालों के लिये कुछ
न कुछ प्रबंध करना चाहिये, या वैदिक साहित्य में लाभ-
दानक एवं उपादेय कुछ ही तो हैं? केना चाहिए और
हस्त उसे व्यावहारिक स्वरूप दिया जाय । उम काल में
वेद के बारे में बस यही धारणा प्रचलित थी कि, मन्त्र
पंडास रहें और पत्र के मंत्रों पर उन का उच्चारण किया
जाय, यद्युत हुआ तो मन्त्र-जागर के अवसरपर मन्त्रपठन
करना उचित है ।

ऐसी धारणा से प्रभावित होने के कारण, श्रीमत्साव-
णाचार्य के कालमें भी वेदभाष्य लिखा तो गया था तथापि
उन वेदमें वर्णित सिद्धान्त व्यवहारमें नहीं आ सकें, इतना
महो कि भगवत् कोई उस काल में यह बतलानेका साहस
करता कि वेदमंत्रों में निर्दिष्ट सिद्धांतों को कार्यरूप में
परिणत करना चाहिये तो भी किसीका ध्यान उधर आकृत
नहीं होता, मन्त्रों का उच्चारण केवल साधु वेदपठन का
अव्यक्त प्रचार था और उसे सार्वत्रिक मान्यता मिल
सुकी थी । ऐसी दशा का भारी दुष्परिणाम यही हुआ कि
भारतीय मंत्रों के सैन्य प्रभावशाली बनने के बजाय
अकिंचित्कर एवं निरपयोगी हुए ।

भारत में युरोपीय राष्ट्रों के लोगोंका पदार्पण हुआ जो
अपने साथ निजी संघ-सैनिक-प्रणाली ले गये और वह
भारत के असंगठित सैनिकों की अपेक्षा ज्यादा प्रभाव-
शाली प्रतीत होनेके कारण श्री महादजी शिंदेने क्रम सेना-
पति की अपने यहाँ रखकर उसे अपने विचारियोंमें प्रचलित

करनेकी चेष्टा की, तो भी अन्य महाराष्ट्र सरदार हस्त शिक्षा
में पिछड़े रहे । इसका परिणाम यही हुआ कि अन्त तक
सिंधिया को फ्रेंचों की पराधीनता सहनी पड़ी । यह बात
सब को ज्ञात थी कि सिंदे की सेना अधिक प्रभावोत्पादक
हुई थी लेकिन उस प्रणाली का प्रचार किसीने नहीं किया
था । अगर लोगों को परंपरागत रूप से यह बात विदित
होनी कि वेद के मन्त्रार्थोंमें यह संघ-सैनिक-प्रणाली
वर्णित है तथा यह पूर्णतया भारतीय है तो सायद अनुभव
से इसका अधिक प्रचार हो जाता जिस के परिणामस्वरूप
योरपीयनों से लड़ते समय जो मद्देवा व्यवस्था अनुपात में
हल हुई वही बहुधा सम परिमाणमें छूट गयी होती ।

सहस्रों वर्षों से मद्देवता के मंत्रों को कंठ करनेवाले
प्राणन भारत में चले आ रहे थे और उन्होंने शस्त्रों के
उलट पुकट प्रयोग मुजोद्गत कर लिए पर मन्त्रोंकी सैनिक-
प्रणाली के सिद्धान्त अज्ञातवृत्ता में रखकर केवल मंत्रों का
उच्चारण किया । लेकिन एकने भी हस्त संघ-सैनिक-शिक्षण
विद्वान्त की ओर देखाया भी ध्यान नहीं दिया । केवल
मंत्रों को जपनी याद कर लेने से तथा ऊँची भाषा में
पहलेनेमात्र से अपूर्व पुण्य की प्राप्ति होगी, ऐसे विश्वास
के महारे थे हजारों वर्षों तक संसृष्ट रहे । इस अज्ञानधानी
का परिणाम यही हुआ कि भारतीयोंका क्षात्रवर्ण न्यूनति-
म्यून होने लगा । अगर यह संघ-सैनिक-शिक्षा भारतीयों
को प्राप्त होती तो प्रति पीढ़ी में प्राप्त होनेवाले अनुभवके
सहारे उस में लक्ष उन्नति हो जाती । पर उचित के स्थान
पर भारतीयों के अव्यवस्थित एवं असंगठित सैन्य को
योरपीयनों के सिखाये हुए संगठित सैन्य के समुल
टिकता अर्भव हुआ, जिसे ने अंततःपराजित भारतवर्ष परा-
धीनता के दलदल में फँस गया । अर्धज्ञानपूर्वक अगर वेद
का अध्ययन प्रचलित रहता और यदि किसी के ध्यान में
यह बात पैठ जाती कि वेद के ज्ञान से व्यावहारिक जीवन
में लाभ उठाया जा सकता है तो उपर्युक्त बात सहजही में
किसी का ध्यान आकर्षित कर लेती और ऐसा हो जाने पर
संगठित सैन्य का सृजन भारत में हो जाता ।

मन्त्रों के मंत्रों का और इन्द्र देवता के मंत्रों का ज्ञान-
पूर्वक पठन करनेवाले को सैनिकों का संघशासन कैसे किया
जाय, सेना का मंत्र में विमज्जन किस ढंगसे हो सकता है

तथा सभी सैनिकों का तुल्य वैप कैसे हो, सब का प्रयत्न क्रिम तरह किया जा सकता और उनकी सामुदायिक शक्तियों का सांघिक उपयोग किस प्रकार करना ठीक है आदि महत्त्वपूर्ण बातों की कुछ न कुछ जानकारी अवश्य हो जाती । परन्तु दुर्भाग्य से, सदस्यों वर्यो से वेद केवल सुलोभित एवं अधार्ग याद कर लेनेकी वस्तु बन गयी और वेदनिर्दिष्ट सैनिक-विद्या सुवरो अपनी होनेपर भी हमारे लिए यह एक परकीयसी हुई तथा यदि हमें वह भीखनी हो तो दूसरों की हवा से ही यह साध्य हो सकती है । कारण इतना ही है कि सजीव एवं स्पर्द्धिमय वैदिक युगसे केकर आज तक जो सहस्र सहस्र वर्षों की लक्षी चौड़ी खाई हमारे एवं वेदकाक के बीच पड़ी हुई है उसके परिणाम-स्वरूप हमारे ये पुराने सरकार तुल्यता से हो गये हैं और परंपरागत ज्ञानसत्त्व से हम सर्वथेन वंचित हो गये हैं । आज हमारी यह वास्तविक दालत है ।

पाठक देखें और तोयें कि यद् वा वास्तविक अर्थ हमें ज्ञात नहीं हुआ हमलिये राष्ट्रिय दृष्टिसे हमारी कितनी बड़ी हानि हुई है तथा अब भी अपने ज्ञानभाण्डारमें इस वैदिक ज्ञान की वृद्धि करने का प्रयत्न करें ।

वैदिक ज्ञानके विचार से वर्तमानकालमें भी एक अत्यन्त उत्तम 'जीवन का तथ्यज्ञान' प्राप्त हो सकता है । मरुत् युक्त में प्रदर्शित सैनिकीय शिक्षा उस विद्याल तथ्यज्ञानका एक अतमात्र है और क्षात्र तथ्यज्ञान में उसका स्थान बड़ा उँचा है ।

हाँ, यह बात सच है कि कटस्थ कर लेने से ही यद्-सहितार्थें अब तक सुसंभित नहीं और इसका सारा धेय यद् पाठ में समूचा जीवन बिलानेहारे लोगों को मिलनाही चाहिए । यह सब थिलकुल ठीक है, क्योंकि अगर, वेदपाठ करने में महारूपुण्य है ऐसा विश्वास न बटाया जाता तो शापद ही कोई वेद पढने में प्रयत्न होता और वेद सदा के लिए उपेक्षित रहते । परन्तु यदि कहीं वेद के जीवित तथ्य ज्ञान को अर्थज्ञानपूर्वक व्यवहारमें लानेमें सफलता मिलती तो अपने क्षत्रिय धीर समूचे विश्व में विजयी हो जाते और भारतीय संस्कृतिपर जो आघात हुए वे न होते । भा स्पष्ट कहना चाहिए कि वेद के अर्थ की और भारतीयों ने जो ध्यान नहीं दिया उससे उन्हें महारूप हानि एवं क्षति

के सम्मुखीन होना पडा । भारतीयों के जीवन का सारा तथ्यज्ञान ग्रन्थों में बद् पडा रहा और भारतवासी उस भारी बोझ को ढोते हुए भी तनिक धना में भी उस तथ्य-ज्ञान से छाम नहीं उठा सके । क्या यह हानि अधरती है ? कदापि नहीं । अस्तु ।

जो प्राचीनकाल एवं मध्ययुग में हो चुका उसकी ज्यादाद छापीन करनेसे कोई विदोष लाभ नहीं हो सकता क्योंकि जो घटायाँ हो चुकीं वे अन्वधा नहीं हो सकीं । हाँ, अब मविष्य में तथा वर्तमानकालमें भी जीवित ज्ञान उगीतरी और हमारा ध्यान अविज्ञाविक आकर्षित होता चाहिए ।

वेदग्रन्थों में जीवित संस्कृति का तथ्यज्ञान है और यद् वेदक कथ्य करने के लिए ही सीमित रहे तो ठीक नहीं । वास्तव में इस वैदिक तथ्यज्ञान की सुदृढ नींवपर अपनी समाज रचना एवं राष्ट्र निर्माणका विद्याल मन्दिर उठ सका हो जाय तो चाहेजि तथा इस प्रकार अपने वैदिक तथ्यज्ञान के आधार से सामाजिक सुसंरचना एवं राष्ट्रीय व्यवहार का संचलन होने लगे तो सचमुच आधुनिक युग की अनेक जटिल समस्याएँ बड़ी सुगमता से हल हो सकती हैं वेदा हमारा दृढ विश्वास है । आज ससार में वलनाद, समाज-सत्तावाद, साम्यवाद, लोकतन्त्रात्मतावाद, साम्राज्यवाद आदि विविध यादोंकी घूम मच रही है । मानवताति इतनी यादों के मध्य अपना कोई निर्णय नहीं कर पाती, जिस से समूचा मानवसमाज बचा हुआ हो उठा है । अब भारतीय जाता देख ले कि, क्या इन सभी दुरीय परस्पर कटुदाय-मान वादों की अवेक्ष, आधुनिक 'समन्वयवाद' जा कि वेदों की बहुमूल्य दा है, यदि समार के सामने रखा जाय तो इस तथ्यज्ञानके सहारे ससारके सभी उल्लस में बाली जाने पेधीष्ट सवाल्यों को भासानी से हल नहीं किया जा सकता है ? अवश्य हो सकता है, ऐसा दृढ विश्वास है ।

यूक्ति बहुत प्राचीन काल से यह निर्धारितता हो चुका था कि वेद का सिर्फ ब्रह्मण करने के लिए ही है अत यद् वैदिक तथ्यज्ञान बहुत ही पिछडा हुआ है । अब भारतीयों का यह प्रमुख कर्तव्य है कि इस अमोलिक तथ्यज्ञान को समूचे विश्व के सम्मुख अधिक चतुर्पूर्वक रखें और आगे बढना शुरु कर दें कि इस तथ्यज्ञानके महत्त्वेपर ही समार के सभी पिछट प्रभ हट विने जा सकत हैं ।

वैश्वानर यज्ञ ।

हैं, यह बिल्कुल सत्य है कि वेद यज्ञों के लिए हैं परन्तु " यह यज्ञ मानव-जीवनरूपी विश्वव्यापक महायज्ञ है । " यह यज्ञ हम वैश्वानर के लिए करना है । यह प्रारम्भ में प्रचलित यज्ञ भारी व्यापक अर्थ लुप्त हो गया और पश्चात् ऐश्वर्य अतिसीमित एवं अतिसकुचिन अर्थ जनतामें रूढ़ हो गया, जब कि ये समूचे मन्त्र इन यज्ञों में ऊँची भाषाओं में पढ़े जाने लगे । आज न जाने कितनी शताब्दियों से यज्ञ यही कार्यक्रम प्रचलित है । आज के दिन मौखिक तथा सच्चे व्यापक अर्थ की अक्षय्य उपेक्षा हो रही है, कोई भी उच्चर यज्ञ न भी ध्याय नहीं देता है । इस महान् गुण्ड के कारण वैदिक तरवज्ञान बहुत पीछे रह गया है । अब हमें उचित है कि वेदमंत्रों के अर्थ देखकर वैश्वानर यज्ञ के स्वरूप में वैदिक तरवज्ञान की झाँकी प्राप्त करें और उसे मानवजाति के विचाराथं धर दें । यह कार्य बड़ा ही प्रचण्ड है सही, लेकिन यदि वरुण के लिए फटियेद हो उठें तो अवश्य उसमें सफलता मिलेगी इसमें क्या सशय ?

पुराणों का समालोचन ।

इस ग्रन्थ में हम मन्त्रों के मन्त्रों वा अर्थ पाठ्यों के लिए दे चुके हैं । यह अच्छा होता अगर हम साथ ही साथ अनेक पुराण-ग्रन्थों में उपलब्ध मन्त्रों की कथाओंकी भी इस पुराण में स्थान दे देते क्योंकि तब यह दर्शाना सुगम होता कि मूल वैदिक सिद्धान्तों को पुराणों के रचयिताओंने किन स्वरूप में परिवर्तित किया । पर इन दिनों मुद्रणार्थं वागज आदि साधन अति दुर्लभ होने के कारण ग्रन्थ का स्वरूप बदलना असम्भव हुआ । इत्यादी आज हम कह सकते हैं कि द्वितीय संस्करण के मोक्षेपर यह सारी जानकारी दे दी जायगी । सभी अभिव्यक्तकीन विचार उस समयकी जागतिक परिस्थिति पर ही निर्भर हैं ।

मरुदेवता और युद्धशास्त्र ।

मरुदेवता के मन्त्रों में मरुतों के यज्ञान करने के बदले से युद्धशास्त्र, युद्धसाधन, युद्धके दौब-पेच आदि का उल्लेख किया है । ऐसी बातों का स्पष्टीकरण भारतीय युद्धशास्त्र विषयक ग्रन्थों की दृष्टि से करना चाहिए और यह अधिक विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता रखता है । आज हमें

युद्धशास्त्र पर बहुवला साहित्य उपलब्ध है और महाभारत आदि ग्रन्थों में स्थानस्थान पर विभिन्न निर्देश हैं । यदि इन सभी निर्देशों का सम्पूर्णरूपसे विचार किया जाय, तो यह कुछ चोच मिल सकता है, पर यह सब अभिव्यक्तकी स्थिति पर ही अवलम्बित है ।

निसर्ग में मरुतों का स्थान ।

सभी वैदिक देवता निसर्ग में अवस्थित हैं और इसी तरह मरुतों वा भी प्राकृतिक विश्वमें स्थान है, जो ' वर्षा कालीन वायुप्रवाह ' से स्पष्ट होता है । वर्षा होने समय भोंधी एवं वेगवान् पवन का बदना शुरु होता है । आकाश में जो स्पष्ट होता है, बिजली की कड़क सुनाई देती है और प्रचण्ड तूफान का अवतरण होता है । ये प्रचण्ड हाहावात ही ' मरुत् ' है, जो इनका वाह्य प्रकृति में दृश्यमान रूप है ।

जिस समय प्रबल भोंधी चलने लगती है, वेगवान् हाहावात बदले हैं, तब वदेषधे वेह जड़मूल से उलड़कर टूट पड़ते हैं, वृक्षधनरपति काँपने लगते हैं, कभी कभी तो बिजली के गिरने से विनष्ट भी होते हैं । इस समय की स्थिति का वर्णन महापुत्र के वर्णन से बहुत कुछ साम्य रहता है । नीपण महासमर में भी कह नहीं सकते कि कौन जीवित रहेगा या कौन मौत के मुँह में समा जायेगा । विश्व में तूफानी वायुमण्डल तथा भोंधी के ओरसे जो खलबली मचती है उस में और प्रचण्ड दुर्गमों से होनेवाली धीरों की मिहना में साम्य अवश्य ही दिखाई पड़ता है ।

वैदिक कविोंने मरुतों वा वर्णन मानवी स्वरूप में ही किया है । मरुतों के सूक्ष्म पद लेनेसे सापसाक दिखाई देता है कि कुछ मन्त्रों में हाहावात का वर्णन किया है और कई मन्त्रों में स्वरूप से मानवी धीरोंका वर्णन किया है तो अन्य कुछ मन्त्रों में दोनों एक दूसरे के मिल गये हैं ।

देवताओंके वर्णनको ' आधिदैविक ' , मानवीके वर्णनको ' आधिभौतिक ' और आत्मज्ञानिके वर्णनको ' आध्यात्मिक ' कहते हैं । जो विद्वान् है वही महापुत्रमें पाया जाता है, यह सिद्धान्त इस वर्णनके मूलमें है । इसी कारण किसी एक क्षेत्र में जो वर्णन किया हुआ हो, वही दूसरे क्षेत्र में

परिवर्तित कर दिखलाया जा सकता है । मरुत् अधिदैवत में 'वर्षाकालीन चायुप्रवाह,' अभिभूत में 'वीर क्षत्रिय' और अय्यारम में 'प्राण' हैं । इस दृष्टिकोण से एक क्षेत्र का वर्णन दूसरे क्षेत्र के लिए भी लागू हो सकता है । इस संबंध को देख लेने से ज्ञात होगा कि मरतों के वर्णन में वीरों का खलान किस तरह समाया हुआ है ।

पाठकों को स्पष्ट प्रतीत होगा कि 'मरुत्' मरुत्, मानव, मनुष्य-श्रेणी के हैं ऐसा समझ कर उनका वर्णन इन मरतों में किया है । इस मिश्रित वर्णन में वैदिक देवताओं का आविष्कारण विशेष स्वरूप से होता है । ठीक वैसे ही मानवजातिमें मरुत् देवता सैनिक क्षत्रियों के रूप में प्रकट होती है । इन्द्र देवता नरेव एवं सरदार के स्वरूप में और ब्रह्मणों में अग्नि, ब्रह्मणस्पति आदि देवता व्यक्त स्वरूप धारण करते हैं । अतः इन इन देवताओं के वर्णन के

अवसर पर उस उस वर्ण के लोगों के कर्तव्य विशेषतया वर्णित किये जाते हैं । इसी रीतिसे मरतों के वर्णन में सैनिकों की हैसियत से कार्य करनेवाले क्षत्रियों के कर्तव्य-कर्मों का उल्लेख किया है और इन वर्तों में क्षत्रियधर्म का स्पष्टीकरण हुआ है जिसका कि विचार पाठकों को अवश्य करना चाहिये । अस्तु ।

अधिक विचार करने के लिए मरुदेवता का मंत्रसंग्रह पाठकों के सम्मुख रखा है । आशा है कि इस तरह सोच-विचार करके निरपन्न होनेवाले मानवी क्षात्रधर्म की जाव-कारी प्राप्त करने का प्रयत्न होगा ।

स्वाध्याय-संग्रह,
आँध, जि. (सातारा)
दिनांक १५।८।४३

निवेदक
श्री० वा० सातवलेकर

प्रस्तावनाकी अनुक्रमणिका ।

वीर महर्तों का काव्य ।	३	मन्य भाङ्कृतिवाले वीर ।	१७
वीर काव्य के मनन से उपलब्ध बोध ।	५	रक्तिमामय गौरवर्ण ।	११
महिष्कार्भों का वर्णन नहीं पाया जाता है ।	११	अपने तेजसे चमकनेहारे वीर ।	११
नारी के तुल्य तलवार ।	४	अन्न उरवत् करनेहारे वीर ।	११
साधारण स्त्री ।	११	गायोंका पाकन करते हैं ।	१८
उत्तम मात्सार्भों के खिलाफी युद्ध ।	१३	महर्तोंके घोड़े ।	११
महिष्कार्भों के समान वीर अलंकृत		इन वीरों का बळ ।	११
तथा विभूषित होते हैं ।	५	महर्तों की संरक्षणशक्ति ।	१०
एक ही घर में रहनेवाले वीर ।	६	महर्तों की सेना ।	११
संघ बनाकर रहनेवाले वीर ।	११	विजयी वीर ।	२१
सभी सदस्य वीर ।	७	कर्मों का विधेय ।	२१
महर्तों का गणवेश ।	११	युद्धमर्मोंकी रक्षानेवाले वीर ।	११
सरपर शिरच्छाया ।	११	महर्तों की सहनशक्ति ।	११
सब का सदस्य गणवेश ।	११	महर्तों का रसतलसंचार ।	२३
महर्तों के हथियार, कुटार, पशु, तलवार, धनु ।	८-९	स्वयंशासक वीर ।	१५
सुदृढ मजबूत हथियार ।	१०	महर्तु-गणका महत्त्व ।	१४
महर्तों का रथ ।	११	अच्छे कार्य करते हैं ।	११
चक्रहीन रथ का विघ्न ।	११	वायुदलसे युद्ध ।	११
हथियों से खींचे जानेवाले रथ ।	१२	महर्तु वीरोंका दाम्पत्य ।	२५
अश्राद्धित रथ ।	११	मानवों का दित करनेहारे वीर । कुलीन वीर ।	५६
घानु पर किया जानेवाला आक्रमण ।	१२	क्षण युक्तानेहारे । निर्दोष वीर	११
महर्तु मानव ही थे ।	११	महर्तों का सम्पर्क । महर्तोंका धन ।	२७
महर्तों की विद्याविकासिता ।	१४	महर्तोंका स्वभाव-वर्णन ।	२९
ज्ञानी, दूरदर्शी, यत्ना, कवि, बुद्धिमानी,		महर्तोंके सूक्तोंमें वीरकाव्य ।	२१
साहसपन, सामर्थ्य, उरसाह, उग्र वीर, उद्यमी,		वेदका अध्ययन ।	३३
दुन्दुब वीर, कथामिय, राजोपचारमवीण, सिद्धाही,		पैधानर यज्ञ । पुराणोंका समालोचन ।	
नृसम्प्रियता, वादनपटुत्व ।	१४-१६	महर्तुवता वीर युद्धशास्त्र । निष्ठामें महर्तोंका स्थान ।	३६
धनु को जड़मूक से उखाड़नेवाले वीर ।	११		

मरुद्देवता का मन्त्रसंग्रह ।

अनुक्रमणिका ।

मरुद्देवता	पृष्ठ		पृष्ठ
१ विश्वामित्रपुत्र मधुच्छंदा ऋषि (मंत्र १-४)	१-२	२७ अग्निः	१७३
२ कण्वपुत्र मेधातिथि ऋषि (मं० ५)	३	२९ अत्रिपुत्र वसुश्रुत	१७४
३ धौरपुत्र कण्व ऋषि ,, (मं० ६-४५)	४	,, इवावाध ,, (४४९-४५६)	१७५
४ कण्वपुत्र पुनर्वसु ,, (मं० ४६-८१)	१६	सधर्वा ,, (४५७-४६४)	१७६
५ कण्वपुत्र सोमरि ,, (मं० ८२-१०७)	२७	अग्निर्मरुतक्ष ।	
६ गोतमपुत्र नोषा ,, (१०८-१२२)	३७	कण्वपुत्र मेधातिथि ,, (४६५-४७३)	१७९
७ रहुगणपुत्र गोतम ,, (१२३-१५६)	४४	कण्वपुत्र सोमरि ,, (४७४)	१८२
८ दिवोदासपुत्र परुच्छेप ,, (१५७)	५९	इन्द्रो मरुतक्ष ।	
९ मित्रावरुणपुत्र अगस्त्य ,, (१५८-१९७)	७८	विश्वामित्रपुत्र मधुच्छंदा ,, (४७५-४७६)	१८३
१० ह्युनकपुत्र गृत्समद ,, (१९८-२१३)	८६	मरुत्वाग्निन्द्रः ।	
११ गाधीपुत्र विश्वामित्र ,, (२१४-२१६)	८६	कण्वपुत्र मेधातिथि ,, (४७७-४७९)	१८३
१२ अत्रिपुत्र इवावाध ,, (२१७-२१७)	८७	मित्रावरुणपुत्र अगस्त्य ,, (४८०-४९१)	१८४
१३ अत्रिपुत्र पृथ्वामरुत ,, (३१८-३२६)	११४	इन्द्रमरुतौ ।	
१४ बृहस्पतिपुत्र सोयुः ,, (३२७-३३३)	१२८	अंगिरसपुत्र तिरष्ठी ,, (४९८)	१९१
१५ बृहस्पतिपुत्र भारद्वाज ,, (३३४-३४५)	१३०	मरुपुत्र सुताम ,, ,,	१९१
१६ मित्रावरुणपुत्र वसिष्ठ ,, (३४५-३९४)	१३४	मरुतों के मंत्रों के ऋषि धौर वसुकी मंत्रमंथरः	१९४
१७ अत्रिपुत्र पूगदक्ष ,, (३९५-४०६)	१५१	मरुतों का संदर्भ	
विदुः ,, ,, ,,	१५४	ऋग्वेद्वचन	१९४
१८ भृगुपुत्र रघुमरिचि ,, (४०७-४२२)	१५४	सामवेद ,,	१९७
पात्रसनेयी यजुर्वेदमंत्र ,, (४२३-४२८)	१६१	अथर्ववेद ,,	१९९
प्रजापतिः ,, (४२९, ४२८)	१६१	पात्रसनेयी यजुर्वेद वचन	१९८
गाधीपुत्र विश्वामित्र ,, (४२४)	१६१	कठक संहिता ,,	१९९
सप्तर्षयः ,, (४२५-४२७)	१६१	ब्राह्मण-मंत्र-वचन	२००
१९ अत्रिपुत्र इवावाध ,, (४२९)	१६७	भारण्यक ,, ,,	२०२
२० प्रथा ,, (४३०-४३३)	१६९	उपनिषद् वचन	२०३
२१ सधर्वा ,, (४३४-४३६)	१६९	मरुतों के मंत्रों में सुभाषिण	२०३
२२ शन्वातिः ,, (४३७-४३९)	१७०	मधुच्छंदाः, मेधातिथिः, कण्वः	१७३
२३ मृगार ,, (४४०-४४६)	१७१		

	पृष्ठ		पृष्ठ
पुनर्वंश	२०६	इषावाण	२१६
सोमरि	२०८	पृथ्यामरुत्, शंयुः	२२३
नोधा	२०९	भरद्वाज	२२४
गौतमः	२१०	वसिष्ठ	२२५
भगवतः	२१३	विन्दु, पृथ्वक्ष, ह्यूमरिम	२२७
शुभमवः	२१५	मरुदेवता-मन्त्रों में श्रीविष्वक् उल्लेख	२२९
विश्वामित्र	२१६	मरुदेवता-धुमरुक्-मन्त्राः	२३०



देवत-संहितान्तर्गत

मरुत् देवता का मन्त्रसंग्रह ।

[अर्थ, भावार्थ और टिप्पणी के साथ]

विश्वामित्रपुत्र मधुच्छन्दा ऋषि । (ऋ० १।६।४, ६, ८, ९)

(१) आत् । अहं । स्वधाम् । अनु । पुनः । गर्भस्त्वम् । आऽईरिरे ।
दर्शानाः । नाम । यन्त्रियम् ॥ ४ ॥

अन्वयः- १ आत् अह यक्षियं नाम दधानाः (मरुतः) स्व-धां अनु पुनः गर्भत्वं परिरिरे ।

अर्थ- १ (आत् अह) स्वधामुचही (यक्षियं नाम) पूजनीय नाम तथा यश(दधानाः) धारण करनेवाले वीर मरुत् (स्व-धां अनु) अन्नकी इच्छासे (पुनः) धार धार(गर्भत्वं परिरिरे) गर्भवासिताको प्राप्त होते हैं ।

भावार्थ- १ यथेष्ट भक्ष मिले इस हाकलासे पूजनीय नामोंके युक्त यशस्वी मरुत् फिर धार धार गर्भवासस्वीकारके लिए तैयार हुए ।

टिप्पणी- [१] मेघपक्षमें- भूमदल पर जो जल विद्यमान है, वह भागके रूपमें ऊपर उठ जाता है और यह वायु-मंडल की सहायता से मेघों में एकत्रित हुआ पाया जाता है । भव भक्षका उल्लास हो इस हेतु मेघमाला में जलरूपी शिथुका गर्भ रहता है । वीरपक्ष में- ब्रह्मण करनेयोग्य यश पानेवाले वीर पुरुर, अनता के लिए यथेष्ट भक्ष मिल जाय, इसलिये भौति भौति के कार्य निष्पन्न कर देते हैं और शत्रु के उपरांत पुन गर्भवात में रहकर उसी तरह कार्य करनेकी इच्छा करते हैं । अध्यात्ममें मरुत् 'प्राण' हैं, अधिभूतमें 'वीर सैनिक' हैं और अधिदैवतमें 'वायु' हैं । गरभोंके इस कार्यमें प्रमुखतया वीरोंका ही वर्णन यत्रतत्र पाया जाता है और कई संग्रहों में 'वायु' तथा 'प्राण' का भी वर्णन किया गया है । हाँ, प्राणविषयक निर्देश बहुतही कम हैं । (१) स्वधा (स्व-धा = स्वयं दधाति पुष्पातीति स्वधा) = जो अपना धारण तथा पोषण करता हो वह । अन्न, उर्क, अपनी धारणशक्ति, आत्मशक्ति, निजसामर्थ्य, प्रणाली, निदम, सुक, आनंद, स्वस्थान । स्वधां अनु = भक्ष पानेके लिए, अपनी धारकशक्तिकी वृद्धि करनेके लिए । (२) यक्षियं नाम = पुत्र नाम, वर्णन करनेयोग्य यश । धा० यजु० १७।८०-८५ तक मरुतोंके ४२ नाम दिये हैं । हरएक नाम मरुतोंका एकएक गुण बतलाता है और इस तरह वर्णनीय नाम धारण करनेवाले वे मरुत् हैं । ये नाम मनुष्यों की स्वतंत्रचातुरी को स्पष्ट करनेवाली विभिन्न उपाधियों हैं । देखिए मन्त्र १३१ । (३) पुनः गर्भत्वं परिरिरे = धारधार गर्भवासमें रहते हैं याने किससे शरीर धारण करके पेड़ी सहायनीय कार्यकलाप सुचाह रूपसे निभाते रहते हैं । देखिए अध्यात्ममें 'प्राण' धारधार संचार करके जीवजंतुओंकी जीवन प्रदान करता है । अधिभूतमें यद्यपि वीर सैनिक क्षतविक्षत हो धरायाधी हो जाते हैं तो भी फिर गर्भवासका स्वीकार कर विश्वकल्याण के लिए अपने जीवनका बलिदान करनेमें शिस्तकत नहीं । अधिदैवत में 'वायुप्रवाह' गैसरूपी तथा वाष्पीभूत जलको गर्भवत् रंगसे मेघमंडलमें धर देते हैं, जिमसे वर्षाके रूपमें जन्म ले, समूचे संसार की स्वास सुस्थाने में उनका अर्पण हुआ करता है । इस भौति मरुत् हूँ जगह विश्वके दितके लिए अपना बलिदान करते हैं और धारधार जन्म लेकर वही अपना पुराना विश्वकल्याण का सुलभ कार्यभार निभाने का कार्य प्रवर्तित रखते हैं । (४) मरुत् = (मा-रु) जो लोग रोते नहीं बैठते, ऐसे उल्लाह तथा उमंगसे भरे वीर, (मा-रु) जो स्वयंकी भीम नहीं मारते हैं, पर कर्तव्य कर्म सचकेतापूर्वक करते हैं ऐसे वीर, (मर-उत्) मरनेतक उठकर कार्य करनेवाले वीर योद्धा ।

(२) देवऽयन्तः । यथा । मृत्तिम् । अच्छे । विदत्-वसुम् । गिरः ।

महाम् । अनुपत् । अतम् ॥ ६ ॥

(३) अनुवचैः । अभिर्द्युभिः । मखः । सहस्वत् । अर्चति । गुणैः । इन्द्रस्य । काम्यैः ॥८॥

(४) अतः । परिऽमन् । आ । गृहि । दिवः । वा । रोचनात् । अधि ।

सम् । अस्मिन् । ऋजते । गिरः ॥ ९ ॥

अन्वयः— २ देवयन्तः गिरः महान् विदत्-वसुं श्रुतं यथा मति, अच्छ अनुपत् ।

३ मखः अनु-अवचैः अभि-द्युभिः काम्यैः गुणैः इन्द्रस्य सहस्वत् अर्चति ।

४ (हे) परिऽमन् । अतः या दिवः रोचनात् अधि आ गृहि, अस्मिन् गिरः समृजते ।

अर्थ— २ (देवयन्तः) देवत्व पाने की लालसावाले उपासकों की (गिरः) याणियों, (महान्) बड़े तथा (विदत्-वसुं) धन की योग्यता जाननेवाले (श्रुतं) विख्यात वीरों की (यथा) जैसे (मति) पुष्टिपूर्वक स्तुति करनी चाहिये, (अच्छ अनुपत्) उसी प्रकार सराहना करती आई हैं ।

३ (मखः) यह यह (अनु-अवचैः) निर्दोष, (अभि-द्युभिः) तेजस्वी तथा (काम्यैः) धान्दनीय पैसे (गुणैः) मरुत्समुदायों से युक्त (इन्द्रस्य सहस्-वत्) इन्द्र के शत्रुओं को परास्त करने में क्षमता रखनेवाले यल की (अर्चति) पूजा करता है ।

४ हे (परि-मन्) सभी जगह गमन करनेवाले मरुत् गण ! (अतः) यहाँ से (या) अथवा (दिवः) धुलोकेसे या (रोचनात् अधि) किसी दूसरे प्रकाशमान अंतरिक्षवर्ती स्थानमेंसे (आ गृहि) यहाँपर आओ, क्योंकि [अस्मिन्] इस यज्ञमें [गिरः] हमारी याणियों तुम्हारी ही [समृजते] इच्छा कर रही हैं ।

भाषार्थ— २ जो उपासक देवत्व पाना चाहते हैं, वे वीरों के समुदाय की सराहना करते हैं, क्योंकि यह संप्रदान है कि, जनता के उच्चतम निवास के लिए आवश्यक धनकी योग्यता कैसी है । अतएव यह इस तरहके धनको पाकर सबको उचित प्रमाण में प्रदान करता है (और यही बात अगले मन्त्र में दर्शायी है)

३ यज्ञ की सहायता से दोषरहित, तेजस्वी तथा मख के प्रिय वीरों के संघों में रहकर, मरुत् का नाश करनेवाले इन्द्र के महान् प्रभावी सामर्थ्य की ही महिमा गापी जाती है ।

४ कृत्वा मरुत्संघों में पर्याप्त मात्रामें श्रुता तथा वीरता विद्यमान है, अतः उसके प्रभावसे (परि-मन्) समूचे विश्व को उपास कर लेते हैं । वीरों को चाहिये कि वे इन गुणों को स्वयं धारण करें । ऐसे वीरों का साकार करने के लिए सभी कविधों की याणियों उल्लेख रहा करती हैं ।

टिप्पणी— [७] (१) ' देवयन्तः ' देवत्व हमें मिल जाय इसलिये निर्धारपूर्वक उपासना करनेवाले उपासक ।

(२) ये भक्तगण धनकी महत्ताको जाननेवाले बड़े यशस्वी मरुत् नामधारी वीरों की ही प्रशंसा करते हैं । कारण इनकाही है कि, इस भाँति वर्णन करने से उनके गुण धीरेधीरे उपासकों में बहने लगेंगे । उपासक इस बातसे परिचित हैं । मनोविज्ञान का एक सिद्धान्त है कि, जिन विचारोंको हम मन में स्थान देंगे वे ही आगे चढ़कर हम में रज्जुकी ही शैल्ये हो और यही देवतास्तोत्र में है । उपासक जिसकी जैसी स्तुति करेगा वैसे ही वह बन जायेगा । ' विदत्-वसु ' पद यहाँपर है । ' वसु ' अर्थात् (वासयति इति) मानवों का निवास सुखदायक होने के लिए जो कुछ भी सहायक हो वह वसु है । अब वे वीर इस धनकी योग्यता और महत्ता से परिचित हैं, क्योंकि यह मानवों के शुभमय निवास बनाने में बड़ा भारी सहायक है । अन्व सभी वीर इन्हीं वीरोंका अनुकरण करें । [३] (१) मखः= (मख गतौ)= पूर्य, कर्मण्य, आनंदी, यज्ञ, प्रशंसनीय कर्म । [४] (१) परि-मन्= सर्वत्र अभिगमन करनेवाला, सर्वस्थापक ।

(२) समृजन्— (ऋजतिः प्रसाधनकर्मा) निरफ. ६।२३) सुशोभित करना, सजावट करना, सुव्यवस्थित करना ।

कण्वपुत्र मेघातिथि ऋषि (ऋ० १।१।५२)

(५) मरुतः । पिवत् । ऋतुना । पोत्रात् । यज्ञम् । पुनीतन ।

यूयम् । हि । स्थ । सुदानवः ॥ २ ॥

घोरपुत्र कण्व ऋषि (ऋ १।३।११-१५)

(६) क्रीळम् । वः । शर्धः । मरुतम् । अनर्वाणम् । रथेऽशुभम् ।

कण्वाः । अभि । प्र । गायत ॥ १ ॥

(७) ये । पृपतीभिः । ऋष्टिभिः । साकम् । वाशीभिः । अञ्जिभिः ।

अजायन्त । स्वभानवः ॥ २ ॥

अन्वयः- ५ (हे) मरुतः । ऋतुना पोत्रात् पिवत्, यज्ञं पुनीतन, (हे) सु-दानवः । हि यूयं स्थ ।

६ (हे) कण्वाः ! वः मरुतं क्रीळं अन्-अर्वाणं रथे-शुभं शर्धं अभि प्र गायत ।

७ ये स्व-भानवः पृपतीभिः ऋष्टिभिः वाशीभिः अञ्जिभिः साकं अजायन्त ।

अर्थ- ५ हे [मरुतः] वीर मरुतो । [ऋतुना] उचित अवसरपर [पोत्रात्] पवित्रता करनेवाले याज्ञक के वर्तन से [पिवत्] सोमरस का सेवन करो और इस [यज्ञं पुनीतन] यज्ञ को पवित्र करो । हे [सु-दानवः] उच्च कोटिका दान करनेवाले मरुतो ! [यूयं स्थ] तुम पवित्रता संपादन करनेवाले ही हो ।

६ हे [कण्वाः] काव्यगायन करनेवाले ! [वः] तुम्हारे निजी कट्याणके लिए [मरुतं] मरुतों के समूहसे उत्पन्न हुआ, [क्रीळं] क्रीडनमय भावसे युक्त [अन्-अर्वाणं] आह्वयोंमें पाये जानेवाली फलदमिय मनोवृत्ति से कौनों दूर याने जिसमें पारस्परिक मनोमालिन्य नहीं है, ऐसा [रथे-शुभं] रथमें सुहानेवाले अर्थात् रथी वीर को शोभादायक जो [शर्धं] बल है, उसी का [अभि प्र गायत] वर्णन करो ।

७ [ये स्व-भानवः] जो अपने निजी तेज से युक्त हैं, ये मरुत् [पृपतीभिः] धर्यों से अलंकृत हिरनियों या घोड़ियों के साथ [ऋष्टिभिः] भालोंसहित [वाशीभिः] कुठार एवं [अञ्जिभिः] वीरों के आभूषण या गणवेश के [साकं अजायन्त] संग प्रकट हुए ।

भाषार्थ- ५ [१] मोसम के अनुकूल जो सोमरसरसता पेय है, यह पवित्र वर्तन से ही लेना चाहिए । [२] जो काम करना हो वह पथासंभव पवित्र करनेकी चेष्टा करनी चाहिए । उपेक्षा या उदासीनता नहीं करनी चाहिए ।

६ अपनी प्रगति हो हमलिए उपासक मरुतों के श्लोक का पठन करें, क्योंकि इन मरुतों से तापिक उल, लिखाहीपन, पारस्परिक मित्रता, आत्ममै तथा रथी बनने के लिए उचित बल विद्यमान है ।

७ मरुतों के रथ में जो घोड़ियों या हिरनियों जोड़ी जाती हैं वे चबूतेवाली दोरी हैं । मरुतों के निकट भाले, कुठार, वीरभूषण वा गणवेश पाये जाते हैं । कहने का अभिप्राय इतना ही है कि, मरुत् जिस प्रकार सुसज्ज रथीय पदते हैं वैसे ही अन्व सभी वीर रादैव क्षत्रास्त्रों से लैस रहें ।

टिप्पणी [५] पोत्रं= पवित्रता करनेवाला याज्ञक, पवित्र वर्तन । [६] (१) मरुत् मय पगाकर रहते हैं, अतः ये घलिष्ठ हैं । (२) लिखाहीपन में जो उदार भाव पाये जाते हैं वे मरुतों में है । (३) ' अर्वा ' शब्द ते. सं में ' आत्स्य ' अर्थ में आया है । ' अर्वा ये आत्स्य ' [वै. स. ६।३।८।१] आत्स्येय, आह्वयोंके सभ्य प्रेमभाजन रहना आदि बातों से पारस्परिक बल घटने लगता है । ' अर्वा-हिंसायां ' अत ' हिंसा करना ' भी एक अर्थ है । ' अनर्वा ' अर्थात् अहिंसक भाव और इससे पैदा होनेवाला बल जिसे ' अनर्थ ' नाम दिया जा सकता है । ' अर्वा ' का अर्थ घोड़ा या हीन [Mean] है, अतः ' अनर्वा ' हीन भावसे शून्य जो बल । (४) रथी, महारथी होनेवाले ज्योतिके लिए ऐसे बन्धी अतीव आवश्यकता है । मरुतों में ठीक यही बल विद्यमान है । जो हम बलका प्रयत्न करने लगता है, उनमें यह

(८) इहऽईव । शृण्वे । एषाम् । कशाः । हस्तेषु । यत् । वदान् ।

नि । यामन् । चित्रम् । ऋञ्जते ॥ ३ ॥

(९) प्र । वः । शर्धाय । घृष्वये । त्वेषऽद्युम्नाय । शुष्मिणे । देवत्तम् । ब्रह्म । गायत ॥४॥

(१०) प्र । शंस । गोषु । अघ्न्यम् । क्रीळम् । यत् । शर्धः । मारुतम् ।

जम्भे । रसस्य । ववृधे ॥ ५ ॥

अन्वयः— ८ एषां हस्तेषु कशाः यत् वदान् इह इव शृण्वे, यामन् चित्रं नि ऋञ्जते ।

९ वः शर्धाय, घृष्वये, त्वेष-द्युम्नाय शुष्मिणे, देवत्तं ब्रह्म प्र गायत ।

१० यत् गोषु, क्रीळं मारुतं, रसस्य जम्भे ववृधे (तत्) अ-घ्न्यं शर्धः प्र शंस ।

अर्थ— ८ [एषां हस्तेषु] इन मरुतों के हाथों में विद्यमान [कशाः] कोड़े [यत्] जब [वदान्] शब्द फरने लगते हैं, तब उन ध्वनियों को मैं [इह इव] इसी जगह पर खड़ा रह कर [शृण्वे] सुन लेता हूँ । यह ध्वनि [यामन्] युद्धभूमि में [चित्रं] विलक्षण ढंग से [नि-ऋञ्जते] शरत्ता प्रकट करती है ।

९ [वः शर्धाय] तुम्हारा यत् वदाने के लिये, [घृष्वये] शत्रुदल का विनाश करने के हेतु और [त्वेष-द्युम्नाय] तेज से प्रकाशमान [शुष्मिणे] सामर्थ्य पाने के लिए [देवत्तं ब्रह्म] देवता-विषयक ज्ञान को यत्नानेवाले काश्य का [प्र गायत] तुम यथेष्ट गायन करो ।

१० (यत्) जो बल (गोषु) गौओं में पाया जाता है, जो (क्रीळं मारुतं) खिलाड़ीपन से परिपूर्ण मरुत् संघों में विद्यमान है, जो (रसस्य जम्भे) गोरस के यथेष्ट सेवनसे (ववृधे) बढ़ जाता है, उस (अ-घ्न्यं शर्धः) अविनाशनीय यत्न की (प्र शंस) स्तुति करो ।

भावार्थ— ८ शूर मरुत् अपने हाथों में रत्ने हुए कोड़ों से जब आशय निकालने लगते हैं तब उस शब्द को सुन-कर रणक्षेत्र में लड़नेवाले वीरों में जोशीले भाव उठ खड़े होते हैं ।

९ अपना बल [शर्धः] बढ़ाना चाहिये । शत्रुदल को तहसनहस करने के लिए उन से [शृण्वे] संपर्क करने को परोक्ष बल या शक्ति रहे, ताकि शत्रुओं पर दृष्ट पड़ने पर अपने को मुँह की खाया न पके और तेज का उन्मि-यारा फैलानेवाली सामर्थ्य प्राप्त हो, इसलिए [त्वेष-द्युम्नाय शुष्मिणे] जिसमें देवता की जानकारी शक्य की गयी हो, ऐसे शत्रु पर [देवत्तं ब्रह्म] पठन एवं गायन करना उचित है, क्योंकि इस भक्ति करने से तुम में यह शक्ति पैदा होगी । जो विचार व्यापार मन में दुहराये जाते हैं वे कुछ समय के उपरान्त हम से अभिन्न हो जाते हैं ।

१० गोरस के रूप में गौओं में बल तथा सामर्थ्य इकट्ठा किया जाता है। वीरों की कीर्तिसकृति हृत्ति में यह बल प्रकट हो जाता है, जो हारक में बढ़ानेयोग्य है । गोरस का परोक्ष सेवन करने से यह शक्ति अपने शरीर में बढ़ सकती है और इसकी सराहना करनी उचित है ।

धीरे धीरे बढ़ने लगता है, अतः वर्णन करनेवाला भी थलिल बनता है। 'अनर्वाणं' का अर्थ कर्षणिके मतानुसार भोहोते शून्य, जिनके पास घोड़े नहीं हैं ऐसा कला चाहिये, पर अन्य अनेक स्थानों पर मरुतों को 'अदणाम्बाः' 'युद्धम्बाः' 'अभ्ययजः' आदि विशेषण दिये गये हैं, अतः वही अनुमान ठीक है कि, मरुतोंके निकट घोड़े विद्यमान थे। इसलिए 'अन्-अर्वा' वा अर्थ 'हीन भावों से रहित, एक दूसरे से द्वेष न करनेवाला' यों करना उचित जैसता है। पाठक इस पर अधिक विचार करें । (५) कण्वः= मंत्र ३२ पर की दिग्गणे वृत्तिः । [७] (१) ऋष्टिः= [ऋष्टिंसायां] खड्ग यां माला । (२) वादी [वाशु शब्दे] विलास्य करनेवाला, शीघ्र छोरेवाला धरत्र, परशु, इत्यादी । (३) अञ्जि= [अञ्जि व्यक्त-प्रक्षण-कान्ति-गतिषु] रंग लगाना, कुंकुम का छेप करके सोभामय बनाना, सुन्दर बनना, बोलना । अञ्जि= रंग, भूषण, वेदामुपा, गणधेय, धमकीला । [९] (१) शर्धः= संपका बल, धैर्य, निर्भयताकी सामर्थ्य, (२) वृष्टिः [वृष्टःसंपर्कं]= शत्रुधर्मोंसे मुक्तभेद करनेवाला । (३) शुष्मिन्= सामर्थ्ययुक्त, धीरजसे परिपूर्ण, पभाववादी ।

(११) कः । चः । वर्षिष्ठः । आ । नरः । दिवः । च । गमः । च । धृतयः ।
यत् । सीम् । अन्तम् । न । धून्यथ ॥ ६ ॥

(१२) नि । वः । यामाय । मानुपः । दध्रे । उग्रार्य । मन्यवे । जिहीत । पर्वतः । गिरिः ॥ ७ ॥

(१३) येषाम् । अजमेपु । पृथिवी । जुजुर्वान्द्रव विस्पति । भिया । यामेषु । रेजते ॥ ८ ॥

अन्वयः- ११ (हे) नर । दिवः च गमः च धृतयः चः आ वर्षिष्ठः कः ? यत् सीं अन्तं न धून्यथ ?

१२ यः उग्रार्य मन्यवे यामाय मानुपः नि दध्रे पर्वतः गिरि जिहीत ।

१३ येषां यामेषु अजमेपु पृथिवी, जुजुर्वान्द्रव विस्पति भिया रेजते ।

अर्थ- ११ हे (नर) नेतृत्वगुण से सम्पन्न थीर मरतो ! (दिवः) गुलोक को एवं (गम च) भूलोक को भी (धृतय) तुम कंकपित करनेवाले हो, ऐसे (च) तुम में (आ) सद्य प्रकार से (वर्षिष्ठ) उच्च कोटि का भला (क) कौन है ? (यत्) जो (सीं) सदैव (अन्तं न) पेड़ों के अप्रभाग को हिलाने के समान शत्रुदल को विचलित कर देता है, या तुम सभी (धून्यथ) विकंपित पर डालते हो ।

१२ (यः उग्रार्य) तुम्हारे भयावह (मन्यवे) क्रोधयुक्त वा आदेश एवं उस्ताह से लयालव और हुए (यामाय) आक्रमण से डरकर (मानुपः) मानव तो किसी न किसी (निदध्रे) के सहारे ही रहता है, क्योंकि (पर्वत) पहाड़ या (गिरि) टीले को भी तुम (जिहीत) विकंपित बना देते हो ।

१३ (येषां) जिन के (यामेषु) आक्रमणोंके अयसरपर और (अजमेपु) चढाई करने के प्रसंग पर (पृथिवी) यह भूमि (जुजुर्वान्द्रव विस्पतिः) मानों क्षीण नृपति की नाई (भिया रेजते) भय के मारे विकंपित तथा विचलित हो उठती है ।

भाषार्थ- ११ थीर मरुत् राट्ट के नेता हैं और वे शत्रुसबको जड़मूल से विचलित एवं कपावमान कर देते हैं। ठीक वही तरह जैसे आँधी या तूफान पृथ्वी या गुलोक में विद्यमान वेदसदग वस्तुजात को हिलाता है, अथवा वायु के शकोरे वृक्षों के ऊपर के हिस्से को चलायमान कर देते हैं। इन वायुप्रवाहों की ग्याईं थीर मरुत् शत्रुओं को अपवृद्ध कर डालते हैं। यहाँ पर प्रश्न उठाया है कि, क्या वे सभी मरुत् समान हैं अथवा इनमें कोई प्रमुख नेताके पद पर अधिकृत हो विराजमान है ? (भाग चलकर ३०५ तथा ४५३ सख्या के मंत्रों में बतलाया है कि, इन मरुतों में कोई भी श्रेष्ठ, मध्यम एवं निम्न जेणो का नहीं, अपितु सभी 'आई' हैं। पाठक उन मंत्रों के ऊपर इस अवसर पर एक सरसरी निगाह डालें ।)

१२ थीर मरुतों के भीषण आक्रमण के फलस्वरूप मानव के वो हाथपाँव फूल जाते हैं और वे कहीं न कहीं आश्रय पाने की चेष्टा में निरत रहते हैं, पर बड़े बड़े पर्वत भी आन्दोलित एवं स्पन्दित हो उठते हैं। थीरों की शत्रुदल वा चढाईयाँ इसी भाँति प्रभावोत्पादक हैं ।

१३ थीर मरुत् जब शत्रुदल पर धावा करते हैं और बड़े वेग से विद्युत्-युद्धप्रणाली से कार्य करते हैं, उस समय, आगे क्या होना क्या नहीं, इस चिंता से तथा डर से आसन्नमरण नरेष्ठ की नाई, यह समूची भूमि दहक उठती है । (इसी भाँति थीर सैनिकों को शत्रुदल पर आक्रमण का सूत्रपात करना चाहिए ।)

टिप्पणी- [१०] (१) अच्यं= (अ-च्य) जिसका हनन नहीं करना चाहिए, जिसका नाश कभी न करना चाहिए ।

[११] (१) नृ= नेता, सम्राज्य, (२) धृति (धू कम्पने)= हिलानेवाला । [१२] (१) याम= आक्रमण,

धावा मारना, शत्रु वा चढाई करना । [१३] (१) अजम= आक्रमण, धावा ।

(१४) स्थिरम् । हि । जानम् । एषाम् । वयः । मातुः । निःस्पृतवे ।

यत् । सीम् । अनु । द्विता । शवः ॥ ९ ॥

(१५) उत् । ऊँ इति । त्ये । सूनवः । गिरः । काष्ठाः । अज्मेपु । अत्नत् ।

वाश्राः । अभिञ्जु । यातवे ॥ १० ॥

(१६) त्यम् । चित् । घ । दीर्घम् । पृथुम् । मिहः । नपातम् । अमृध्रम् ।

प्र । च्यवयन्ति । यामिभिः ॥ ११ ॥

अन्वयः— १४ एषां जानं स्थिरं हि, मातुः वयः निःस्पृतवे यत् शवः सीं द्विता अनु ।

१५ त्ये गिरः सूनवः अज्मेपुः काष्ठाः वाश्राः अभि-ञ्जु यातवे उत् ऊ अतत ।

१६ त्यं चिद् घ दीर्घं पृथुं अ-मृध्रं मिहः न-पातं यामिभिः प्र च्यवयन्ति ।

अर्थ- १४ [एषां] इन चार मरुतों की [जानं] जन्मभूमि [स्थिरं हि] सचमुच दृढीभूत एवं अटल है । [मातुः] माता से जैसे [वयः] पंछी [निः-स्पृतवे] बाहर जाने के लिए चोप्रा करते हैं, वसी तरह ये अपनी मातृभूमि से दूरवर्ती देशों में विजय पाने के लिए निकल जाते हैं, [यत्] तब इनका [शवः] बल [सीं] सदैव [द्विता अनु] दोनों ओर बिभक्त रहता है ।

१५ [त्ये] उन [गिरः सूनवः] वाणी के पुत्र, यत्ना मरुतोंने [अज्मेपु] अपने शत्रुओं पर किये जानेवाले आक्रमणों में अपने हलचलों की [काष्ठाः] सीमापेँ या परिधियाँ बढ़ाई हैं, जैसे कि, [वाश्राः] गौओं को [अभि-ञ्जु] सभी जगह घुटने तक के पानी में से [यातवे] निकल जाना सुगम हो, इसलिये जैसे जल को [उत् उ अतत] दूर तक फैलाया जाय ।

१६ (त्यं चित् घ) उस प्रसिद्ध, (दीर्घं) बहुतही लंबे, (पृथुं) फैले हुए (अ-मृध्रं) तथा जिसका कोई नाश नहीं कर सकता, ऐसे (मिहः न-पातं) जल की वृष्टि न करनेवाले भेघ को भी ये धीर मरुत् (यामिभिः) अपनी गतियों से (प्र च्यवयन्ति) हिला देते हैं ।

भाषार्थ- १४ धीर मरुत् भूमि के पुत्र हैं । उनकी यह भूमि मात्रा स्थिर है और इसी अटल मातृभूमि से ये धीर अतीव वेगवाली उड़क हुए हैं । जिस भाँति पंछी अपनी माता से दूर निकलने के लिए छटपटाते हैं ठीक वैसे ही ये धीर अपनी मातृभूमि से सूरवर्ती स्थानों में जाकर असीम पराक्रम दर्शाने के लिए उलुक हैं और बल भी जाते हैं । ऐसे मीके पर इनका साहसवान अपनी जन्मदात्री भूमि की ओर लगा रहता है, वैसे ही शत्रुओं से युद्ध के समय युद्ध पर भी इनका ध्यान केन्द्रित रहता है । इस प्रकार इनकी शक्ति दो भागों में बिभक्त हो जाती है ।

१५ ये मरुत् [गिरः सूनवः] वाणी के पुत्र हैं, यत्ना हैं । या ' गोमातरः ' नाम मरुतों का ही है । ' गो ' अर्थात् ' वाणी, गौ, भूमि ' का सूचक शब्द है । मातृमाया, मातृभूमि तथा गोमाता के मुख के लिए अधिक प्रयत्न करनेवाले ये मरुत् विख्यात हैं । अपने शत्रुबल को वितरवितर करने के लिए उन्होंने जिस भूमि पर हलचलों प्रदर्शित की, उस भूमि की सीमापेँ बहुत चौड़ी कर रखी हैं, अर्थात् अपने आक्रमण के क्षेत्र को अति विस्तृत करते हैं । अतः जैसे अगर गौओं को घुटने तक के जलसंचय में से जाना पड़े, तो कुछ कष्टदायक नहीं प्रतीत होता है, वैसे उन्होंने भूमि पर पाये जानेवाले ऊपरबसावट स्थलों को न्यून कर दिया, भूमि समतल बना डाली, पानी इकट्ठा हो जाय, तो भी गौओं के लिए वह घुटनों से ऊपर न चढ़ जाय ऐसी सतकता दर्शायी । गौओं के लिए मरुतों ने भूमिपर हतना अच्छा प्रबंध कर डाला । उसी प्रकार शत्रु पर चढाई करने के लिए भी यातायात की सभी सुविधाएँ उपस्थित कर दीं, ताकि त्रिरोपी बल पर धावा करते समय अत्यधिक कठिनाइयों का सामना न करना पड़े ।

१६ गिन मेंवैसे पशु नहीं होतीं हो ऐसे बड़े बड़े बादलोंको भी मरुत् (वायुप्रवाह) अपने प्रचण्ड वेगसे विकल्पित कर डालते हैं । धीरोंको भी यही उचित है कि, ये दान न देनेवाले रूपण शत्रुओंको जब मूलसे हिलाकर पदभ्रष्ट कर दें ।

- (१७) मरुतः। यत्। ह। वः। वलम्। जनान्। अनुच्यवीतन। गिरीन्। अनुच्यवीतन॥१२॥
 (१८) यत्। ह। यान्ति। मरुतः। सम्। ह। ब्रुवते। अध्वन्। आ।
 शृणोति। कः। चित्। एषाम् ॥ १३ ॥
 (१९) प्र। यात्। शीभम्। आशुभिः। सन्ति। कण्वेषु। वः। दुर्वः।
 तत्रो इति। सु। मादयाध्वै ॥ १४ ॥
 (२०) अस्ति। हि। स्म। मदाय। वः। स्मसि। स्म। वयम्। एषाम्।
 विश्वम्। चित्। आयुः। जीवसे ॥ १५ ॥

अन्वयः- १७ मरुतः यद् ह वः यलं जनान् अनुच्यवीतन गिरीन् अनुच्यवीतन ।

१८ यत् ह मरुतः यान्ति अध्वन् आ सं ब्रुवते ह, एषां कः चित् शृणोति ?

१९ आशुभिः शीभं प्र यात्, कण्वेषु वः दुर्वः सन्ति, तत्रो सु मादयाध्वै ।

२० वः मदाय अस्ति हि स्म, विश्वं चित् आयुः जीवसे, एषां वयं स्मसि स्म ।

अर्थ- १७ हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (यत् ह) जो सचमुच (वः यलं) तुम्हारा यल (जनान् अनुच्य-
 वीतन) लोगों को हिला देता है, विकंपित या स्थानभ्रष्ट कर डालता है, वही (गिरीन्) पर्वतों को भी
 (अनुच्यवीतन) विचलित बना डालता है ।

१८ (यत् ह) जिस समय सचमुच ही (मरुतः यान्ति) वीर मरुत् संचार करने लगते हैं,
 यात्रा का सूत्रपात करते हैं, तब वे (अध्वन्) सड़क के बीचमेंही (आ सं ब्रुवते ह) सब मिल कर
 परस्पर घातिलाप करना शुरु कर देते हैं । (एषां) इनका शब्द (कः चित्) भला कोई न कोई क्या
 (शृणोति) सुन लेता है ?

१९ (आशुभिः) तीव्र गतियोंद्वारा और (शीभं) वेगपूर्वक (प्र यात्) चलो, (कण्वेषु)
 कण्वोंके मध्य, यात्रकों के यज्ञों में (वः) तुम्हारे (दुर्वः सन्ति) सरकार होनेवाले हैं । (तत्रो) उधर
 तुम (सु मादयाध्वै) भली भाँति नृत बनो ।

२० (वः) तुम्हारी (मदाय) वृत्ति के लिए यह हमारा अर्पण (अस्ति हि स्म) तैयार है ।
 (विश्वं चित् आयुः) समूचे जीवन भर सुखपूर्वक (जीवसे) दिन बिताने के लिए (वयं) हम (एषां
 स्मसि स्म) इनके ही अनुयायी बनकर रहनेवाले हैं ।

भावार्थ- १७ मरुतों में इतना बल विद्यमान है कि, उसकी वजह से शत्रु के सैनिक तथा पार्वतीय दुर्ग या गढ़
 भी दहक उठते हैं । वीर सदा इस भाँति बल बढ़ाने में सचेष्ट हों ।

१८ जिस समय वीर मरुत् सैनिक अभिगमन करते हैं, तबसे डकटे हो सात (सात वीरों की पंक्ति बनाकर
 सड़क परसे) चलने लगते हैं । इस प्रकार भागे बढ़ते समय वे जो कुछ भी यावचीत करते हैं उसे सुन लेना बाहर के
 व्यक्ति को क्षम्य है; क्योंकि यह भाषण धोमी भावाज में प्रचलित रहता है ।

१९ ' आशुभिः शीभं प्रयात् ' (Quick march) अत्यन्त वेगसे शीघ्रतापूर्वक चलो । सैनिक
 शीघ्रगत्या चलना प्रारंभ करें, इसलिये यह ' सैनिकीय आज्ञा ' है । मरुत् यथासंभव शीघ्र यज्ञभूमि में पहुँच जायें,
 क्योंकि उधर उनके सरकार एवं आवभगत के लिए आयोजनाएँ प्रस्तुत कर रखी हैं । मरुत् उस आदरसरकार का
 स्वीकार करें और नृत हों ।

२० वीर मरुतों को हर्षित तथा प्रसन्न काने के लिए हम गानेवीने की वस्तुएँ दे रहे हैं । जब तक हमारे
 जीवन् की अवधि प्रचलित होगी, तब तक यह हमारा निर्धार हो चुका है कि हम मरुतों के ही अनुयायी बनकर रहेंगे ।

(२१) कत् । ह । नूनम् । कथञ्चिद्विधः । पिता । पुत्रम् । न । हस्तयोः ।
दधिष्वे । वृक्तञ्चर्हिपः ॥ १ ॥

(२२) कं । नूनम् । कत् । वः । अर्थम् । गन्तं । दिवः । न । पृथिव्याः ।
कं । वः । गावः । न । रण्यन्ति ॥ २ ॥

(२३) कं । वः । सुम्ना । नव्यांसि । मरुतः । कं । सुविता ।
क्रोद्धति । विश्वानि । सौमगा ॥ ३ ॥

(२४) यत् । यूयं । पृश्निमातरः । मर्तांसः । स्वातन । स्तोता । वः । अमृतः । स्यात् ॥ ४ ॥

अन्वयः— २१ कथ-त्रियः वृक्त-वर्हिपः, पिता पुत्रं न, हस्तयोः कत् ह नूनं दधिष्वे ?

२२ नूनं क ? वः कत् अर्थं ? दिवो गन्त, न पृथिव्या, व. गावः क न रण्यन्ति ?

२३ (हे) मरुतः ! व. नव्यांसि सुम्ना क ? सुविता क ? विश्वानि सौमगा को ?

२४ (हे) पृश्नि-मातरः ! यूयं यद् मर्तांसः स्वातन, वः स्तोता अ-मृतः स्यात् ।

अर्थ— २१ (कथ-त्रियः) स्तुतिको बहुत चाहनेवाले (वृक्त-वर्हिपः) तथा आसनपर बैठनेवाले मरुतो !

(पिता) दाप (पुत्रं न) पुत्रको जैसे (हस्तयोः) अपने हाथों से उठा लेता है, उसी प्रकार तुम भी हमें (कत् ह नूनं) सचमुच कच भला अपने करकमलों से (दधिष्वे) धारण करोगे ?

२२ (नूनं क) सचमुच तुम भला किधर जाओगे ? (वः कत्) तुम किस (अर्थ) उद्देश्यको लक्ष्य में रण जानेवाले हो ? (दिवः गन्त) तुम भले ही पुलोक से प्रस्थान करो, लेकिन (न पृथिव्याः) इस भूलोकसे तुम छुपा करके न चले जाओ, भूमंडलपर ही अविरत निवास करो । (वः गावः) तुम्हारी गौयें (क) भला कहाँ ? (न रण्यन्ति) नहीं रँभाती हैं ?

२३ हे (मरुतः !) वीर-मरुद्गण ! (वः) तुम्हारी (नव्यांसि) नयी नयी (सुम्ना क !) संरक्षणकी आयोजनायें कहाँ हैं ? तुम्हारे (सुविता क ?) उच्च कोटिके वैभव तथा सुखके साधन देश्वर्य किधर हैं ? और (विश्वानि) सभी प्रकार के (सौमगा को ?) सौभाग्य कहाँ हैं ?

२४ हे (पृश्नि-मातरः !) मातृभूमि के सुपुत्र वीरो ! (यूयं) तुम (यद्) यद्यपि (मर्तांसः) मर्त्य या मरणशील (स्वातन) हो, तो भी (वः) तुम्हारा (स्तोता) काव्यगायन करनेवाला बेदाक (अमृतः स्यात्) अमर होगा ।

भाष्यार्थ— २१ जिस भौतिक पिता का आधार पाने से पुत्र निर्भय होकर रहता है, ठीक वही प्रकार भला कच हमें इन वीरोंका सहारा मिलेगा ? एक बार यदि यह निश्चित हो जाय कि, हमें उनका आश्रय मिलेगा, तो हम अक्रुतोभव हो सुखपूर्वक कालक्रमणा करने लगेंगे और हमारी जीवनयात्रा निश्चित हो जायेगी ।

२२ वीर मरुद्गण कहाँ जा रहे हैं ? किस दिशा में वे गमन कर रहे हैं ? किस अभिप्राय से वे अभिपान कर रहे हैं ? हमारी यह तीव्र छालसा है कि, वे पुलोक से ह्मर पधारने की कृपा करें और इसी अवनीतलपर सदा के लिए निवास करें । कारण यही है कि उनकी छत्रछाया में हमारी रक्षा में कोई वृत्ति न रहने पायेगी, अतः वे ह्मर से अन्व किसी जगह न चले जायें । मरुतों की गौयें सभी स्थानों में विद्यमान हैं और वे अरपानन्दपत्र रँभाती हैं ।

२३ वीर मरुद् संरक्षणकार्य का बीडा उठाते हैं, अतः जनता की रक्षा भली भौतिक दुष्ठा करती है और यह श्रेष्ठ वैभव एवं सुख पाने में सफलता प्राप्त करती है । वीरों के लिए यह अतीव उचित कार्य है कि, वे जनता की पपोषित रक्षा कर उसे वैभवसाक्षी तथा सुखी करें ।

२४ वीर वीर मरुद् (पृश्नि-मातरः, गो-मातरः) मातृभूमि, मातृभाषा तथा गोमाताकी सेवा करनेवाले हैं और यद्यपि वे स्वयं मर्त्य हैं, तो भी इनके अनुयायी अमरपन पाने में सफलता पायेंगे ।

(२५) मा । वः । मृगः । न । यवसे । ज॒रिता । भूत् । अजो॑प्यः ।

पथा । यमस्य॑ । गात् । उप॑ ॥ ५ ॥

(२६) मो इति॑ । सु । नः । परा॑ऽपरा । निःऽऽतिः । दुःऽहना॑ । व॒धीत् ।

पदी॑ष्ट । तृ॒ष्ण्या । सह॑ ॥ ६ ॥

अन्यथा- २५ मृगः यवसे न, वा जरिता अ-जोप्यः मा भूत् यमस्य पथा (मा) उप गात् ।

२६ परा-परा दुर-हना निर-ऽऽतिः नः मो सु वधीत्, तृष्ण्या सह पदीष्ट ।

अर्थ- २५ (मृगः) हिरन (यवसे न) जैसे मृग को असेवनीय नहीं समझता है, ठीक उसी प्रकार (वा जरिता) तुम्हारी हनुति एवं सराहना करनेवाला तुम्हें (अ-जोप्यः) अ-सेव्य या अप्रिय (मा भूत्) न होने पाय और वैसे ही वह (यमस्य पथा) यमलोक की राहपर (मा उप गात्) न चले, अर्थात् उसकी मौत न होत पाय या दूर दूर जाय ।

२६ (परा-परा) अत्यधिक मात्रा में बलिष्ठ तथा (दुर-हना) विनाश करने में बहुतही पीछे देसी (निर-ऽऽतिः) घुरी वशा या दुर्दशा (नः) हमारा (मो सु वधीत्) विनाश न करे, (तृष्ण्या सह) प्यास के मार उसी का (पदीष्ट) विनाश हो जाय ।

भावार्थ- २५ जैसे हिरन जी के शेत को सेवनीय मानता है, उसी तरह तुम्हारा बन्धन करनेवाला कत्रि तुम्हें सदैव प्रिय लगे और वह सृष्टि के दागे से कोसों दूर रहे । वह बमलोक को पहुँचानेवाली सड़क पर संपार न को, जाने वह भगर बने ।

२६ विपदा, घुरी हालत एवं भाग्यचक्र के उलट फेर के फलस्वरूप होनेवाली परिस्थिति सुगतां बल-वन्ता होती है और उसे हटाना तो कोई सुगम कार्य बिलकुल नहीं, ऐसी भावदा के कारण हमारा नाम न होने पाय; पागु सुख की प्यास या क्षुधा बढ जाय, जिससे वही विपति विनष्ट होये ।

टिप्पणी- [२४] 'यूयं मर्तांसः स्यातन, घः स्तोता अमृतः स्यात्' में विरोधाभास अलकारनी मूलक वेत्तने मिळती है । मर्त्य की उपासना करने में निरत पुरुष भी भगर बन सकता है । 'ऋशु' देवताओं के घो में भी इसी भाँति वर्णन उपलब्ध है । 'मर्तांसः सन्तो अमृतत्वमाननुः ।' (ऋ. १।१।०।४) ऋशु-देव पहले मर्त्य थे, पर आगे चलकर उन्हें अमरपन मिला । इनसे तो वही प्रतीत होता है कि, मर्त्यों में भी भगर बनने की क्षमता रहती है । इस मंत्र पर सायणाचार्यजीने इस भाँति भाव्य किया है- " एवं कर्मणि कृत्वा मर्तांसो मनुष्या अपि सन्तोऽमृतत्वं द्युत्वं आननुः आनशिरि । कृतैः कर्मभिल्लैर्भिरि । 'ऋशु प्राग्भवे मनुष्य ही थे, पर उन्होंने विशेष तथा अत्यधिक महारवर्ण कार्यकलाप निभाये, इनलिङ्गे देव-स्वरूप अधिरूढ हो गये । परानमें रचना सादिष्ट कि अगर सभी मानव इसी भाँति उष्ण कोटिके कार्य करने लगते, ना ३ निरवन्दे देवपद प्राप्त कर सकेंगे । [२५] अजोप्य= (जुष् प्रीतिसेवनयो.) जोप्य= प्रीतिपूर्वक सेवन करनेवाच्य. अजोप्य= सेवन करने के लिए अनुपयुक्त । [२६]

वया इयक्ति, वया राष्ट्र सभी को विपत्ति से मुक्तभेद क ना अभिवार्य है । मानवजाति में जब तृष्णा अत्यधिक रूप से बढ जाती है, तब ऐसे संकटों के बादल मँटराने लगते हैं, भावति की घनघोर घटा छा जाती है । तृष्णा यदि लगातार बढती चली जाय, तो वही उनका विनाश करती है और र य भी नष्ट हो जाती है । 'निर्मन्निः तृष्ण्या सह पदीष्ट' । विपदा तृष्णा के साथ विनष्ट हो जाय, ऐसा जो यहाँ कहा है, उसका अभिप्राय केवल हननाही है । क्योंकि दैतिय न, द विपदा की जड में तृष्णा पाई जाती है, अतएव अगर तृष्णाके साथ ही साथ विपत्तिकी काली घटा दूर होवे, तो अवश्य-मेव सुख की प्राप्ति होगी इसमें तनिक भी सन्देह नहीं ।

- (२७) सत्यम् । त्वेषाः । अमञ्जन्तः । घन्वन् । चित् । आ । रुद्रियासः
मिहम् । कृण्वन्ति । अघाताम् ॥ ७ ॥
- (२८) वाथाऽह्व । विद्युत् । मिमाति । वत्सम् । न । माता । सिसक्ति ।
यत् । एयाम् । वृष्टिः । असंजि ॥ ८ ॥
- (२९) दिवा । चित् । तमः । कृण्वन्ति । पर्जन्येन । उद्व्याहेन ।
यत् । पृथिवीम् । विऽउन्दन्ति ॥ ९ ॥

अन्वयः— २७ घन्वन् चित्, त्वेषाः अम-वन्तः रुद्रियासः, अ-घातां मिहं आ कृण्वन्ति, सत्यम् ।

२८ यत् एषां वृष्टिः असंजि, वाथाऽह्व, विद्युत् मिमाति, माता वत्सं न, सिसक्ति ।

२९ यत् पृथिवीं व्युन्दन्ति उद्व्याहेन पर्जन्येन दिवा चित् तमः कृण्वन्ति ।

अर्थ— २७ (घन्वन् चित्) मरुभूमिमें भी (त्वेषाः) तेजयुक्त और (अम घन्वन्) यल्लिष्ट (रुद्रियासः) महान् घोर मरुत् (अ-घातां) वायुराहत (मिहं आ कृण्वन्ति) वर्षाको चहुँ ओर कर डालते हैं, (सत्यं) यह सच बात है ।

२८ (यत्) जप (एषां) इन मरुतों की सहायता से (वृष्टि, असंजि) वर्षा का सृजन होता है तब (वाथाऽह्व) रमानेवाली गाँ के समान (विद्युत्) बिजली (मिमाति) बड़ा भारी शब्द करती है और (माता) माता (वत्सं न) जिस प्रकार बालक को अपने समीप रखती है, वैस ही बिजली मेरों के समीप (सिपक्ति) रहती है ।

२९ वे घोर मरुत् (यत्) जप (पृथिवीं) भूमि को (व्युन्दन्ति) गीली या भार्द कर डालते हैं, उस समय (उद्व्याहेन पर्जन्येन) जल से भरे हुए मेघों से सूर्य को ढककर (दिवा चित्) दिन की धेला में भी (तमः कृण्वन्ति) अंधियारी फैलाते हैं ।

भाषार्थ— २७ मरुतल में वर्षा प्रायः नहीं होती है, पन्तु यदि मरुत् चला चाहें, तो उसे ऊपर स्थान में भी वे पुराँघार घारिष कर सकते हैं । अभिप्राय यही है कि, वाता होना या न होना मरुतों— वायु । १— के अधीन है । यदि अनुकूल वायुमवाह पहले लाने, तो वर्षा होने में देर न लगेगी ।

२८ जिस समय घड़ी भारी भीषण क पक्ष्म वर्षा का प्रारम्भ होता है, उस समय बिजली की गर्जना सुनाई देती है और मेघघुन्दी में दामिनी की दमक दर्श ई देना है । वहाँ पर स्थली कहर का है कि, बिजली मारों गाय है । यह जिस तरह अपने बछड़े के लिए रँगानी है और अपने बाल को समीप रखना चाहती है, उसी तरह बिजली मेघ का आलिप्तन करती है ।

२९ जिस एक मरुत् शक्ति करने की तैयारीमें लगे रहते हैं, तब समूचा आकाश बादलोंसे भाँटादिन हो जाता है, सूर्य का दर्शन नहीं होगा है, अँधेरा फैल जाता है और तटुपरान्त वर्षा के फलस्वरूप भूबडल गाला वा पानी से घेर हो जाता है ।

टिप्पणी [२७] रुद्र— (रुद्र-र) = रुद्रनेवाला जो घोर होता है, यह शत्रुदलको रलाला है, अतः घोरको रुद्र करमा उचित है । महारुद्र महाघोर ही है । (रुद्र-र) शब्द करनेवाला, पक्ष या उपदेशक । रुद्रिय= शत्रुदलको रलानेवाले घोर से उत्पन्न घोर पुत्र, घोरों के अनुयायी । [२८] मिमाति= (मा=भाषन करना, तुकना करना) मीति करना, शन्दर रहना, सँवार करना, बचाना, दखाना, शब्द करना, गर्जना करना) = भाषाज करती है । [२९] उद्व्याह= (उद्व्याह) पानीको डोनेवाला, मेघ ।

- (३०) अधः। स्वनात्। मरुताम्। विश्वम्। आ। सर्वा। पार्थिवम्। अरेजन्त। प्र। मानुषाः॥ १०॥
 (३१) मरुतः। वीळुपाणिभिः। चित्राः। रोधस्वतीः। अनु।
 यात्। ईम्। अखिद्रयामभिः॥ ११॥
 (३२) स्थिराः। वः। सन्तु। नेमयः। रथाः। अर्थातः। एषाम्।
 सुसंस्कृताः। अभीशवः॥ १२॥

अन्वय- ३० मरुतां स्वनात् अधः पार्थिवं विश्वं सप्त आ (अरेजत) मानुषाः प्र अरेजन्त ।

३१ (हे) मरुतः । वीळु-पाणिभिः चित्राः रोधस्वतीः अनु अ-खिद्र-यामभि यात ईं ।

३२ एषां वः रथाः, नेमयः, अभ्यासः, अभीशवः, स्थिराः सु संस्कृताः सन्तु ।

अर्थ- ३० (मरुतां स्वनात् अध) मरुतां की दहाड या गर्जना के फलस्वरूप निम्न भागमें अवस्थित (पार्थिवं) पृथ्वी में पाये जानेवाला (विश्वं सप्त) समूचा स्थान (आ अरेजत) विचालित विकपित एवं स्पन्दमान हो उठता है और (मानुषाः प्र अरेजन्त) मानव भी कौंप उठते हैं ।

३१ हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (वीळु-पाणिभिः) बलयुक्त बाहुओं से युक्त तुम (चित्राः रोधस्वतीः अनु) सुंदर नदियों के तटोंपरसे (अ-खिद्र-यामभि) बिना किसी थकावट के (यात ईं) गमन करो ।

३२ (एषां व रथा) ये तुम्हारे रथ (नेमयः) रथके आर तथा (अभ्यास) घाड़ एवं (अभीशवः) लगाम सभी (स्थिराः) दृढ़ तथा अटल और (सु संस्कृताः) ठीक प्रकार परिष्कृत हों ।

भावार्थ- ३० तीव्र आँधी, बिजली की दहाड तथा चमकने से समूची पृथ्वी मानों विचलित हो उठती है और मनुष्य भी सन्न जात हैं, तनिक अवधीत से हो जाते हैं ।

३१ इन वीरों के बाहुओं में बहुत भारी शक्ति है और इन बाहुबल से चतुर्दिक् शपाति पाते हुए ये वीर नदियों के नयनमनोरम तट की राह से यकाल की तनिक भी अनुभूति पाये बिना आगे बढ़ते जायें ।

३२ वीरों के रथ, पहिए, आर, अश्व एवं लगाम सभी बलवुल एवं सुसंस्कृत हों । अश्व भी अच्छी भाँति शिक्षित हों तथा रथ जैसी चीजें भी सुहावनेवाली एवं परिष्कृत हों ।

टिप्पणी [३१] अ-खिद्र-यामन्=(सिद् दैन्ये, सिद् दैन्य, सिद् याति इति सिद्धयामा, दैन्यमय । तद्भावः) सिद्ध न होते हुए, अथक उगसे, (अ-खिद्र याम, सिद्धवारदित भाकमण । यहाँ पर वायु एवं वीर दोनों अर्थ सूचित हैं । (१) वायु के प्रवाह अपनी शक्तिसे गर्जना करते हुए नदीतट परसे आगे बढ़ने हैं । यह पहला तथा अधिदैवत अर्थ है । (२) वीर पुरुष अपनेमें विद्यमान सामर्थ्यके जरिये विजयी बनकर नदियों के किनारे संचार करने लगते हैं, अर्थात् प्रभुओं के प्रदेश में विद्यमान नदियों पर अपना प्रभुत्व प्रस्थापित करते हैं । इसी भाँति आगे समस्त रत्ना चादिप । प्थानमें रहे कि तीन पक्ष इस प्रकार हैं- (१) अभ्यातम= स्वतः के शरीर में विद्यमान शक्ति, अर्थात् भावना बुद्धि, मन, इन्द्रिय, प्राण तथा शरीर । (२) अधिभूत= प्राणिसमष्टि मानवसमाज, प्राणिसमुदाय से सम्बन्ध रखनेवाला । (३) अधिदैवत= अग्नि, वायु, विद्युत् चन्द्रसूर्य, सौ आदि देवताओं के यार से ।

- (३३) अ॒च्छ । व॒द । तना॑ । गि॒रा । ज॒रायै॑ । ब्र॒ह्मणः॑ । पति॑म् ।
 अ॒ग्निम् । मि॒त्रम् । न । दर्श॑तम् ॥ १३ ॥
- (३४) मि॒मीहि॑ । श्लो॒कम् । आ॒स्ये॑ । पर्ज॑न्यः इव । त॒तनः॑ ।
 गा॒य । गा॒यत्र॑म् । उ॒क्थ्य॑म् ॥१४॥
- (३५) व॒न्द॑स्व । मा॒रुत॑म् । ग॒णम् । त्वे॒पम् । प॒नस्यु॑म् । अ॒र्कि॑णम् ।
 अ॒स्मे इति॑ । वृ॒द्धाः । अ॒सन् । इ॒ह ॥ १५ ॥

अन्वयः- ३३ ब्रह्मणः पतिं अग्निं, दर्शतं मित्रं न, जरायै तना गिरा अच्छ वद ।

३४ आस्ये श्लोकं मिमीहि, पर्जन्यः इव ततनः, गायत्रं उक्थ्यं गाय ।

३५ त्वेपं पनस्युं अर्किणं मारुतं गणं वन्दस्व, इह अस्मे वृद्धाः असन् ।

अर्थ- ३३ (ब्रह्मणः पति) ज्ञान के अधिपति (अग्नि) अग्नि को अर्थात् नेता को (दर्शतं मित्रं न) देवनेयोग्य मित्र के समान (जरायै) स्तुति करने के लिए (तना) सातत्ययुक्त (गिरा) घायी से (अच्छ वद) प्रमुक्ततया सराहने जाओ ।

३४ तुम्हारे (आस्ये) मुँह के अन्दर ही (श्लोकं मिमीहि) श्लोक को भली भाँति नापजोखकर तैयार करो और (पर्जन्यः इव) मेघ के समान (ततनः) विस्तारित करो । वैसे ही (गायत्रं) गायत्री छन्द में रचे हुये (उक्थ्यं) काव्य का (गाय) गायन करो ।

३५ (त्वेपं) तेजयुक्त (पनस्युं) स्तुत्य अथवा सराहनीय तथा (अर्किणं) पूजनीय ऐसे (मारुतं गणं) धीर मर्तों के दल या समुदायका (वन्दस्व) अभिवादन करो । (इह) यहाँपर (अस्मे) हमारे समीपही ये (वृद्धाः असन्) वृद्ध रहें ।

भाषार्थ- ३३ अग्नि [' मरुतसखा ' (अ. ८।१०३।१४) मरुतोंका मित्र है, तथा] ज्ञानका स्वामी है । इसलिये इस की महिमा की सराहना करनी चाहिये ।

३४ मन ही मन अक्षरमध्या गिनकर श्लोक तैयार कर रखे और वह कंठस्थ या मुँहस्थ हो । यह आवश्यक है कि, ऐसे श्लोक में किसी न किसी वीर पुरुष की महनीयता का बखान किया हो । जैसे वीरों का प्रारम्भ होने पर वह हमलावार हुमा करही है और सर्वत्र शक्ति का वायुमण्डल फैला देती है, उन्नी प्रकार इस श्लोक का स्पष्टीकरण या व्याख्यान अथवा प्रवचन बिना शक्ति भी रुके करो और अर्थ की व्यापकता या गहराई सब को घुल्लाकर उन के चित्त में दाँतता उत्पन्न होवे, ऐसी चेष्टा करो । गायत्री छन्द में जो श्लोक बनावे जायें, उन का गायन विभिन्न स्वरों में करो ।

३५ तेजसे अत्यधिक मात्रा में परिपूर्ण, प्रशंसा के योग्य तथा आवारसकार के अधिकारी जो धीर हों, उनको ही प्रणाम करना, उनके सम्मुख ही सीस झुटाना अनिवार्य उचित है । अतः तुम ऐसाही करो, तथा तुम इम भाँति सतक एवं सचेष्ट रहो कि, अपने संघमें एवं समाज में शा वृद्ध, वीर्यवृद्ध, धनवृद्ध तथा कर्मवृद्ध मदान् पुरुष पर्याप्त मात्रा में रहने पायें ।

टिप्पणी- [३३] धी सायणाचार्यजीने यही ब्रह्मणस्पति ' वद का अर्थ ' मरुत ' किया है । (१) जरा = (जू स्तुतौ) स्तुति करना । (जू वयोदानौ) वृद्धाया ।

(३६) प्र । यत् । इत्था । पराऽवतः । श्लोचिः । न । मानम् । अस्यथ ।

कस्य । क्त्वा । मरुतः । कस्य । वर्षसा । कम् । याथ । कम् । ह । धृतयः ॥ १ ॥

(३७) स्थिरा । पुः । सन्तु । आयुधा । पराऽनुदे । वीळु । उत । प्रतिष्कम्भे ।

युष्माकम् । अस्तु । तर्विषी । पनीयसी । मा । मर्त्यस्य । मायिनः ॥ २ ॥

अन्वयः- ३६ (हे) धृतयः मरुतः । यत् मानं परावतः इत्था श्लोचिः न प्र अस्यथ, कस्य क्त्वा, कस्य वर्षसा, कं याथ, कं ह ? ३७ वः आयुधा पराऽनुदे स्थिरा, उत प्रतिष्कम्भे वीळु सन्तु, युष्माकं तविषी पनीयसी अस्तु, मायिनः मर्त्यस्य मा ।

अर्थ- ३६ हे (धृतयः मरुतः) शत्रुदल को विकंपित तथा विचलित करनेवाले घोर मरुतों । (यत्) जय तुम अपना (मानं) घल (परावतः इत्था) अत्यन्त सुदूर स्थान से इस भाँति (श्लोचिः न) विजली के समान (प्र अस्यथ) यहाँ पर फँकते हो, तब यह (कस्य क्त्वा) भला किस कार्य तथा उद्देश्य को लक्ष्य में रख, (कस्य वर्षसा) किस की आयोजना से अथवा (कं याथ) किसकी तरफ तुम चल रहे हो या (कं ह) तुम्हें किस के निकट पहुँच जाना है, अतः तुम ऐसा कर रहे हो ?

३७ (वः आयुधा) तुम्हारे हथियार (पराऽनुदे) शत्रुदल को हटाने के लिए (स्थिरा) अटल तथा सुदृढ़ रहें, (उत) और (प्रतिष्कम्भे) उनकी राह में रुकावटें पड़ी करने के लिए प्रतिबंध करने के लिए (वीळु सन्तु) अत्यधिक बलयुक्त एवं शक्तिसंपन्न भी हों । (युष्माकं तविषी) तुम्हारी शक्ति या सामर्थ्य (पनीयसी अस्तु) अतीव प्रशंसाई और सराहनीय हो। (मायिन-) कपटी (मर्त्यस्य) लोगों का घल (मा) न पड़े ।

भाषार्थ- ३६ (अभिदैवत) वायुके प्रवाह जब बहुत वेगसे संचार करना शुरू करते हैं, तब मनमें यह प्रश्न उठे बिना नहीं रहता है कि, भला ये कहाँ और किसके समीप चले जाना चाहते हैं, तथा उनके गन्तव्य स्थानमें क्या रखा होगा, कौनसी उर्ध्व कार्यरूपमें परिणत करनी होगी? नहीं तो उनके ऐसे वेगसे बहने रहनेका अन्य प्रयोजन क्या हो सकता है? (अभिभूतमें) जिस समय घोर पुरुष शत्रुदल को मटियामेट करनेके लिए उनपर धावा करना प्रारम्भ करते हैं, तब ये धूर् मानव अपना सारा बल उन्ही कार्य पर पूर्णरूपेण केन्द्रित करते हैं । ऐसे अवसर पर यह अत्यन्त आवश्यक है कि, वे सर्वप्रथम यह पूरी तरह निश्चित कर लें कि, किस हेतु की पूर्ति के लिए यह चढ़ाई करनी है, कितनी सफलता मिलनी चाहिए, किस स्थल पर पहुँचना है और बीच में किस की सहायता लेनी पड़ेगी । एकाग्र यह निर्धारित योजना कली-भूत हो जाए, इस संम से कार्यवाही प्रारम्भ पर दे । चीरों के लिए यह उचित है कि, वे निश्चयानुरक्त हेतु से प्रभावित हो, विशिष्ट कार्य को सफलतापूर्वक निष्पन्न करने के लिए ही अपना आंदोलन प्रवर्तित करें, स्वध ही खाटोप या गीद्व भमकी न करें, क्योंकि उतावलापन एवं आविचारिता से सदैव हानि उठानी पड़ती है ।

३७ घोर पुरुष अपने हथियारों एवं शस्त्रास्त्रों की बलयुक्त तीक्ष्ण तथा शत्रुओंके शस्त्रोंसे भी अपेक्षाकृत अधिक कार्यक्षम बना दें । वे सदाके लिए सतर्क एवं सचेत रहें कि, वे शत्रुदलसे मुठभेद या भिड़ंत करते समय विशेष साधनों प्रभावशाली ठहरें । (भयान में रहना चाहिए कि, कदापि विरोधी तथा शत्रुसंघके हथियार अपने हथियारों से बढ़कर प्रबल तथा प्रभावशाली न होने पायें) और कपटाचरणमें न शिखाकनेवाले शत्रुओंका बल कभी न वृद्धिगत हो ।

टिप्पणी- [३६] (१) धूति = (धू कम्पने) = हिलानेवाला, कंपित करनेवाला । (२) मानं = (मननीयं) मनन करने के लिए उचित, प्रमाणवत्, बल । (३) वर्षसू = (वर-रूप) आकार, रूप, आयोजना, युक्ति, कपटयोजना, कपटपूर्ण प्रयोग । [३७] (१) पराऽनुदे = (पर-नुदे) शत्रुको दूर हटाना । (२) प्रतिष्कम्भू = (भति-स्कम्भ) = विरुद्ध खड हो जाना, उधड़ी दिशामें शक्तिको प्रचलित करना, शत्रुके खिलाफ अपना बल किसी निर्धारित आयोजनासे प्रयुक्त करना, शत्रुकी

(३८) परा । ह । यत् । स्थिरम् । हथ । नरः । वर्तयथ । गुरु ।

वि । याथन । वनिनः । पृथिव्याः । वि । आशाः । पर्वतानाम् ॥ ३ ॥

(३९) नहि । वः । शत्रुः । विविदे । अधि । चवि । न । भूम्याम् । रिशादसः ।

युष्माकम् । अस्तु । तविपी । तना । युजा । रुद्रासः । नु । चित् । आऽधृषे ॥ ४ ॥

(४०) प्र । वेपयन्ति । पर्वतान् । वि । विञ्चन्ति । वनस्पतीन् ।

प्रो इति । आरत् । मरुतः । दुर्मदाःऽइव । देवासः । सर्वया । विशा ॥ ५ ॥

अन्वयः- ३८ (हे) नरः । यत् स्थिरं परा हत, गुरु वर्तयथ, पृथिव्याः वनिनः वि याथन, पर्वतानां आशाः वि (याथन) ह । ३९ (हे) रिश-अदसः । अधि चवि वः शत्रुः नहि विविदे, भूम्यां न, (हे) रुद्रासः । युष्माकं युजा आधृषे तविपी नु चित् तना अस्तु । ४० (हे) देवासः मरुतः । दुर्मदा इव, पर्वतान् प्र वेपयन्ति, वनस्पतीन् वि विञ्चन्ति, सर्वया विशा प्रो आरत् ।

अर्थ- ३८ हे (नरः) नेता धीरो! (यत्) जब तुम (स्थिरं) स्थिर रूप से अवस्थित शत्रु को (परा हत) अत्यधिक मात्रा में धिक्करते हो, (गुरु) थलछिद्र शत्रु को भी (वर्तयथ) हिला देते हो, विकीपित कर डालते हो और (पृथिव्याः वनिनः) भूमिडलपर विद्यमान अरण्यों के वृक्षों को भी (वि याथन) जड़मूल से उखाड़ फेंक देते हो, तथ (पर्वतानां आशाः) पर्वतों के चतुर्दिक् (वि [याथन] ह । तुम सुगमता से निकल जाते हो ।

३९ हे (रिश-अदसः) शत्रु को नष्ट करनेवाले धीरो! (अधि चवि) दुलोक में तो (ध. शत्रुः) तुम्हारा शत्रु (नहि विविदे) अस्तित्व में ही नहीं पाया जाता है और (भूम्यां न) भूमिडलपर भी नहीं विद्यमान है, हे (रुद्रासः) शत्रु को रुलानेवाले धीरो! (युष्माकं युजा) तुम्हारे साथ रहते हुए (आधृषे) शत्रुओं को तहसनहस करने के लिए मेरी (तविपी) शक्ति (नु चित् तना अस्तु) क्षीप्रही विस्तारशील तथा चढनेवाली हो जाय ।

४० हे (देवासः मरुतः) धीर मरुतो! (दुर्मदा इव) बल के कारण मतवाले हुए लोगों के समान तुम्हारे धीर (पर्वतान् प्र वेपयन्ति) पर्वतों को भी प्रचलित कर देते हैं, हिला देते हैं और (वनस्पतीन् वि विञ्चन्ति) पेड़ों को उखाड़कर दूर फेंक देते हैं, इसलिये तुम (सर्वया विशा) समूर्चा जनता के साथ मिलजुलकर (प्रो आरत्) प्रगति करते चलो ।

भावार्थ- ३८ धीर पुरुष सर्वदृक् स्थिर एवं प्रबल शत्रुको भी विचलित करनेकी क्षमता रखते हैं, वनोंमेंसे सबको का निम्न कर देते हैं और पर्वतोंके मध्यसे भी लीलयेय दूसरी ओर चले जाते हैं, तथा शत्रुसंग पर आक्रमणका सूत्रपात करते हैं ।

३९ धीरों का यह अनिवार्य कर्तव्य है कि, वे अपने शत्रुओं का समूक विनाश करें, कहीं भी उभरें रहने के लिए स्थान न दें और उनका आमूलचूल विध्वंस कर चुकने पर ही अपनी शक्ति को बचाने चले ।

४० बल अत्यधिक बढ़ जाने से तनिक मतवाले से बनकर धीर पुरुष शत्रुदल पर आक्रमण करते समय पर्वतों को भी विकीपित कर देते हैं और मार्ग पर पाये जानेवाले वृक्षों को भी उखाड़कर हटा देते हैं । ऐसे बल की आवश्यकता रखनेवाले कार्यों की पूर्ति करना उनके लिए संभव है, अतः वे सारी जनता के सहयोग की सहायतासे ऐसी कार्यविधि में अपना बल लगा दें कि अन्तमें सबकी प्रगति हो । स्वयं ही उपात तथा विध्वंस-कार्यों में उलझे न रहें । (वायु जिस तरह वेगवान् बनने पर पेड़ों को तोड़मरोड़ देती है, ठीक उसी प्रकार वे धीर भी शत्रुदल को विमष्ट कर देते हैं ।)

राहमें रोड़े भरकाना, उसे रोक देना । (३) मायिन् = (माया = चतुर्गाई, कौशल्य, युक्ति, कपट) = कुशल, युक्तिमान् कपटी । [३९] (१) आधृषे = धैर्य, आक्रमण, धावा करना, चढ़ाई करना और शत्रुको जड़ मूल से उखाड़ देना

- (४१) उपो इति । रथेषु । पृपतीः । अयुग्धम् । प्रष्टिः । वहति । रोहितः ।
 आ । वः । यामाय । पृथिवी । चित् । अश्रोत् । अवीभयन्त । मानुषाः ॥ ६ ॥
- (४२) आ । वः । मक्षु । तनाय । कम् । रुद्राः । अवं । वृणीमहे ।
 गन्तं । नूनम् । नः । अवंसा । यथा । पुरा । इत्था । कर्पाय । विभ्युषे ॥ ७ ॥
- (४३) युष्माद्द्विपितः । मरुतः । मर्त्येद्द्विपितः । आ । यः । नः । अवंः । ईपते ।
 वि । तम् । युयोत । शर्वसा । वि । ओजसा । वि । युष्माकाभिः । ऊतिभिः ॥ ८ ॥

अन्वय.— ४१ रथेषु पृपतीः उपो अयुग्ध, रोहितः प्रष्टिः वहति, च. यामाय पृथिवी चित् आ अश्रोत्, मानुषाः अवीभयन्त । ४२ हे रुद्राः ! तनाय कं मभ्यु च. अथ आ वृणीमहे, यथा पुरा विभ्युषे कर्पाय नूनं गन्त इत्था अयसा नः [गन्त] । ४३ (हे) मरुतः । यः अन्वः युष्मा- द्विपितः मर्त्ये-द्विपितः नः आ ईपते, तं शयसा वि युयोत, ओजसा वि (युयोत), युष्माकाभिः ऊतिभिः वि (युयोत) ।

अर्थ— ४१ तुम (रथेषु) अपने रथों में (पृपती) चित्रविचित्र विन्दुओंसहित घोड़ियों या हरिनियों (उपो अयुग्धं) जोड़ चुके हो और (रोहितः) लालवर्णवाला घोड़ा या हिरन (प्रष्टिः) घुरा को (वहति) खाँच लेता है । (यः यामाय) तुम्हारे जानका शब्द (पृथिवी चित्) भूमि (आ अश्रोत्) सुन लेती है, पर उस आवाज से (मानुषाः अवीभयन्त) सभी मानव भयभीत हो उठते हैं ।

४२ हे (रुद्राः !) शत्रु को रत्नानेवाले धार मरुद्गण ! (तनाय कं) हमारे बालवच्चों का कल्याण तथा हित होवे, इसलिए (मक्षु) बहुत ही शीघ्र हमें (व. अयः) तुम्हारा संरक्षण मिल जाय, ऐसा (आ वृणीमहे) हम चाहते हैं । (यथा पुरा) जैसे पहले तुम (विभ्युषे कर्पाय) भयभीत कण्व की ओर (नूनं गन्तं) शीघ्र जा चुके थे, (इत्था) इसी प्रकार (अयसा) रक्षा करने की शक्ति के साथ (नः) हमारी ओर जितना जल्द हो सके, उतना आ जाओ ।

४३ हे (मरुतः !) वीर मरुत्संग ! (यः अन्वः) जो डरावना हथियार (युष्मा-द्विपितः) तुमसे फैका हुआ या (मर्त्ये-द्विपितः) किसी अन्य मानवसे प्रेरित होता हुआ, अगर (नः आ ईपते) हमारे ऊपर आ गिरता हो तो (तं) उसे (शयसा वि युयोत) अपने बलसे हटा दें, (ओजसा वि) अपने तेजसे दूर कर दो और (युष्माकाभिः ऊतिभिः) तुम्हारी संरक्षण आयोजनाओंद्वारा उसे (वि) धिनष्ट करो ।

भावार्थ— ४१ मरुतों के रथ में जो घोड़ियों या हिरनियों जोड़ी जाती हैं, वे दृष्टभागवर धरुवे धारण कर लेती हैं, और उन के अग्रभाग में धुरी उठाने के लिए एक लाल रंग का अथवा हरीरंग रखा जाता है । जब मरुतों का रथ आगे बढ़ने लगता है, तब सारी पृथ्वी उस के शब्द को ध्यावपूर्वक सुन लेती है । हाँ, अन्य सभी मानव उस ध्वनि को ध्वन्य करते ही सहम जाते हैं, उन के अग्रस्तल में भीतिरेखा चमक उठती है । यहाँ पर एक ध्यान में रखनेयोग्य बात है कि, मरुतों के बाह्य लालवर्णवाले होते हैं, अन्त ही वे हरीरंग या घोड़े हैं । [आगे चलकर मरुतों के पहनावे का रंग केसरिया बतलाया है (देखो मथ २११) । मत्स्यपुराण ५२ में ' अरुणत्सव ' विशेषण मरुतों को दिया गया है । इस से निश्चित रूप से प्रतीत होता है कि, वे वीर अरुण याने लाल रंगवाले हैं ।]

४२ राष्ट्रके बालकों का रक्षण करने का कार्य वीरोंपर अवलम्बित है, जो आगामी युद्ध की प्रगतिके लिए अत्यधिक सावधानता रखें । जैसे अतीतकालमें समय समय पर वीरोंने सहायता प्रदान की थी, वैसे ही अब भी वे करें ।

४३ यदि हम पर कोई आपत्ति आनेवाली हो, तो वीर अपने बल से, प्रभाव से तथा संरक्षण से उसे हटाकर पूर्णतया पैरोतरें दौड़ दें, क्योंकि जनता को निर्भय कराना वीरोंका ही कर्तव्य है ।

टिप्पणी— [४१] याम = जाना, गति, आक्रमण, हमला । [४२] कण्व. = (कण्व आतंस्वर) = दु ली बनकर परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करनेवाला, स्तोत्र, कवि, कण्व नामक एक ऋषि । [४३] अन्वः (अ-भूव) = अभूतपूर्व, मयानक, घोर, प्रचंड ।

- (४४) अस्मि । हि । प्रज्ययवः । कर्णम् । दद । प्रचेतसः ।
 अस्मिभिः । मरुतः । आ । नः । कृतिभिः । गन्त । वृष्टिम् । न । विद्युतः ॥ ९ ॥
- (४५) अस्मि । ओजः । विभूथ । सुदानवः । अस्मि । घृतयः । शर्वः ।
 क्षपिद्विपे । मरुतः । परिमन्यवे । इपुंम् । न । सुजत । द्विपम् ॥ १० ॥
 कण्वपुत्र पुनर्वत्स ऋषि (ऋ० ८।७।१—३६)
- (४६) प्र । यत् । वः । त्रिस्तुभम् । इपुंम् । मरुतः । विप्रः । अक्षरत् ।
 वि । पर्वतेषु । राजथ ॥ १ ॥

अन्वयः— ४४ (हे) प्र-यज्ययः प्र-चेतसः मरुतः ! कण्वं अ-स्मि हि दद, अ-स्मिभिः कृतिभिः, विद्युतः वृष्टिं न, नः आ गन्त । ४५ (हे) सु-दानवः ! अ-स्मि ओजः अ-स्मि शयः विभूथ, (हे) घृतयः मरुतः ! क्षपि-द्विपे परि-मन्यवे, इपुं न, द्विपं सृजत । ४६ (हे) मरुतः ! यत् विप्रः घः विपुत्रं इपं प्र अक्षरत्, पर्वतेषु वि राजथ ।

अर्थ— ४४ हे (प्र-यज्ययः) अतीव पूज्य तथा (प्र-चेतसः) उत्कृष्ट ज्ञानी (मरुतः!) वीरमरुतो ! (कण्वं) कण्व को जैसे तुमने (अ-स्मि हि) पूर्ण रूपसे (दद) आधार या आश्रय दे दिया था, वैसेही (अ-स्मिभिः कृतिभिः) संरक्षणको संपूर्ण एवं अधिकूल आयोजनाओं तथा साधनों से युक्त होकर (विद्युतः वृष्टिं न) बिजलियों वर्षाकी ओर जैसे चली जाती है, वैसे ही तुम (नः आगन्त) हमारी भोः आ जाओ ।

४५ हे (सु-दानवः!) अच्छे दान देनेवाले वीर मरुत ! (अ-स्मि ओजः) अथूरा नहीं, ऐसा समूचा पल एवं (अ-स्मि शयः) अधिकूल शक्ति (विभूथ) तुम धारण करते हो, हे (घृतयः मरुतः!) शत्रुदल को विनियमित करनेवाले वीर मरुद्गण ! (क्षपि-द्विपे) ऋषियों से द्वेष करनेवाले (परि-मन्यवे) क्रोधी शत्रु को धराशायी करने के लिए (इपुं न) याण के समान (द्विपं) द्वेष करने-वाले शत्रु को ही (सृजत) उस पर छोड़ दो ।

४६ हे (मरुतः) वीर मरुत गण ! (यत् विप्रः) जब ज्ञानी पुरुष (घः) तुम्हारे लिए (त्रिपुत्रं) त्रिपुत्र छन्द के दानया हुआ स्तोत्र पढ़कर (इपं प्र अक्षरत्) अक्ष अर्थण कर चुका, तब तुम (पर्वतेषु विराजथ) पर्वतों में विराजमान होते हो ।

भाषार्थ— ४४ पूजाई तथा ज्ञानविज्ञान से युक्त एवं विभूषित वीर लोग हमें सब प्रकार से सुरक्षित रखें और हमारी मदद करें ।

४५ वीर मरुतों के समीप अधिकूल रूप से शारीरिक बल तथा अन्य सामर्थ्य भी है, किसी प्रकार की मुट्टि नहीं है । वे इस असीम सामर्थ्य का प्रयोग करके उस शत्रु को बुरा हटा दें, जो ऋषियों का अपाद विद्वान् तथा श्रेष्ठ ज्ञानियों से द्वेषपूर्ण भाव रखता हो; या उसी पर दूसरे शत्रु को छोड़कर उसे बिनष्ट कर डालें ।

४६ एक समय जब ज्ञानी उपामन्व ने मरुतों को लक्ष्य में रखकर त्रिपुत्र छन्द का सामगायन किया और उन्हें अक्ष प्रदान किया तब वे वीर पर्वत ऋषियों में अन्दपूर्वक दिन बिगाने लग गे ।

टिप्पणी— [४४] (१) अ-स्मि = आधा नहीं, एवं, पूर्णरूपेण । (२) प्र-चेतसः = पदानपूर्वक वाक्य करने वाला, बुद्धिमान्, ज्ञानी, सुधी, हर्षण, अष्ट विचारवाला । (३) कण्व- देवो मन्त्र ४२ । [४५] इस संप्रभाग में (क्षपि-द्विपे, परि-मन्यवे द्विपं सृजत) एक मननोप राजनैतिक तथका प्रतिपादन किया है कि, एक शत्रु को दूसरे शत्रुसे हटाने दोनोको भी हतबल करके पराजित करवा ।

(४७) यत् । अङ्ग । तविपीऽयवः । यामम् । शुभ्राः । अचिंघम् ।

नि । पर्वताः । अहासत ॥ २ ॥

(४८) उत् । ईरयन्त । वायुभिः । वाश्रासः । पृश्निऽमातरः ।

धुक्षन्त । पिप्युपीम् । इपम् ॥ ३ ॥

(४९) वर्पन्ति । मरुतः । मिहम् । प्र । वेपयन्ति । पर्वतान् ।

यद् । यामम् । यान्ति । वायुभिः ॥ ४ ॥

अन्ययः- ४७ (हे) तविपी-यवः शुभ्राः अङ्ग ! यद् यामं अचिंघं, पर्वताः नि अहासत ।

४८ वाश्रासः पृश्नि-मातरः वायुभिः उद् ईरयन्त, पिप्युपी इपं धुक्षन्त ।

४९ मरुतः यद् वायुभिः याम यान्ति, मिह चपन्ति, पर्वतान् प्र वेपयन्ति ।

अर्थ- ४७ हे (तविपी-यवः) यलवान् (शुभ्रा) सुहानेवाले (अङ्ग) प्रिय तथा धीर मरुतो ! (यत्) जब तुम अपना (यामं) गमनके लिए निश्चित किया हुआ रथ (अचिंघं) सुसज्ज करते हो, तब (पर्वता नि अहासत) पर्वत भी चलायमान हो उठते हैं ।

४८ (वाश्रासः) गर्जना करनेवाले (पृश्नि मातरः) भूमि को मत्ता माननेवाले धीर मरुत् (वायुभिः) वायु-प्रवाहों की सहायता से (उद् ईरयन्त) मेघों को धर उधर ले चलते हैं और तदनुसार (पिप्युपी इपं धुक्षन्त) पुष्टिकारक भन्न का सृजन करते हैं ।

४९ (मरुतः) धीर मरुतों का यह दल (यत् वायुभिः) जब वायुओं के साथ (याम यान्ति) दौड़ने लगते हैं, तब (मिहं चपन्ति) घे घर्षा करने लगते हैं और (पर्वतान् = वेपयन्ति) पर्वतश्रेणियोंको वं पायमान कर देते हैं ।

भावार्थ- ४७ दल बढानेवाले धीर जब शत्रु पर चढ़ाई करने की लालसा से अपना रथ सुसज्जित कर देने हैं, तब ऐसा प्रतीत होने लगता है कि, मानों पहाड़ भी दिलने लगते हैं ।

४८ पवन की झकों से बादल धर उधर जाने लगने हैं और कुछ काल के उपरान्त उन से वर्षा होती है, तथा भद्र भी यथेष्ट मात्रा में उत्पन्न होता है । इसी भद्र से जीवसृष्टि का भरणपोषण होता है । निरसदृह मरुतों का यह कार्य वर्णनीय है ।

टिप्पणी [४७] (१) तविपी-यु = (तविप = शक्ति, धैर्य, बल, सामर्थ्य, बलिष्ठ, स्वर्ग,) शक्तिमान्, धीरवीर, उत्साह एव उमगसे भरा हुआ । (२) शुभ्राः = चमकीला तेजस्वी, सुन्दर, साफ सुधा, सफेद, चन्दन, स्वर्ग, चाँदी । (शुभ्राः = शरीर पर चन्दन का लेप करनेवाले ?) शोभायमान । [४८] च्चि इस मंत्र में ऐसा कहा है, (पृश्निमातर वायुभिः उदीरयन्ते) अर्थात् वायु की लहरियों से मरुत् मेघों को तितरयितर कर देते हैं, भस्ताग्नरत कर टाकते हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि, मरुत् एव वायु दो विभिन्न वस्तुओं की सूचना देते हैं । अगले मंत्र पर की हुई टिप्पणी देख लीजिए । [४९] यहाँ पर यों बतलाया है कि, (मरुतः वायुभि यान्ति) मरुत् वायुओं के साथ भागने लगते हैं और वर्षा का प्रारम्भ करते हैं । इस से ऐसी कदना करनेमें क्या हर्ज कि, मरुत् तथा वायु दोनों विभिन्न अर्थवाले शब्द हैं । इस बारे में ऊपर के मंत्र में बतलाया हुआ वर्णन देखिए और ४१६ तथा ४१७ सषयावाले मंत्र भी देखिए, क्योंकि वहाँपर ' घातास' न ' (वायुओं के समान ये मरुत् हैं) ऐसा कहा है ।

- (५०) नि । यद् । यामाय । वः । गिरिः । नि । सिन्धवः । विऽधर्मणे ।
महे । शुष्माय । येमिरे ॥ ५ ॥
- (५१) युष्मान् । ऊँ इति । नक्तम् । ऊतये । युष्मान् । दिवा । हवामहे ।
युष्मान् । प्रऽयति । अघ्वरे ॥ ६ ॥
- (५२) उत् । ऊँ इति । त्वे । अरुणऽप्सवः । चित्राः । यामेभिः । ईरते ।
वाथाः । अधि । स्तुना । दिवः ॥ ७ ॥
- (५३) सृजन्ति । रन्मिम् । ओजसा । पन्याम् । सूर्याय । यातवे ।
ते । भानुभिः । वि । तस्त्रियरे ॥ ८ ॥

अन्वयः— ५० यद् वः यामाय गिरिः नि, सिन्धवः वि-धर्मणे महे शुष्माय नि येमिरे ।

५१ ऊतये युष्मान् उ नक्तं हवामहे, दिवा युष्मान् प्रयति अ-घ्वरे युष्मान् हवामहे ।

५२ त्वे अरुण-प्सवः चित्राः वाथाः यामेभिः दिवः अधि स्तुना उत् ईरते उ ।

५३ सूर्याय यातवे रन्मिम् पन्यां ओजसा सृजन्ति, ते भानुभिः वि तस्त्रियरे ।

अर्थ— ५० (यद्) जब (वः) यामाय (गिरिः) तुम्हारी गतिशीलता एवं प्रगति से भयभीत होकर (गिरिः नि) पर्वत एवं (वि-धर्मणे) विशेष ढंग से अपना धारण करनेवाले तुम्हारे (महे) दबे एवं महनीय (शुष्माय) बल से डरकर (सिन्धवः) नदियों (नि येमिरे) अपने आप को नियंत्रित कर देती हैं, [अर्थात् एक जाती हैं, तब तुम यद्येष्ट यथा करते हो ।]

५१ हमारी (ऊतये) रक्षा के लिए (युष्मान् उ) तुम्हें ही हम (नक्तं) रात्री के समय (हवामहे) बुलाते हैं, (दिवा) दिन की घेला में भी (युष्मान्) तुम्हें ही हम पुकारते हैं (प्रयति अ-घ्वरे) प्रारंभित हिंसाहित कर्मों के समय भी हम (युष्मान्) तुम्हें ही बुलाते हैं ।

५२ (त्वे) वे (अरुण-प्सवः) लालिमायुक्त (चित्राः) आश्चर्यकारक (वाथाः) गर्जना करनेवाले वीर मरुत् (यामेभिः) अपने रथों में से (दिवः अधि) धुलोक के ऊपर (स्तुना) पर्वतों की ऊँचों चोटियों पर से (उत् ईरते उ) उड़ान लेने लगते हैं ।

५३ (सूर्याय यातवे) सूर्य के जानेके लिए (रन्मिम् पन्यां) किरणरूपी मार्गको (ओजसा सृजन्ति) जो अपनी शक्तिसे बना देते हैं, (ते) वे (भानुभिः वि तस्त्रियरे) तेजद्वारा संसारको ध्यात कर देते हैं ।

भाषार्थ— ५० महर्षियों विद्यमान वेग तथा बलसे भयभीत होकर पर्वत स्थिर हुए और नदियाँ भीनी चाहसे चहने लगीं । ५१ कार्य करते समय, दिन एवं रात्रीकी बेलामें अपने संरक्षणके लिए परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए । ५२ लाल वर्णवाला गणवेश पहनकर और रथ पर बैठकर ये वीर पर्वतों परसे भी संचार करने लगते हैं । ५३ महर्षीमें यह शक्ति विद्यमान है कि, वे सूर्यको भी प्रकाशका मार्ग बतलाते हैं और सभी जगह तेजस्वी किरणों को फैला देते हैं ।

टिप्पणी— [५०] अरुण-प्सु = (अरुण-मात्) = लालवर्ण से युक्त, रन्मिम् भामा से युक्त गणवेश पहननेवाले । [५३] सूक्ति यहाँ बतलाया है कि, सूर्यसे प्रकाश को जानेके लिए मरुत् राह बना देते हैं, मतः एक विचारणीय प्रश्न उपस्थित होता है, क्या मरुत् वायु से भिन्न पर सूक्ष्म वायु के समान कोई तत्त्व है, जिस में वायु-सरस लहरियाँ उपलब्ध होती हों ? (मंत्र ४८-४९ तथा ४१६-४१७ में दी हुई उपमाओं से प्रतीत होता है कि, वायु तथा मरुत् विभिन्न हैं ।)

(५४) इमाम् । मे । मरुतः । गिरम् । इमम् । स्तोमम् । ऋभुक्षणः ।

इमम् । मे । चनत् । हवम् ॥ ९ ॥

(५५) त्रीणि । सरांसि । पृश्रयः । दुदुहे । वञ्चिणे । मधु । उत्सम् । कवन्धम् । उद्रिणम् ॥ १० ॥

(५६) मरुतः । यत् । ह । वः । दिवः । सुम्नायन्तः । हवामहे ।

आ । तु । नः । उप । गन्तन ॥ ११ ॥

(५७) यूयम् । हि । स्थ । सुदानवः । रुद्राः । ऋभुक्षणः । दमे ।

उत । प्रचेतसः । मदे ॥ १२ ॥

अन्वयः— ५४ (हे) मरुतः ! इमां मे गिरं चनत, (हे) ऋभु-क्षणः ! इमं स्तोमं, मे इमं हवम् चनत ।

५५ पृश्रयः यञ्चिणे त्रीणि सरांसि, मधु उत्सं, उद्रिणं कवन्धं, दुदुहे ।

५६ (हे) मरुतः ! यत् ह वः सुम्नायन्तः दिवः हवामहे, आ तु नः उप गन्तन ।

५७ (हे) सु-दानवः रुद्राः ऋभु-क्षणः ! यूयं उत दमे मदे प्र-चेतसः स्थ ।

अर्थ— ५४ हे (मरुतः !) घोर मरुतो ! (इमां मे गिरं) इस मेरी स्तुतिपूर्ण वाणी को (चनत) स्वीकार करो। हे (ऋभु-क्षणः !) शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्ज घोरों ! तुम (इमं स्तोमं) इस मेरे स्तोत्र का और (मे इमं हवं) मेरी इस प्रार्थनाका स्वीकार करो । ५५ (पृश्रय .) मरुतोंकी माताओंने (यञ्चिणे) इन्द्रके लिए (त्रीणि सरांसि) तीन झीलें, (मधु) मिठासभरा (उत्सं) जलपूर्ण कुंड और (उद्रिणं) पानी से भरा हुआ (कवन्धं) जल धारण करनेवाला वृहदाकारपात्र या मेघ (दुदुहे) दोहन कर भरा है । ५६ हे (मरुतः) घोर मरुद्गण ! (यत् ह) जब (वः) तुम्हें, (सुम्नायन्तः) सुखी होनेकी लालसा करनेवाले हम (दिवः हवामहे) धुलोकेसे युलते हैं, उस समय (आ तु) तुरन्त ही तुम (नः) उप गन्तन) हमारे समीप आ जाओ । ५७ हे (सु-दानवः !) भली प्रकार दान देनेवाले (रुद्राः) शत्रुसंघ को दलनेवाले तथा (ऋभु-क्षणः) शस्त्र धारण करनेवाले घोरों ! (यूयं उत हि) तुम सचमुचही जब अपने (दमे) घर में या यज्ञ में (मदे) आनन्द में रहते हो, एव सोमरस का सेवन करते हो, तब (प्र-चेतसः स्थ) तुम्हारी बुद्धि अधिक चेतनायुक्त बन जाती है ।

भाषार्थ— ५५ भूमि, गौ तथा वाणी मरुतोंकी माताएँ हैं । भूमिसे अन्न तथा जल, गौ से दुग्ध और वाणीसे ज्ञान की प्राप्ति होती है । तीनोंके तीन सेवनीय तथा उपादेय वस्तुएँ हैं । मरुतोंकी माताओंने त्रिविध दुग्धसे तीन झीलें भरकर तैयार कर रली हैं ताकि घोर मरुतोंका भरणपोषण सुचारु रूपसे एवं भली भाँति हो जाय । ५७ ये घोर बटे ही उदार, शत्रुओं का नाश करनेवाले सदैव दास्याओंसे सुसज्ज हैं और जिस समय वे अपने प्रातादों में तथा निवासस्थलोंमें सुख-पूर्वक दिन बिताते हैं अथवा यज्ञभूमि में सोमरस का सेवन करते हैं, तब इनकी बुद्धि अतीव चेतनाशील होती है ।

टिप्पणी— [५४] ऋभु = कारीगर, कुशल, शोधक, लुहार, रथकार, बाण, वज्र । ऋभु-क्ष = इन्द्रका वज्र, बाण, ऋभुक्षणः = वास्तवानी, कारीगरोंको आश्रय देनेवाले (मंत्र ५७ और ८३ देखिए) । [५५] (१) क-वन्ध = पानी इकट्ठा करनेके लिए बडा भारी कुंड या मेघ । [५६] यहाँ पर 'सुम्नायन्तः' वद पाया जाता है, जिसका कि अर्थ है सुख पाने के लिए सचेष्ट रहनेवाले । ध्यान में रहे कि 'सु-मन' (सुम्न) मन को भली भाँति संस्कारसम्पन्न करने से ही यह सुख मिल सकता है । यह अतीव महत्वपूर्ण तत्त्व कभी न भूलना चाहिए । 'सु-मन' तथा 'सुम्न', वास्तव में एक ही है । इस पद से हमें यह सूचना मिलती है कि, उनस वंग से परिष्कृत मन ही सुख का सच्चा साधन है । इसलिये मंत्र ६० एवं ९७ देख लीजिए । [५७] (१) दम = इन्द्रियदमन, संयम, मनकी स्थिरता, गृह । (२) मदे = प्रेम, गर्व, आनन्द, मधु, सोम एवं वीर्य ।

- (५८) आ । नः । रयिम् । मद्-च्युतम् । पुरु-क्षुम् । विश्व-धायसम् ।
इयतं । मरुतः । दिवः ॥ १३ ॥
- (५९) अधिऽइव । यत् । गिरीणाम् । यामम् । शुभ्राः । अचिध्वम् ।
सुवानैः । मन्द-ध्वे । इन्दुऽभिः ॥ १४ ॥
- (६०) एतावतः । चित् । एषाम् । सुम्नम् । भिक्षेत । मर्त्यैः ।
अदाभ्यस्य । मन्मऽभिः ॥ १५ ॥

अन्वयः— ५८ (हे) मरुतः ! नः मद्-च्युतं पुरु-क्षुं विश्व-धायसं रयिं दिवः आ इयतं ।

५९ (हे) शुभ्राः ! गिरीणां अधिइव यत् यामं अचिध्वं (तदा च्युं) सुवानैः इन्दुभिः मन्दध्वे ।

६० मर्त्यैः एतावतः चित् अ-दाभ्यस्य मन्मभिः एषां सुम्नं भिक्षेत ।

अर्थ— ५८ हे (मरुतः !) मरुत् संघ ! (नः) हमारे लिए (मद्-च्युतं) दानुओं के गर्व का भंग करने-वाले, (पुरु-क्षुं) सय के लिए पर्याप्त (विश्व-धायसं) तथा सय के पोषण की क्षमता रखनेवाले (रयिं) धनको (दिवः आ इयतं) छुलोके से ला दो । ५९ हे (शुभ्राः !) तेजस्वी घांरो ! (गिरीणां अधिइव) पर्वतमय प्रदेश पर चढ़ जानेके समय जिस ढंगसे सुसज्ज कर रखते हैं वैसे ही (यत्) जय तुम (यामं अचिध्वं) रथ को तैयार कर चुकते हो, उस समय (सुवानैः इन्दुभिः) निचोड़े हुए सोमरस की धाराओं से (मन्दध्वे) तुम हर्षित होते हो । ६० (मर्त्यैः) मानव (एतावतः चित्) इस प्रकार सचमुच ही (अ-दाभ्यस्य) न दयाये जानेवाले प्रभु के (मन्मभिः) मननीय काव्यों से (एषां) इनसे (सुम्नं भिक्षेत) उत्तम सुप्त की याचना करे ।

भावार्थ— ५८ हमें जो धन मिले वह, इस भौतिक हो कि (१) उस धनसे शत्रुदरका गर्व बिनष्ट हो जाय, (२) वह इतनी मात्रामें उपलब्ध हो कि, सब सुखपूर्वक रह सकें, (३) सबकी पुष्टि हो जाय, सभी बलिष्ठ पनें। यदि ये तीन बातें हो जायें, तोही वह धन समीप रखनेयोग्य समझना उचित है, अन्य किसी प्रकारका नहीं । ५९ पर्वतों पर चढ़ते समय जैसे रथको तैयार करना पड़ता है, वैसे ही ये वीर महवृत्त रथको पूर्णतया सिद्ध या छेस बना रखते हैं, तब वे सोमरसके सेवन से प्रसन्न एवं हर्षित हो उठते हैं । प्रथमतः सोमरस पीकर पश्चात् रथको तैयार रखकर पार्वतीय सबकों परसे शत्रुदर पर धावा करके, उनको ध्विन्नया उड़ाने के लिए मरत् गमन करते हैं । ६० परम पिता परमात्मा किसी भी शत्रुके दबावसे दबनेवाला नहीं है, क्योंकि वह अतीम सामर्थ्यवान् है । मानव उसके सम्बन्ध में मननीय काव्य की निर्मिति करे तथा तद्गीतवेत्ता बन गायन करे । मनकी उन्नत दशामें जो सुख मिल सकता है, उसे पानेकी चेष्टा करनी चाहिए ।

टिप्पणी— [५८] धनसंपत्ति से क्या किया जाय?— तीन तरहके कार्योंमें सफलता मिलनी चाहिए, अर्थात् (१) धनमें न होने पाय, (२) सभी उससे लाभान्वित हों, तथा (३) स' का पोषण हो । जो धन ऐसे कर सकता है, वही उच्च कोटि का समझना चाहिए । पर जिस धन के वर्धन से गर्व बढ जाय, जो किसी एकके समीपही इकट्ठा होता रहे और जिससे सभी के पोषणकार्य में तनिक भी सहायता न मिले, वह निम्न श्रेणी का है । यहाँ पर बतलाया है कि, धनका उपयोग कैसे किया जाय । [५९] (१) सुवानः = (सु = अभिषेच, स्तपन-पोदन-स्तान-सुरासंधानेषु) निचोड़ा जानेवाला रस । (२) इन्दुः = सोमरस, आनन्द बढ़ानेवाला, अन्तस्सुख विद्यमानेवाला रस । [६०] (१) सुम्नं = (सु-मनः) सुख की जड़ में उत्तम मन ही तो है । मानवमात्र की बस वही काळसा हो कि, उच्च कोटि के मन के पदरूप जो सुख मिल सकता है, वही पाना चाहिए । यदि मन में हीन एवं अजग्य विचारों की भरमार हो, तो सच्चा सुख पाना निताम असंभव है । (२) अ-दाभ्यस्य मन्म = जो किसी भी शत्रु की ताकत से दब नहीं जाता, उसी का मनन या चिंतन करने में सहायक हो, ऐसे काव्य की सृष्टि करनी चाहिए और मानवजाति उसी काव्य के गायन में निरत रहे । ऐसे वीरकाव्यों से उत्तम ढंगसे मन को परिष्कृत (सु-मनः; सु-मं) तथा परिमार्जित करना सुगम होगा, जिस से सच्चे सुख की प्राप्ति होने में तनिक भी देर न लगेगी ।

(६१) ये । द्रप्साः इव । रोदसी इति । धमन्ति । अनु । वृष्टिभिः ।

उत्सम् । दुहन्तः । अक्षितम् ॥ १६ ॥

(६२) उत् । ऊँ इति । स्थानेभिः । ईरते । उत् । रथैः । उत् । ऊँ इति । वायुभिः

उत् । स्तोमैः । पृश्निमातरः ॥ १७ ॥

(६३) येन । आव । तुर्वशम् । यदुम् । येन । कण्ठम् । घनस्पृतम् ।

राये । सु । तस्य । धीमहि ॥ १८ ॥

अन्वय - ६१ ये अक्षितं उत्सं दुहन्तः वृष्टिभिः द्रप्सा इव रोदसी अनु धमन्ति ।

६२ पृश्नि-मातरः स्थानेभिः उ उत् ईरते, रथैः उत्, वायुभिः उ उत्, स्तोमैः उत् (ईरते) ।

६३ येन तुर्वशं यदुं आव, येन घन स्पृतं कण्ठं, तस्य (ते अवनं) राये सु धीमहि ।

अर्थ—६१ (ये) जो (अक्षितं उत्सं) कभी न घटनेवाले क्षरनेको मेघको (दुहन्तः) दुहते हं, ये धीरं (वृष्टिभिः) धर्माओंकी सहायतासे (द्रप्सा इव) मानों गरिबकी वृद्धोंसे (रोदसी अनु धमन्ति) समूचे आकाश एवं भूमंडलको व्याप्त कर वेते हं ।

६२ (पृश्नि मातर) भूमिको माता माननेवाले धीर (स्थानेभिः उ) अपने शब्दों तथा अभिभाषणों से (उत् ईरते) ऊपर चढते हं, (रथैः उत्) रथोंसे ऊर्ध्वगामी बनते हं, (वायुभिः उ उत्) वायुओं से ऊंचे पदपर आरूढ़ होते हं, (स्तोमैः उत्) यज्ञोंसेभी ऊपर उठ जाते हं ।

६३ (येन) जिस शक्तिके सहारे (तुर्वश यदुं) तुर्वश उपाधिधारी यदुनरेश का तुमने (आव) प्रतिपालन किया, (येन) जिससे (घन स्पृत कण्ठ) घनको चाहनेवाले कण्ठका सरक्षण किया, (तस्य) उस तुम्हारी सरक्षणक्षम शक्तिका हम (राये) धनकी प्राप्तिके लिये (सु धीमहि) भली भाँति ध्यान करते हं ।

भाषार्थ—६१ महत् मर्दोंसे वर्षा करते हैं और वर्षाकी वृद्धिसे अतिल विश्व को परिपूर्ण कर डालते हैं ।

६२ ये धीर भूमिको अपनी माता समझकर उसकी सेवा करनेवाले हैं और अपने अभिभाषणों, रथों, वायुयानों एवं यज्ञोंसे ऊंची दशा पाते हैं । इन्हीं साधनोंद्वारा वे अपनी प्रगति करने में पर्याप्त सफलता पाते हैं ।

६३ इन धीरोंने तुर्वश यदु तथा घनेच्छुक कण्ठ की यथावत् रक्षा की । हमारी इच्छा है कि ये धीर उसी तरह हमें बचा दें, ताकि हम उनकी छत्रछायामें अधिकाधिक धनपान्यसंपन्न हों और तब वैभव एवं संपत्तिके बलपूर्वक विविध यज्ञ संपन्न कर समूची जनता का कल्याण करेंगे ।

टिप्पणी— [६१] द्रप्स (Drops) वृद्धा [६२] धीरों का भाषण ऐसा हो कि, उससे उनकी उन्नति में ऐसा मात्र भी रुकावट न हो, जैसेही वे अपने रथ उच्छ्रेय राहपरसे ले चलें, श्रेय वृद्ध संपन्न हों और अनुकूल वायुप्रवाहों की सहायतासे (वायुयानों से) आकाशपथसे अच्छी जगह जा पहुँचें । कई मंत्रों में यह उल्लेख पाया जाता है कि मरत् पृथ्वीकी नाईं आकाशपथमें से यात्रा करते हैं । देखिये मंत्रों के क्रमांक ११ (श्वेनासो न पश्चिण), १११ (वयो न पसता) और ३८९ (आ हसतो नीलपृथा अपसन्) । 'वायुभिः उत्'से ज्ञात होता है कि वायुओं की सहायतासे मरत् ऊपर उठ जाते हैं । मत वायु एवं मरुतो में विभिन्नता है, दोनोंमें एकरूपता नहीं । मंत्र ४९ पर जो टिप्पणी लिखी है, सो देखिये । आगे चलकर मंत्र ८० में मरुतों के आकाशयात्राका स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध है, उसका विचार करना उचित है । [६३] (१) कण्ठ (कण्ठशब्दे) कवि, वक्ता, विद्वान्, भारत जो करावता हो, एक ऋषि का नाम । (२) तुर्वश= (धृ-यश) परापूर्वक क्षत्रको यशमें लानेवाला, एक नरेश का नाम । (३) यदु= (यम् वपरमे, यमदुक् औगादिकः) बुरे कर्मों से उपरत हो पीछे हटनेवाला, एक राजा का नाम ।

- (६४) इमाः । ऊँ इति । वः । सुऽदानवः । घृतम् । न । पिप्पुषीः । इषः ।
वर्धान् । काण्वस्य । मन्मभिः ॥ १९ ॥
- (६५) कः । नूनम् । सुऽदानवः । मदेय । वृक्त-वर्हिपः । ब्रह्मा । कः । वः । सपर्यति ॥ २० ॥
- (६६) नहि । स्म । यत् । ह । वः । पुरा । स्तोमेभिः । वृक्त-वर्हिपः ।
शर्धान् । ऋतस्य । जिन्वथ ॥ २१ ॥
- (६७) सम् । ऊँ इति । त्ये । महतीः । अपः । सम् । क्षोणी इति । सम् । ऊँ इति । सूर्यम् ।
सम् । वज्रम् । पर्वशः । दधुः ॥ २२ ॥

अन्वयाः— ६४ (हे) सु-दानवः ! घृतं न पिप्पुषीः इमाः इपः काण्वस्य मन्मभिः वा वर्धान् ।
६५ (हे) सु-दानवः वृक्त-वर्हिपः । क नूनं मदेय ? कः ब्रह्मा वः सपर्यति ?
६६ (हे) वृक्त-वर्हिपः ! नहि स्म, पुरा वः यत् ह स्तोमेभिः ऋतस्य शर्धान् जिन्वथ ।
६७ त्ये महतीः अपः उ सं दधुः, क्षोणी सं, सूर्यं उ सं, वज्रं पर्वशः सं (दधुः) ।

अर्थ— ६४ हे (सु दानवः!) उत्तम दानी धीरो! (घृतं न) घाँके समान (इमाः पिप्पुषीः इपः) ये पुष्टिकारक अन्न (काण्वस्य मन्मभिः) कण्वपुत्र के मनन करनेयोग्य काव्य या स्तोत्रद्वारा (वः वर्धान्) तुम्हारे यशकी वृद्धि करें । ६५ हे (सु-दानवः) सुचारु रूपसे दान देनेवाले तथा (वृक्त-वर्हिपः!) कुशासनोपर बैठनेवाले धीरो! (क नूनं मदेय?) भला तुम किधर हर्षित हो रहे थे? (कः ब्रह्मा) भला यह कौन ब्राह्मण है, जो (वः सपर्यति) तुम्हारी पूजा उपासना करता है? ६६ (वृक्त-वर्हिपः!) हे दर्भासनपर बैठनेवाले धीरो! (नहि स्म) क्या यह सच नहीं है कि (यत् ह) सचमुच यहाँपर (पुरा) पहले तुम (प स्तोमेभिः) अपने प्रशंसा करनेवाले अभिभाषणों से (ऋतस्य शर्धान्) सत्यके सैनिकोंको अर्थात् धर्म के लिए लड़ने-वाले सिपाहियोंको (जिन्वथ) प्रोत्साहित कर चुके हो । ६७ (त्ये) उन धीरोंने (महतीः अपः) बहुतसा जल (उ सं दधुः) धारण किया, (क्षोणी सं [दधुः]) पृथ्वी को धर दिया और (सूर्यं उ सं [दधुः]) सूर्यको भी आघात दिया; उन्होंनेही (वज्रं पर्वशः सं [दधुः]) अपने वज्रको हर पोरमें या गाँठमें सुदृढ़ बना दिया है ।

भाषार्थ— ६४ उच्च कोटिके पुष्टिकारक अन्नके प्रदान एवं मननीय काम्यके गायन से धीरोंका यश बढ़ने लगता है । ६५ हे धीरो! वृँकि तुम धीर प्रे समीप नहीं आ सके, अतः यह सवाल उठाने मेरे मनमें उठ खड़ा होता है कि किस जगह भला वे आनन्दोहासमें चूर हो बैठे हों और बावद ऐसा कौन उपासक इनसे प्रार्थना करता होगा कि, यहाँसे शीघ्र प्रस्थान करना इन धीरोंको बुर प्रतीत होता हो । ६६ सद्धर्म के लिए लड़नेवाले सैनिकोंको प्रोत्साहन मिले, इसलिये धीर उत्तम प्रभावोत्पादक भाषणों द्वारा उनका उत्साह बढ़ाते हैं । ६७ इन महानोंने मेघोंको, चावापृथिवी को, सूर्यको अपनी अपनी जगह भली भौँल धर दिया है और उनका स्थान अटल तथा स्थिर किया है । इन्हीं धीर महानोंने अपने वज्र नामक हथके स्थानस्थानपर ठीक तरह जोड़कर उसे बलिष्ठ बना डाला है । अन्य धीरभी अपने हथियार अच्छी तरह तैयार करनेमें सतर्क रहें और शत्रुके हथियारोंसे भी अत्यधिक मात्रामें उन्हें प्रबल तथा कार्यक्षम बना दें ।

टिप्पणी— [६५] (१) वृक्त-वर्हिपः आमनपर-दर्भासनपर बैठनेवाले, कुश फैलाकर बैठनेवाले । (२) ब्रह्मा=शानी, ब्राह्मण, राजक, उपासक, मंत्रज्ञ, यज्ञके श्रेष्ठ कर्तवन् । [६६] (१) शर्धे=बल, सामर्थ्य, सैन्य । (२) प्रतनस्य शर्धेः=सत्यका बल, सत्यधर्मके लिए लड़नेवाली सेना । (३) जिन्वन्=आनंद देना, उत्साहित करना । [६७] (१) क्षोणी=पृथ्वी, चावापृथिवी [विंशद् ३।३०] ।

- (६८) वि । वृत्रम् । पर्वशः । ययुः । वि । पर्वतान् । अराजिनः ।
चक्राणाः । घृणि । पौंस्यम् ॥ २३ ॥
- (६९) अनु । त्रितस्य । युध्यतः । शुभम् । आवन् । उत । क्रतुम् ।
अनु । इन्द्रम् । वृत्रतूयै ॥ २४ ॥
- (७०) विद्युत्सहस्ताः । अभिघवः । शिप्राः । शीर्पन् । हिरण्ययीः ।
शुभ्राः । वि । अञ्जत । श्रिये ॥ २५ ॥

अन्वयः— ६८ घृणि पौंस्यं चक्राणाः अ-राजिनः वृत्रं पर्वशः वि ययुः, पर्वतान् वि (ययुः) ।
६९ युध्यतः त्रितस्य शुभं उत क्रतुं अनु आवन्, वृत्र-तूयै इन्द्रं अनु (आवन्) ।
७० विद्युत्-हस्ताः अभि-घवः शुभ्राः शीर्पन् हिरण्ययीः शिप्रा श्रिये वि अञ्जत ।

अर्थ— ६८ [घृणि] चलशाली [पौंस्यं] पौरुषपूर्ण कार्य [चक्राणाः] करनेवाले इन [अ-राजिन] संघ-
शासक वीरोंने [वृत्रं पर्वशः वि ययुः] वृत्रके हर गांठके टुकड़े टुकड़े किये और (पर्वतान् वि [ययुः])
पहाड़ों को भी विभिन्न कर राह बना डाली । ६९ [युध्यतः त्रितस्य] लड़ते हुये त्रितके [शुभं उत क्रतुं],
बल एवं कार्यशक्ति का तुमने [अनु आवन्] संरक्षण किया और [वृत्र-तूयै] वृत्रहत्याके अवसरपर [इन्द्रं
अनु] इन्द्र को भी सहायता दे दी । ७० [विद्युत्-हस्ताः] विजलीकी नाई चमकनेवाले हथियार हाथमें
धारण करनेवाले [अभि-घवः] तेजस्वी तथा [शुभ्राः] गौरवर्णवाले ये वीर [शीर्पन्] अपने सरपर [हिरण्य-
यीः शिप्राः] स्ववर्ण के बने साफे [श्रिये] शोभा के लिये [वि अञ्जत] रत्न बेते हैं ।

भावार्थ— ६८ ये वीर ऐसे पराक्रमपूर्ण कार्य कर दिखलाते हैं कि, जिनमें बल, वीर्य तथा शूरताकी अतीव भाव-
व्यक्तता प्रतीत होती है । ये किसी एक विचामक राजाकी छत्रछायामें नहीं रहते हैं । [इन्द्रं संघशासक नाम दिया जा
सकता है, अर्थात् इनका समूचा संपर्ही इनपर शासन करता है । ऐसे] इन वीरोंने वृत्रके टुकड़े टुकड़े कर डाले और
पर्वतोंका भेदन कर भागे घटने के लिए सड़क बना दी । ६९ इन वीरोंने त्रित नरेश को लडाईमें सहायता पहुंचाकर
उसके बल, बरसाद् तथा कर्तृशक्ति को अक्षुण्ण बना रखा, अतः त्रित विजयी बन गया और इसी भाँति इन्द्र को भी
वृत्रवध के मौकेपर मदद् करके उसे भी विजयी बना दिया । ७० ये वीर चमकीले शस्त्र हाथोंमें रखते हैं । ये तेजस्वी
तथा गौरवाय हैं और उनके सरपर स्वर्णमय शिरस्त्राण सुहाने हैं । अन्य वीर भी इसी भाँति अपने शस्त्रों को पुराने
या जीने होने न दें, सदैव विद्युत्काके समान प्रकाशमान एवं चमकीले रूप में रख दें ।

टिप्पणी— [६८] (१) राजिन् = [राजः अरु अस्तीति राजी] = जिनपर शासन चलाने के लिए राजा विद्यमान रहता
है, वे 'राजिन्' कहलाते हैं । अ-राजिन् = [राज. स्वामी अरु न विद्यते इत्यराजी ।] जिनपर किसी एक व्यक्तिका
शासन या नियंत्रण नहीं प्रस्थापित हुआ हो, जिनका सास संघ या समुदायही हर व्यक्तिकपर नियमन डालता हो । मरु-
संघवादी, संघशासक वीर ये और सब स्वयंही मिलकर शासनप्रबंध करते थे । मंत्र २९२ और ३९८ में 'स्व-राजः'
पदसे यही भाव सूचित होता है । (२) घृणि = पौरुषयुक्त, बलशाली, सामर्थ्यवान्, क्रुद्ध, भय, बैल, प्रकाशकरण,
वायु । (३) पौंस्यं = पौरुषरुद्ध, सामर्थ्य, वीर्य, पुरुषमें विद्यमान वीरता । [६९] (१) शुभं = बल, सामर्थ्य, तेज्य ।
(२) क्रतुं = कर्मशक्ति, वृत्त, उत्साह, यज्ञ, बुद्धि । (३) त्रित = [त्रिभिस्त्रायते] तीन शक्तियों का उपयोग कर रक्षा
करता है । एक नरेशका नाम [त्रिपु स्यानेषु तायमानः] । सायण क्र० ५।५।१२; २५१ मंत्र [७०] (१) शिप्रा = शिरच्छाण,
पगड़ी, टुड्डी, नासिका, शिरच्छाणके मुँडपर आनेवाला जाड़ा । (२) वि-अञ्जत = सुसोभित करना, सजावट करना, अंजन
लगाना, सुन्दर बनाना, शक्य करना । हिरण्ययीः शिप्राः व्यञ्जत = सुवर्णसे विभूषित या सुनहली पगडियोंसे ये वृषों
से पृथक् दीख पड़ते थे । जनताके मध्य इन वीरों को पहचानना इन्हीं सुनहले साफोंसे आसान हुआ करता । स्वर्णमय
शिरोवेष्टनसे विभूषित इन वीरों के समुदाय को देखतेही लोग मुग्ध कहना शुरू करते 'लो माई, ये वीर मरु हैं ।'

- (७१) उशनी । यत् । परावर्तः । उद्वणः । रन्ध्रम् । अर्थात्तन ।
 यौः । न । चक्रदत् । भ्रिया ॥ २६ ॥
- (७२) आ । नः । मखस्ये । दावने । अश्वैः । हिरण्यपाणिभिः ।
 देवासः । उप । गन्तन ॥ २७ ॥
- (७३) यत् । एषाम् । पृपतीः । रथे । प्रष्टिः । वहति । रोहितः ।
 यान्ति । शुभ्राः । रिणन् । अपः ॥ २८ ॥

अन्वयः— ७१ (युव) उशनी यत् परावर्तः उद्वणः रन्ध्रं अर्थात्तन, यौः न भ्रिया चक्रदत् ।

७२ (हे) देवासः । नः मखस्य दावने हिरण्य-पाणिभिः अश्वैः उप आ गन्तन ।

७३ यत् एषां रथे पृपतीः (युज्यन्ते) प्रष्टिः रोहितः वहति, अपः रिणन् शुभ्राः यान्ति ।

अर्थ— ७१ तुम हित करनेकी [उशनीः] इच्छा करनेवाले [यत्] जब [परावर्तः] दूरके प्रदेशोंसे [उद्वणः रन्ध्रं] मेघों में [अर्थात्तन] आते हो, तब [यौः न] गुलोक के समानही अन्य सभी लोग [भ्रिया चक्रदत्] डर के मारे विकंपित हो उठते हैं। ७२ हे देवासः! देवतागण! तुम [नः मखस्य दावने] हमारे यज्ञकी देन देनेके समय [हिरण्य-पाणिभिः] हाथों एवं पैरोंमें सुवर्ण के अलंकार पहने हुए। अश्वैः। घोड़ोंके साथ [उप आ गन्तन] हमारे समीप आओ। ७३ [यत् एषां रथे] जब इनके रथमें [पृपतीः] धन्ये धारण करनेवाली हरिनियाँ लगाई जाती हैं, तब [प्रष्टिः] घुराको कंधेपर धारण करनेवाला [रोहितः] एक लाल रंगका हिरन भी आगे [वहति] खींचने लगता है, उस समय अति वेगके कारण [अपः रिणन्] पत्नीका जल बहने लगता है और [शुभ्राः यान्ति] वे मौख्यर्ण के वीर आगे बढ़ने लगते हैं।

भावार्थ— ७१ सब का कल्याण करने की इच्छा से जब मरु वर्षाका प्रारम्भ करने के लिये मेघोंमें संचार करने लगते हैं, उस समय आकाशमें भीषण दहःड श्रुत होती है, जिससे हरएकके दिलमें भय का संचार होता है। ७२ इन वीरोंके घोड़े सुनहले आभूषणोंसे विभूषित होते हैं। ऐसे अश्वोंपर बैठ हय हमारे पक्षमें वीर मरुत् आ उपस्थित हों। ७३ वीर महर्तोका रथ गोता है और उनके रथमें घट्टेवाली हरिनियाँ लगी रहती हैं। उनके आगे एक लाल रंगका हरिण जोता जाता है। इस भीति उनका रथ सज्ज हो जाए, वो अति वेगसे वह आगे बढ़ने लगता है, जिस से उसे खींचनेवाले पत्नीसे तर हो जाते हैं। ऐसे रथोंपर बैठकर मरुत् जाने लगते हैं।

टिप्पणी— [७१] (१) उद्वणः रन्ध्रं = बेलकी गुफा, मेघों का स्थान, बरसनेवाले मेघ की जगह। [७२] (१) 'हिरण्यपाणिभिः अश्वैः उपागन्तन' वैरोंमें स्वर्णमय गहने धारण किये हुए अश्वोंपर चढ़कर इन वीरोंका आगमन होता है। यहाँपर घोड़ोंपर बैठनेका बल्लेख पाया जाता है। [७३] (१) प्रष्टिः = घुरा, आगे रहनेवाला, घुरा देनेवाला। [२] पृपती = घट्टेवाली, जलकी दूँद, जल गिरानेवाली। रथमें हरिण = मरु-युक्तों में अनेक जगह यह वर्णन पाया जाता है कि, मरुत् के रथ में हरिणी या शंबर अथवा बारहसिंगा लगाया जाता है। हरिण से युक्त रथ तो बर्फीले स्थानोंपर काममें आते हैं, इसलिये अन्तस्त्रल में सन्देह उठ खड़ा होता है कि शायद वे वीर मरुत् हिमकी अधिकता के लिए विस्वात भू-विभागोंमें निवास करते हों। [इस संबन्धमें देखो मंत्रोंके क्रमांक ७, ७१, ७३, ११५, १२६, १२७, १०१, २१४, २८६] आगे चलकर ७७ वें मंत्रमें 'नि-चक्रया' [चक्र या पहियेसे रहित रथसे] मरुत् यात्रा करते थे, ऐसा बल्लेख पाया जाता है। हिमश्रुत या बर्फीले स्थानोंमें जिन गाडियोंको हिरन खींचते हैं, वे बिना पहियोंके होते हैं। घनीभूत हिमस्तरके ऊपरसे वे हिरन इन वाहनोंको सरपट खींच ले चलते हैं। इस दंगकी गाडीको [Sledge] नाम दिया जाता है और यह गाडी हिमयुक्त प्रदेशोंमें बहुच कामकी मानी जाती है। इस मंत्रमें निर्देश पाया जाय है

(७४) सुसोमे । शर्यणाऽवति । आर्जिके । पस्त्यऽवति ।
ययुः । निऽचक्रया । नरः ॥ २९ ॥

(७५) कदा । गच्छाय । मरुतः । इत्या । विप्रम् । हवमानम् ।
मार्जिकेभिः । नार्धमानम् ॥ ३० ॥

(७६) फत् । ह । नूनम् । कधऽप्रियः । यत् । इन्द्रम् । अजहातन ।
फः । घः । सत्तिऽन्वे । ओहते ॥ ३१ ॥

अन्वयः— ७४ सु-सोमे आर्जिके शर्यणावति पस्त्यावति नर नि-चक्रया ययु ।

७५ (हे) मरुतः ! इत्या हवमानं नार्धमानं विप्रं कदा मार्जिकेभिः गच्छाय ?

७६ (हे) कध-प्रिय ! इन्द्र नूनं अजहातन यत् फत् ह, घः सत्तित्वे फः ओहते !

अर्थ— ७४ [सु सोमे] उत्कृष्ट सोमवहियॉसे युक्त [आर्जिके] ऋजीक नामक भूमिभाग में [शर्यणावति] शर्यणावत् नामक क्षीलके समीप विद्यमान [पस्त्या-वति] शूरमें [नर] नेतृत्वगुणयुक्त वीर [नचक्रया] पहियों से रहित रथमें घेड़कर [ययु.] चले जाते हैं ।

७५ [हे मरुत !] वीर मरुतो ! [इत्या] इस दंगसे [हवमानं] प्रार्थना करते हुए, पुकारते हुये तथा [नार्धमानं] सहायताकी लालासा रगनेवाले [विप्रं] शर्मा पुत्रके समीप भला तुम [कदा] कब [मार्जिकेभिः] सुखार्थक घनघैर्भयोंके साथ [गच्छाय] जानेवाले हो ?

७६ हे (कध-प्रियः) कथाप्रिय वीर मरुतो ! (इन्द्रं) इन्द्र को (नूनं) सन्धमुख (अजहातन) तुम छोड़ चुके हो, (यत् फत् ह) भला कभी ऐसा भी हुआ होगा ? [कभी नहीं] तो फिर (घ सत्तित्वे) तुम्हारी मिश्रता पाने के लिए (फः ओहते ?) कौन मरुा दूसरा लालावित हो उठा है ?

भाषार्थ— ७४ ऋजीक देशके एक स्थेको 'आर्जिक' कहते हैं । 'शर्यणावत्' शर्यणा नदी या बड़े क्षील के तटपर अवस्थित भूमिभाग । 'पस्त्यावत्' जहाँ रहने के लिए मकान हों, उस जगह वे शूर मरु चक्राहित रथ में घेड़कर जाते हैं ।

७५ प्रार्थना करनेवाले तथा सहायता पाने के सुवर्ण लालावित ज्ञानी लोगोंको वे वीर सहायता पटुंगो हैं और अपने साथ सुल्लको बुद्धिगत करनेवाले घनोंको लेकर गमन करते हैं ।

७६ वे वीर बहुतही कथाप्रिय हैं, अर्थात् पृथिव्याधिक वीरगाथाओं को सुनना इन्हें अत्यधिक प्रिय प्रतीत होता है । इन्द्र को इन्होंने कभी छोड़ा नहीं । एक बार यदि वे वीर किभीको अपना कं, तो उसे वे कभी त्यागने या छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते हैं । वीरों को इसी भाँति बर्ताव रखना चाहिए । जो सत्यधर्म के अनुयाय कांध करने लगता है, यह शीघ्र ही मरुगों का प्रेमपात्र बनता है ।

कि, बिना पहियेके तथा हिरनद्राग अकृष्ट रथपर अधिरुद्ध घोड़े वीर मरु आते बढने लगने हैं । [७४] (१) शर्यणा [शर्यं] = 'शर' याने सरकंडे जहाँ उगने लगते हैं, ऐंया क्षील, नदी या जलमय प्रदेश । (२) पस्त्या [पस्त्त्या, पस्तु-स्थान] पशुपालनका स्थान, घर, गोठ या गोशाला, रहनेका स्थल, पस्त्यावन् = गोठोंसे युक्त भूभाग । (३) नि-चक्रया = चक्राहित गाड़ी से [देसो टि० संख्या ७३] । (४) ऋजीक = गुप्त, ढका हुआ, भूभाग, सोम । आर्जिकः = ऋजीयों का प्रदेश, जहाँपर सोम घषेष्ट रूपसे पाया जाता है । [७५] (१) कध-प्रिय = स्तुतिप्रिय (सायणभाष्य) ।

- (७७) सहो इति । सु । नः । यज्ञऽहस्तैः । कर्णासः । अग्निम् । मरुत्सर्भिः ।
स्तुपे । हिरण्यवाशीभिः ॥ ३२ ॥
- (७८) ओ इति । सु । वृष्णाः । प्रयज्यून । आ । नव्यसे । सुविताय ।
धवृत्याम् । चित्रवाजान् ॥ ३३ ॥
- (७९) गिरयः । चित् । नि । जिहते । पर्शानासः । मन्यमानाः ।
पर्वताः । चित् । नि । येमिरे ॥ ३४ ॥

अन्वयः— ७७ नः कर्णासः । यज्ञ-हस्तैः हिरण्य-वाशीभिः मरुद्भिः सहो अग्निं सु स्तुपे ।
७८ पृष्णाः प्र-यज्यून चित्र-वाजान् नव्यसे सुविताय सु आ धवृत्यां उ ।
७९ मन्यमानाः पर्शानासः गिरयः चित् नि जिहते, पर्वताः चित् नि येमिरे ।

अर्थ— ७७ हे (नः कर्णासः !) हमारे कर्णों ! (यज्ञ-हस्तैः हिरण्य-वाशीभिः) हाथ में यज्ञ धारण करनेवाले तथा सुवर्णरंजित कुल्हाड़ियों का उपयोग करनेवाले (मरुद्भिः सहो) मरुतों के साथ यिधमान (अग्निं) अग्नि की (सु स्तुपे) भली भाँति सराहना करो ।

७८ (पृष्णः) वीर्यवान् (प्र-यज्यून) अत्यंत पूजनीय तथा (चित्र-वाजान्) आश्चर्यजनक घल से युक्त घेसे तुम्हें (नव्यसे सुविताय) नये धन की प्राप्ति के लिए (सु आ धवृत्या उ) मेरे निकट आने के लिए आकर्षित करता हूँ ।

७९ (मन्यमानाः पर्शानासः) अभिमान करनेवाले शिखरों के साथ (गिरयः चित्) बड़े पर्वत भी इन वीरों के आगे (नि जिहते) अपने स्थानसे विचलित होते हैं और (पर्वताः चित्) पहाड़ भी (नि येमिरे) नियमपूर्वक रहते हैं ।

भावार्थ— ७७ ये वीर यज्ञ एवं कुंठार को काम में लाते हैं और अग्नि के उपासक तथा सहायक हैं ।

७८ ये वीर अतीव वीर्यवान्, पूजनीय तथा भौति भौति की विलक्षण शक्तियों से युक्त हैं । वे हमारे निकट आ जायें और हमें नया धन प्रदान करें ।

७९ इन वीरों के आगे बड़े बड़े शिखरोंवाले पर्वत एवं छोटेमोटे पहाड़ भी मानों झुक जाते हैं । इन वीरों का पराक्रम इतना महान् है और इनमें इतना प्रबल पुरुषार्थ समाया हुआ है कि, बड़े बड़े पर्वतों को लौंघना इनके लिए कोई अर्धभय तथा दुरुह बात नहीं है, क्योंकि ये यही सुगमता से सभी कठिनाइयों को हटा देते हैं ।

टिप्पणी— [७७] (१) वादी = (मन्वतीति वादी) वेज, सुगी, कृपाण, दुघारी तफधार, कुल्हाड़ी, परशु । मंत्र १५० वीं देखिए । निबंध के अनुसार ' शब्द ' । ' हिरण्यवाशी ' = जिस हथियार पर सुनहरी बेलगूटी दिखाई दे । ' मरुद्भिः सह अग्निः ' = मरुत् अपने साथ अग्नि रख लिया करते थे । अग्नि मरुतों का मित्र, सलाह है, (देखिए क्र. ८१०३१४) । [७८] (१) सुवित = (सु-इत्) उत्तम ढंगसे पानेके लिए योग्य, सुपरीक्षित, धन, वस्तु । जो दुरित (दुःइत्) नहीं है, वह ' सुवित ' है । वैभवसम्पन्नता, उत्तम मार्ग, सौभाग्य, उन्नति की राह । [७९] (१) पर्शान = पर्वतशिखर, दर्रा, दरार ।

(८०) आ । अक्ष्णऽयावानः । वहन्ति । अन्तरिक्षेण । पततः ।

घातारः । स्तुवते । वयः ॥ ३५ ॥

(८१) अग्निः । हि । जनि । पूर्यः । छन्दः । न । सूरः । अर्चिषा ।

ते । मानुषभिः । वि । तस्थिरे ॥ ३६ ॥

कण्वपुत्र सोमरि ऋषि (ऋ० ८।२०।१—२६)

(८२) आ । गन्त । मा । रिपण्यत । प्रस्थावानः । मा । अर्ष । स्थात । ससमन्यवः ।

स्थिरा । चित् । नमयिष्णवः ॥ १ ॥

अन्वयः— ८० अक्ष्ण-यावानः अन्तरिक्षेण पततः स्तुवते वयः घातारः आ वहन्ति ।

८१ अग्निः हि अर्चिषा छन्दः, सूरः न, पूर्यः जनि, ते मानुभिः यि तस्थिरे ।

८२ (हे) प्रस्थावानः । आ गन्त, मा रिपण्यत, (हे) स-समन्यवः । स्थिरा चित् नमयिष्णवः मा अप स्थात ।

अर्थ— ८० (अक्ष्ण-यावानः) नेत्रोंकी निगाह की नज़रें अति वेगसे दौड़नेवाले और (अन्तरिक्षेण पततः) आकाश में से उड़नेवाले साधन (स्तुवते) उपासक के लिए (वयः घातारः) अन्न की समृद्धि करनेवाले इन धीरों को (आ वहन्ति) डोले हैं ।

८१ (अग्निः हि) अग्नि सचमुच (अर्चिषा) तेज से (छन्दः) ढका हुआ है और (सूरः न) सूर्य के समान वह (पूर्यः जनि) पहले प्रकट हुआ तथा पश्चात् (ते मानुभिः) वे धीर मरत अपने तेजों से (यि तस्थिरे) स्थिर हो गये ।

८२ हे (प्रस्थावानः) वेगपूर्वक जानेवाले धीरों ! (आ गन्त) हमारे समीप आओ, (मा रिपण्यत) आन से इनकार न करो । हे (स-समन्यवः) उत्साहसे परिपूर्ण धीरों ! (स्थिरा चित्) जो शत्रु स्थिर एवं अटल हो चुके हों, उन्हें भी (नमयिष्णवः) तुम झुकानेवाले हो, अतः हमारी यह प्रार्थना है कि, हम से तुम (मा अप स्थात) दूर न रहो ।

भावार्थ— ८० इन धीरों के वाहन बड़े वेगवान् तथा क्षीप्रगामी होते हैं और उन पर चढ़कर वे आकाशपथ में से विहार करते हैं, तथा भक्तों को परास भक्ष देते हैं ।

८१ सूर्य के समान ही अग्नि अपने तेज से प्रकाशमान होता है और यज्ञ में पहले पहले ब्यक्त हो जाता है । पश्चात् कीर्ति मरुतों का समुद्राय अपने अपने स्थान पर आ बैठ जाता है । (अप्यात्म) व्यक्ति के शरीर में भी प्रथम उन्नता संचारित हुआ कर्त्वी है और पश्चात् प्राणों का आगमन होता है । स्थान में रहे कि, व्यक्ति में प्राण मरत ही है ।

८२ इन धीरों में इतनी क्षमता विद्यमान है कि, प्रबल तथा सुस्थिर शत्रु को भी वे विनष्ट कर डालते हैं । इनका यह महात् पराक्रम विख्यात है । हमारी यही कालसा है कि, वे हमारे समीप आ जायें और हमारी रक्षा करें ।

टिप्पणी— [८०] (१) अन्तरिक्षेण पततः अक्ष्णयावानः = अन्तराल में से जानेवाले तथा मानवी दृष्टि के समान आश्रित वेगवान् साधनों या वायुयानों से चौर मरत संसार में संचार करते हैं । यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि, विमानसदृश ही वे वाहन रहने चाहिये । मंत्र ६२ पर जो टिप्पणी लिखी है, सो देख लीजिए । (२) वयः = अन्न, दीर्घ आयु देनेवाले साधवेष, पक्षी । [८२] (१) रिप् (दिसायां), मा रिपण्यत = हमें कष्ट न दो, हमारी हत्या न करो । (यदि वे हमारे निकट नहीं आयेंगे, तो हमारी बड़ी निराशा होगी, पैसा न होने पाव । मरुतों के हमारे यहाँ पचारने से हमारी उमंग बढ जायेगी ।)

- (८३) वीळुपविडभिः । मरुतः । ऋभुक्षणः । आ । रुद्रासः । सुदीतिभिः ।
इपा । नः । अद्य । आ । गत । पुरुस्पृहः । यज्ञम् । आ । सोमरीयवः ॥ २ ॥
- (८४) विष । हि । रुद्रियाणाम् । शुष्मम् । उग्रम् । मरुताम् । शिमीवताम् ।
विष्णोः । एपस्य । मीळहुपां ॥ ३ ॥

अन्वय.— ८३ (हे) ऋभु-क्षण रुद्रास मरुत ! सु-दीतिभिः वीळु-पविभि. आ गत, (हे) पुर-स्पृहः सोमरीयव । न. यत्ने अद्य इपा आ (गत) आ ।

८४ विष्णोः एपस्य मीळहुपां शिमीवतां रुद्रियाणां मरुतां उग्रं शुष्मं विष हि ।

मर्थ- ८३ हे (ऋभुक्षणः) । वज्रधारी (रुद्रासः) शत्रुसंघ को रलानेवाले (मरुतः !) धीर मरुतो ! (सु-दीतिभिः) अताव तेजस्वी (वीळु-पविभिः) सुदृढ ब्रह्मा से युक्त होकर (आ गत) इधर आओ, हे (पुर-स्पृहः) घृत्तोद्वारा अभिलषित तथा (सोमरीयवः !) सोमरी क्रिय पर अनुग्रह करनेकी इच्छा करने-वाले वीरों । (न. यत्ने) हमारे यज्ञस्थल में (अद्य) आज (इपा) अद्य के साथ (आ आ) आओ ।

८४ (विष्णोः एपस्य) व्यापक आकांक्षाओंकी पूर्ति करनेवाले, (मीळहुपां) वृष्टि करनेवाले, (शिमीवतां) उद्योगशील, (रुद्रियाणां) रुद्र के पुत्र ऐसे (मरुतां) मरुतों के (उग्रं) क्षत्रधर्मोंवित धीर भाव पंदा करनेवाले (शुष्मं) बल को (विष हि) हम जानते ही हैं ।

नापार्थ- ८३ वज्र धारण करनेवाले तथा समूची जनता के प्यारे वे धीर मरुत् अपने तेजस्वी एवं प्रभावशाली शिवाियों के साथ इधर चले आये और वे इस वज्र में यथेष्ट अक्ष लाये, ताकि यह वज्र यथोचित ढंग से परिपूर्ण हो जाय ।

८४ मरुत् वपों करनेवाले, धीर, उद्योग में निरत तथा पराक्रमी हैं । उनका बल अमूढा है ।

टिप्पणी- [८३] (१) ऋभु-क्षण = (ऋभु-क्षन्) ' ऋभु ' से तात्पर्य है, कार्यकुशल कारीगर लोग । जिनके समीप ऐसे निष्ठात कार्यकर्ताओं की उपस्थिति होती है और उन के भरणोपण की व्यवस्था निष्पन्न हो जाती है, वे ऋभुक्षन् उपाधिधारी हो सकते हैं । ऋभुक्षणः = (ऋभु-क्ष) ऋभुओं अर्थात् शिष्यकारों के पनाये हुए शत्रुों का उपयोग करनेवाले । ऋभुक्षण ' कहे जा सकते हैं । ऋ-भु-क्षणः (उद-भासमान-निपाता) जिनके निपासमान निपात हैं, वे (क्षि = निपाते) । (२) रुद्रासः = रुद्र. = (रोदयिता) शत्रुको रलानेवाला धीर । (३) सु-दीति = अलीभांति तेजघारा से युक्त शस्त्र, जिस के छूनेमात्र से शरीर का अंगभंग होना सम्भव है । (४) वीळु-पवि = प्रबल वज्र, बड़ा वज्र, एक कौलद के बने हुए शस्त्र को वज्र कहते हैं, पवि = पल, पड़िये की परिधि । ' वीळु, वीडु, वीळु, वींय. ' सभी इन्द्र पटी आते शक्ति की मूचना देनेवाले हैं । ' धीरता ' से इन दानों का घनिष्ठ सम्पर्क है । (५) सोमरि = (सु-मरि) अली भाँति अन्न का दान कर के निधेन एवं असहायों का भ्रष्टा भरणोपण करनेवाला सुमरि या सोमरि है । जो इस प्रकार अन्न का दान करता हो, उसे मरुत् सभी प्रकार की सहायता पहुँचाते हैं । [८४] (१) शिमी-प्रणन, उग्रम, कर्म । (२) शिमी-वन् = उग्रमी, कर्ममें निरत, दमेना शरुटे कार्य करनेवाला । (३) रुद्रिय = रुद्रके साथ रहनेवाले, महान् धीरके अनुयायी, यद्ये पूर एवं धीर रुद्रके पुत्र । (४) शुष्मं = शत्रुओं को सुखानेवाला बल । (५) विष्णो एपस्य मीळहुपाः = व्यापक आकांक्षाओं की पूर्ति करनेवाले ।

- (८५) वि० द्वीपानि । पापतन् । तिष्ठत् । दुच्छुना । उभे इति । युजन्त । रोदसी इति ।
 प्र । धन्वानि । ऐरत् । शुभ्रःखादयः । यत् । एजथ । सऽभानवः ॥ ४ ॥
- (८६) अच्युता । चित् । वः । अजमन् । आ । नानदति । पर्वतासः । वनस्पतिः ।
 भूमिः । यामेपु । रेजते ॥ ५ ॥

अन्यय.— ८५ (हे) शुभ्र-खादयः स्व-भानवः ! यत् पञ्च, द्वीपानि वि पापतन्, तिष्ठत् दुच्छुना (युज्यते), उभे रोदसी युजन्त, धन्वानि ॥ ऐरत् ।

८६ वः अजमन् अ-च्युता चित् पर्वतासः वनस्पतिः आ नानदति, यामेपु भूमि रेजते ।

अर्थ- ८५ हे (शुभ्र-खादयः) सुफेद हस्तभूषण धारण करनेवाले (स्व-भानवः !) स्वयं तेजस्वी वीरो ! (यत्) जब तुम (पञ्च) जाते हो, शास्त्रदल पर धावा बोलन के लिए हलचल करते हो, तब (द्वीपानि वि पापतन्) टापू तक नीचे गिर जाते हैं । (तिष्ठत्) सभी स्थावर चीजें (दुच्छुना) विपत्ति से युक्त बन जाते हैं, (उभे रोदसी) दोनों दुलोक तथा भूलोक कांपने (युजन्त) लगते हैं । (धन्वानि) मरु-भूमि की वाहू (प्र ऐरत्) अधिक वेग से उड़ने लगती है ।

८६ (वः अजमन्) तुम्हारी चढाई के मौके पर (अच्युता चित्) न हिलनेवाले घड़े घटे (पर्वतासः) पहाड़ तथा (वनस्पतिः) पेड़ भी (आ नानदति) वहाड़ने लगते हैं, वैसेही तुम (यामेपु) जब शास्त्रदलपर आक्रमणार्थ यात्रा करना शुरु करते हो, तब (भूमिः रेजते) पृथ्वी विकंपित हो उठती है ।

भावार्थ- ८५ साकल्यधरे महने पहन कर ये तेज पूर्ण वीर जब शत्रुदल पर चढाई करने के लिए भक्ति वेग से प्रस्थान करता हुए करते हैं, तब भूमि के ऊपरी भाग नीचे गिर पड़ते हैं, वृक्ष जैसे स्थावर भी दूट गिरते हैं, आकाश एवं पृथ्वी में कंपकंपी पैदा हो जाती है और रेगिस्तान की बालुना तक वेग से ऊपर उड़ने लगती है । इतनी भारी हलचल विश्व में मचा देने की क्षमता वीरों के आन्दोलन में रहती है ।

८६ (आधिदैविक क्षेत्रमें) वामु जोर से महने लग जाय, औंधी या तूफान प्रचलित हो जाय, तो पर्वतोंपर के वृक्ष तरु डावाँबोल हो जाते हैं, तथा ऊंची पहाड़ी चोटियों पर पवन की गति अतीव तीव्र प्रतीत होती है । वृक्षों के परस्पर एक दूसरे से घिस जाने से भीषण ध्वनि प्रादुर्भूत होती है, तथा भूमि भी चलायमान प्रतीत होती है । (आधिभौतिक क्षेत्र में) शत्रुओं पर जब वीर सेनिक धावा बोलत हैं, वन दहमूल होने पर भी शत्रु विचलित हो जहमूल से उड़ाय जाता है ।

टिप्पणी- [८५] (१) खादिः = बल्य, बटक (हाथपैरों में पहननेयोग्य आभूषण) । लाघ पदार्थ, मग्न १६६ देखिए । धृषखादिः (११०), हिरण्यखादिः, सुखादिः (१५० ३१८), शुभ्रखादिः (८५) ऐसे पदमयोंग मिलते हैं । खादि एक निभूषण है, जो हाथ में या पैर में पहना जाता है और कँगन, बलय, कटवसदृश ' खादि ' एक आभूषणवाचक शब्द है । (२) शुभ्र-खादयः = चमकील आभूषण धारण करनेवाले । (३) दुच्छुना = (दुष्-शुना) = (पागल कुत्ता यदि पीछे पड़े, तो होनेवाली दशा) मकटपरपरा, डुरवस्था, दुःख, विपदा । (४) धन्वन् = रेगिस्तान, निरैल भूमिनाग, पूलिसय प्रदेश । (५) द्वीप-आश्रयस्थान, द्वीपकल्प, टापू । [८६] (१) अच्युता नानदति = स्थिर तथा अटक पदार्थ (पहाड़ने) काँपने लगते हैं । (विरोधाभास अलंकार देखनेयोग्य है) । (२) वनस्पति. नानदति = पर्वतों के दूट गिरने से बड़-बड़ आवाज सुनाई देती है । (३) भूमि. रेजते = (स्थिरा रेजते) = जोभूमि स्थिर एवं अटक दिखाई देती है, सो भी विकंपित तथा विचलित हो उठती है । (अच्युता) स्थिरीभूत एवं अपने पद पर दहतया अवस्थित शरद्वर्षों को भी उल्लास भँक देना केवलमात्र महान् वीरों का कर्तव्य है ।

(८७) अमाय । वः । मरुतः । यातवे । घोः । जिहीते । उत्सृजता । वृहत् ।

यत्र । नरः । देदिशते । तनूपु । आ । त्वर्धांसि । वाहुः । अजसः ॥ ६ ॥

(८८) स्वधाम् । अनु । धियम् । नरः । महि । त्वेयाः । अमवन्तः । वृषप्लवः ।

वहन्ते । अहुतप्लवः ॥ ७ ॥

(८९) गोभिः । घाणः । अज्यते । सोमरीणाम् । रथे । कोशे । हिरण्ये ।

गोवन्धवः । सुजातासः । इपे । भुजे । महान्तः । नः । स्परसे । नु ॥ ८ ॥

अन्वय— ८७ (हे) मरुतः ! वः अमाय यातवे यत्र वाहु-ओजसः नरः त्वर्धांसि तनूपु आ देदिशते, (तत्र) घोः उत्तरा वृहत् जिहीते। ८८ त्वेया अम-वन्तः वृष-प्लवः अ-हुत-प्लवः नरः स्व-धां अनु धियं महि वहन्ति। ८९ सोमरीणां हिरण्ये रथे कोशे गोभिः घाणः अज्यते, गो-वन्धवः सु-जातासः महान्तः नः इपे भुजे स्परसे नु।

अर्थ— ८७ हे (मरुतः !) घोर मरुतो ! (वः अमाय) तुम्हारी सेना को (यातवे) जानेके लिए (यत्र) जिस ओर (वाहु-ओजसः) वाहु-बल से युक्त (नरः) तथा नेता के पद पर अधिष्ठित तुम वीर (त्वर्धांसि) सभी शक्तियों को अपने (तनूपु) शरीरों में एकत्रित कर (आ देदिशते) प्रहार करते हो उधर (घोः) आकाश में (उत्तरा) ऊपर ऊपर (वृहत्) विस्तृत एवं वृहदाकार बनते बनते (जिहीते) जा रहा है, ऐसा प्रतीत होता है। ८८ (त्वेयाः) तेजस्वी, (अमवन्तः) बलवान्, (वृष-प्लवः) बल के जैसे दृष्टपुष्ट तथा (अ-हुत-प्लवः) सरल स्वभाववाले (नरः) नेताके नाते वीर (स्व-धां अनु) अपनी धारकशक्तिके अनुकूल अपनी (धियं महि) शोभा एवं आभाको अत्यधिक मात्रामें (वहन्ति) बढ़ाते हैं। ८९ (सोमरीणां हिरण्ये रथे) ऋषि सोमरिके सुवर्णमय रथके (कोशे) आसनपर (गोभिः) स्वरों के साथ अर्थात् गानांसहित (घाणः अज्यते) घाण नामक बाजा बजाया जाता है, (गो वन्धवः) गौके बंधु याने गौको अपनी वहन के समान आदर की दृष्टि से देखनेवाले (सु-जातासः) अच्छे कुल में उत्पन्न (महान्तः) और बड़े प्रभावशाली ये वीर (नः इपे) हमारे अन्न के लिए (भुजं) भोगों के लिए तथा (स्परसे) फुर्ती के लिए (नु) तुरन्त ही हमारे सहायक यवें।

भाषार्थ— ८७ इन वीरों की सेना जिस ओर मुड़ कर जाने लगती है और जिस दिशा में ये वीर दायु पर बहाई करते हैं, उसी ओर नानों स्वयं आकाश ही बिस्तृत एवं चौड़ा मार्ग बना दे रहा है, ऐसा प्रतीत होता है। ८८ तेजयुक्त, बलिष्ठ जीवनका बलिदान करनेवाले और सरल प्रकृतिकाले वीर अपनी शक्तिके अनुसार निज शोभा बढ़ाते हैं। ८९ सोमरी नामके विषयात् ऋषियोंके सुवर्णबध्नीत रथमें प्रमुख आसनपर बैठकर रमणीय गायनके स्वरोंसे वाद्य, बाजा बजाया जा रहा है, उस गानकी सुनकर गोलेवामें निरात एवं दबक परिवारमें उत्पन्न महान् वीर हमें अन्न, उपभोग तथा आभाह दे दें।

टिप्पणी— [८७] (१) वाहु-ओजसः = वाहुबलसे युक्त वीर। (२) स्वध = (तनूपु) निर्माण करना, बनाना, एकही भादि वीराना; त्वर्धांसु = बल, सामर्थ्य, शक्ति, बननेकी शक्ति, निर्माण करनेकी पुनश्चता, रचनाचातुरी। (३) आदिश-एक ही दिशामें प्रेरित करना, अम दिखाना, प्रहार करना, उपदेश करना, घोषणा करना। [८८] (१) अम-वान् = बलवान्, सश्रीय सेना-रचनेवाला। (२) वृष-प्लव = (वृष-प्लव) बलके समान पुष्ट शरीरवाला, वर्षा करनेवाला, जीवन देनेवाला। (३) अ-हुत-प्लव = अकुटिल, सरल प्रकृतिका। (४) प्लव = (प्लव = प्लव) दिसाई देना, प्रतीत होना, दृश्य, भावना, क्षीर। (५) स्व धा = अन्न, निज शक्ति, अपनी धारक शक्ति। [८९] (१) गोः = (गो) वाइ घाणी, स्वर, सामगान। (२) गोभिः घाणः अज्यते = भीड़े स्वरोंके साथ सामगान करते हुए घाण बाजा बजाते हैं। आहारोंके साथ वाद्य पर बजावकी क्रिया प्रचलित है। (३) गो-वन्धु = गौके भाई, गाय अपनी वहन हैं, ऐसा मान कर भ्रातृस्नेहसे

(९०) प्रति । वृः । वृषत्-अञ्जयः । वृष्णे । शर्धाय । मारुताय । भरध्वम् ।
ह्रव्या । वृषत्-प्रयात्ने ॥ ९ ॥

(९१) वृषणध्वेन । मरुतः । वृषत्-प्सुना । रथेन । वृषत्-नाभिना ।

आ । श्येनासः । न । पक्षिणः । वृथा । नरः । ह्रव्या । नः । वीतये । गत ॥ १० ॥

(९२) समानम् । अञ्जि । एषाम् । वि । भ्राजन्ते । रुक्मासः । अधि । वाहुषु ।
दधिद्युतति । ऋष्टयः ॥ ११ ॥

अन्वयः- ९० (हे) वृषत्-अञ्जयः । वः वृष्णे वृष-प्रयात्ने मारुताय शर्धाय ह्रव्या प्रति भरध्वं । ९१ (हे) नरः मरुतः । वृषत्-अभ्येन वृष-प्सुना वृष-नाभिना रथेन नः ह्रव्या वीतये, श्येनासः पक्षिणः न, वृथा आ गत । ९२ एषां अञ्जि समानं, रुक्मासः वि भ्राजन्ते, वाहुषु अधि ऋष्टयः दधिद्युतति ।

अर्थ- ९० (वृषत्-अञ्जयः ।) सोम को सम्मानपूर्वक अर्पण करनेवाले हे याजको ! तुम (वः) तुम्हारे समीप आनेवाले (वृष्णे) बलवान् तथा (वृष-प्रयात्ने) पैल के समान इलाते हुए जानेवाले (मारु-ताय) मरुतों के समुदाय के (शर्धाय) बल बढ़ाने के लिए (ह्रव्या प्रति भरध्वं) हविष्यान्न प्रत्येक को पर्याप्त मात्रा में प्रदान करो ।

९१ हे (नरः मरुतः !) नेहृत्वगुण से संपन्न वीर मरुतो ! (वृषत्-अभ्येन) बलिष्ठ घोड़ों से युक्त, (वृष-प्सुना) पैल के समान सुदृढ दिखाई देनेवाले (वृष-नाभिना) और प्रबल नाभि से युक्त (रथेन) रथसे (नः ह्रव्या) हमारे हविर्द्रव्यों के (वीतये) सेवनार्थ (श्येनासः पक्षिणः न) याज पंछियों की नाई वेगसे (वृथा आ गत) बिना किसी कष्ट के आओ ।

९२ (एषां) इन सभी वीरों का (अञ्जि) गणवेश (समानं) एकरूप है, इनके गले में (रुक्मासः) सुवर्ण के धने हुए सुन्दर हार (वि भ्राजन्ते) चमकते हैं और (वाहुषु अधि) भुजाओं पर (ऋष्टयः) हथियार (दधिद्युतति) प्रकाशमान हो रहे हैं ।

भाषार्थ- ९० शक्तिमान् तथा प्रतापी मरुतों को याजक वडे सम्मान एवं आदरसे इन्से परिपूर्ण वस्त्रदत्त पर्वोत्तरूपसे हैं । ९१ बलवान् घोड़ों से युक्त एवं सुदृढ रथ पर बैठकर हविष्यान्न के सेवनार्थ वीर वृष वहुत जल्द एवं वडे वेगसे हमारे समीप आ जायें । ९२ इन सभी वीरों की वेशभूषा में कहीं भी विभिन्नता का नाम तक नहीं थाया जाता है । इनके गणवेश की एकरूपता या समानता प्रेक्षणीय है । [देवो मंत्र ३०२ ।] सब के गलेमें समान रूपके हार पड़े हुए हैं और सभी के हाथों में सदा हथियार झिलमिल कर रहे हैं ।

इसकी सेवा करनेवाले । उसी प्रकार गायको मालवध समझनेवाले । (गो-भातरः) मंत्र १२५ देखिए । (४) सु-जातः कृकीन, प्रतिष्ठित परिवारमें उत्पन्न । (५) हिरण्ययः रथः = सुवर्णका बनाया रथ, सोनेके समान चमकीला रथ, जिसपर सुवर्णके कलाबच्च या नक्शीका काम किया हो । (६) स्परस् = स्फूर्ति, उत्साह, स्फुरण । (७) याणं = (घतसंख्याभिः हन्त्रीभिर्युक्तः) वीणाविशेषः इति सायणभाष्ये; क. १-८५-१०; १३२ । ज्ञात होता है, यह एक तरहका तन्तुवाद्य है, जो सौ तारोंसे युक्त है । जैसे सत्तार या सारंगी कई तारोंसे युक्त है, वैसे ही वाण बाजेमें १०० तारे होते हैं । [९०] (१) अञ्जु=तेल लगाना, दर्शाना, ज्ञाना, चमकना, सम्मान देना; अञ्जि = तेजस्वी, चमकीला, चंदनका रोला, आज्ञा करनेवाला (Commander), तेल, रंग से युक्त तेल, कुम्कुम, वीरों के भूषण (गणवेश), आदरपूर्वक दान, अर्पण । (२) वृषत्, वृषन् = पौरुषयुक्त, समर्थ, शक्तिसाली, प्रसुर, पैल, घोडा, वर्णकर्ता, इन्द्र, सोम । [९१] (१) रुक्म = सुवर्ण का हार, जिन पर किसी प्रकार की छाप दिखाई देती हो, उन्हें ' रुक्म ' कहते हैं । (२) भ्राष्टिः = दो धारवाली तलवार, कृपाण, भाला, चुकीका शस्त्र ।

(९३) ते । उग्रासः । धृपणः । उग्रयाहवः । नकिः । तन्नृपु । येतिरे ।

स्थिरा । धन्वानि । आयुधा । रथेषु । वः । अनीकेषु । अधि । श्रियः ॥ १२ ॥

(९४) येषाम् । अर्णः । न । सुप्रथः । नाम । त्वेषम् । शश्वताम् । एकम् । इत् । भुजे ।
ययः । न । पित्र्यम् । सहः ॥ १३ ॥

(९५) तान् । वन्दस्व । मरुतः । तान् । उप । स्तुहि । तेषाम् । हि । धुनीनाम् ।

अराणाम् । न । चरमः । तत् । एषाम् । दाना । म्हा । तत् । एषाम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—९३ उग्रासः धृपणः उग्र-याहवः ते तन्पु नकिः येतिरे, वः रथेषु स्थिरा धन्वानि आयुधा, अनीकेषु अधि श्रियः । ९४ अर्णः न, सु-प्रथः त्वेषं शश्वतां येषां नाम एकं इत् सहः, पित्र्यं ययः न, भुजे । ९५ तान् मरुतः वन्दस्व, तान् उपस्तुहि, हि धुनीनां तेषां, अराणां चरमः न, तत् एषां तत् एषां दाना म्हा ।

अर्थ— ९३ (उग्रासः) मनमें किंचित् भयका संस्कार करानेवाले, (धृपणः) यल्लिष्ट, (उग्र-याहवः) तथा सामर्थ्ययुक्त बाहुओंसे युक्त (ते) वे वीर मरुत् (तन्पु) अपने शरीरोंकी रक्षा करनेके कार्यमें (नकिः येतिरे) सुतरां प्रयत्न नहीं करते हैं । हे वीरो! (वः रथेषु) तुम्हारे रथोंमें (स्थिरा) अनेक अटल एवं दृढ़ (धन्वानि) धनुष्य तथा (आयुधा) कई हथियार हैं, अतएव (अनीकेषु अधि) सेना के अप्रमाणों में तुम्हें (श्रियः) विजयजन्य शोभा अलंकृत करती है । ९४ (अर्णः न) हलचलसे युक्त जलप्रवाहकी नाई (सु-प्रथः) शत्रुविपक्ष फैलनेवाले (त्वेषं) तेजःपूर्ण हंगका जो (शश्वतां येषां) इन शश्वत वीरोंका (नाम) यशो-घर्णन है, (एकं इत्) यही एकमात्र (सहः) सामर्थ्य देनेवाला है और (पित्र्यं ययः न) पितासे प्राप्त भद्र के समान (भुजे) उपभोगके लिए सर्वथैव योग्य है । ९५ (तान् मरुतः) उन मरुतोंका (वन्दस्व) अभिवादन करो, (तान् उपस्तुहि) उनकी सराहना करो, (हि) क्योंकि (धुनीनां तेषां) शत्रुओंको हिलानेवाले उन वीरोंमें (अराणां चरमः न) श्रेष्ठ एवं कनिष्ठ यह भेदभाव नहीं के बराबर है, अर्थात् सभी समान हैं और किसी भी प्रकारकी विपमता के लिए जगह नहीं है, (तत् एषां तत् एषां) इनके (दाना म्हा) दान पड़े महत्त्वपूर्ण होते हैं ।

भाषार्थ— ९३ वे वीर घड़े ही बलिष्ठ तथा उग्र हैं और इनकी भुजाओं में असीम बल एवं शक्ति विद्यमान है । दायुध से जूझते समय अपने प्राणों की भी पर्वाह वे नहीं करते हैं । इन के रथों में सुदृढ़ धनुष्य रखे जाते हैं, तथा हथियार भी पषीष्ठ मात्राओं रचे जाते हैं । यही कारण है कि, युद्धभूमि में वे ही हमेशा विजयी रहते हैं । ९४ जिस में वीरों के तेजस्वी तथा दाक्षत यश का बखान किया हो, यही काश्च शक्ति बढाने में सहायक होता है । यह जलके समान सभी जगह फैलनेवाला तथा धरोवी के जैसे भोग्य और स्फूर्तिदायक है । ९५ मरुतोंका अभिवादन करके उन की सराहना करनी चाहिये । सभी प्रकार के दायुधों को विकसित तथा विचलित करने की क्षमता इन वीरों में है । उनमें किसी प्रकारकी विपमता नहीं है, अतः कोई भी ऊँचा या नीचा मरुतों के संघ में नहीं पाया जाता है । सभी साम्राज्यस्वाकी अनुभूति पाते हैं । इनके दान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं ।

टिप्पणी [९३] (१) रथेषु स्थिरा धन्वानि = रथमें स्थायी एवं अटल धनुष्य रखे हुए हैं । वे धनुष्य बहुत प्रबल आकारवाले होते हैं और इनसे बाण बहुत दूर तक फेंके जा सकते हैं । दायुधोंसे काममें लानेयोग्य धनुष्य ' चक्र धनुष्य ' बड़े जाते हैं और इनमें तथा स्थिर धनुष्योंमें पषीष्ठ गिभिलता रहती है । (२) तन्पु नकिः येतिरे = सारीकी बिलकुल पर्वाह नहीं करते, उदाहरणार्थ, आयुधिक युगके Storm Troopers जैसे । [९५] (१) अरः = अर्थः = स्वामी, श्रेष्ठ, भाग्य । (२) चरमः = धनितम, हीन । समता- इस मंत्रमें धतलाया है कि, उनमें कोई न श्रेष्ठ है, न कनिष्ठ है, अर्थात् सभी समान हैं (तेषां अराणां चरमः न) यही भाव अधिक विस्तारपूर्वक मंत्र ३०५ तथा ४५३ में

(९६) सुभगः । सः । वः । ऊतिषु । आस । पूर्वांशु । मरुतः । विऽउंष्टिषु ।

यः । घा । नूनम् । उव । अमंति ॥ १५ ॥

(९७) यस्य । घा । युयम् । प्रविं । वाजिनः । नरः । आ । ह्व्या । धीतयं । गध ।

अभि । सः । घुम्नः । उव । वाजंसातिभिः । सुम्ना । वः । धृतयः । नशात् ॥ १६ ॥

(९८) यथा । रुद्रस्य । सूनयः । दिवः । वशन्ति । असुरस्य । धेषसः ।

युवानः । तथा । इत् । असत् ॥ १७ ॥

अन्वय.— ९६ (हे) मरुतः । उत पूर्वांशु व्युष्टिषु यः घा नूनं भसति सः वः ऊतिषु सुभगः आस ।

९७ (हे) धृतयः नरः ! यूपं यस्य वा याजिनः ह्वया धीतयं वा गध, स घुम्नः उत वाज-
सातिभिः वा सुम्ना अभि नशात् ।

९८ असुर-रस्य धेषसः रुद्रस्य युवानः सूनयः दिवः यथा वशन्ति तथा इत् असत् ।

अर्थ— ९६ हे (मरुतः ।) मरुतो ! (उत पूर्वांशु व्युष्टिषु) पहले के दिनों में (यः) जो (घा नूनं
भसति) तुम्हारा ही वनकर रहा, (सः) यह (वः ऊतिषु) तुम्हारी संरक्षण को आयोजनाओं से
सुरक्षित होकर सचमुच (सु-भगः आस) भाग्यशाली बन गया ।

९७ हे (धृतयः नरः !) शत्रुओं को विकम्पित कर देनेवाले धीर नेतागण ! (यूपं) तुम
(यस्य वा याजिनः) जिस अभयुक पुरुष के समीप विद्यमान (ह्वया) हविर्द्रव्यों के (धीतयं) सेव-
नार्थ (आ गध) भाते हो, (सः) यह (घुम्नः) रातों के (उत) तथा (वाज-सातिभिः) भद्र-
दानों के फलस्वरूप (वः सुम्ना) तुम्हारे सुरों को (अभि नशात्) पूर्ण रूपसे भोगता है ।

९८ (असुर-रस्य धेषसः) जीवन देनेवाले ज्ञानी (रुद्रस्य युवानः सूनयः) धीरभद्रके पुत्र
तथा युवा धीर मरुत् (दिवः) स्वर्ग से आकर (यथा) जैसे (वशन्ति) इच्छा करेंगे, (तथा इत्)
उसी प्रकार हमारा यथा (असत्) रहे ।

भाषार्थ— ९६ यदि कोई एक बार इन शीर्षों का अनुयायी बन जाए, तो सचमुच उसे भाग्यवान् समझने में कोई
आपत्ति नहीं । उस के भाग्य शुभ जायेंगे, इस में क्या संशय ?

९७ वे धीर त्रिय के अर्थ का सेवन करते हैं, वर रत्न, अन्न तथा सुगंधों से युक्त होता है ।

९८ दूरियों की रक्षा के लिए अपना जीवन देनेवाले नवयुवक वीर स्वर्गीय स्थान में से हमारे निवृत्त भा-
ग्य और हमारा आचरण भी उन की निगाह में अनुकूल एवं श्रेष्ठ बने ।

वचक किया है । उर्ध्व भी इस सम्बन्ध में देवता उचिन्त है । इस मंत्रभागका (उत्तराणां चरमः न) पद्य अर्थ है कि
जिस प्रकार चक्र के भागों में न कोई छोटा न कोई बड़ा होता है, वैसे ही धीर भी समान होते हैं और उच्यनीयता के
भागों से कोमो बुर रहते हैं । १३८ वे मंत्र में भी पहिले के भागों की ही उपमा दी है । [९६] (१) व्युष्टि =
(वि-उष्टि) = उपःकाल, पेश्यं, वैभवशालिता, स्तुति, कल, परीणाम । [९७] (१) घुम्नं = रत्न, दिव्य मन
(सु-मन), वेद, यज्ञ, शक्ति, धन, स्तूर्ति, अर्पण । (२) सुम्नं = (सु-मनः) सुख, आनन्द, स्रोत्र, संरक्षण, कृपा,
वज्र (देवो १० वे मंत्र की टिप्पणी) । (३) साति = दान, प्राप्ति, यथावत्ता, धन, विनाश, अन्न, दुःख । [९८]
(१) असुर = (असुर-र) जीवन देनेवाला, ईश्वर, (अ-सुरः) राक्षस, देव । (२) धेषसु = (वि-घा) ज्ञानी,
वाचक, कवि, निर्मोग करनेवाला, विधाता ।

(९९) ये । च । अर्हन्ति । मरुतः । सुऽदानवः । स्मत् । मीळुहृषः । चरन्ति । ये ।
 अतः । चित् । आ । नः । उप । वस्यसा । हृदा । युवानः । आ । ववृध्वम् ॥१८॥
 (१००) यूनः । ऊँ इति । सु । नविष्ठया । वृष्णः । पावकान् । अभि । सोभरे । गिरा ।
 गाय । गाःऽइव । चर्कपत् ॥१९॥
 (१०१) मुहाः । ये । सन्ति । मुष्टिहाऽइव । हव्यः । विश्वासु । पृत्सु । होतृषु ।
 वृष्णः । चन्द्रान् । न । सुश्रवःऽस्तमान् । गिरा । वन्दस्व । मरुतः । अह ॥२०॥

अन्यथा— ९९ ये सु-दानवः मरुतः अर्हन्ति, ये च मीळुहृषः स्मत् चरन्ति, अतः चित् (हे) युवानः ।
 वस्यसा हृदा न उप आ वा ववृध्वम् । १०० (हे) सोभरे ! यूनः वृष्णः पावकान् नविष्ठया गिरा
 चर्कपत् गाःइव सु अभि गाय । १०१ होतृषु विश्वासु पृत्सु हव्यः मुष्टि-हा इव सहाः सन्ति, वृष्णः
 चन्द्रान् न सु-श्रवस्तमान् मरुतः अह गिरा वन्दस्व ।

अर्थ— ९९ (ये) जो (सु-दानवः मरुतः) भली भाँति दान देनेवाले मरुतोंका (अर्हन्ति) सत्कार करते
 हैं (ये च) और जो (मीळुहृषः) उन दयासे पिघलनेवाले धीरों के अनुकूल (स्मत् चरन्ति) आचरण
 रपते हैं, हम भी ठीक उन्हींके समान यथांश रपते हैं, (अतः चित्) इसीलिये हे (युवानः !) नवयुवक
 धीरो ! (वस्यसा हृदा) उदार अन्तःकरणपूर्वक (नः) हमारी ओर (उप आ वा ववृध्वं) आगमन करके
 हमारी समृद्धि करो । १०० हे (सोभरे !) कृपि सोभरि ! (यूनः) युवक (वृष्णः) बलवान् तथा (पावकान्)
 पवित्रता करनेवाले धीरों को लक्ष्य में रखकर (नविष्ठया गिरा) अभिनव वाणीसे, स्वरसे, (चर्कपत्)
 खेत जोतनेवाला किसान (गाःइव) जिस प्रकार बैलों के लिए गाने या तराने कहता है, वैसे ही (सु
 अभि गाय) भली भाँति काव्य गायन करो । १०१ (होतृषु) शत्रु को चुनौती देनेवाले (विश्वासु पृत्सु)
 सभी सैनिकोंमें (हव्यः मुष्टि-हा इव) चुनौती देनेवाले मुष्टियोद्धा मल्लकी नाई (सहाः सन्ति) जो शत्रुदल
 के भीषण आक्रमणको सहन करनेकी क्षमता रखते हैं, उन (वृष्णः) बलिष्ठ (चन्द्रान् न) चन्द्रमाके समान
 आतन्द्रदायक (सु-श्रवस्तमान्) निर्मल यश स युक्त (मरुतः अह) मरुत् धीरों की ही (गिरा वन्दस्व)
 सराहना अपनी वाणी से करो ।

भाषार्थ— ९९ धीर मरुत् दानी हैं और करगामरी निगाह से सहायता करते हैं। वृँके हम उन का सरकार करते
 हैं, अतः ये धीर हमारे सभिय आ जायँ और हम पर अनुग्रह करें।

१०० इह चलाते समय जैसे काइरकार बैलों को तिसाने के लिये गाना गाता रहता है, वैसे ही युवक,
 बलिष्ठ एवं परिश्रमियों के वर्णों से युक्त क्षीमियों का गायन तुम करते रहो।

१०१ शत्रुओं पर धावा करनेवाले सभी सैनिकों में जिस भाँति मुष्टियोद्धा पहलवान अधिक बलवान्
 होता है उसी प्रकार सभी धीर शत्रुदल का आक्रमण बरदाश्त कर सकें। ऐसे बलिष्ठ, आतन्द्र बढ़ानेवाले तथा
 कीर्तिमान् धीरों की प्रशंसा करो।

टिप्पणी— [१००] इस मंत्र से यों जान पड़ता है कि, वैदिक युगमें खेतों में इक चलाते समय बैलों की यकान दूर
 करने के लिए गाने गाये जाते थे। ' नविष्ठया गिरा अभि गाय ' नये काव्य या गीत गाते रही। इससे स्पष्ट होता
 है कि, नये धीर वान्यों का सूत्रन हुआ करता था और ऐसे नरनिर्मित वीरगाथाओं का गायन भी हुआ करता था।
 सोभरि (देवो टिप्पणी ८३ मन्त्र पर)। [१०१] (१) मुष्टि-हा= वृँमा या मुक्के से लड़नेवाला (Boxer)।
 (२) होतृ = लड़नेवाला, लड़ने के लिए शत्रुको चुनौती या आह्वान देनेवाला, देवोंको यज्ञ में बुलानेवाला। (३)
 सहाः = सहनसक्तिसे युक्त, शत्रुकी बढ़ाई होनेपर अपनी जगह अटक रूपसे खड़े रहकर शत्रुको ही मार भगानेवाला धीर।

(१०२) गावः । चित् । घ । सऽमन्यवः । सऽजात्येन । मरुतः । सऽवन्धवः ।
रिहते । ककुभः । मिथः ॥२१॥

(१०३) मर्तः । चित् । वः । नृतवः । रुक्मऽवक्षसः । उप । भ्रातृस्त्वम् । आ । अयति ।
अधि । नः । गात । मरुतः । सदा । हि । वः । आपिस्त्वम् । अस्ति । निऽधुवि ॥२२॥

(१०४) मरुतः । मारुतस्य । नः । आ । भेषजस्य । वहत । सुऽदानवः ।
यूयम् । सखायः । सप्तयः ॥ २३ ॥

अन्वयः— १०२ (हे) स-मन्यवः मरुतः । गावः चित् स-जात्येन स-वन्धवः ककुभः मिथः रिहते घ ।

१०३ (हे) नृतवः रुक्म-वक्षसः मरुतः । मर्तः चित् वः भ्रातृत्वं उप आ अयति, नः अधि
गात, हि घः आपित्यं सदा नि-धुवि अस्ति ।

१०४ (हे) सु-दानवः सखायः सप्तयः मरुतः । यूयं नः मारुतस्य भेषजस्य आ वहत ।

अर्थ- १०२ हे (स-मन्यवः मरुतः !) असाही घीर मरुतो ! (गावः चित्) तुम्हारी माताएँ गौएँ
(स-जात्येन) एकही जाति की होने के कारण (स-वन्धवः) अपनेही ज्ञातियाँघरों को, बैलों को
(ककुभः) विभिन्न दिशाओं में जाने पर भी (मिथः रिहते घ) एक दूसरे को प्रेमपूर्वकही चाटती
रहती हैं ।

१०३ हे (नृतवः) नृत्य करनेवाले तथा (रुक्म-वक्षसः मरुतः !) मुहरों के द्वार छाती पर
धारण करनेवाले घीर मरुत् गण । (मर्तः चित्) मानव भी (वः भ्रातृत्वं) तुम्हारे भाईपन को (उप
आ अयति) पाने के लिए योग्य ठहरता है, इसीलिए (नः अधि गात) हमारे साथ रहकर गायन करो,
(हि) क्योंकि (घः आपित्यं) तुम्हारी मित्रता (सदा) हमेशा (नि-धुवि अस्ति) न टलने-
वाली है ।

१०४ हे (सु-दानवः) दानी, (सखायः) मित्रवत् वर्ताय रखनेवाले तथा (सप्तयः) सात
सात पुरुषों की एक पंक्ति बनाकर यात्रा करनेवाले (मरुतः !) घीर मरुतो ! (यूयं) तुम (नः) हमारे
लिए (मारुतस्य भेषजस्य) वायु में विद्यमान औषधि द्रव्य को (आ वहत) ले आओ ।

भावार्थ- १०२ मरुतों की माताएँ-गौएँ भले ही किसी भी दिशा में चली जाएँ, तो भी प्यार से एक दूसरे को
चाटने लगती हैं । (अधिभूत में) धीरों की दबाव आकार अपने भाइयों, बहनों पुत्र धीर पुत्रों और सभी धीरोंको प्यार
से गले लगाती हैं ।

१०३ घीर सैनिक हर्षपूर्वक नृत्य करनेवाले तथा कई भडंकार अपने वक्ष स्थल पर धारण करनेवाले
हैं । मानव को भी उनकी मित्रता पाना सुगम है, योग्यता बढ़ने पर वह मरुतों का साथी बन जाता है और यह
मित्रतापूर्ण सम्बन्ध एक बार स्थापित होने पर अटूट बना रहता है ।

१०४ ये घीर एक एक पंक्ति में सात सात इस तरह भिड़कर चलनेवाले हैं और अच्छे ढंग के उदारचेता
मित्र भी हैं । हमारा इच्छा है कि ये हमारे लिए वायुमंडल में विद्यमान औषधि को ले आयें ।

टिप्पणी- [१०४] (१) मारुतस्य भेषजं= वायुमें रोग हटानेकी ताक्ति है, इसी कारण वायु-परिचयनसे रोगसे
पीड़ित रक्षितोंको निरोगिताकी प्राप्ति हो जाती है । यहाँ पर सूचना मिलती है कि, वायुमें उचित समयसे रोग दूर किये
जा सकते हैं । वायुचिकित्साकी शलक इस मंत्रमें मिलती है । (२) सप्ति= षोडश, सात लोगोंकी यनी हुई पंक्ति, पुरा ।

- (१०५) याभिः । सिन्धुम् । अवय । याभिः । त्वर्थ । याभिः । दशस्यथ । क्रिविम् ।
 मयः । नः । भूत । ऊतिभिः । मयःऽभुवः । शिवाभिः । असचऽद्विपः ॥२४॥
- (१०६) यत् । सिन्धौ । यत् । असिक्न्याम् । यत् । समुद्रेषु । मरुतः । सुवर्हिपः ।
 यत् । पर्वतेषु । भेपजम् ॥ २५ ॥
- (१०७) विश्वम् । पश्यन्तः । विश्वम् । तन्नूपु । आ । तेन । नः । अधि । योचत ।
 क्षमा । रपः । मरुतः । आतुरस्य । नः । इष्कत । विऽहुतम् । पुनरिति ॥ २६ ॥

अन्वयः- १०५ (हे) मयो-भुवः अ-सच-द्विपः । याभिः ऊतिभिः सिन्धुं अवय, याभिः त्वर्थ, याभिः क्रिविं दशस्यथ, शिवाभिः नः मयः भूत ।

१०६ (हे) सु-वर्हिपः मरुतः । यत् सिन्धौ भेपजं, यत् असिक्न्यां, यत् समुद्रेषु, यत् पर्वतेषु ।

१०७ (हे) मरुतः । विश्वं पश्यन्तः तन्नूपु आ विश्वम्, तेन नः अधि योचत, नः आतुरस्य रपः क्षमा वि-हुतं पुनः इष्कत ।

अर्थ- १०५ हे (मयो-भुवः) सुख देनेवाले (अ-सच-द्विपः) एवं अजातशत्रु घोरौ ! (याभिः ऊतिभिः) जिन संरक्षक शक्तियों से तुम (सिन्धुं अवय) समुद्र की रक्षा करते हो, (याभिः त्वर्थ) जिन शक्तियों के सहारे शत्रु का विनाश करते हो, (याभिः) जिनकी सहायता से (क्रिविं दशस्यथ) जलकुंड तैयार कर देते हो, उन्हीं (शिवाभिः) कल्याणप्रद शक्तियोंके आधार पर (नः मयः भूत) हमें सुख देनेवाले बनो ।

१०६ हे (सु-वर्हिपः मरुतः) उत्तम तेजस्वी घोर मरुतो ! (यत्) जो (सिन्धौ भेपजं) सिन्धु-नद में औपधिद्रव्य है, (यत् असिक्न्यां) जो असिक्नी के प्रवाह में है, (यत् समुद्रेषु) जो समुद्र में है और (यत् पर्वतेषु) जो पर्वतों पर है, वह सभी औपधिद्रव्य तुम्हें विदित है ।

१०७ हे (मरुतः) घोर मरुतो ! (विश्वं पश्यन्तः) सब कुछ देखनेवाले तुम (तन्नूपु) हमारे शरीरोंमें (आ विश्वम्) पुष्टि उत्पन्न करो और (तेन) उस ज्ञानसे (नः अधि योचत) हमसे बोलो; इसी प्रकार (नः आतुरस्य) हम में जो यीमार हो, उसके (रपः क्षमा) दोष की क्षांति करके (विहुतं) दृष्टे हुए अवयव की (पुनः इष्कत) फिर से ठीक विठाओ ।

भाषार्थ- १०५ वे घोर अपनी शक्तियों से समुद्र एवं नदियों की रक्षा करते हैं, शत्रुओं को मरिचामेद कर देते हैं, जगता को पानी पीने को मिले, इसलिए सुविधाएँ पैदा कर देते हैं और सभी लोगों की सुविधा का प्रबन्ध कर सकते हैं । १०६ सिन्धु, असिक्नी, समुद्र तथा पर्वतों पर जो रोगनिवारक औषधि हैं, उन्हें जानना घोरों के लिए अनिवार्य है । १०७ वे घोर विक्रिसा करनेवाले कविराज या वैद्य हैं और विश्व भोषणियोंसे भली गाँति परिचित हैं । वे हमें पुष्टिकारक औषध प्रदान कर छष्टपुष्ट बना दें । जो कोई रोगग्रस्त हो, उसके शरीर में पाये जानेवाले दोष को हटाकर और त्रिप्रविष्टिद्वय अंग को फिर ठीक प्रकार से जोड़कर पहले जैसे कार्यक्षम बना दें ।

टिप्पणी- [१०५] (१) सिन्धुं अवय = समुद्र का रक्षण करते हो (क्या मरुत दिव्य शक्ति बेटे पर नियुक्त या जल सेना के अधिकारी हैं ?) (२) अ-सच-द्विपः = वे घोर स्वयं ही जितों का भी श्रेय नहीं करते हैं, अतः इन्हें अजातशत्रु कहा है । (३) क्रिविं = चमड़े की थैली, कुर्माँ, जल भरा थैला, पानी का घतन । [१०६] (१) सु-वर्हिपः = सरप उच्चम कलाप धारण करनेवाले, अच्छे वस्त्र करनेवाले । (मंत्र १३८ देखो) । [१०७] (१) वि-हुतं इष्कत = लक्ष्य में पायक हुए सैनिकों की प्रापतिक सेवादहल काके, मरहमपही आदि करना यहाँ पर सूचित है । वनस्पतियों की सहायता से उपयुक्त चिकित्सा-कार्य करना है । निजला हो मंत्र देखिए ।

गोतमपुत्र नोधा ऋषि (ऋ० १६४१-१५)

(१०८) वृष्णे । शर्धाय । सुमखाय । वेघसे । नोधः । सुवृक्तिम् । प्र । भर । मरुत्सभ्यः ।
अपः । न । धीरः । मनसा । सुहृत्स्यः । गिरः । सम् । अञ्जे । विदथेषु । आऽभुवः ॥ १ ॥

(१०९) ते । जज्ञिरे । दिवः । ऋष्यासः । उक्षणः । रुद्रस्य । मर्याः । असुराः । अरेपसः ।
पावकासः । शुचयः । सूर्याऽश्च । सत्वानः । न । द्रप्सिनः । घोरऽवर्षसः ॥ २ ॥

अन्वयः— १०८ (हे) नोधः । वृष्णे सु-मखाय वेघसे शर्धाय मरुत्सभ्यः सु-वृक्तिं प्र भर, धीरः सु-हृत्स्यः मनसा, विदथेषु आ-भुवः गिरः, अपः न, सं अञ्जे ।

१०९ ते ऋष्यासः उक्षणः असुराः अ-रेपसः पावकासः सूर्याश्च शुचयः द्रप्सिनः सत्वानः न घोर-वर्षसः रुद्रस्य मर्याः दिवः जज्ञिरे ।

अर्थ— १०८ हे (नोधः !) नोधनामक ऋषे । (वृष्णे) बल पाने के लिए, (सु-मखाय) यज्ञ भली भाँति हों, इस हेतु से, (वेघसे) अच्छे ज्ञानी होने के लिए और (शर्धाय) अपना बल यज्ञाने के लिए (मरुत्सभ्यः) मरुतों के लिए (सु-वृक्तिं प्र भर) उत्कृष्टतम काव्यों की यथेष्ट निर्मित करो, (धीरः) बुद्धिमान् तथा (सु-हृत्स्यः) हाथ जोड़कर मैं (मनसा) मन से उनकी सराहना कर रहा हूँ और (विदथेषु आ-भुवः) यहाँ मैं प्रभावयुक्त (गिरः) वाणियों की (अपः न) जल के समान (सं अञ्जे) वर्षा कर रहा हूँ अर्थात् उनके काव्यों का गायन करता हूँ ।

१०९ (ते) वे (ऋष्यासः) ऊँचे, (उक्षणः) यज्ञे (असुराः) जीवन का वान करनेवाले, (अ-रेपसः) पापरहित, (पावकासः) पवित्रता करनेवाले, (सूर्याऽश्च शुचयः) सूर्य की नाईं तेजस्वी, (द्रप्सिनः) सोम पानेवाले और (सत्वानः न घोर-वर्षसः) सामर्थ्ययुक्त लोगों के जैसे घृहदाकार शरीरवाले (रुद्रस्य मर्याः) मानों रुद्र के मरणधर्मा धीर (दिवः) स्वर्ग से ही (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए ।

भावार्थ— १०८ बल, उत्तम कर्म, ज्ञान तथा सामर्थ्य अपने में बडे हस्तलिपि धीर मरुतों के काव्य रचने चाहिये और सार्वजनिक सभाओं में उनका गायन करना उचित है ।

१०९ उच्च, महाशू, विश्व के हितार्थ अपने प्राणों का भी न विमरुते हुए बलिदान करनेवाले, निष्पाप, सभी जगह पवित्रता फैलानेवाले वेजस्वी, सोमपान करनेवाले, बलिष्ठ और प्रचंड देहधारी ये धीर मानों स्वर्ग से ही इस शून्यत्व पर उतर पडे हों ।

टिप्पणी— [१०८] (१) नोधस् = [उ-स्तुतौ] काव्य करनेवाला, कवि, एक ऋषि का नाम । [१०९] (१) ऋष्य = ऊँचे विचार मन में रखनेवाले, भय, उच्च पदपर रहनेवाले । (२) द्रप्सिनः = (द्रप्सः = सोम) जो अपने सनीप सोम रखते हों, वे ' द्रप्सिनः ' (Drops) । मंत्र ६१ देखिए ।

(११०) युवानः । रुद्राः । अजराः । अमोक्हनः । चक्षुः । अधिःगावः । पर्वताः इव ।
दृब्हा । चित् । विश्वा । भुवनानि । पार्थिवा । प्र । च्यवयन्ति । दिव्यानि । मज्मना ॥ ३ ॥
(१११) चित्रैः । अज्जिभिः । वपुषे । वि । अज्जते । वक्षःसु । रुक्मान् । अधि । येतिरे । शुभे ।
अंसेपु । एषाम् । नि । मिमृशुः । ऋष्यः । साकम् । जशिरे । स्वधया । दिवः । नरः ॥ ४ ॥

अन्वयः- ११० युवानः अ-जराः अ-मोक्-हनः अधि-गावः पर्वताः इव रुद्राः चक्षुः, पार्थिवा दिव्यानि विश्वा भुवनानि दृब्हा चित् मज्मना प्र च्यवयन्ति । १११ वपुषे चित्रैः अज्जिभिः वि अज्जते, वक्षःसु शुभे रुक्मान् अधि येतिरे, एषां अंसेपु ऋष्यः नि मिमृशुः, नरः दिवः स्व-धया साकं जशिरे ।

अर्थ- ११० (युवानः) युवकदशा में रहनेवाले (अ-जरा) वृद्धापेसे अछूते (अ-मोक्-हनः) अनुदार रूपों को दूर करनेवाले (अधि-गावः) आगे बढ़नेवाले (पर्वताः इव) पहाड़ोंकी भाँति अपने स्थान पर अटल रूपसे खड़े रहनेवाले (रुद्राः) शत्रुओंको खलानेवाले ये वीर लोगोंको सहायता (चक्षुः) पहुँचाते हैं; (पार्थिवा) पृथ्वी पर पाये जानेवाले तथा (दिव्यानि) घुलोकमें विद्यमान (विश्वा भुवनानि) सभी लोक (दृब्हा चित्) कितने भी स्थिर हों, तो भी उन्हें ये (मज्मना) अपने बलसे (प्र च्यवयन्ति) अपदस्थ कर देते हैं, विचलित कर डालते हैं । १११ (वपुषे) शरीरकी सुन्दरता बढ़ानेके लिए (चित्रैः अज्जिभिः) भाँति भाँतिके आभूषणों-द्वारा वे (वि अज्जते) विशेष ढंगसे अपनी सुपमा धृष्टिगत कर देते हैं । (वक्षःसु) छातियों पर (शुभे) शोभा के लिए (रुक्मान्) सुवर्ण के बनाये हारों को (अधि येतिरे) धारण करते हैं । (एषां अंसेपु) इन मरुतोंके कंधों पर (ऋष्यः नि मिमृशुः) हथियार चमकते रहते हैं । (नरः) ये नेताके पद पर अधिकृत वीर (दिवः) घुलोकसे (स्व-धया साकं) अपने बलके साथ (जशिरे) प्रकट हुए ।

भावार्थ- ११० सदैव नवयुवक, बुढ़ापा जाने पर भी नवयुवकों जैसे उमंगभरे, कंप्य तथा स्वार्थी मानकों अपने समीप न रहने देनेवाले, किसी भी रक्षावट के सामने शीघ्र न सुड़ाने हुए प्रतिपठ भागे ही बढ़नेवाले, पर्वत की भाँति अपनी जगह अटल खड़े हुए, शत्रुदलको विपणित करनेवाले ये वीर जनताकी संपूर्ण सहायता करनेके लिए हमेशा सिद्ध रहते हैं । पृथ्वी या स्वर्गमें पाये जानेवाली सुदृढ चीजोंकी भी ये अपने बलसे हिला देते हैं, (तो फिर शत्रु इनके सामने धरधर काँपने लगेंगे, तो कौन आश्चर्यकी बात है ?) १११ वीर मरुत गहनेसे अपने शरीर सुतोभित करते हैं, वक्षः-रथकों पर सुहारोंके हार रख देते हैं, कंधों पर चमकीले आभूषण धर देते हैं । ऐसी दशा में उन्हें देखने पर ऐसा प्रतीत होने लगता है कि मानों ये स्वर्गमेंसे ही अपनी अतुलनीय शक्तियों के साथ इस भूमंडल में उतर पड़े हों ।

[११०] (१) अ-जराः = युव न होनेवाले अर्थात् अवस्था में बुढ़ापा जाने पर भी नवयुवकों की तरह भाँति उमंग से कार्य करनेवाले, बुढ़ापे में भी युवकों के उत्साह से काम में जुड़नेवाले । (२) अ-मोक्-हनः = जो उष-भोग सुखों को मिलने चाहिये, उनका अपहरण करके स्वयं ही पाने की चेष्टा करनेवाले एवं समाज के लिए निष्पयोगी मानकोंको दूर करनेवाले । (हन् = [हिसागत्योः] यहाँ पर गति बतलानेवाला अर्थ लेना ठीक है ।) (३) अधि-गुः = अवाध रूप से चढ़ाई करनेवाले, किसी भी रक्षावट या अडचन की ओर भ्राम न देनेवाले और शत्रुदल पर धाराधर धावा करनेवाले । (४) पर्वताः इव (स्थिराः) = यदि शत्रु ही प्रारम्भ में आक्रमण कर बैठे तो भी अपने निर्धारित स्थानों पर अटल भाव से सटे रहनेवाले अतएव शत्रुदल की चढ़ाई से अपनी जगह छोड़कर पीछे न हटनेवाले । (५) पार्थिवा दिव्यानि विश्वा भुवनानि दृब्हा चित् मज्मना प्र च्यवयन्ति = भूमि पर के तथा पर्वत-शिखरों पर विद्यमान सुदृढ दुर्गलक की अपनी अद्भुत सामर्थ्य से हिला देते हैं । ऐसी असी शक्ति के रहते यदि ये शत्रुओं को भी विचलित कर दालें, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं । बेशक, दुश्मन उनके सामने सटे रहने का मौका, भाँते ही धरधर काँप उठेंगे । देखो भंग १२६ । [१११] (१) ऋष्यः नि मिमृशुः = पशु भाँले या कुंदा जो कुट भी दास्य वे धारण करते हैं, उन्हें ठीक तरह साफ सुपरां रखकर तथा परिष्कृत करके रखते हैं, अतः वे चमकीले दीख

(११२) ईशान-कृतः । धुनयः । रिशार्दसः । वातान् । पिन्दुतः । तविपीभिः । अकृत ।
 दुहन्ति । ऊधः । दिव्यानि । धृतयः । भूमिम् । पिन्वन्ति । पर्यसा । परिऽजयः ॥५॥
 (११३) पिन्वन्ति । अपः । मरुतः । सुऽदानवः । पर्यः । घृतऽन्त । विदथेषु । आऽभुवः ।
 अत्यम् । न । मिहे । वि । नयन्ति । वाजिनम् । उरसम् । दुहन्ति । स्तनयन्तम् । अक्षितम् ॥६॥

अन्वयः— ११२ ईशान-कृतः धुनयः रिश-अदसः तविपीभिः वातान् विद्युत अकृत, परि-जय धृतयः दिव्यानि ऊध दुहन्ति, भूमि पर्यसा पिन्वन्ति । ११३ सु-दानवः आ-भुवः मरुतः विदथेषु घृतवत् पपः अपः पिन्वन्ति, अत्यं न वाजिनं मिहे वि नयन्ति, स्तनयन्तं उरसं अ-क्षित दुहन्ति ।

अर्थ— ११२ (ईशान-कृतः) स्वामी तथा अधिकारीवर्ग का निर्माण करनेवाले, (धुनयः) शत्रुदल को हिलानेवाले, (रिश-अदस) हिंसा में निरत विरोधियों का विनाश करनेवाले, (तविपीभि) अपनी शक्तियों से (वातान्) वायुओं को तथा (विद्युत) विजलियों को (अकृत) उत्पन्न करते हैं । (परि-जय) चतुर्विध वेगपूर्वक आक्रमण करनेवाले तथा (धृतयः) शत्रुसेना को विकंपित करनेवाले ये घोर (दिव्यानि ऊधः) आकाशस्थ मेघों का (दुहन्ति) दौहन करते हैं और (भूमि पर्यसा पिन्वन्ति) यथेष्ट वर्षाद्वारा भूमि को तृप्त करते हैं ।

११३ (सु-दानव) अच्छे दानवी, (आ-भुवः) प्रभावशाली (मरुतः) घोर मरुतों का संघ (विदथेषु) यहाँ एवं युद्धस्थलों में (घृतवत् पर्य) घी के साथ दूध तथा (अपः पिन्वन्ति) जल की समृद्धि करते हैं, (अत्यं न) घोड़े को सिराते समय जैसे घुमाते हैं, वीक जैसे ही (वाजिन) बलयुक्त मेघों का (मिहे) वर्षा के लिए वे (वि नयन्ति) विशेष ढंग से ले चलाते हैं, चलाते हैं और तदुपरान्त (स्तनयन्तं उरसं) गरजनेवाले उस झरने का-मध का (अक्षित दुहन्ति) अक्षय रूप से दौहन करते हैं ।

भावार्थ— ११२ राष्ट्र के शासन की वागडोर हाथ में लेनेवाले, शासकों के वर्ग को अस्तित्व में लानेवाले, शत्रुओं को विचलित करनेवाले, कष्ट देनेवाले शत्रुसैन्य को जड़ मूल से उखाड़ देनेवाले, अपनी शक्तियों से चारों ओर बढ़े वेग से दुश्मनों पर धावा करनेवाले तथा उन्हें नीचे धकेलनेवाले ये घोर वायुप्रवाह, विद्युत एवं वर्षा का सृजन करते हैं । ये ही मेघों को दुहकर भूमि पर वर्षारूपी दूध का सेषा करत हैं ।

११३ उदारधी तथा प्रभावशाली ये घोर मरुत यज्ञों में घृत, दुग्ध तथा जल की यथेष्ट समृद्धि कर देते हैं और घोड़ों को सिराते समय जिस ढंग से उन्हें चलाते हैं, वैसे ही अन्न के उत्पादन में सहायता पहुँचानेवाले मेघदूध को निश्चित राहसे बलात हैं । उस मेघलमूहरूपी मूहदाकार जलकुंड से दानवी प्रजाद अखिरत रूपसे प्रयत्नित कर देते हैं ।

पढ़ते हैं । यह वर्णन ध्वानपूर्वक पढ़ लेना चाहिए और पाठक सोचें कि, वर्तमानकाल में सैनिक एवं उनके अधिकारी जिस ढंगसे रहते हैं । पाठकोको शात होगा कि, यहाँ पर सैनिकोंका ही वर्णन किया है । देखिए 'अजि' शब्द मंत्र १०१ [११२] (१) ईशान-कृत = (King-makers) राष्ट्र पर प्रभुत्व प्रस्थापित करने की क्षमता से युक्त अधिकारी या शासकवर्ग का निर्माण करनेवाले, विध्वन्ता की आघोषना करनेवाले । अथर्ववेदमे ३।५।७ में 'राज एत' पद इसी अर्थ की सूचना देता है । (२) दिव्यानि ऊधः दुहन्ति भूमि पर्यसा पिन्वन्ति = दिव्य स्तनों का दौहन करके भूमिदल पर दूध की वर्षा करते हैं । (दिव्य ऊध = मेघ, पर्य = दूध या जल) । (३) धुनयः, धृतयः - हिलानेवाले, शत्रु को उसकी जगह से हटानेवाले, दुश्मनों का उच्चाटन करनेवाले । (४) परि-जय = (परि-जि) = दुश्मनों पर चढ़ें और चढाई करनेवाले, चारों ओर फैलनेवाले । (जि जये = विजय पाना, शत्रु को परास्त करना) । (५) रिश-अदस = (रिश + अदस) = (रिश्) हिंसक, हत्यारे शत्रुको (अदस) खा जानेवाले, शत्रु का विनाश करनेवाले । [११३] आ-भुवः = (आ भू) प्रभाव प्रस्थापित करना । (मंत्र ३३ में 'अभ्व.' पद देखिए) ।

(११४) महिपासः । मायिनः । चित्रभानवः । गिरयः । न । स्वऽर्जवसः । रघुऽस्यदः ।
 मृगाऽइव । हस्तिनः । खादथ । वना । यत् । आरुणीषु । तविपीः । अपुंग्वम् ॥७॥
 (११५) सिंहाऽइव । नानदति । प्रऽचेतसः । पिशाऽइव । सुऽपिशाः । विश्वऽवेदसः ।
 क्षपः । जिन्वन्तः । पृपतीभिः । ऋष्टिभिः । सम् । इत् । सऽवाधः । शवसा । अहिऽमन्यवः ॥८॥

अन्यवः- ११४ महिपासः मायिनः चित्र-भानवः गिरयः न स्व-तवसः रघु-स्यदः हस्तिनः मृगाःइव
 घना खादथ, यत् आरुणीषु तविपीः अयुग्वम् ।

११५ प्र-चेतसः सिंहाऽइव नानदति, पिशाऽइव सु-पिशाः विश्व-वेदसः क्षपः जिन्वन्तः
 शवसा अ-हि-मन्यवः पृपतीभिः ऋष्टिभिः स-वाधः सं इत् ।

अर्थ- ११४ (महिपासः) बड़े, (मायिनः) निपुण कारीगर, (चित्र-भानवः) अत्यन्त तेजस्वी (गिरयः
 न) पर्वतों के समान (स्व-तवसः) अपने निजी बल से स्थिर रहनेवाले, परन्तु (रघु-स्यदः) वेगपूर्वक
 जानेवाले तुम (हस्तिनः मृगा इव) हाथियों एवं मृगों के समान (घना खादथ) घनों को खा जाते हो-
 तोडमरोड बूते हो, (यत्) क्योंकि (आरुणीषु) लाल घर्णवाली घोड़ियों में से (तविपीः) बलिष्ठों कोही
 (अयुग्वम्) तुम रथों में लगा देते हो ।

११५ (प्र-चेतसः) ये उत्कृष्ट ज्ञानी धीर (सिंहाऽइव) सिंहों के समान (नानदति)
 गर्जना करते हैं । (पिशाऽइव सु-पिशाः) आभूषणों से युक्त पुरुषोंकी भाँड़े सुहानेवाले, (विश्व-वेदसः)
 सब घनों से युक्त होकर (क्षपः) शत्रुबल की धजियाँ उडानेवाले, ((जिन्वन्तः) लोगोंको संतुष्ट करने-
 वाले, (शवसा अ-हि-मन्यवः) बलयुक्त होनेके कारण जिनका उरसाह घट नहीं जाता, ऐसे ये धीर
 (पृपतीभिः) धम्येवाली घोड़ियों के साथ और (ऋष्टिभिः) हथियारों के साथ (स-वाधः) पीडित
 जनता की और उसकी रक्षा करने के लिए (सं इत्) नुरन्त इकट्ठे होकर चले जाते हैं ।

भावार्थ- ११४ ये धीर मरु बड़े भारी कुशल, तेजस्वी, पर्वतकी भाँड़े अपनी सामर्थ्य के सहारे अपनी जगह स्थिर
 रहनेवाले पर शत्रुओंपर बड़े वेगसे हमला करनेवाले हैं और मरुवाले राजराज की भाँड़े घनोंको कुचलने की क्षमता रखते
 हैं । लाल घोड़ियों के झुड़में से ये केवल बलयुक्त घोड़ियोंको ही अपने रथों में जोड़ने के लिए चुन लेते हैं ।

११५ ये ज्ञानी धीर सिंहकी भाँड़े दहाड़ते हुए घोपणा करते हैं । आभूषणों से बनेरने दीख पड़ते हैं । सब
 प्रकार के धन एवं सामर्थ्य बटोरकर और शत्रुबल की धजियाँ उडाकर ये सज्जनों का समाधान करते हैं । इनमें असीम
 बल विद्यमान है, इसलिए इनका उरसाह कभी घटताही नहीं । भौंभिभौंति के अन्धे हथियार साथ में रखकर पीडित
 प्रजाका दुःख हरण करने के लिए ये धीर एकत्रिन बन अत्याचारी शत्रुओंपर चढाई कर बैठते हैं ।

टिप्पणी- [११४] (१) महिपासः = बड़ा, बड़े शरीरवाला, भैंसा । [(२) मायिनः = कुशलतापूर्वक कार्य करने-
 वाला, सिद्धहस्त, उलकपटसे शत्रु पर हमले करनेमें निपुण । (३) रघु-स्यदः = (रघु स्वद) = पैरोंकी आइट न मुनाई
 दे, इतने वेगसे जानेवाला, शत्रुके भनजाने उसपर धावा करनेवाला । [११५] (१) प्रचेतसः = विशेष ज्ञानी (देखो
 मंत्र ४४) । (२) पिशाः = अलंकार, शोभा, सु-पिशाः = सुरूप । (३) विश्व-वेदसः = सभी प्रकारके घनोंसे युक्त, सर्वज्ञ ।
 (४) क्षपः = शत्रुबलको मटियामेट करनेवाले । (५) जिन्वन्तः = तृप्ति करनेवाले । (६) शवसा अ-हि- मन्यवः
 बल वधेद मात्रा में विद्यमान है, इसलिए (अ हीन-मन्यवः) निरुसाही न बननेवाले । (७) पृपतीभिः ऋष्टिभिः
 स-वाधः सं इत् (रक्षितं गच्छन्ति) = सुशोभित (पकड़ने की जगह या लकड़ियों पर धम्ये रहने से) शत्रुब
 साथ के दुःखी जनता के निकट जाकर उनकी रक्षा करते हैं ।

(११६) रोदसी इति । आ । वदत । गणधियः । नृसाचः । शूराः । शयसा । अहिमन्यवः ।
 आ । चन्धुरेषु । अमतिः । न । दुर्ज्ञता । विद्युत् । न । तस्थौ । मरुतः । रथेषु । वः ॥९॥
 (११७) विश्ववेदसः । रथिभिः । समञ्जोकसः । सममिश्रासः । तविपीभिः । विरप्तिनः ।
 अस्तारः । इषुम् । दधिरे । गभस्त्योः । अनन्तशुष्माः । वृषखादयः । नरः ॥१०॥

अन्वयः— ११६ (हे) गण-धिय नृ-साच शूरा शयसा अ-हि-मन्यव मरुत ! रोदसी आ वदत
 चन्धुरेषु रथेषु, अमति न, दर्शता विद्युत् न, घ आ तस्थौ ।

११७ रथिभि विश्व-वेदस सम-ओकस तविपीभि सम-मिश्रास वि-रप्तिन अस्तार
 अन्-अन्त-शुष्मा वृष-खादय नरः गभस्त्योः इषु दधिरे ।

अर्थ— ११६ हे (गण धियः) समुदाय के कारण सुहानेवाले, (नृ साच) लोगों की सेवा करनेवाले,
 (शूराः) धीर, (शयसा अ-हि-मन्यव) अत्यधिक धके कारण न घटनेवाले उत्साहसे युक्त (मरुतः !)
 धीर मरुतो ! (रोदसी आ वदत) भूलल एवं सुलोक को अपनी दहाह से भर दो, (चन्धुरेषु रथेषु) जिन
 में बैठने के लिए अच्छी जगह है, ऐसे रथों में (अमतिः न) निर्मल रूपवालों के समान तथा (दर्शता
 विद्युत् न) दर्शन करनेयोग्य बिजली की नाई (घ) तुम्हारा तेज (आ तस्थौ) फैल चुका है ।

११७ (रथिभिः विश्व वेदसः) अनेक धनों से युक्त होनेके कारण सर्वधनयुक्त, (सम ओकस)
 एकही धर्म रहनेवाले (तविपीभिः सम-मिश्रासः) भौति भौति के बलों से युक्त, (वि-रप्तिन) विशेष
 सामर्थ्यवान्, (अस्तार) शत्रुसेनापर अख फँस देनेवाले, (अन्-अन्त शुष्माः) असीम सामर्थ्यवाले,
 (वृष खादयः) बड़े बड़े आभूषण धारण करनेवाले, (नरः) नेतृत्वगुणसे विभूषित धीर (गभस्त्योः)
 बाहुओंपर (इषु दधिरे) घाण धारण कर रहे हैं ।

भाषार्थ— ११६ धीर मरुत् जब गणवेत्ता (वरही) पहनते हैं, तो बड़े प्रेक्षणीय आन पढ़ते हैं । इनमें धीरता कृपूटनर
 भरी है और जनताकी सेवा करने का मानों इन्हीं ने प्रगता लिया है । पर्याप्त रूप से बलवान् है, अत इनकी डमग
 कमी घटती ही नहीं । जब वे अपने सुतोभिर्त रथोंपर जा बैठते हैं, तो दामिनीकी दमकरी नाई तेजस्वी दिप्राई बते हैं ।

११७ विविध धन समीप रखनेवाले, एकही धर या निग्रामस्थानमें रहनेवाले, विभिन्न शक्तिपंसे युक्त,
 शत्रुसेनापर अग्र फरनेवाले जो भारी गहने पहनते हैं, ऐसे धीर नेता कर्षोंपर घाण तथा तरकस धारण करते हैं ।

टिप्पणी [११६] (१) गण-धिय = सामूहिक पहनावा पहनने के कारण सुहानेवाले । (२) नृ-साच =
 मानवों की सेवा करनेवाले । (३) शयसा अ-हि-मन्यवः = दर्पो पिच्छा मग्न । (४) चन्धुरः रथः = जिस में
 बैठनेकी जगह हो, ऐसा रथ । (५) चन्धुर (चन्धुर) = प्रेक्षणीय, शोभायुक्त, सुखकारक, सुरा हुआ । (६) अमति =
 आकार, रूप, तेजस्वित्वा, प्रकाश, समय । [११७] (१) सम-ओकस = एक धरमें (बैरक Barrack) रहनेवाले
 धीर सैनिक । [दितो मग्न ३२१, ३४५, ४४७] (२) रथिभि विश्व वेदस = अपने समीप बहुत प्रकारके धन विद्यमान
 हैं, इसलिये विविध-धनसम्पन्न । (३) तविपीभि समिश्रास, अनन्तशुष्मा = बलवान्, सामर्थ्य से परिपूर्ण ।
 (४) वृष खादयः = सोमरससे साथ खानेकी चीजें खानेवाले (सायन) [मग्न १५० दधिरे] । (५) गभस्त्यो इषु
 दधिरे = रथप्रदेशपर तृणोंर धारण करते हैं । (६) विरप्तिन = विशेष सामर्थ्य से युक्त ।

(११८) हिरण्ययोभिः । पवित्रभिः । पयःशुद्धः । उत् । जिघ्रन्ते । आशुपथ्यः । न । पर्वतान् ।
 मखाः । अयासः । स्वःसृतः । ध्रुवःशुद्धः । दुध्नःशुद्धः । मरुतः । भ्राजत्ःशुद्धः ॥११॥
 (११९) घृपुम् । पावकम् । वनिनम् । विश्वर्षणिम् । रुद्रस्य । सनुम् । ह्यसा । गृणीमसि ।
 रजःशुद्धम् । तवसम् । मारुतम् । गणम् । ऋजीपिणम् । वृषणम् । सश्रत् । श्रिये ॥१२॥

अन्वय — ११८ पयो-शुद्धः मखाः अयासः स्व-सृतः ध्रुवःशुद्धः दु-ध्न-शुद्धः भ्राजत्-शुद्धः मरुतः आ-पथ्यः न पर्वतान् हिरण्ययोभिः पवित्रभिः उत् जिघ्रन्ते । ११९ घृपुं पावकं वनिनं विश्वर्षणिं रुद्रस्य सनुं ह्यसा गृणीमसि, श्रिये रजस्-शुद्धं तवसं वृषणं ऋजीपिणं मारुतं गणं सश्रत् ।

अर्थ- ११८ (पयो शुद्धः) शुद्ध पीकर पुष्ट बननेवाले, (मखाः) यज्ञ करनेवाले, (अयासः) भागे जानि-याले, (स्व-सृतः) स्वेच्छापूर्वक हलचल करनेवाले, (ध्रुव-शुद्धः) अटल रूप से खड़े शत्रुओं को भी हिलानेवाले, (दु-ध्न-शुद्धः) दूसरों से न पकड़ने तथा घेरे जानेवाले तथा (भ्राजत् शुद्धः) तेजस्वी हृदयार साथ रखनेवाले (मरुतः) धीर मरुत् (आ-पथ्यः न) चलनेवाला जिस तरह राह में पड़ा हुआ तिनका दूर फेंक देता है, ठीक वैसे ही (पर्वतान्) पहाड़ोंतक को (हिरण्ययोभिः पवित्रभिः) स्वर्ण-मय रथों के पहियों से (उत् जिघ्रन्ते) उड़ा देने हैं ।

११९ (घृपुं) शुद्धके संघर्षमें चतुर, (पावकं) पापयत्ना करनेवाले, (वनिनं) जंगलोंमें घूमनेवाले, (विश्वर्षणिं) विशेष ध्यानपूर्वक हलचल करनेवाले, (रुद्रस्य सनुं) महावीरके पुत्ररूपी इन वीरोंके समूह को (ह्यसा) प्रार्थना करते हुए (गृणीमसि) प्रशंसा करते हैं; तुम (श्रिये) अपने पैदलवर्षको बढ़ाने के लिए (रजस्-शुद्धं) धूलि उड़ानेवाले अर्थात् अति वेग से गमन करनेवाले, (तवसं) बलिष्ठ, (वृषणं) वीर्यवान् तथा (ऋजीपिणं) सोम पीनेवाले (मारुतं गणं) मरुत्समुदाय को (सश्रत्) प्राप्त हो जाओ ।

भावार्थ- ११८ गोदुग्ध-सेवन से पुष्टि पाकर अच्छे कार्य करते हुए शत्रुओं पर हमले करने के लिए भागे बढनेवाले, शिव शत्रुओं को भी विचलित करनेवाले, आभापूर्ण हृदयारों से सज्ज तथा जिम्मे कोई घेर नहीं सकता, ऐसे वे वीर पर्वतों को भी नगण्य तथा शुद्ध मानते हैं । ११९ महासमर के छिड़ जाने पर चतुराई से अपना कर्तव्य निभानेवाले, परित्र आघात रखनेवाले, वनस्थलों में संघार करनेवाले, अधिक सोचविचारपूर्वक हलचलोंका सूत्रपात करनेवाले वे वीर मरुत् हैं । हम इन्हीं धीरोंकी सराहना करनेके लिए काव्यगायन करते हैं । तुम लोग भी अपना वैभव बढ़ाने के लिए दक्षिणा से चढाई करनेवाले, बलिष्ठ, पराक्रमी एवं सोम पीनेवाले मरुत् के निवृत्त चले जाओ ।

टिप्पणी- [११८] (१) पयो-शुद्धः = बूँकि वे वीर गौको अपनी माना मानते हैं, इसलिये गित गोदुग्ध का सेवन कर के पुष्ट तथा बुद्धिगठ होते हैं । (२) मखाः = स्वयं ही यज्ञ करनेवाले । (३) स्व-सृतः = स्वयं हलचल करनेवाले, जिन्हें अपनी निजी कृति से ही कार्य करने की प्रेरणा मिलती है । (४) ध्रुव-शुद्धः = सुरद शत्रुओं को भी जगह से हटानेवाले । (५) दु-ध्न-शुद्धः (दुर्धर, अर्थाः धनुं अतस्त्वं आमानं कुवाणाः) = जिन्हें पकड़ना या घेर लेना दूसरों को असम्भव तथा भीरव प्रतीत हो । (६) पर्वतान् उत् जिघ्रन्ते = पहाड़ों को वे नगण्य एवं अक्रिय शर मानते हैं, इसलिये शत्रुदल पर चढाई करते समय अगर राह में पहाड़ों की बजद से कठिनाई प्रतीत हो, तो भी उन्हें निराश मानकर पार चले जाते हैं और अपने गंठव्य स्थल को पहुँच जाते हैं । [११९] (१) घृपुः = शत्रु से जूमने में निपुण, प्रसन्न, हार्षित, चपल, कुर्बाना । (२) वनिन् = जंगलों में घूमनेवाला । (३) विश्वर्षणिः = विशेष दंग से दमनेवाला, विशेष रूप से हलचल करनेवाला, विशेष तरह की शक्ति से युक्त वीर । (४) रजस्-शुद्धः = अति वेग से चले जाने के कारण धूलि उड़ानेवाला, बाह्य जय लेत्र जाने लगता है, सब शिव तरह गर्द या धूल उड़ा करता है, उस तरह धूलिकणोंको बिखरते हुए यात्रा करनेवाला, बचवा (रजः) अन्तरिक्षमें से विमानद्वारा (शुद्ध) क्षीप्रतया जानेवाला । (५) ऋजीपिन् = (ऋजीपः सोमावशेषः) सोमास निचोढ़ने के पश्चात् जो बचा हुआ अंश रहता है । सोमास को घनी हुई राने की चीज सेवत करनेवाला । (ऋजीपं विष्टवचनं स्वाधिविशेषः । कौमुदी उणादि ४७६)

(१२०) प्र । नु । सः । मर्तः । शर्वसा । जनान् । अति । तस्थौ । वः । ऊती । मरुतः । यम् । आवत ।
 अर्धत्सभिः । वाजम् । भरते । धना । नृसभिः ।
 आपृच्छयम् । क्रतुम् । आ । क्षेति । पुष्यति ॥ १३ ॥

(१२१) चर्कृत्यम् । मरुतः । पुत्सु । दुस्तरम् । शुष्मम् । मध्वन्तसु । धत्तन ।
 धनस्स्पृतम् । उक्थ्यम् । विश्वचर्षणीम् । लोकम् । पुष्येम् । तनयम् । शतम् । हिमाः ॥ १४ ॥

(१२२) नु । स्थिरम् । मरुतः । वीरर्ध्वन्तम् । ऋत्तिसहम् । रयिम् । अस्मासु । धत्त ।
 सहस्रिणम् । शतिनम् । शूश्रुवांसम् । प्रातः । मधु । धियासंसुः । जगम्यात् ॥ १५ ॥

अन्वयः- १२० (हे) मरुतः । घ. ऊती य प्र आवत स. मर्तः शयसा जनान् अति नु तस्थौ, अर्धत्सभि वाज नृभि
 धना भरते, पुष्यति, आपृच्छयं क्रतु आ क्षेति । १२१ (हे) मरुत ! मध-यन्तु चर्कृत्य पृन्तु दुस्-तरं शुष्मन्तं
 शुष्मं धन-स्पृत उक्थ्यं विश्व-चर्षणिं लोकं तनयं धत्तन, शतं हिमा पुष्येम् । १२२ (हे) मरुत ! अस्मासु
 स्थिरं वीर-धन्तं ऋती-याहं शतिनं सहस्रिणं शूश्रुवांसं रयिं नु धत्त, प्रात धिया वसु मधु जगम्यात् ।

अर्थ- १२० हे (मरुतः !) मरुतो ' तुम (घ. ऊती) अपनी सरक्षक शक्तिरु द्वारा (यं प्र आवत) जिसकी
 रक्षा करते हो, (स. मर्तः) यह मनुष्य (शयसा) बलमें (जनान् अति) अन्य लोगोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ होकर
 (नु तस्थौ) स्थिर बन जाता है । (अर्धत्सि. वाजं) यह घुड़सवारों के दल की सहायतासे अन्न पाता है,
 (नृभि धना भरते) वीरोंकी मदद से यथेष्ट मात्रामें धन इकट्ठा करता है और (पुष्यति) पुष्ट होता है ।
 उसी प्रकार (आपृच्छयं क्रतुं) सराहनीय यज्ञकी ओर (आ क्षेति) चला जाता है, अर्थात् यज्ञ करता है ।

१२१ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (मध यन्तु) धनिक तथा वैभवसंपन्न लोगोंमें (चर्कृत्य) उत्तम
 कार्य करनेवाला, (पृन्तु दुस् तरं) सुखोंमें विजेता, (शुष्मन्तं) तेजस्वी, (शुष्म) यल्लिष्ट । धन स्पृतं धन
 से युक्त, (उक्थ्यं) सराहनीय, (विश्व चर्षणिं) सब लोगोंके हितकर्ता (लोकं) पुत्र पद (तनय) पौत्र
 (धत्तन) होते रहें । उसी प्रकार (शतं हिमा- पुष्येम्) हम सो चर्षतक जीवित रहकर पुष्ट होते रहें ।

१२२ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (अस्मासु) हममें (स्थिरं वीर वन्तः) स्थायी तथा वीरोंसे युक्त,
 (ऋती याहं) शत्रुओंका पराभव करनेवाले, (शतिनं सहस्रिणं) सैकड़ों ओर सहस्रों तरहके, (शूश्रुवांसं)
 परिष्कृत (रयिं) धन की (नु धत्त) अवश्य ही धर दो । (प्रात) प्रात काल के समय (धिया वसु)
 बुद्धिद्वारा कर्मांधा सम्पादन करके धन पानेवाले तुम (मधु जगम्यात्) शीघ्र हमारे निकट चले आओ ।

भाषार्थ- १२० वे वीर जिसकी रक्षा करते हैं, वह वसुओंसे भी अपेक्षाकृत उच्च एवं श्रेष्ठ ठहरता है और अपने पैदल तथा
 घुड़सवारोंके दलमें विद्यमान वीरोंकी सहायतासे यथेष्ट धनधान्य बटोरता हुआ हृदयुष्ट होकर भौतिक भौतिकीके यज्ञ करता रहता है ।

१२१ उदाहरणसे कार्य करनेवाले, लडाइयोंमें सदैव विजयी बननेवाले, शक्ति तथा बलसे लजालय भरे हुए, धन
 पानेवाले, सराहनीय, समूची जनताके हितके लिए बड़ी लगनसे प्रयत्न करनेवाले पुत्र पद पौत्र धनाश्रय लोगों के पदों में दयल
 हैं और हम पूरी एक शताब्दि तक जीवित रह कर पुष्टि प्राप्त करें । (धनिकोंके प्राप्तारोंमें विश्वकुल इतने विपरीत स्थिति पाए
 जाती है, अतः यह मग्न अतीव महत्त्वपूर्ण चेतावनी दे रहा है ।) १२२ हमें उम धनकी आवश्यकता है, जो विशाल
 तक टिक सके, जिससे वीरता यह जाय, शत्रुदलका नि.पात करना सुगम हो जाय, कीर्ति फैल सके और जो सैकड़ों पृ-
 सहस्रों प्रकारका हो, या जिनकी गिनतीमें शतसंख्या तथा सहस्रसंख्याका उपयोग हो ।

टिप्पणी- [१२०] आपृच्छयं क्रतु = प्रशंसनीय यज्ञ । [१२१] (१) चर्कृत्य = बार बार अच्छे कार्य
 कुशलतापूर्वक करनेवाला । (२) पृन्तु दुस्तर = रणभूमि में जिसे परास्त करना असंभव है । सदैव विजयी । (३)
 धन-स्पृत = धन पाकर उसे बढ़ानेवाला । (४) विश्व-चर्षणि = समूचे मानवोंका हित करनेवाला, सामाजिक
 कल्याण के कार्य करनेवाला (A worker imbued with public spirit) । [१२२] (१) वीरवत् = जिसके

रुद्राणपुत्र मोतमन्त्रपि (ऋ. १ । ८५१-१२)

(१२३) प्र । ये । शुम्भन्ते । जनयः । न । सप्तयः । यामन् । रुद्रस्य । सूनवः । सुदंससः ।
रोदसी इति । हि । मरुतः । चक्रिरे । वृधे । मदन्ति । वीराः । विद्येषु । घृष्यः ॥ १ ॥
(१२४) ते । उक्षितासः । महिमानम् । आशत । दिवि । रुद्रासः । अधि । चक्रिरे । सद्दः ।
अर्चन्तः । अर्कम् । जनयन्तः । इन्द्रियम् । अधि । थियः । दधिरे । पृश्निमातरः ॥ २ ॥

अन्वय.— १२३ ये सु-दंससः सप्तय रुद्रस्य सूनवः यामन् जनय न प्र शुम्भन्ते, मरुतः हि वृधे रोदसी चक्रिरे, घृष्यः वीराः विद्येषु मदन्ति । १२४ रुद्रास दिवि सद्द अधि चक्रिरे, अर्क अर्चन्त इन्द्रियं जनयन्तः पृश्नि मातर थिय अधि दधिरे, ते उक्षितास महिमानं आशत ।

अर्थ— १२३ (ये) ये जो (सु-दंसस) अच्छे कार्य करनेवाले, (सप्तयः) प्रगतिशील, (रुद्रस्य सूनवः) महावीर के पुत्र वीर मरुत् (यामन्) बाहर जाते हैं, उस समय (जनयः न) महिलाओं के समान (प्र शुम्भन्ते) अपने आपको सुशोभित करते हैं। (मरुतः हि) मरुतों ने ही (वृधे) सय की अभिवृद्धि के लिए (रोदसी चक्रिरे) दुलोक एवं भूलोक की प्रस्थापना कर डाली, तथा ये वीर (घृष्यः वीराः) शत्रुदल को तहसनहस करनेवाले शूर पुरुष हैं और (विद्येषु मदन्ति) यज्ञों में या रणांगणों में हर्षित हो उठते हैं ।

१२४ (रुद्रास) शत्रुदल को रलानेवाले वीरों ने (दिवि) आकाश में (सद्द-अधि चक्रिरे) अच्छा स्थान या घर बना रखा है। (अर्क अर्चन्तः) पूजनीय देवकी उपासना करते हुए, (इन्द्रियं जनयन्तः) इन्द्रियों में विद्यमान शक्ति को प्रकट करते हुए, (पृश्नि मातरः) मातृभूमि के सुपुत्र ये वीर (थिय अधि दधिरे) अपनी शोभा एवं चारुता बढ़ा चुके हैं। (ते उक्षितासः) ये अपने स्थानों पर अभिविक्त होकर (महिमानं आशत) घटपन को पा सके ।

भाषार्थ— १२३ प्रगतिशील तथा शुभ कार्य करनेवाले ये पुरोगामी वीर बाहर निकलते समय महिलाओं की तरह अपने आप को सँभारते हैं और खूब बन-ठन के प्रमाण करते हैं। सय की प्रगति के लिए बधेद स्थान मिले, इसलिए पृथ्वी एवं आकाश का पटन हुआ है। भू-चर शत्रुओं की धर्मत्रयी उद्धानेवाले ये वीर युद्ध का अवसर उपस्थित होते ही शत्रु उल्लसित एवं प्रसन्न हो उठते हैं। लड़ाई का मौख भावेपर इन वीरों का दिल हराभरा हो जाता है ।

१२४ लघुयुद्ध से वीर युद्ध में विजयी बनकर स्वर्ग में अपना घर तैयार कर देते हैं। वे परमात्मा की उपासना करते हैं और अपनी शक्ति को बढ़ाते हैं, तथा मातृभूमि के कवचण के लिए धनवैभव की वृद्धि करते हैं। वे अपनी जगह रहकर तथा उचित कार्य करके बहपन प्राप्त करते हैं ।

समीप वीर हों, शूर पुत्रों से युक्त । (१) श्रुती-पाह = (श्रुती = आकमण, हमला, घवाई) - शत्रुको हरानेवाला । (२) शूनुवान् = प्रवृद्ध, बड़ा हुआ, बढ़नेवाला । (४) थिया-वसु = बुद्धि तथा कर्मवात्सि युक्त, बुद्धि से भाँति भाँतिके कार्य पूर्ण करके धन कमानेवाला । [१२३] (१) सु-दंसस् = शुभ कर्म करनेवाले । (२) सति = सात सात लोगों की पक्षमें खड़े रहनेवाले या हमला करनेवाले, भूमि पर रेंगते हुए आकर घवाई करनेवाले । (३) घृष्य = शत्रुदल की मरियामिट करनेवाले, सघर्ष से शान्त हो दुर्गों को कुचलनेवाले । (४) विद्य = यज्ञ, युद्ध । [१२४] (१) अर्क = पूज, देव, स्वर्ग । (२) इन्द्रिय = इन्द्रादि, इन्द्रियों की शक्ति, (इन्द्र-पु) शत्रुओं को पददलित एवं पराभूत करने की शक्ति । (३) पृश्निमातर = गौमाता तथा भूमि को माता माननेवाले । (४) उक्षित = शिचित, स्थान पर अभिविक्त ।

(१२५) गोऽमातरः । यत् । शुभयन्ते । अञ्जिऽभिः । तनूपुं । शुभाः । दधिरे । विरुक्मतः ।
वाधन्ते । विश्वम् । अभिऽमातिनम् । अप । वर्तमानि । एषाम् । अतुं । रीयते । वृतम् ॥३॥

(१२६) वि । ये । आजन्ते । सुऽमसासः । ऋष्टिभिः ।

प्रऽच्यवयन्तः । अच्युता । चित् । ओजसा ।

मनऽजुवः । यत् । मरुतः । रथेषु । आ । वृषऽवातासः । पृपतीः । अयुग्धम् । ॥४॥

अन्वय — १२५ शुभा गो-मातरः यत् अञ्जिभिः शुभयन्ते तनूपु वि-रुक्मत दधिरे, विश्वं अभिमातिनं
अप वाधन्ते, एषां वर्तमानि पुत्रं अतु रीयते ।

१२६ ये सु-मसासः ऋष्टिभिः वि आजन्ते, (हे) मरुत ! यत् मनो-जुव वृष-वातास रथेषु
पृपतीः आ अयुग्धं, अ-च्युता चित् ओजसा प्रच्यवयन्त ।

अर्थ - १२५ (शुभाः) तेजस्वी, (गो-मातरः) भूमि को माता समझनेवाले वीर (यत्) जब (अञ्जि-
भिः शुभयन्ते) अलंकारों से अपने को सुशोभित करते हैं, अपनी सजावट करते हैं, तब वे (तनूपु)
अपने शरीरों पर (वि-रुक्मत, दधिरे) विशेष ढंग से सुहानेवाले आभूषण पहनते हैं, वे (विश्वं अभि-
मातिनं) सभी शत्रुओं को (अप वाधन्ते) दूर हटा देते हैं, उनकी राह में रुकावटें खड़ी कर देते हैं,
इसलिए (एषां) इनके (वर्तमानि) मार्गों पर (घृतं अतु रीयते) घी जैसे पौष्टिक पदार्थ इन्हें पर्याप्त मात्रा
में मिल जाते हैं ।

१२६ (ये सु-मसासः) जो तुम अच्छे यज्ञ करनेवाले वीर (ऋष्टिभिः) शत्रुओं के साथ (वि
आजन्ते) विशेष रूपसे चमकते हो, तथा हे (मरुत !) मरुतो ! (यत्) जब (मनो-जुवः) मन की नाह
वेग से जानेवाले भोर (वृष-वातासः) सामर्थ्यशाली संघ बनानेवाले तुम (रथेषु) अपने रथों में
(पृपतीः आ अयुग्धं) धरनेवाली हिरनियों जाड़ते हो, तब (अ-च्युता चित्) न हिलनेवाले सुदृढ़
शत्रुओं को भी (ओजसा) अपनी शक्ति से (प्रच्यवयन्तः) हिला देते हो ।

भावार्थ - १२५ गौ एवं भूमि को माता माननेवाले वीर आभूषणों तथा इथियारोंसे निजो शरीरों को रूब सजाते हैं
और चूँकि वे शत्रुओं का संहार करते हैं, अतएव उन्हें पौष्टिक भन्न पवास रूप से मिलता है ।

१२६ त्रेष्ठ यज्ञ करनेवाले, मनु के समान वेगवान् तथा बलिष्ठ हो सचमय जीवन बितानेवाले वीर
शत्रुओं से सुमग्न बन रथ पर चढ़ जाते हैं और सुदृढ़ शत्रुओं को भी जड़मूल से उखाड़ फेंक देते हैं ।

टिप्पणी - [१२५] (१) गो-मातरः = माय एषं भूमिको मातृत्वं समझनेवाले । (२) अञ्जि = आभूषण,
शुभ, गणवेश (वेतो मंत्र ९०) । (३) वि-रुक्मत = विशेष चमकीले गहने । (४) अभिमातिनः = हत्या
करनेवाला शत्रु । [१२६] (१) सु-मसा = अच्छे यज्ञ तथा कर्म करनेवाले । (२) वृष-वात = बलवानों
का संघ, अमेघ संघ बनाकर रहनेवाले । (३) अ-च्युता चित् = स्थिरों तब को हिला देते हैं, पिरकाल से
स्थायी बने हुए शत्रुओं को भी अपवृक्ष करा के विनष्ट करते हैं (देखिए मंत्र ८६ और ११०) ।

(१२७) प्र । यत् । रथेषु । पृषतीः । अयुग्धम् । वाजे । अद्रिम् । मरुतः । रंहयन्तः ।
 उत । अरुपस्यं । वि । स्यन्ति । धाराः । चर्मइव । उदरमिः । वि । उन्दन्ति । भूमं ॥५॥
 (१२८) आ । वुः । वहन्तु । सप्तयः । रघुस्यदः । रघुपत्नानः । प्र । जिगात । बाहुर्मिः ।
 सीदत । आ । वार्हिः । उरु । वुः । सर्दः । कृतम् । मादयध्वम् । मरुतः । मर्घः । अन्धसः ॥६॥
 (१२९) ते । अर्धन्त । स्वस्तवसः । महिस्त्वना । आ । नार्कम् । तस्थुः । उरु । चक्रिरे । सर्दः ।
 विष्णुः । यत् । ह । आर्यत् । वृषणम् । मदच्युतम् । वयः । न । सीदन् । अधि । वार्हिषि । प्रिये ॥७॥

अन्यय - १२७ (हे) मरुत ! वाजे अद्रि रंहयन्त. यत् रथेषु पृषतीं प्र अयुग्धं उत अ-रुपस्य धाराः
 वि स्यन्ति उदमि. भूम चर्मइव वि उन्दन्ति. १२८ य रघु-स्यदः सप्तय आ वहन्तु, रघु-पत्नानः
 बाहुभि प्र जिगात, (हे) मरुत ! य उरु सद- कृतं, वार्हिः आ सीदत, मर्घः अन्धस. मादयध्वं. १२९
 ते स्व-तवस अवर्धन्त, महित्वना नार्क आ तस्थु, उरु सद- चक्रिरे, यत् वृषणं मद-च्युतं विष्णु आवत्
 ह प्रिये वार्हिषि अधि, वयः न, सीदन् ।

मर्थ- १२७ हे (मरुतः!) धीर मरुतो! (वाजे)अग्नके लिए (अद्रि रंहयन्त.) मेघोंको प्रेरणा देते हुए, (यत्)
 जिस समय (रथेषु पृषतीं) प्र अयुग्धं रथोंमें धन्येवाली हिरनियों जोड़ देते हो, (उत) उस समय (अ रुपस्य
 धाराः) तनिक मटमैले दिखार् देनेवाले मेघकी जलधारारूप (वि स्यन्ति) वेगपूर्वक नीचे गिरने लगती हैं
 और उन (उदमि) जलप्रवाहोंसे (भूम) भूमिको (चर्मइव) धमड़ीके जैसे (वि उन्दन्ति) भांगी या गीली कद
 डालते हैं। १२८ (यः) तुम्हें (रघु स्यद. सप्तयः) वेगसे दौड़नेवाले घोड़े इधर (आ वहन्तु) ले आयें,
 (रघु पत्नानः) शीघ्र जानेवाले तुम (वाहुभि) अपनी भुजाओं में धियमान शक्ति को पराक्रमद्वारा
 प्रकट करते हुए इधर (प्र जिगात) आओ । हे (मरुतः !) धीर मरुतो ! (यः) तुम्हारे लिए (उरु
 सदः) यडा घर, यद्यस्थान हम (कृतं) तैयार कर चुके हैं, (वार्हि. आ सीदत) यहाँ दुर्भय आसन
 पर बैठ जाओ और (मर्घः अन्धसः) मिठास भरे अग्नके सेवन से (मादयध्वं) सन्तुष्ट एवं हर्षित बनो ।

१२९ (ते) वे धीर (स्व-तवस) अपने बलसे ही (अवर्धन्त) बढ़ते रहते हैं । वे अपने (महि-
 त्वना) बढप्पन के फलस्वरूप (नार्क आ तस्थुः) स्वयं में जा उपस्थित हुए । उन्होंने अपने निवास के
 लिए (उरु सद चक्रिरे) यडा भारी विस्तृत घर तैयार कर रखा है । (यत् वृषणं) जिस बल देनेवाले
 तथा (मद-च्युतं) आनन्द घटानेवालेका (विष्णुः आवत् ह) व्यापक परमात्मा स्वयं ही रक्षण करता है,
 उस (प्रिये वार्हिषि अधि) हमारे प्रिय यज्ञ में (वय न) पंछियों की नाई (सीदन्) पधार कर बैठो ।

भाषार्थ- १२७ मरुत मेघों को वतिशील बना देते हैं, इसलिये वर्षा का प्रारम्भ हो उलमसूह से समूची पृथ्वी आर्द्र
 हो उठती है । १२८ कुर्वीके घोड़े तुम्हें इधर लायें। तुम जैसे वीरवामी अपने बाहुबलसे तेजस्वी बनकर इधर आओ ।
 क्योंकि तुम्हारे लिए यडा विस्तृत स्थान यहाँ पर तैयार कर रखा है । इधर पधार कर तथा आसनों पर बैठकर मिठास से
 पूर्ण अन्न या सोमरसका सेवन कर हर्षित बनो । १२९ धीर अपनी शक्तिसे बढे होते हैं; अपनी कर्तृबदाक्तिसे स्वयं तब
 बढ जाते हैं और अपने बलसे विनाश नगह पर प्रभुत्व प्रस्थापित करते हैं । ऐसे धीर हमारे यज्ञमें शीघ्र ही पधारें ।

टिप्पणी- [१२७] (१) अद्रि- = पर्वत वा मेघ । (२) अ-रुप = तेजहीन, बलिन, निष्प्रभ (मेघ); रू = तेज,
 प्रकाश । [१२८] (१) रघु-स्यद = (रघु-स्यद) बल, बडे वेग से आनेवाला । (२) रघु-पत्नन् = (लघु पावन्)
 शीघ्रगति, वेगवान्, तेज उठनेवाला । (३) अन्धस् = अन्न, सोमरस । [१२९] (१) स्व-तवस अवर्धन्त =
 सभी धीर अपने निजी बलसे बढते हैं । (२) महित्वना नार्क आ तस्थु = अपनी महिमा तथा घटप्पन से स्वयं पाके
 ऊँचे पद पर जा बैठते हैं । (३) उरु सद चक्रिरे = अपने प्रयात्नसे अपने लिए विस्तृत स्थानवा निर्माण करते हैं । (४)
 मदच्युतं वृषणं विष्णु आवत् = आनन्द देनेवाले बलिष्ठ धीर को रक्ष करके स्व धीरा विष्णु ही उठाता है ।

- (१३०) शूराःऽइव । इत् । युयुधयः । न । जग्मयः । श्रुस्यवः । न । पृतनासु । येतिरे ।
 भयन्ते । विश्वा । भुवना । मरुत्ऽम्यः । राजानःऽइव । त्वेपऽसँदशः । नरः ॥ ८ ॥
- (१३१) त्वष्टा । यत् । वज्रम् । सुऽकृतम् । हिरण्यम् । सहस्रऽभृष्टिम् । सुऽअपाः । अवर्तयत् ।
 घत्ते । इन्द्रः । नरि । अपांसि । कर्तये ।
 अहन् । वृत्रम् । निः । अपाम् । औञ्जत् । अर्णम् ॥ ९ ॥

अन्वयः— १३० शूरा इव इत्, युयुधय न जग्मय, श्रवस्यव न पृतनासु येतिरे, राजान इव त्वेप-सँदश नर मरुद्भ्य विश्वा भुवना भयन्ते ।

१३१ सु अपाः त्वष्टा यत् सु-कृतं हिरण्यं सहस्र-भृष्टि यज्ञं अवर्तयत् इन्द्रः नरि अपांसि कर्तये घत्ते, अर्णं वृत्र अहन्, अपां निः औञ्जत् ।

अर्थ— १३० (शूरा इव इत्) वीरों के समान लड़ने की इच्छा करनेवाले (युयुधयः न जग्मय) योद्धाओंकी नाईं शत्रु पर जा चढ़ाई करनेवाले तथा (श्रवस्यव न) यशकी इच्छा करनेवाले वीरोंके जैसे ये वीर (पृतनासु येतिरे) संग्रामों में उड़ा भारी पुरपार्थ कर दिखलाते हैं । (राजान इव) राजाओं के समान (त्वेप-सँदश) तेजस्वी दिखाई देनेवाले ये (नर) नेता वीर हैं, इसलिए (मरुद्भ्य) इन मरुतों से (विश्वा भुवना भयन्ते) सारे लोक भयभीत हो उठते हैं ।

१३१ (सु-अपा.) अच्छे कौशल्यपूर्ण कार्य करनेवाले (त्वष्टा) कारीगरने (यत् सु-कृतं) जो अच्छी तरह बनाया हुआ, (हिरण्यं) सुवर्णमय, (सहस्र-भृष्टि यज्ञं) सहस्र धाराओं से युक्त यज्ञ इन्द्र को (अवर्तयत्) दे दिया, उस हथियार को (इन्द्र) इन्द्रने (नरि) मानवों में प्रचलित युद्धों में (अपांसि कर्तये) वीरतापूर्ण कार्य कर दिखलाने के लिए (घत्ते) धारण किया और (अर्ण-यं वृत्रं अहन्) जल को रोकनेवाले शत्रु को मार डाला तथा (अपां निः औञ्जत्) जल को जाने के लिए उन्मुक्त कर दिया ।

भावार्थ— १३० ये वीर सच्चे शूरो की भाँति लड़ते हैं, योद्धाओं के समान शत्रुसेनापर आक्रमण कर बैठते हैं, कीर्ति पाने के लिए लड़नेवाले वीर पुरवीं की नाईं ये रणभूमि में भारी पराक्रम करते हैं । जैसे राजाजोग तेजस्वी वीर पढ़ते हैं, ठीक वैसे ही वे हैं । इसलिए सभी इनसे भयानक प्रभावित होते हैं ।

१३१ अश्वत्थ निपुण कारीगरने एक वज्र नामक शस्त्र तैयार कर दिया, जिसकी सहस्र धाराएँ या नोक विद्यमान थे और जिस पर शोभा के लिए सुनहली पच्चीकारी की गयी थी । इन्द्रने उस श्रेष्ठ आयुध को पाकर मानव-जाति में बारबार होनेवाली छटाइयों में शूरता की अभिव्यजना करने के लिए उसका प्रयोग किया । जलस्रोत पर प्रभुत्व प्रस्थापित करके टकनेवाले तथा घेरनेवाले शत्रु का वध करते सध के लिए जल को उन्मुक्त कर रखा ।

टिप्पणी— [१३१] (१) स्वपा = (सु + अपा) = अच्छे ढंग से पच्चीकारी आदि कार्य करनेवाला चतुर कारीगर । (२) सु-कृतं = सुन्दर बनावट से निर्माण किया हुआ । (३) सहस्र-भृष्टि = सहस्र नोकों से युक्त । (४) नरि = युद्ध में, मनुष्यों के मध्य होनेवाले सधों में । (५) अप = कर्म, कृत्य, पराक्रम । (६) अर्ण-यं = जल को रोकनेवाला, अपने लिए जल रखनेवाला । (७) वृत्र = आरण्य करनेवाला, घेरनेवाला शत्रु, वृत्रासुर, एक राक्षस का नाम ।

(१२७) प्र । यत् । रथेषु । पृषतीः । अयुग्घ्नम् । वाजं । अद्रिम् । मरुतः । रंहयन्तः ।
 उत । अरुपस्यं । वि । स्यन्ति । धाराः । चर्मइव । उदसमिः । वि । उन्दन्ति । भूमं ॥५॥
 (१२८) आ । घः । बहन्तु । सप्तयः । रघुस्यदः । रघुपत्वानः । प्र । जिगात । बाहुसभिः ।
 सीदत । आ । वहिः । उरु । वः । सद् । कृतम् । मादयध्वम् । मरुतः । मध्वः । अन्धसः ॥६॥
 (१२९) ते । अवर्धन्तु । स्वस्तवसः । महिः । उरु । ना । आ । नाकम् । तस्थुः । उरु । चक्रिरे । सद् ।
 विष्णुः । यत् । ह । आवत् । वृषणम् । मुदच्युतम् । वयः । न । सीदन् । अधि । वहिषि । प्रिये ॥७॥

अन्वय - १२७ (हे) मरुत ! वाजे अद्रिं रहयन्त यत् रथेषु पृषती प्र अयुग्घ्नं उत अ-रुपस्य धाराः वि स्यन्ति उदभि भूम चर्मइव वि उन्दन्ति । १२८ घ रघु स्यद सप्तय आ बहन्तु, रघु पत्वानः बाहुभि प्र जिगात (हे) मरुत ! व उरु सद् कृतं, वहिं आ सीदत, मध्व अन्धस मादयध्वं । १२९ ते स्व-तवस अवर्धन्त, महित्वना नाकं आ तस्थु, उर सद् चक्रिरे, यत् वृषणं मुद च्युतं विष्णु आवत् ह प्रिये वहिषि अधि, वय न, सीदन् ।

अर्थ- १२७ हे (मरुत !) वीर मरुतो ! (वाजे) अन्नके लिए (अद्रिं रहयन्त.) मेघोंको भ्रंशना देते हुए, (यत्) जिस समय (रथेषु पृषती। प्र अयुग्घ्न) रथोंमें धनुवाली हिरनियों जोड़ देते हो, (उत) उस समय (अ रुपस्य धाराः) तनिक मटमैले दिखाई देनेवाले मेघकी जलधारारण (वि स्यन्ति) वेगपूर्वक नीचे गिरने लगती हैं और उन (उदभि.) जलप्रवाहोंसे (भूम) भूमिको (चर्मइव) चर्मडी के जैसे (वि उन्दन्ति) भीगी या गीली कर डालते हैं। १२८ (घः) तुम्हें (रघु स्यद सप्तयः) वेगसे दोड़नेवाले घोड़े इधर (आ बहन्तु) ले आर्य, (रघु पत्वान.) शीघ्र जानेवाले तुम (बाहुभि) अपनी भुजाओं में बिद्यमान शक्ति को पराक्रमद्वारा प्रकट करते हुए इधर (प्र जिगात) आओ। हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (व) तुम्हारे लिए (उरु सद्) बड़ा घर, यह स्थान हम (कृत) तैयार कर चुके हैं, (वहिं आ सीदत) यहाँ धर्ममय आसन पर बैठ जाओ और (मध्वः अन्धसः) मिठास भरे अन्नके सेवन से (मादयध्वं) सन्तुष्ट एवं हर्षित बनो।

१२९ (ते) वे वीर (स्व तवस) अपने बलसे ही (अवर्धन्त) बढ़ते रहते हैं। वे अपने (महि-त्वंना) बड़प्पन के फलस्वरूप (नाकं आ तस्थु) स्वर्ग में जा उपस्थित हुए। उन्होंने अपने निवास के लिए (उर सद् चक्रिरे) बड़ा भारी विस्तृत घर तैयार कर रखा है। (यत् वृषण) जिस बल देनेवाले तथा (मुद च्युतं) आनन्द वदानेवालेका (विष्णुः आवत् ह) ध्यापक परमात्मा स्वयं ही रक्षण करता है, उस (प्रिये वहिषि अधि) हमारे प्रिय बल में (वय न) पंछियों की नाईं (सीदन्) पधार कर बैठो।

भाषार्थ- १२७ मरुत मेघों की गतिशील बना देते हैं, इसलिये वर्षाका प्राप्ति हो जलमूसर से समुची पृथ्वी आर्द्र हो उठती है। १२८ कुतलके घोड़े तुम्हें इधर लावें। तुम जैसे शीघ्रगामी अपने बाहुबलसे तेजस्वी बनकर इधर आओ। क्योंकि तुम्हारे लिए बड़ा विस्तृत स्थान यहाँ पर तैयार कर रखा है। इधर पधार कर तथा आसनों पर बैठकर मिठास से पूर्ण अन्न या सोमसका सेवन कर हर्षित बनो। १२९ वीर अपनी शक्तिसे बड़े होत हैं; अपनी कुंठशक्तिसे स्वर्ग तक चढ़ जाते हैं और अपने बलसे विशाल जगह पर प्रमुख प्रस्थापित करते हैं। ऐसे वीर हमारे वशमें शीघ्र ही पधारें।

टिप्पणी- [१२७] (१) अद्रि = पर्वत या मेघ । (२) अ-रुप = तेजहीन, मलिन, निश्चम (मघ), रुद = तेज, प्रकाश । [१२८] (१) रघु-स्यद = (रघु-स्यद) चपल, बड़े वेग से जानेवाला । (२) रघु-पत्वान् = (रघु पत्वान्) शीघ्रगति, वेगवान्, तेज उड़नेवाला । (३) अन्धस् = अंध, मोमरम । [१२९] (१) स्व-तवस अवर्धन्त = सभी वीर अपने निजी बलसे बढ़ते हैं । (२) महित्वना नाकं आ तस्थु = अपनी महिमा तथा बड़प्पन से स्वर्ग परके ऊँचे पद पर जा बैठते हैं । (३) उर सद् चक्रिरे = अपने प्रधानसे अपने लिए विस्तृत स्थानका निर्माण करते हैं । (४) मुदच्युतं वृषणं विष्णु आवत् = आनन्द देनेवाले बलिष्ठ वीर की रक्षा करने का बीड़ा विष्णु ही टठाता है ।

- (१३०) शूराःऽइव । इत् । युयुधयः । न । जग्मयः । अत्रस्वयवः । न । पृतनासु । येतिरे ।
 भयन्ते । विश्वा । भुवना । मरुत्सभ्यः । राजानःऽइव । स्वेषसंसदशः । नरः ॥ ८ ॥
- (१३१) त्वष्टा । यत् । वज्रम् । सुऽकृतम् । हिरण्ययम् । सहस्रभृष्टिम् । सुऽअपाः । अवर्तयत् ।
 धृत्ते । इन्द्रः । नरि । अपांसि । कर्तव्ये ।
 अहन् । वृत्रम् । निः । अपाम् । औञ्जत् । अर्णवम् ॥ ९ ॥

अन्वयः— १३० शूराःइव इत्, युयुधयः न जग्मयः, अत्रस्वयवः न पृतनासु येतिरे, राजानःइव स्वेष-
 संदशः नरः मरुद्भ्यः विश्वा भुवना भयन्ते ।

१३१ सु-अपाः त्वष्टा यत् सु-कृतं हिरण्ययं सहस्र-भृष्टिं वज्रं अवर्तयत् इन्द्रः नरि अपांसि
 कर्तव्ये धृत्ते, अर्णवं वृत्रं अहन्, अपां निः औञ्जत् ।

अर्थ— १३० (शूराःइव इत्) धीरों के समान लड़ने की इच्छा करनेवाले (युयुधयः न जग्मयः)
 योद्धाओंकी नाईं शत्रु पर जा थकाई करनेवाले तथा (अत्रस्वयव न) यशकी इच्छा करनेवाले धीरोंके जैसे
 ये धीर (पृतनासु येतिरे) संग्रामों में घडा भारी पुरुषार्थ कर दिखलाते हैं । (राजान इव) राजाओं
 के समान (स्वेष-संदशः) तेजस्वी दिग्गई देनेवाले ये (नरः) नेता वीर हैं, इसलिए (मरुद्भ्यः) इन
 मरुतों से (विश्वा भुवना भयन्ते) सारे लोक भयभीत हो उठने हैं ।

१३१ (सु-अपाः) अच्छे कौशल्यपूर्ण कार्य करनेवाले (त्वष्टा) कारीगरने (यत् सु-कृतं) जो
 अच्छी तरह बनाया हुआ, (हिरण्ययं) सुवर्णमय, (सहस्र-भृष्टिं वज्रं) सहस्र धाराओं से युक्त वज्र
 इन्द्र को (अवर्तयत्) दे दिया, उस हथियार को (इन्द्रः) इन्द्रने (नरि) मानवों में प्रचलित युद्धों में
 (अपांसि कर्तव्ये) वीरतापूर्ण कार्य कर दिखलाने के लिए (धृत्ते) धारण किया और (अर्ण-वं वृत्रं
 अहन्) जल को रोकनेवाले शत्रु को मार डाला तथा (अपां निः औञ्जत्) जल को जाने के लिए
 उन्मुक्त कर दिया ।

भाषार्थ— १३० ये धीर सच्चे शूरों की भाँति लड़ते हैं, योद्धाओं के समान शत्रुसेनापर आक्रमण कर बैठते हैं,
 कीर्ति पाने के लिए लड़नेवाले धीर पुरुषों की नाईं वे रणभूमि में भारी पराक्रम करते हैं । जैसे राजासौग सेजस्वी दीक्ष
 परसे हैं, ठीक वैसे ही ये हैं । इसलिए सभी इनसे भतीय प्रभावित होते हैं ।

१३१ अत्यन्त निपुण कारीगरने एक वज्र नामक शस्त्र तैयार कर दिया, जिसकी सहस्र धाराएँ या नोक
 विद्यमान थे और जिस पर शोभा के लिए सुनहली पच्चीकारी की गयी थी । इन्द्रने उस श्रेष्ठ आयुध को पाकर मानव-
 जाति में बारांवार होनेवाली छडाह्यों में शूरा की अभिभवंजना करने के लिए उसका प्रयोग किया । जलस्रोत पर
 प्रमुख प्रस्थापित करके रोकनेवाले तथा घेरनेवाले शत्रु का वध करके सब के लिए जल को उन्मुक्त कर रखा ।

टिप्पणी— [१३१] (१) स्वपाः = (सु + अपाः) = अच्छे ढंग से पच्चीकारी आदि कार्य करनेवाला
 चतुर कारीगर । (२) सु-कृतं = सुन्दर बनावट से निर्माण किया हुआ । (३) सहस्र-भृष्टिः = सहस्र नोकों
 से युक्त । (४) नरि = युद्ध में, मनुष्यों के मध्य होनेवाले संघर्षों में । (५) अपाः = कर्म, कृत्य, पराक्रम ।
 (६) अर्ण-व = जल को रोकनेवाला, अपने लिए जल रखनेवाला । (७) वृत्र = आवरण करनेवाला, घेरनेवाला
 शत्रु, वृत्रासुर, एक राक्षस का नाम ।

- (१३२) ऊर्ध्वम् । नुनुद्रे । अवतम् । ते । ओजसा । दृढहाणम् । चित् । विभिदुः । वि । पर्वतम् ।
 धमन्तः । वाणम् । मरुतः । सुदानवः ।
 मदे । सोमस्य । रण्यानि । चक्रिरे ॥ १० ॥
- (१३३) जिह्वम् । नुनुद्रे । अवतम् । तथा । दिशा ।
 असिञ्चन् । उत्सम् । गोतमाय । तृष्णञ्जे ।
 आ । गच्छन्ति । ईम् । अवसा । चित्रभानवः ।
 कामम् । विप्रस्य । तर्पयन्तु । धामभिः ॥ ११ ॥

अन्वयः— १३२ ते ओजसा ऊर्ध्वं अवतं नुनुद्रे, दृढहाणं पर्वतं चित् वि विभिदुः, सु-दानवः मरुतः सोमस्य मदे वाणं धमन्तः रण्यानि चक्रिरे ।

१३३ अवतं तथा दिशा जिह्वं नुनुद्रे, तृष्णजे गोतमाय उत्सं असिञ्चन्, चित्र-भानवः अवसा ईं आ गच्छन्ति, धामभिः विप्रस्य कामं तर्पयन्त ।

अर्थ— १३२ (ते) वे धीर (ओजसा) अपनी शक्ति से (ऊर्ध्वं अवतं) ऊँची जगह विद्यमान तालाय या झील के पानी को (नुनुद्रे) प्रेरित कर चुके और इस कार्य के लिए (दृढहाणं पर्वतं चित्) राह में रोड़े अटकानेवाले पर्वत को भी (वि विभिदुः) छिप्रविच्छिन्न कर चुके । पश्चात् उन (सु-दानवः मरुतः) अच्छे दानी मरुतोंने (सोमस्य मदे) सोमपान से उद्भूत आनन्द से (वाणं धमन्तः) वाण थाजा थजा कर (रण्यानि चक्रिरे) रमणीय गानों का रञ्जन किया ।

१३३ वे धीर (अवतं) झील का पानी (तथा दिशा) उस दिशा में (जिह्वं) तेड़ी राह से (नुनुद्रे) ले गये और (तृष्णजे गोतमाय) प्यास के मारे अकुलाते हुए गोतम के लिए (उत्सं असिञ्चन्) जलकुंड में उस जल का झरना बढने दिया । इस भाँति वे (चित्र-भानवः) अति तेजस्वी धीर (अवसा ईं) संरक्षक शक्तियों के साथ (आ गच्छन्ति) आ गये और (धामभिः) अपनी शक्तियों से (विप्रस्य कामं) उस जानी की लालसा को (तर्पयन्त) मृत किया ।

भावाार्थ— १३२ ऊँचे स्थान पर पाये जानेवाले तालाय का पानी मरुतों ने नहर बनाकर दूसरी ओर पहुँचा दिया और देना नहर खुदाई का कार्य करते समय राह में जो पहाड़ रुकावट के रूप में पाये गये थे, उन्हें पाटकर पानी के बहावके लिए मार्ग बना दिया । इतना कार्य कर चुकने पर सोमरसरी पीकर बड़े आनन्दसे उन्होंने सामगायन किया ।

१३३ इन वीरों ने टेढ़ीमेढ़ी राह से नहर खुदवाकर झील का पानी अन्य जगह पहुँचा दिया और क्रयिके आश्रम में पीने के जल का विपुल संचय कर रखा, जिसके फलस्वरूप गोतमजी की पानी की आवश्यकता पूर्ण हुई । इस भाँति वे तेजःपुञ्ज धीर दुर्लभसमेत तथा शक्तिसामर्थ्य से परिपूर्ण हो इधर पधारे हैं और अपने भक्तों तथा अनुयायियों की लालसाओं को तृप्त करते हैं । [देखिए मंत्र १३२, १५४]

टिप्पणी— १३२ (१) अवतं = कूबर्, कुंड, झील, जल का संचय, तालाब, रक्षण करनेवाला । मंत्र १३३ तथा १५४ देखिए । (२) नुदु = प्रेरित करना । (३) दृढहाणं = बड़ा हुआ, मार्ग में बढकर लट्टा हुआ । (४) वाणं = मंत्र ८२ देखिए ('शतसंख्याभिः तंश्रीभिर्मुक्तः वीणाविद्येयः' सायणभाष्य) सौ तारों का बनाया हुआ एक तंतुवाद्य । [१३३] (१) जिह्व = कुटिल, टेढ़ा, बकुर । (२) धामन् = वेज, शक्ति, स्थान । (३) अवतः (अवटः) = गहरा स्थान, राह; १३२ वीं मंत्र देखिए । (४) गोतम = बहुतसी गाँवों साथ रखनेवाला ऋषि, जिसके आश्रम में अनगिनती गौओं का घुंघुं दिखार्ह पट्टा है ।

(१३४) या । वः । शर्म । शशमानाय । सन्ति ।
 त्रिघातूनि । दाशुपे । यच्छत । अर्ध ।
 अस्मभ्यम् । तानि । मरुतः । वि । यन्त ।
 रयिम् । नः । धत्त । वृषणः । सुवीरम् ॥ १२ ॥

[ऋ० १।८।१-१०]

(१३५) मरुतः । यस्य । हि । क्षये । पाथ । द्विवः । विमहसः ।
 सः । सुगोपातमः । जनः ॥ १ ॥

अन्वयः- १३४ (हे) मरुतः ! शशमानाय त्रि-घातूनि यः या शर्म सन्ति, दाशुपे अधि यच्छत, तानि अस्मभ्यं वि यन्त, (हे) वृषणः ! नः सु-वीरं रयिं धत्त ।

१३५ (हे) वि-महसः मरुतः ! दियः यस्य हि क्षये पाथ, सः सु-गो-पा-तमः जनः ।

अर्थ- १३४ हे (मरुतः !) धीर मरुतो ! (शशमानाय) शीघ्र गति से जानेवालों को देने के लिए (त्रि-घातूनि) तीन प्रकार की धारक शक्तियों से मिलनेवाले (यः या शर्म) तुम्हारे जो हुए (सन्ति) विद्यमान हैं और जिन्हें तुम (दाशुपे अधि यच्छत) दानी को दिया करते हो, (तानि) उन्हें (अस्मभ्यं वि यन्त) हमें दो । हे (वृषणः !) बलवान् वीरो ! (नः) हमें (सु वीरं) अच्छे वीरों से युक्त (रयिं) धन (धत्त) दे दो ।

१३५ हे (वि- महसः मरुतः !) विलक्षण ढंग से तेजस्वी वीर मरुतो ! (दियः) अन्तरिक्ष में से पधारकर (यस्य हि क्षये) जिस के घर में तुम (पाथ) सोमरस पीते हो, (सः) यह (सु-गो पा-तमः जनः) अत्यन्त ही मुटक्षित मानव है ।

भाष्यार्थ- १३४ त्रिविध धारक शक्तियों से जो कुछ भी मुक्त पाये जा सकते हैं, उन्हें वे वीर श्रेष्ठ काव्यों को शीघ्रता से निभानेवालों के लिए उपभोगार्थ देते हैं । हमारी लालसा है कि, हमें भी वे मुक्त मिल जायें तथा उबध कोटि के वीरों से रक्षित धन हमें प्राप्त हो । (भाष्ये प्राय इतना ही है कि, धन तो अवश्यमेव कमाना चाहिये और उस की समुचित रक्षा के लिए आवश्यक वीरता पाने के लिए भी प्रयत्नशील रहना चाहिये ।)

१३५ तेजस्वी वीर लोग जिस मानव के घर में सोम का ग्रहण करते हैं, वह अवश्यमेव मुटक्षित रहेगा, ऐसा माननेमें कोई आपत्ति नहीं ।

टिप्पणी- [१३४] (१) शशमानः = (शश = प्लुतगतौ) = शीघ्र गतिसे जानेवाले, जल्द कार्य पूरा करनेवाले (देखो मंत्र १४२) । (२) त्रिघातु = तीन घातुओं का उपयोग जिस में हुआ हो; तीन स्थानों में जो है; तीन धारक शक्तियों से युक्त । (३) शर्म = सुख, घर, आश्रयस्थान । [१३५] (१) वि-महसः = त्रिवेप महत्तर, बड़ा तेज । (२) क्षयः = (क्षि निपासे) = घर, स्थान । (३) सु-गो-पा-तमः = उबध कोटि की गर्भोद्गी भली मूर्ति रक्षा करनेवाला, रक्षक वीरों से युक्त । इस पद से हमें यह सूचना मिलती है कि, गाय की पथावत् रक्षा करना मानों सर्वस्व का संरक्षण करना ही है ।

(१३६) यज्ञैः । वा । यज्ञऽवाहसः । विप्रस्य । वा । मतीनाम् । मरुतः । शृणुत । हवम् ॥ २ ॥

(१३७) उत । वा । यस्य । वाजिनः । अनु । विप्रम् । अतश्चत ।

सः । गन्ता । गोऽमति । व्रजे ॥ ३ ॥

(१३८) अस्य । वीरस्य । वहिषि । सुतः । सोमः । दिविष्टिषु ।

उक्थम् । मदः । च । शस्यते ॥ ४ ॥

अन्वय- १३६ (हे) यज्ञ-वाहसः मरुतः ! यज्ञैः वा विप्रस्य मतीनां वा, हव्यं शृणुत ।

१३७ उत वा यस्य वाजिनः विप्रं अनु अतश्चत, सः गो-मति व्रजे गन्ता ।

१३८ दिविष्टिषु वहिषि अस्य वीरस्य सोमः सुतः, उक्थं मदः च शस्यते ।

अर्थ- १३६ हे (यज्ञ-वाहसः मरुतः !) यज्ञ का गुस्तर भार उठानेवाले मरुतो ! (यज्ञैः वा) यज्ञों के द्वारा वा (विप्रस्य मतीनां वा) विद्वान् की बुद्धि की सहायता से तुम हमारी (हव्यं शृणुत) प्रार्थना सुनो ।

१३७ (उत वा) अथवा (यस्य वाजिनः) जिस के चलवान् वीर (विप्रं अनु अतश्चत) ज्ञानी के अनुकूल हो, उसे श्रेष्ठ घना देते हैं, (सः) वह (गो-मति व्रजे) अनेक गाँवों से भरे प्रदेश में (गन्ता) चला जाता है, अर्थात् वह अनगिनती गाँवें पाता है ।

१३८ (दिविष्टिषु = दिष्-इष्टिषु) इष्टिके दिनमें होनेवाले (वहिषि) यज्ञमें, (अस्य वीरस्य) इस वीर के लिए, (सोमः सुतः) सोम का रस निचोड़ा जा चुका है । (उक्थं) अब स्तोत्र का गान होता है और सोमरस से उद्भूत (मदः च शस्यते) आनन्द की प्रशंसा की जाती है ।

भाषार्थ- १३६ यज्ञों के अर्थात् कर्मों के द्वारा तथा ज्ञानी लोगों की सुवर्तियों यानि भ्रष्टे संकल्पों के द्वारा जो प्रार्थना होती है, सो सुन सुनो ।

१३७ यदि वीर ज्ञानी के अनुकूल पनें, तो उस ज्ञानी पुरुष को बहुतसी गाँवें पाने में कोई कठिनाई नहीं होती है ।

१३८ जिन दिनों में यज्ञ प्रचलित रहे जाते हैं, तब सोमरस का सेवन तथा सामगान का भवण जारी रहता है ।

टिप्पणी- [१३६] किसी न किसी आदर्श या ध्येय को सामने रखकर ही मानव कर्म में प्रवृत्त होता है और उस कर्म से ध्येय का प्रतीक्षण होता है । उसी प्रकार ज्ञानसंग्रह विद्वान् लोग मनन के उपरान्त जो संकल्प ज्ञान लेते हैं, वह भी उनके आदर्श को ही दर्शाता है । अतः ऐसा कह सकते हैं कि, मानव के कर्म तथा संकल्प के साथ ही साथ जो प्रार्थनाएँ हुआ करती हैं, जिन आवांक्षाओं तथा ध्येयों की अभिव्यक्ति होती है, उन्हें देवता सुन लें । संकल्प तथा कर्म के द्वारा जो ध्येय आविर्भूत होता है, वही मानव का उच्च कोटि का ध्येय है, ऐसा समझना ठीक है और देवता का ध्यान उपर आकर्षित होता ही है । [१३७] (१) वाजिन = घोड़ा, सुदसवार, बलिष्ठ, धान्य रखनेवाला । (२) अनु + तश्च् = बना देना, निर्माण करना, संस्कार करके तैयार कर देना । (३) गो-मति व्रजे = अनेक गाँवों से युक्त ग्वालिके वाटे में । (४) व्रजः = ग्वालिका वाड़ा । वीरोंकी अनुकूलता होने पर बधेष्ट गाँवें पाना थोड़ा कठिन बात नहीं है । क्योंकि गाँव साथ रखनाही प्रसुर संपत्ति या वैभव का चिह्न है । [१३८] दिविष्टि = (दिष् + इष्टि) = दिन में की जानेवाली इष्टि । (२) वहिष् = दर्भ, भासन, यज्ञ। मंत्र १०९ देखिए ।

(१३९) अस्य । श्रोपन्तु । आ । भुवः । विश्वाः । यः । चर्पणीः । अभि ।
सूरम् । चित् । सन्तुपीः । इपः ॥ ५ ॥

(१४०) पूर्वाभिः । हि । ददाशिम । शरत्सभिः । मरुतः । वयम् ।
अधःसभिः । चर्पणीनाम् ॥ ६ ॥

(१४१) सुभगः । सः । प्रयज्यवः । मरुतः । अस्तु । मर्त्यः ।
यस्य । प्रयांसि । पर्यथ ॥ ७ ॥

अन्वय - १३९ विश्वा चर्पणी, सूरं चित्, इप सन्तुपी, यः अभि-भुव अस्य (मरुतः) आश्रोपन्तु ।
१४० (हे) मरुत ! चर्पणीनां अधोभि वयं पूर्वाभि शरत्सभिः हि ददाशिम ।
१४१ (हे) प्र-यज्यव मरुतः ! सः मर्त्यं सु-भगः अस्तु, यस्य प्रयांसि पर्यथ ।

अर्थ- १३९ (विश्वाः चर्पणीः) सभी मानवों को तथा (सूरं चित्) विद्वान् को भी (इप सन्तुपीः)
अन्न मिल जाय, इसलिये (यः अभि भुव) जो शत्रु का पराभव करता है, (अस्य) उन्का काव्य-
गायन सभी वीर (आ श्रोपन्तु) सुन लें ।

१४० हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (चर्पणीनां अधोभिः) कृपकों की तथा मानवों की सन्तु-
चित रक्षा करने की शक्तियों से युक्त (वयं) हम लोक (पूर्वाभिः शरत्सभिः) अनेक वर्षों से (हि)
सचमुच (ददाशिम) दान देते आ रहे हैं ।

१४१ हे (प्र यज्यवः मरुत !) पूज्य मरुतो ! (स मर्त्यः) वह मनुष्य (सु भगः अस्तु)
अच्छे भाग्यशाला रहता है कि, (यस्य प्रयांसि) जिन्के अन्न का (पर्यथ) नियम तुम करते हो ।

भावार्थ- १३९ जो वीर पुरुष सन्तुची मानवजाति को तथा विद्वान्महर्षी को अन्न की प्राप्ति हो, इस हेतु शत्रुदल
का पराभव करनेकी चेष्टा करके सकलता पाता है, उसी वीरके यशका गान लोग करते हैं और उस गुण-परिभा-गात् जो
सुन्दर ओताओं में रक्षित का सचार हो जाता है ।

१४० कृपको तथा सभी मानवजाति की रक्षा करने के लिये जो आवश्यक गुण वा शक्तियाँ हैं, उनसे
युक्त बनकर हम पहले से ही दान देते आये हैं । (या भित्तिनां तथा अस्य लोगों की संरक्षणक्षम शक्तियों के द्वारा
सुशिक्षित बन हम प्रथमतः वानी बन चुके हैं ।)

१४१ वीर पुरुष जिसके अन्न का सेवन करते हैं, वह मनुष्य सचमुच भाग्यशाली बनता है ।

टिप्पणी- [१३९] (१) सूर = विद्वान्, बड़ा सनालोचक । (२) सन्तुपी = (सु गती) चला जाय,
पहुँचे, मास हों । (३) अभि-भुव = शत्रुदल का पराभव करनेवाला । (४) विश्वाः चर्पणी = जनता,
समूचा मानवी समाज । (चर्पणिः = [हृत्] कृपक, कायतकार, हृत्प्रभं करनेवाला कर्मसे निरत ।) [१४०] (१)
चर्पणिः- (हृत्) = हृत्क, हृत्से भूमि जोतनेवाला । (२) अधस-संरक्षण । [१४१] (१) प्र-यज्यु = यजिय,
पूज्य । (२) सु-भग = भागवान् । (३) प्रयस्य = अन्न, प्रयस्यो के उदात्त प्राप्त किया हुआ भोग ।

(१४२) शशमानस्य । वा । नरः । स्वेदस्य । सत्यशवसः । विद । कामस्य । वेनतः ॥८॥

(१४३) यूयम् । तत् । सत्यशवसः । आविः । कर्त । महिस्त्वना ।
विध्यत । विद्युता । रक्षः ॥ ९ ॥

(१४४) गृहंत । गुह्यम् । तमः । वि । यात । विश्वम् । अत्रिणम् ।
ज्योतिः । कर्त । यत् । उदमसि ॥ १० ॥

अन्वय — १४२ (हे) सत्य-दायस महत । शशमानस्य स्वेदस्य वेनत- वा कामस्य विद ।

१४३ (हे) सत्य-शवस । यूयं तत् आवि कर्त, विद्युता महिस्त्वना रक्ष विध्यत ।

१४४ गुह्यं तमः गृहंत, विश्वं अत्रिणं वि यात, यत् ज्योतिः उदमसि कर्त ।

अर्थ- १४२ हे (सत्य दायसः मरतः !) सत्यसे उद्भूत बल से युक्त महतो ! (शशमानस्य) शीघ्र गति के कारण (स्वेदस्य) पसीने से भीगे हुए, तथा (वेनतः वा) तुम्हारी सेवा करनेवाले की (कामस्य विद) अभिलाषा पूर्ण करो ।

१४३ हे (सत्य दायसः !) सत्य के बल से युक्त धीरो ! (यूयं) तुम (तत्) यह अपना बल (आविः कर्त) प्रकट करो । उस अपने (विद्युता महिस्त्वना) तेजस्वी बल से (रक्षः विध्यत) राक्षसोंको मार डालो ।

१४४ (गुह्यं) गुप्तार्थे विद्यमान (तमः) अंधेरा (गृहंत) दूर दो, विनष्ट करो । (विश्वं अत्रिणं) सभी पेट्टे दुरात्माओं को (वि यात) दूर कर दो । (यत् ज्योतिः) जिस तेजको हम (उदमसि) पाने के लिए लालायित हैं, यह हमें (कर्त) दिला दो ।

भाषार्थ- १४२ मे धीर सचाई के भक्त हैं, भक्त बलवान् हैं । जो जल्द बले जाने के कारण पसीने से तर होते हैं या लगातार काम करने से थकेमोदे होते हैं, उनकी सेवा करनेवालों की इच्छाएँ मे धीर पूर्ण कर देते हैं ।

१४३ मे धीर सच्चे बलवान् हैं । इनका वह बल प्रकट हो जाय और उसके फलस्वरूप सदैव कष्ट पहुँचानेवाले दुष्टों का नाश हो जाय ।

१४४ अधिपति विनष्ट करके तथा कभी तुल्य न होनेवाले स्वार्थी शत्रुओं को हराकर सभी जगह प्रकाश का विस्तार करना चाहिए ।

टिप्पणी- [१४२] (१) सत्य-शवस = सत्य का बल, जो सच्चे बल से युक्त होते हैं । (२) शशमानः = (शश-प्लुतगती) = शीघ्र गतिसे आनेवाला, बहुत काम करनेवाला (अत्र १३३ देखो) । [१४४] (१) गुह्यं तमः = गुहा में रहनेवाला अंधेरा, अन्तस्तरफका अज्ञानरूपी तम पटल, धामें विद्यमान भयकार । (२) अत्रिण् = स्वानेवाले, पेट्टे दूसरोंका भाग स्वय ही उठाकर उपभोग लेनेवाला स्वार्थी । [हम अत्रके साथ तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्मांश्मृतं गमय ॥ ' (बृहदा० १।३।२८) इसकी तुलना कीजिए ।]

(क० १८७१-६)

(१४५) प्रत्यक्षसः । प्रस्तवसः । विरश्चिनः । अनानताः । अविधुराः । ऋजीपिणः ।

जुष्टमासः । नृष्टमासः । अञ्जिभिः ।

वि । आनजे । के । चित् । उस्ताःऽइव । स्तुभिः ॥ १ ॥

(१४६) उपहारेषु । यत् । अचिधम् । ययिम् । वयःऽइव । मरुतः । केन । चित् । पथा ।
श्रोतन्ति । कोशाः । उप । वः । रथेषु । आ । घृतम् । उभृत । मधुवर्णम् । अर्चते ॥२॥

अन्वयः- १४५ प्र त्यक्षस प्र तयसः वि -रश्चिन अन्-आनता भ विधुरा ऋजीपिणः जुष्ट-तमास
नृ-तमास के चित् उस्ता इव स्तुभिः वि आनजे ।

१४६ (हे) मरुत ! वय इव केन चित् पथा यत् उपहारेषु ययि अचिधं, व रथेषु कोशाः
उप श्रोतन्ति, अर्चते मधु-वर्णं घृतं आ उभृत ।

अर्थ- १४५ (प्र-त्यक्षस.) शशुदल को क्षीण करनेवाले, (प्र-तयसः) अच्छे बलशाली, (वि-
रश्चिनः) बड़े भारी वक्ता, (अन्-आनता) किसीके सम्मुख शीश न झुकानेहार, (भ-विधुरा.) न वि-
छुड़नेवाले अर्थात् एरुतापूर्वक जीवनयात्रा धितानेवाले (ऋजीपिण.) सौम्यस पीनेवाले या सीदा-
सादा तथा सरल वर्ताव रखनेवाले, (जुष्ट-तमास) जनता को अतीव सेव्य प्रतीत होनेवाले तथा
(नृ-तमास) नेताओं में प्रमुख थे वीर (केचित् उस्ता इव) सूर्यकिरणों के समान (स्तुभि) बल
तथा अलंकारों से युक्त होकर (वि आनजे) प्रकाशमान होते हैं ।

१४६ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वय इव) पंछी की नाई (केन चित् पथा) किसी भी
मार्ग से आकर (यत्) जब (उपहारेषु) हमारे समीप (ययिं) आनेवालों को तुम (अचिधं) इकट्ठे
करते हो, तब (वः रथेषु) तुम्हारे रथों में विद्यमान (कोशाः) भांडार हम पर (उप श्रोतन्ति) धन की
वर्षा करने लगते हैं और (अर्चते) पूजा करनेवाले उपासक के लिए (मधु-वर्णं) मधु की नाई स्वच्छ
वर्णवाले (घृतं) घी या जल की तुम (आ उभृत) वर्षा करते हो ।

मावार्थ- १४५ शशुर्भों को हतयत् करनेवाले, बलसे पूर्ण, अच्छे वक्ता, सदैव अपना मस्तक ऊँचा करने चलनेहार,
एक ही विचार से आचरण करनेवाले, क्षोभ का सेवन करनेवाले, सेवनीय और प्रमुख नेता बन जाने की क्षमता रखने-
वाले वीर वक्तालंकारों से सजाये जाने पर सूर्यकिरणवत् सुहाते हैं ।

१४६ जिस वक्त तुम किसी भी राह से आकर हमारे निकट आनेवाले लोगों में एकता प्रस्थापित करते
हो, संगठन करते हो, तब तुम्हारे रथों में रखे हुए धनभांडार हमें सफल से निहाल कर देते हैं, हम पर मार्गों धन की
सतत वृष्टिसे रचते हैं । तुम लोग भी अन्न एवं उपायक को स्वच्छ जल एवं निर्दोष अन्न परोस मात्रा में देते हो ।

टिप्पणी [१४५] (१) प्र-त्यक्षस् = बड़े सामर्थ्यसे युक्त, शशुर्भोंको दुर्बल कर देनेवाले । (२) प्र-तयस् =
जिसके विक्रम की पाह न मिलती हो, बलिष्ठ । (३) वि-रश्चिन् = (१९-व्यकार्यां वाचि) गभीर आवाज से
बोड़नेवाले, भारी वक्ता, सुवार्था वक्तृत्वा की शही लगानेवाले । (४) अन्-आनताः = किसी के सामने न नमने-
वाले याने आत्मसमान की अभ्युत्थ तथा अडिग रखनेवाले । (५) भ-विधुर = (४५-भयमचलनयो) न
हसनेवाले, न विछुड़नेवाले । अत्र १४७ देखिये । (६) जुष्ट-तमा = सेवा करने के लिए योग्य, समीप रखने के लिए
उचित । [१४६] (१) उपहृत = पकान्त, समीप, टेढापन, रथ । (२) ययि = आनेवाला । (३) कोशाः =
अज्ञान । (४) घृतं = घी, अन्न ।

(१४७) प्र । एषाम् । अज्मेषु । विधुराश्च । रेजते । भूमिः । यामेषु । यत् । ह । युञ्जते । द्रुमे ।
ते । क्रीळ्यः । धुनयः । भ्राजत्-क्रष्टयः । स्वयम् । महिस्त्वम् । पनयन्त । धृतयः ॥३॥

(१४८) सः । हि । स्वसृत् । पृपत्-अश्वः । युवा । गणः । अया । ईशानः । तविपीभिः । आश्रुतः ।
असि । सत्यः । क्रणयावा । अनेघः । अस्याः । धियः । प्रअविता । अर्थ । वृषा । गणः ॥४॥

अन्वयः— १४७ यत् ह द्रुमे युञ्जते, एषां अज्मेषु यामेषु भूमिः विधुराश्च प्र रेजते, ते क्रीळ्यः धुनयः
भ्राजत्-क्रष्टयः धृतयः स्वयं महित्वं पनयन्त ।

१४८ सः हि गणः युवा स्व-सृत् पृपत्-अश्वः तविपीभिः आवृतः अया ईशानः अथ सत्यः
क्रण-यावा अ-नेघः वृषा गणः अस्याः धियः प्र अविता अस्ति ।

अर्थ- १४७ (यत् ह) जब सचमुच ये वीर (द्रुमे) अच्छे कर्म करने के लिए (युञ्जते) कटियुद्ध हो
उठते हैं, तब (एषां अज्मेषु यामेषु) इनके वेगवान् हमलों में (भूमिः) पृथ्वी तक (विधुराश्च) अनाथ
नारी के समान (प्र रेजते) बहुतही काँपने लगती है। (ते क्रीळ्यः) ये खिल्लाड़ीपन के भाव से प्रेरित,
(धुनयः) गतिशील, चपल (भ्राजत्-क्रष्टयः) चमकाले हथियारों से युक्त, (धृतयः) शत्रुको विच-
लित कर देनेवाले वीर (स्वयं) अपना (महिस्त्वं) महत्त्व या बड़प्पन (पनयन्त) विख्यात कर
डालते हैं ।

१४८ (सः हि गणः) वह वीरों का संघ सचमुचही (युवा) यौवनपूर्ण, (स्व-सृत्) स्वयंप्रेरक,
(पृपत्-अश्वः) रथ में धम्येवाले घोड़े जोड़नेवाला (तविपीभिः आवृतः) और भ्रौंतिभ्रौंति के बलों से
युक्त रहने के कारण (अया ईशानः) इस संसार का प्रभु एवं स्वामी बनने के लिए उचित एवं सुयोग्य
है। (अथ) और वह (सत्यः क्रण यावा) सचाई से बर्ताव करनेवाला तथा क्रण दूर करनेवाला, (अ-
नेघः) अनिन्दनीय और (वृषा) घलवान् वीर पडनेवाला (गणः) वह संघ (अस्याः धियः) इस हमारे
कर्म तथा ज्ञान की (प्र अविता अस्ति) रक्षा करनेवाला है ।

भाषार्थ- १४७ जिस समय ये वीर जनता का बंधान करने के लिए सुसज्ज हो जाते हैं, उस समय इनके शत्रुओं
पर हूट पडने से मारे डरके समूची पृथ्वी धर धर काँप उठती है। ऐसे अक्षर पर खिदाही, चपल, तेजस्वी शस्त्र
धारण करनेवाले तथा शत्रु को विन्दीपत करनेवाले वीरों की महनीयता प्रकट हो जाती है ।

१४८ वह वीरों का संघ युवा, स्वयंप्रेरक, बलिष्ठ, सत्यनिष्ठ, उक्रण होने की चेष्टा करनेवाला, प्रशंसनीय
तथा शान्धर्ववान् है, इस कारण से इस संसार पर प्रभुत्व प्रस्थापित करने की क्षमता पूर्ण रूपेण रखता है। इसारा इच्छा
है कि, इस मूर्ति का यह समुदाय हमारे कर्मों तथा संस्कारों में हमारी रक्षा करनेवाला बने। (अथ विश्व में विजयी
बनने की एवं जगत् पर स्वाभिन्द प्रस्थापित करने की छालमा हो, तो उपयुक्त गुणों की ओर प्यान देना अनिवार्य
भावश्यक है ।)

टिप्पणी [१४७] (१) युञ्जते = युक्त हो जाते हैं, मज्ज बनने हैं, रथ जोड़कर तैयार होते हैं। (२) वि-धुरा
= (वि-धुरा) विधुर नारी; अनाथ, अमहाय महिला। मंत्र १४५ वॉ देखिए ।

(१४९) पितुः । प्रत्नस्य । जन्मना । वदामसि । सोमस्य । जिह्वा । प्र । जिगाति । चक्षसा । यत् । ईप् । इन्द्रम् । शर्मि । ऋक्वाणः । आशत । आत् । इत् । नामानि । यज्ञियानि । दधिरे ॥५॥
 (१५०) श्रियसे । कप् । भानुऽभिः । सम् । मिमिक्षिरे । ते । रश्मिऽभिः । ते । ऋक्ऽभिः । सुऽखादयः । वे । वाशीऽमन्तः । इष्मिणः । अभीरयः । विद्रे । प्रियस्य । मारुतस्य । धाम्नः ॥ ६ ॥

अन्वयः- १४९ प्रत्नस्य पितुः जन्मना वदामसि, सोमस्य चक्षसा जिह्वा प्र जिगाति, यत् शर्मि ई इन्द्रं ऋक्वाणः आशत, आत् इत् यज्ञियानि नामानि दधिरे ।

१५० ते के श्रियसे भानुभिः रश्मिभिः सं मिमिक्षिरे, ते ऋक्वभिः सु-खादयः वाशी-मन्तः इष्मिणः अ-भीरयः ते प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः विद्रे ।

अर्थ- १४९ (प्रत्नस्य पितुः जन्मना) पुरातन पिता से जन्म पाये हुए हम (वदामसि) कहते हैं कि, (सोमस्य चक्षसा) सोम के दर्शन से (जिह्वा प्र जिगाति) जीभ-वाणी प्रगति करती है, अर्थात् धीरों के काव्य का गायन करती है। (यत्) जय ये धीर (शर्मि) शत्रु को शान्त करनेवाले युद्ध में (ई इन्द्रं) इस इन्द्र को (ऋक्वाणः) स्फूर्ति देकर (आशत) सहायता करते हैं, (आत् इत्) तभी वे (यज्ञियानि नामानि) प्रशंसनीय नाम-यज्ञ (दधिरे) धारण करते हैं ।

१५० (ते) वे धीर मरुत् (कं श्रियसे) सय को मुक्त मिले इसलिए (भानुभिः रश्मिभिः) तेजस्वी किरणों से (सं मिमिक्षिरे) सय मिलकर वर्षा करना चाहते हैं । (ते) वे (ऋक्वभिः) कवियों के साथ (सु-खादयः) उत्तम अन्न का सेवन करनेहार या अच्छे आभूषण धारण करनेवाले, (वाशी-मन्तः) कुल्हाड़ी धारण करनेवाले (इष्मिणः) वेग से जानेवाले तथा (अ-भीरयः) न डरनेवाले (ते) वे धीर (प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः) प्रिय मरुतों के स्थान को (विद्रे) पाते हैं ।

भाषार्थ- १४९ श्रेष्ठ परिवार में उत्पन्न हुए हम इस बात की घोषणा करना चाहते हैं कि, सोम की भावित्ति देने समय मुँह से अर्थात् जिह्वा से भी देयताओं की सराहना करनी चाहिये । शत्रुत्व को विनष्ट करने के लिए जो युद्ध छेड़ने पड़ते हैं, उनमें इन्द्र को स्फूर्ति प्रदान करने हुए वे धीर सहायनीय कोलि पाते हैं । उन नामों से उनकी कर्तृत्व-शक्ति प्रकट हुमा करती है ।

१५० वे धीर जनता सुधी यने इय क्लिष्ट भूमि में, पृथ्वी-मंडल पर बड़ा भारी दान करते हैं भीर वज्र से हविष्वाह का भोजन करनेवाले, सुन्दर वीरोचित आभूषण पहननेवाले, कुठार हाथ में बडाकर शत्रुत्व पर दृढ़ पड़नेवाले, निर्भयता से पूर्ण धीर अपने प्रिय देश की पाकर डल की सेवा में लगे रहते हैं ।

टिप्पणी [१४९] (१) शर्मि = शांत करना, शत्रु का वध करना । (२) ऋक्वाणः = (ऋक्-स्तुती) = प्रशंसा करके प्रेरणा करनेवाले । प्रहर भगवः, जहि, वीर्यस्व ' ऐसे मंत्रों से या ' शूर, वीर ' भादि नाम पुकार कर उत्साह बढ़ाया जाता है । धीरों की उमंग कैसे बढ़ानी चाहिये, सो यहाँ पर विदित होगा । प्रशंसा करनेयोग्य नाम ही (यज्ञियानि नामानि) धारण करने चाहिये । ' विक्रमसिंह, प्रताप, राजपूत ' वगैरह नाम धीरों को देने चाहिये । वेद में ' वृयहा, शत्रुहा ' जैसे नाम हैं, जो कि उत्साहवर्धक हैं । सैनिकों को प्रोत्साहित करने की सूचना यहाँ पर मिलती है । [१५०] (१) सु-खादिः = अच्छा अन्न खानेवाले, सुन्दर वस्त्रों या गणवेश पहननेवाले, या धीरों के गहने धारण करनेवाले । (२) वाशी-मन्तः = कुठार, माले, तलवार, परशु लेकर आक्रमण करनेवाला धीर । मंत्र ०० देखो । (३) इष्मिन् = गणितान्, आक्रमणशील । (४) अ-भीरुः = निडर । (५) प्रियस्य धाम्नः विद्रे = प्यारे देश को पहुँच जाते हैं, या प्राप्त हो जाते हैं ।

(ऋ० १।८।१-६)

(१५१) आ । विद्युन्मत्स्रभिः । मरुतः । सुऽअकैः । रथैभिः । यात । ऋष्टिमत्स्रभिः । अभ्यऽपर्णैः ।
आ । वार्षिष्ठया । नः । इया । वयः । न । पप्रत । सुऽमायाः ॥ १ ॥

(१५२) ते । अरुणेभिः । वरम् । आ । पिशाङ्गैः । शुभे । क्रम् । यान्ति । रथतूऽभिः । अभैः ।
रुमः । न । चित्रः । स्वधितिऽयान् । पुन्या । रथस्य । ब्रह्मन्त । भूमं ॥ २ ॥

अन्ययः-१५१ (हे) मरुतः ! विद्युन्मद्भिः सु-अकैः ऋष्टि-मद्भिः अभ्य-पर्णैः रथैभिः आ यात, (हे) सु-
मायाः ! वार्षिष्ठया इया, वय- न, नः आ पप्रत ।

१५२ ते अरुणेभिः पिशाङ्गैः रथ-तूभिः अभैः शुभे वरं कं आ यान्ति, रुमः न चित्रः, स्वधिति-
यान्, रथस्य पुन्या भूम अंघनन्त ।

अर्थ- १५१ हे (मरुतः !) धीर मरुतो ! (विद्युन्मद्भिः) विजली से युक्त या विजली की नाई अति-
तेजस्वी, (सु-अकैः) अतिशय पूज्य, (ऋष्टि-मद्भिः) हथियारों से सजे हुए तथा (अभ्य-पर्णैः) घोड़ों
से युक्त होने के कारण वेग से जानेवाले (रथैभिः) रथों से (आ यात) इधर आओ । हे (सु-मायाः !)
अच्छ कुशल धीरो ! तुम (वार्षिष्ठया इया) श्रेष्ठ भद्र के साथ (वयः न) पंछियों के समान वेगपूर्वक
(नः आ पप्रत) हमारे निकट चले आओ ।

१५२ (ते) ये धीर (अरुणेभिः) रक्षित दीप्त पड़नेवाले तथा (पिशाङ्गैः) भूरे यदामी वर्ण-
वाले और (रथ-तूभिः) रथरूपपूर्वक रथ खींचनेवाले (अभैः) घोड़ों के साथ (शुभे) शुभकार्य करने के
लिए और (वरं कं) उच्च कोटिका कल्याण संपादन करने के लिए, सुख देनेके लिए (आ यान्ति) आते
हैं । यह धीरो का संघ (रुमः न) सुवर्णकी भौति (चित्रः) प्रेक्षणीय तथा (स्वधिति-यान्) शस्त्रों से
युक्त है । ये धीर (रथस्य पुन्या) घाहन के पहियोंकी लौहपट्टिकाओं से (भूमं) समूची पृथ्वी पर
(अंघनन्त) गति करते हैं, गतिशील बनते हैं ।

भाषार्थ- १५१ अपने हाकाश्र, रथ तथा रण-चातुरीके द्वारा धीर पुरुष अच्छा भद्र प्राप्त कर के और ऐसी भायोमना
हैंद निकालें कि वह सब को यथावत् मिल जाए ।

१५२ धीर पुरुष समूची जनता का भेद वक्ष्यण करने के लिए अपने रथों को हथियारों तथा अन्य विशेष
भाषुणों से भली भौति सज्ज करके सभी स्थानों में संचार करें ।

टिप्पणी- [१५१] (१) अभ्य-पर्णैः = (अधानां पर्ण पतनं गमनं यत्र) अधों के ओढ़ने से वेगपूर्वक जाने-
वाला (रथ) । (२) सु-मायाः = (माया = कौशल्य, दस्तकारी) उत्तम कार्य-कुशलता से युक्त, कलापूर्ण वस्तु
बनानेवाले । (३) वयः न = पंछियों के समान (आकाश में से जैसे पक्षी चले आते हैं, उसी तरह तुम आकाश-
यानों में बैठकर आ जाओ ।) (देखो मंत्र ११, ३८९) [१५२] (१) रुमः = जिम पर छाप दीप्त पड़ती हो ऐसी
सोने का टुकड़ा, अर्कंकार, मुहर । (२) स्व-धितिः = कुडार, शस्त्र । (३) पविः = रथ के पहिये पर लगी हुई
लौह पट्टिका, चक्र नामक एक हथियार । (४) दन् = (दिंतागारोः) बघ करना, गति करना (जाना) ।

(१५३) श्रिये । कम् । वः । अर्धि । तनूपु । वाशीः । मेघा । वना । न । कृण्वन्ते । ऊर्ध्वा ।
युष्मभ्यम् । कम् । मरुतः । सुऽजाताः । तुविद्युम्नासः । धनयन्ते । अद्रिम् ॥ ३ ॥

(१५४) अहानि । गृध्राः । परि । आ । वः । आ । अगुः ।

इमाम् । धियंम् । वार्कार्याम् । च । देवीम् ।

ग्रहा । कृण्वन्तः । गौतमासः । अर्कः ।

ऊर्ध्वम् । ननुद्रे । उत्सधिम् । पिवथ्यै ॥ ४ ॥

अन्वयः— १५३ श्रिये कं यः तनूपु अधि वाशीः (वर्तते), वना न मेघा ऊर्ध्वा कृण्वन्ते, (हे) सु-
जाताः मरुतः । तुवि-द्युम्नासः युष्मभ्यं कं अद्रिं धनयन्ते ।

१५४ (हे) गौतमासः । गृध्राः यः अहानि परि आ आ अगुः, वार्-कार्या च इमां देवीं
धियं अर्कः ग्रह कृण्वन्तः, पिवथ्यै उत्सधि ऊर्ध्वं ननुद्रे ।

अर्थ- १५३ (श्रिये कं) विजयध्री तथा सुख पानके लिए (यः तनूपु अधि) तुम्हारे शरीरोंपर (वाशीः)
आयुध लटकते रहते हैं; (वना न) धनके घुसों के समान [अर्थात् धनों में पैड जैसे ऊँचे बढते हैं, उसी
तरह तुम्हारे उपासक तथा भक्त] अपनी (मेघा) बुद्धिको (ऊर्ध्वा) उच्च कोटिकी (कृण्वन्ते) घना देते
हैं । हे (सु-जाताः मरुतः) अच्छे परिवारमें उत्पन्न वीर मरुतो ! (तुवि-द्युम्नासः) अत्यंत दिव्य मनसे
युक्त तुम्हारे भक्त (युष्मभ्यं कं) तुम्हें सुख देनेके लिए (अद्रिं) पर्वतसे भी (धनयन्ते) धनका सृजन
करते हैं [पर्वतोंपर से सोमसदृश धनरूपति लाकर तुम्हारे लिए अन्न तैयार करते हैं] ।

१५४ हे (गौतमासः) गौतमो ! (गृध्राः वा) जल की इच्छा करनेवाले तुम्हें अथ (अहानि)
अच्छे दिन (परि आ आ अगुः) प्राप्त हो चुके हैं । अब तुम (वार्-कार्या च) जलसे करनेयोग्य (इमां देवीं
धियं) इन दिव्य कर्मों को (अर्कः) पूज्य मंत्रों से (ग्रहा) ज्ञानसे पवित्र (कृण्वन्तः) करो । (पिवथ्यै)
पानी पीनेके लिए मिले, सुगमता हो, इसलिए अथ (ऊर्ध्वं) ऊपर रखे हुए (उत्सधि) कुंडके जल को
तुम्हारी ओर (ननुद्रे) नहरद्वारा पहुंचाया गया है ।

भावार्थ- १५३ समर में विजयी बनने के लिए और जनता का सुख बढ़ाने के लिए भी वीर पुरुष अपने
समीप सदैव शस्त्र रखें । अपनी विचारप्रणाली को भी हमेशा परिमार्जित तथा परिष्कृत रखें । मन में दिव्य विचारों
का संग्रह बनाकर पवर्तनीय एवं पार्थिव धनवैभव का उपयोग समूची जनता का सुख बढ़ाने के लिए करें ।

१५४ निवासस्थलों में बंधे जल मिले, वो बहुत सारी सुविधाएँ प्राप्त हुआ करती हैं, इसमें क्या संशय ?
इस कारण से इन धीरोंने गोतम के आश्रम के लिए जल की सुविधा करवाली । पश्चात् उस स्थान में मानवी बुद्धि
ज्ञान के कारण पवित्र हो जाए, इस कपाल से प्रभावित होकर मलयजसदृश कर्मों की शक्ति कराई । (मंत्र १३२, १३३
देखिए ।)

टिप्पणी- [१५३] (१) युष्मं = (सु-मनः) तेजस्वी मन, विचार, चक्र, कर्मि, शोभा, शक्ति, धन, तेज, बल ।
(२) अ-द्रिः = तोड़ देने में असंभव दील पड़े, देसा पर्वत, सोम कूटने का पथर, वृक्ष, मेघ, वज्र, शस्त्र । (३)
धनयन्ते = (धन शस्त्राक्तकोटीति जिब्) धन पैदा करते हैं, आवाज निकालते हैं । [१५४] (१) गृध्राः =
लालची, तिद्ध, इच्छा करनेवाला । (२) वार्कार्या = (वार्-कार्या) जल से निष्पन्न होनेवाले (कर्म) । (३)
उत्स-धिः = कुर्मो, कुंड, जलानयन, नावटी । (४) धीः = बुद्धि, कर्म ।

(१५५) एतत् । त्यत् । न । योजनम् । अचेति ।
 सस्यः । ह । यत् । मरुतः । गोतमः । गुः ।
 पश्यन् । हिरण्यञ्चक्रान् । अयःदंष्ट्रान् ।
 विधायतः । वराहून् ॥ ५ ॥

(१५६) एषा । स्या । वः । मरुतः । अनुभ्रमी ।
 प्रति । स्तोभति । गुपतः । न । वाणी ।
 अस्तोभयत् । घृथा । आसाम् । अनु । स्रघाम् । गमस्त्योः ॥ ६ ॥

अन्वय — १५५ (हे) मरुत हिरण्य चक्रान् अयो-दंष्ट्रान् वि-धायत यर-आहून् घ. पश्यन् गोतम यन् एतत् योजन सस्य ह त्यत् न अचेति ।

१५६ (हे) मरुत ! गमस्त्यो स्रघा अनु स्या एषा अनु-भ्रमी वाद्यत वाणी न च प्रति स्तोभति, आसा घृथा अस्ताभयत् ।

अर्थ- १५५ हे (मरुत !) घीर मरुतो ! (हिरण्य-चक्रान्) स्वर्णविभूषित पहिये की शङ्ख के हथियार धारण करनेवाले (अयो-दंष्ट्रान्) फौलाद् की तेज टाढोंसे धाराओं से युक्त हथियार लेकर (वि धायतः) भीतिमाति के प्रकारों से शत्रु तैपर दौडकर दूट पडनेवाले ओर (यर-आ-हून्) बलिष्ठ शत्रुओंका विनाश करनेवाले (घ) तुम्हें (पश्यन्) देखनेवाले (गोतमः) क्षत्रि गोतमने (यत् एतत्) जो यह तुम्हारी (योजन) आयोजना छन्दोपद्ध स्तुति (सस्य ह) गुप्त रूपसे पणित कर रयी है, (त्यत्) यह सत्यसुच (न अचेति) अचर्णनीय है ।

१५६ हे (मरुत !) घीर मरुतो ! तुम्हारे (गमस्त्यो) पाहुओंकी (स्रघा अनु) धारक शक्तिको शूरता का श्रयान म रस कर (स्या एषा) वही यह (अनु भ्रमी) तुम्हारे यशका पोषण करनेवाली (वाद्यत वाणी) हम जैसे स्तोताओंकी वाणी (न) अत्र (घ) प्रति स्तोभति) तुममेंसे प्रत्येक का चर्णन करती है । पहले भी (आसा) इन वाणियों ने (घृथा) किसी विशेष हेतुके सिवा शस्त्री भौति (अस्तोभयत्) सराहना की थी ।

भाष्यार्थ- १५५ घीरोंको चाहिए कि वे अपने हीहण शस्त्र साथ लेकर शत्रुदलपर विभिन्न प्रकारोंसे हमलोंका सूत्रपाद कर हमारा उद्देश्य निरूपित कर डाल । इस तरह शत्रुओंको नष्टमूलसे विनष्ट करना चाहिए । ऐसे घीरोंका समुचित यत्न करनेके लिए कवि घीर गाथाओंका सूत्रन कौम भीर चतुर्विध इन घीर गीतों तथा काव्यों का गायन शुरू होगा । १५६ घीर दुर्योधन युद्धभूमि में अस्त्रीय दूरता शक्य करते हैं, जब अनेक कर्णोंका तुजन बढी आसानी से हो जाता है और ध्यान म रत्नयोग्य बात है कि, सभी कवि उन काव्यों की रचना में स्वयस्फूर्ति से भाग लेते हैं । इसीलिए उन काव्यों के गायन एवं परिशीलन से जनता में बढी आसानी से जोशीले भाव पैदा हो जाते हैं ।

टिप्पणी- [१५५] (१) चक्र = पहिया, चक्रके आकारवाला हथियार । (२) हिरण्य-चक्र = सुवर्णकी पष्ठीकारी से विभूषित पहिया जैसे दिछाई देनेवाला शस्त्र । (३) यर-आ हू (यर आ हून्) = बलिष्ठ शत्रुको घराघायी करनेवाला (घ) याजन = जोडना, रचना, शस्त्रों की रचना करके काव्य बनाना । (४) अयो-दंष्ट्र = फौलाद् का घना एक हथियार जिसमें बड़े तीक्ष्ण धारण पाई जाती हैं । (५) वि-धायत् = शत्रु पर भौति भौति के प्रकारों से यश कराना । (६) सस्य = गुप्त ढंग से दसो क ५।३.०२ और ७।५।३, ३८९ । [१५६] (१) गमस्ति = किरण, गाडी का पहलक, हाथ कोडनी के आग हाथ, सूर्य, किरण । (२) स्रघा = अपनी धारक शक्ति, सामर्थ्य, शक्त । (३) घृथा = अर्थ, अनावश्यक, विशेष कारण के सिवा, निष्काम भाव से, स्वाभाविक रूप से ।

विवोदासपुत्र परच्छेषऋषि (ऋ १११२१८)

(१५७) मो इति । सु । वः । अस्त् । अभि । तानि । पौंस्या । सना । भूवन् । धुम्नानि ।
 मा । उत । जारिपुः । अस्मत् । पुरा । उत । जारिपुः ।
 यत् । वः । चित्रम् । युगेऽयुगे । नव्यम् । घोषात् । अमर्त्यम् ।
 अस्मासु । तत् । मरुतः । यत् । च । दुस्तरम् । दिधृत । यत् । च । दुस्तरम् ॥ ८ ॥

मित्रावरुणपुत्र अगस्त्यऋषि (ऋ १११६११-१५)

(१५८) तत् । तु । वोचाम् । रभसाय । जन्मने । पूर्वम् । महिस्त्वम् । वृषभस्य । केतवे ।
 ऐधाइव । यामन् । मरुतः । तुविस्वनः । युधाइव । शक्राः । त्विपाणि । कर्तन ॥ १ ॥

अन्वयः— १५७ (हे) मरुतः ! वः तानि सना पौंस्या अस्त् मो सु अभि भूवन्, उत धुम्नानि मां जारिपुः, उत अस्मत् पुरा (मा) जारिपुः, वः यत् चित्रं नव्यं अ-मर्त्यं घोषात् तत् युगे युगे, अस्मासु, यत् च दुस्तरं यत् च दुस्तरं दिधृत ।

१५८ (हे) मरुतः ! रभसाय जन्मने, वृषभस्य केतवे, तत् पूर्वं महित्वं तु वोचाम्, (हे) तुवि-स्वन शक्राः ! युधाइव यामन् ऐधाइव त्विपाणि कर्तन ।

अर्थ— १५७ हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (वः तानि) तुम्हारे वे (सना) सनातन पराक्रम करनेवाले (पौंस्या) बल (अस्मत्) हमसे (मो सु अभि भूवन्) कभी दूर न होने पायें । (उत) उसी प्रकार हमारे (धुम्नानि) यश (मा जारिपुः) कदापि क्षीण न हों । (उत) ऐसे ही (अस्मत् पुरा) हमारे नगर ([मा] जारिपुः) कभी घोरान या ऊजड न हों । (वः यत्) तुम्हारा जो (चित्रं) आश्चर्यकारक (नव्यं) नया तथा (अ-मर्त्यं) अमर (घोषात् तत्) गोशालाओंसे लेकर मानवोंतक धन है, वह सभी (युगे युगे), प्रत्येक युग में (अस्मासु) हम में स्थिर रहे । (यत् च दुस्तरं, यत् च दुस्तरं) जो कुछ भी अजिन्म धन है, वह भी हमें (दिधृत) दे दो ।

१५८ हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (रभसाय जन्मने) पराक्रम करने के लिए तुमोग्य जीवन प्राप्त हो, इसलिए वीर (वृषभस्य केतवे) बलिष्ठों के नेता बनने के लिए (तत्) यह तुम्हारा (पूर्व) प्राचीन कालसे चला आ रहा (महित्वं) महत्त्व (तु वोचाम्) हम ठीक ठीक कह रहे हैं । हे (तुविस्वनः) गरजनेवाले तथा (शक्राः !) समर्थ वीरो ! (युधाइव) युद्धवेला के समानही (यामन्) शत्रुदल पर चढ़ाई करने के लिए (ऐधाइव) धधकते हुए मग्न की नाई (त्विपाणि कर्तन) बल प्राप्त करो ।

भाषार्थ— १५७ हमेशा वीर पराक्रम के क्राय कर दिखलायें, हमें भी उसी तरह वीरतापूर्ण पायें निष्पन्न करने की शक्ति मिले । उस शक्ति के बलस्वरूप हमारा यश बढ़े । हमारे नगर समृद्धिदायी बन । प्रतिवर्ष वीरो का बल प्रकट हो जाए । हमें इस मौति का धन मिले कि, सन्तु कभी उसे हम से न छीन ले सके ।

१५८ हम सामर्थ्यवान् बनें और नेता के पद पर बैठ सकें, इसीलिए हम वीरों के साथ या गाथा तथा पठन करते हैं । युद्ध छिड़ जाने के मौके पर जिस तरह तुम्हारा हलचल या तैयारियाँ हुआ करती हैं, उन्हें ऐसे ही शृङ्खलण बनाये रखो । उन तैयारियों में तद्विक भी वीरतापन न रहने पाय, ऐसी सावधानी रखनी चाहिए ।

टिप्पणी— [१५७] (१) घोषा = शौ-शाला, जहाँ गायें बैधी रहती हैं, बालोंका बाधा । [१५८] (१) रभसः = बलवान्, सनाक, शक्ति, सामर्थ्य, और, स्वरा, क्रोध, आनन्द । (२) वृषभः = बलवान्, यहाँ करनेवाला । (३) वृषभस्य केतु = बलिष्ठ वीर वा कक्षण, शक्ति वा चिन्ह । (४) केतु = प्रमुख, नेता, अग्रसर, चिन्ह, ध्वज ।

(१५९) नित्यम् । न । सूनुम् । मधु । विभ्रतः । उप । क्रीळन्ति । क्रीळाः । विदयेषु । घृष्ययः ।
 नक्षन्ति । रुद्राः । अवसा । नमस्विनम् । न । मर्धन्ति । स्वस्तवसः । हविःऽकृतम् ॥२॥
 (१६०) यस्मै । ऊमासः । अमृताः । अरासत । रायः । पोषम् । च । हविषा । ददाशुषे ।
 उक्षन्ति । अस्मै । मरुतः । हिताःऽइव । पुरु । रजांसि । पर्यसा । मयःऽभुवः ॥३॥

अन्वय — १५९ नित्यं सूनुं न मधु विभ्रतः घृष्ययः क्रीळाः विदयेषु उप क्रीळन्ति, रुद्राः नमस्विनं
 अवसां नक्षन्ति, स्व तवसः हविस्-कृतं न मर्धन्ति ।

१६० ऊमास अ-मृताः मरुतः यस्मै हविषा ददाशुषे रायः पोषं अरासत अस्मै हिता इव
 मयो-भुव रजांसि पुर पयसा उक्षन्ति ।

अर्थ- १५९ (नित्यं सूनुं न) पिता जिस प्रकार अपने भारस पुत्र को खाद्यवस्तु दे देता है, वैसे ही
 सब के लिए (मधु विभ्रतः) मिठासभरे रस का धारण करनेवाले (घृष्ययः) युद्धसंघर्षमें निपुण और
 (क्रीळाः) क्रीडासक्त मनोवृत्तिवाले ये वीर (विदयेषु उप क्रीळन्ति) युद्धों में मानों खेलकूद में लगे हों,
 इस भाँति कार्य करना शुरू करते हैं । (रुद्राः) शत्रुको बलानेवाले ये वीर (नमस्विनं) उपासकों को
 (अवसा नक्षन्ति) स्वकीय शक्ति से सुरक्षित रखते हैं । (स्व-तवसः) अपने निजी बलसे युक्त ये वीर
 (हविस्-कृतं) हविष्यान्न देनेवाले को (न मर्धन्ति) कष्ट नहीं पहुँचाते हैं ।

१६० (ऊमास) रक्षण करनेवाले, (अ-मृता.) अमर वीर मरतों ने (यस्मै हविषा ददाशुषे)
 जिस हविष्यान्न देनेवाले को (राय पोषं) धन की पुष्टि (अरासत) प्रदान की- बहुतसा धन दे दिया-
 (अस्मै) उसके लिए (हिता इव) कल्याणकारक मित्रों के समान (मयो-भुव) सुख देनेवाले ये
 वीर (रजांसि) हल चलाई हुई भूमि पर (पुर पयसा) बहुत जल से (उक्षन्ति) वर्षा करते हैं ।

भाषार्थ- १५९ जिस तरह पिता अपने पुत्र को खानेकी चीजें देता है, उसी प्रकार वीरों को चाहिए कि वे भी
 सभी लोगों को पुत्रवत् मान उन्हें खानपान की वस्तुएँ प्रदान करें । ये वीर हमेशा खिलाडीपन से पारस्परिक बर्ताव
 करें और घर्मयुद्ध में कुशलतापूर्वक अपना कार्य करते रहें । शत्रुओं को हटाकर साधु जनों का संरक्षण करना चाहिए और
 दानी बदर लोगों को किसी प्रकार का कष्ट न देकर सुख पहुँचाना चाहिए ।

१६० सब के संरक्षण का तथा उदार दानी पुरवों के भरणपोषण का बीड़ा वीरों को उठाना पड़ता है ।
 वृद्धि वीर समूची जनता के हितकर्ता हैं, अतएव वे सबको सुख पहुँचाते हैं ।

टिप्पणी- [१५९] (१) मधु = मीठा, मीठा रस, अहद, सोमरस । (२) नित्य = हमेशा का, न बदलने-
 वाला, सतत, उषों का रवौ रहनेवाला । (३) नित्य सूनुः = औरस पुत्र, जिसका दूधरे का होना असंभव है । (४)
 घृष्ययः = (४५५) सघर्षे श्वर्षाणां च) चक्राक्षरी में निपुण । [१६०] (१) ऊमा = (अर्ध रक्षणे) =
 रक्षा करनेवाला, अष्टा मित्र, प्रिय मित्र । (२) रजस् = पृष्टि, जोती हुई जमीन, उर्वर भूमि, अतीक्ष्णिक ।
 मंत्र १८८ देखिए ।

(१६१) आ । ये । रजांसि । तर्विपीभिः । अन्यत । प्र । वः । एवासः । स्वऽयतासः । अग्रजन् ।
भयन्ते । विश्वा । भुवनानि । हर्म्या । चित्रेः । वः । यामः । प्रऽयतासु । ऋष्टिषु ॥ ४ ॥

(१६२) यत् । त्वेपऽयामाः । नदयन्त । पर्वतान् । दिवः । वा । पृष्ठम् । नर्याः । अचुच्यवुः ।
विश्वः । वः । अजमन् । भयते । वनस्पतिः । रथियन्तीऽह्व । प्र । जिहति । ओपधिः । ॥५॥

अन्वयः— १६१ ये एवासः तविपीभि रजांसि अन्यत, स्व-यतासः प्र अग्रजन्, प्र-यतासु यः ऋष्टिषु विश्वा भुवनानि हर्म्या भयन्ते, वः यामः चित्रः ।

१६२ त्वेप-यामाः यत् पर्वतान् नदयन्त, वा नर्या दिवः पृष्ठं अचुच्यवुः, य अजमन् विश्व-वनस्पति भयते, ओपधि- रथियन्तीऽह्व प्र जिहति ।

अर्थ— १६१ (ये एवासः) जो तुम वेगवान् घोर (तविपीभिः) अपने सामर्थ्यों तथा बलोंद्वारा (रजांसि अन्यत) सब लोगों का संरक्षण करते हो, तथा (स्व यतासः) स्वयं ही अपना नियंत्रण करनेवाले तुम जब शत्रुपर (अग्रजन्) वेगपूर्वक दौड़ जाते हो और जब (प्र-यतासु वः ऋष्टिषु) अपने हथियारों को आगे धकेलते हो, उस समय (विश्व भुवनानि) सारे भुवन, (हर्म्या) यड़े यड़े प्रासाद भी (भयन्ते) भयभीत हो उठते हैं, क्योंकि (वः यामः) तुम्हारी यह हलचल (चित्रः) सचमुच आश्चर्यजनक है ।

१६२ (त्वेप-यामाः) वेगपूर्वक चढ़ाई करनेवाले ये घोर (यत्) जब (पर्वतान् नदयन्त) पहाड़ों को मिनाहमय बना डालते हैं, (वा) उसी प्रकार (नर्याः) जनता का हित करनेवाले ये घोर जब (दिवः पृष्ठं अचुच्यवुः) अन्तरिक्ष के पृष्ठभाग पर से जाने लगे हें, उस समय हे धीरो ! (वः अजमन्) तुम्हारी इस चढ़ाई के फलस्वरूप (विश्वः वनस्पतिः) सभी वृक्ष (भयते) भयङ्गाकुल हो जाते हैं और सभी (ओपधिः) औपधियों भी (रथियन्तीऽह्व) रथ पर बैठी हुई महिला के समान (प्र जिहति) विकंपित हुआ करती हैं ।

भावार्थ— १६१ ये घोर सब की रक्षा में दृढचित्त हुआ करते हैं और जब अपना नियंत्रण स्वयं ही करते हैं तथा शत्रुदल पर दृढ़ पड़ते हैं, तब स्वयं स्फूर्ति से यह सब कुछ होगा है, इनलिपि सभी लोग सहम जाते हैं, क्योंकि इनका आक्रमण कोई साधारणसी बात नहीं है । इन बीरों की चढ़ाई में भीषणता पर्वत मात्रा में पाई जाती है ।

१६२ जब हमले करनेवाले शूर लोग शत्रुदल पर चढ़ाई करने के लिए पहाड़ों में तथा अन्तरिक्ष में चढ़े जोर से आक्रमण कर दते हैं, तब वृक्षवनस्पति सभी विचलित हो जाते हैं ।

टिप्पणी— [१६१] (१) एव. ≈ जानेवाला, वेगवान्, घपक, घोडा । (२) स्व-यत = (यत् उपरमे) स्वयं ही अपना नियंत्रण करनेवाला । [१६२] (१) त्वेप-याम ≈ (त्वेष) वेगपूर्वक क्रिया हुआ (यामः) आक्रमण जिसे Blitzkrieg कहते हैं, विद्युत्वेग से शत्रु पर धावा करना । (२) वनस्पति = (वनस्-पति) ≈ पेड़, खंभा, घूष, सोम, बड़ा भासं वृक्ष ।

(१६३) यूयम् । नः । उग्राः । मरुतः । सुचेतुना । अरिष्टग्रामाः । सुसृतिम् । पिपर्तन ।
 यत्रे । वः । दिद्युत् । रदति । क्रिबिर्दती । रिणाति । पद्यः । सुधिताऽइव । ब्रह्मणा ॥ ६ ॥
 (१६४) प्र । स्कम्भऽदेष्णाः । अनवप्रज्राघसः । अलातृणासः । विदधेपु । सुस्तुताः ।
 अर्चन्ति । अर्कम् । मन्दिरस्य । पीतये । विदुः । वीरस्य । प्रथमानि । पौंस्या ॥ ७ ॥

अन्वयः— १६३ सु-धिताइव ब्रह्मणा यत्र च क्रिबिर्-दती दिद्युत् रदति, पद्यः रिणाति, (हे) उग्राः मरुतः । यूयं सु-चेतुना अ रिष्ट ग्रामाः नः सु-मतिं पिपर्तन ।

१६४ स्कम्भ-देष्णाः अन्-अवभ्र-राघसः अल-आ-तृणासः सु-स्तुताः विदधेपु मन्दिरस्य पीतये अर्कं अर्चन्ति, वीरस्य प्रथमानि पौंस्या विदुः ।

अर्थ- १६३ (सु-धिताइव) अच्छे प्रकार पकड़े हुए (ब्रह्मणा-) हथियार के समान (यत्र) जिस समय (य) तुम्हारा (क्रिबिर्-दती) तीक्ष्ण रूप से ध्वानेदार और (दिद्युत्) चमकाली तलवार (रदति) शत्रुदल के टुकड़े टुकड़े कर डालती है, तथा (पद्यः रिणाति) जानवरों को भी मार डालती है, उस समय हे (उग्राः मरुतः) शूर तथा मन में भय पैदा करनेवाले वीर मरुतो ! (यूयं) तुम (सु-चेतुना) उत्तम अन्तःकरणपूर्वक (अ-रिष्ट-ग्रामाः) गाँवों का नाश न करते हुए (नः सु-मतिं) हमारी अच्छी बुद्धि को घटाते हो ।

१६४ (स्कम्भ देष्णाः) आश्रय देनेवाले, (अन् अवभ्र राघसः) जिनका धन कोई छीन नहीं सकता ऐसे, (अल आ तृणासः) शत्रुओं का पूरा पूरा विनाश करनेहारे तथा (सु स्तुताः) अत्यन्त सराहनीय ये वीर (विदधेपु) युद्धस्थलों तथा यज्ञों में (मन्दिरस्य पीतये) सौमरस यज्ञ के लिए (अर्कं प्र अर्चन्ति) पूजनीय देवता की भली भौंति पूजा करते हैं । क्योंकि यहाँ (वीरस्य) वीरों के (प्रथमानि) प्रथम श्रेणी में परिगणनीय (पौंस्या विदुः) बल तथा पुरपाय जानते हैं ।

भावार्थ- १६३ अपने तीक्ष्ण हथियारों से वीर सैनिक शत्रु का विनाश कर देते हैं, इसनाही नहीं भविष्यु शत्रु के पशुओं का भी वध कर डालते हैं । हे वीरो ! तुम्हारे शुभ अंतःकरण से हमारी सुबुद्धि बढाओ और हमारे ग्रामों का विनाश न करो ।

१६४ वीर लोग ही अन्य सज्जनों को आश्रय देते हैं, अपने धनसम्वन्ध का सखी पक्कर संरक्षण करते हैं, शत्रुओं का विनाश करते हैं और सौमरस आ सेवन करके युद्धों में अपना प्रभाव दर्शाते हैं तथा परमात्मा की उपासना भी करते हैं । ऐसे वीर ही अन्य वीरों की सक्तियों की परोक्षित जौंच करने की क्षमता रखते हैं ।

टिप्पणी— [१६३] (१) ब्रह्मणा = शस्त्र, नोकवाला शस्त्र, नोक । (२) ग्राम = देहात, जाति, समूह, संप । (३) सु-चेतु = उत्तम मन । (४) रद (विडेखने) = टुकड़ा करना, सुरचना । (५) दती = खट करनेवाला, काटनेवाला । [१६४] (१) स्कम्भः = स्तम्भ, आश्रय, आधारस्तम्भ । (२) देष्णा = दान, देन । (३) अव-भ्र = भाग के जाना, छीन लेना, भीषी राह से न ले जाकर अज्ञात पगटंडी से ले जाना । (४) राघस = निधि, भद्र, कृपा, दया, देन, संपत्ति । (५) अलातृणासः = [अल (अलं) + आ-तृणास = वध करनेवाले] पूर्ण रूपण उच्यतेन करनेहारे ।

- (१६५) शतभुजिऽभिः । तम् । अभिऽहुतेः । अघात् । पूऽभिः । रक्षत । मरुतः । यम् । आर्षत ।
 जनम् । यम् । उग्रः । तवसः । विऽरिऽन्धिनः ।
 पाथनं । शंसात् । तनयस्य । पुष्टिपुं ॥ ८ ॥
- (१६६) विश्वानि । भद्रा । मरुतः । रथेषु । वृः । मिथस्पृध्याऽइव । तविपाणिं । आऽर्हिता ।
 अंसेषु । आ । वृः । प्रऽपथेषु । सादर्यः ।
 अक्षः । वृः । चक्रा । समया । वि । वृवृते ॥ ९ ॥

अन्वय — १६५ (हे) उग्रा तवस-वि-रिन्धिनः मरुत । यं अभिहुतेः अघात् आघत, यं जनं तनयस्य पुष्टिपु शंसात् पाथन, तं घत-भुजिभिः पूभिः रक्षत ।

१६६ (हे) मरुतः ! घ रथेषु विश्वानि भद्रा, च अंसेषु आ मिथ-स्पृध्याइव तविपाणि आर्हिता, प्र पथेषु सादर्य, घ अक्ष चक्रा समया वि वृवृते ।

अर्थ- १६५ हे (उग्राः) शूर, (तवसः) बलिष्ठ और (वि-रिन्धिन) समर्थ (मरुत !) धीर-मरुतो ! (य) जिसे (अभिहुते) विनाश से और (अघात्) पापसे तुम (आघत) सुरक्षित रखते हो, (यं जनं) जिस मनुष्य का (तनयस्य पुष्टिपु) घट अपने बालबच्चों का भरणपोषण कर ले, इसलिए (शंसात्) निन्दा से (पाथन) बचाते हो, (तं) वस्त्रे (शत भुजिभि) सैकड़ों उपभोग के साधनों से युक्त (पूभिः) दुर्गों से (रक्षत) रक्षित करो ।

१६६ हे (मरुत !) धीर मरुतो ! (घ रथेषु) तुम्हारे रथों में (विश्वानि भद्रा) सभी कल्याणकारण वस्तुएँ रची हैं । (घ अंसेषु आ) तुम्हारे कंधों पर (मिथ-स्पृध्याइव) मानों एक दूसरे से चढाऊपरी करनेवाले (तविपाणि) बलयुक्त हथियार (आर्हिता) लटकाने हुए हैं । (प्र-पथेषु) सुदूर मार्गों में यात्रा करने के लिए (सादर्यः) खानेपीने की चीजों का संग्रह पर्याप्त है । (घ अक्ष चक्रा) तुम्हारे रथके पहियों को जोड़नेवाला डंडा तथा उसके चक्र (समया वि वृवृते) उचित समय पर घूमते हैं ।

भावार्थ- १६५ जो बलवान् तथा धीर होते हैं, वे जनता को नाश तथा पापकृत्यों एवं निन्दा से बचाने की चेष्टा में सफलवा पाते हैं । इन धीरों के भुजबल के सहारे जनता सुरक्षित और अकुलोभय होकर अच्छे गर्वों से युक्त नगरी में निवास करते हैं और वहाँ पर अपने पुत्रपौत्रों का संरक्षण करते हैं ।

१६६ धीरों के रथों पर सभी आवश्यक युद्धसाधनों का संग्रह रहता है । वे अपने सारीरों पर हथियार धारण करते हैं । दूर की यात्रा के लिए सभी जरूरी खानेपीने की चीजें रथों पर इकट्ठी की हुई हैं और इनके रथों के पहिये भी उचित वेला में जैसे घूमने चाहिए, वैसे ही फिरते रहते हैं ।

टिप्पणी- [१६५] (१) अभिहुति = विनाश, हार, हानि, क्षति, पराजय । (२) पुर् = नगर, पुरी, कौटा, तट । (३) भुजि = (मानवी जीवन के लिए आवश्यक) उपभोग । (४) शंस = स्तुति, भागीर्षाद, घाप, निन्दा । (५) वि-रिन्धिन = बधा, विशेष स्तुत्य, विशेष सामर्थ्य से युक्त । [१६६] (१) प्र पथ = क्या मार्ग, यात्रा, दूर का स्थान, चौड़ी राह या सड़क । (२) समया = (स-भया) = क्षमीय, मौके पर, नियत समय में मिश्रकर जाना । (३) वृत् = घूमना (४) अक्ष- = रथ के पहियों को जोड़नेवाला डंडा ।

(१६७) भूरीणि । भद्रा । नयैषु । बाहुषु ।

वक्षःसु । रुक्माः । रमसासः । अज्जयः ।

अंसेषु । एताः । पविषु । क्षुराः । अधि ।

वयः । न । पक्षान् । वि । अनु । श्रियः । धिरे ॥ १० ॥

(१६८) महान्तः । महा । विऽभ्वः । विऽभूतयः ।

दूरेऽदृशः । ये । दिव्याःऽइव । स्तुऽभिः ।

मन्द्राः । सुऽजिह्वाः । स्वरितारः । आसऽभिः ।

सम्ऽमिऽश्लाः । इन्द्रैः । मरुतः । परिऽस्तुभः ॥ ११ ॥

अन्ययः— १६७ नयैषु बाहुषु भूरीणि भद्रा, वक्ष सु रुक्मा, अंसेषु एताः रमसास. अज्जयः, पविषु अधि क्षुराः, वयः पक्षान् न, अनु धियः वि धिरे ।

१६८ ये भरतः महा महान्तः विभ्वः वि भूतयः स्तुभिः दिव्या इव दूरे-दृशः (ते) मन्द्राः सु-जिह्वाः आसभिः स्वरितारः, इन्द्रे सं-मिऽश्लाः परि-स्तुभः ।

अर्थ— १६७ (नयैषु) जनता का हित करनेवाले इन धारों की (बाहुषु) भुजाओं में (भूरीणि भद्रा) पथेष्ट कल्याणकारक शक्ति विद्यमान है, (वक्षःसु रुक्माः) उनके वक्षःस्थलों पर मुहरों के हार तथा (अंसेषु) कर्णों पर (एताः) विभिन्न रंगवाले, (रमसासः) सुदृढ (अज्जयः) धारभूषण हैं, उनके (पविषु अधि) वज्रों पर (क्षुराः) तीक्ष्ण धाराएँ हैं, (वयः पक्षान् न) पंखी जिस तरह डैने धारण करते हैं, उसी प्रकार (अनु श्रियः वि धिरे) भौति भौति की शोभाएँ वे धारण करते हैं ।

१६८ (ये मरुतः) जो घोर मरुत् (महा) अपनी महत्ता के कारण (महान्तः) घड़े (विभ्वः) सामर्थ्यवान् (वि भूतयः) वैश्वर्यशाली, तथा (स्तुभिः) नक्षत्रों से युक्त (दिव्या इव) स्वर्गीय देयता-गण की तरह सुहानियाले, (दूरे दृशः) दूरदर्शी, (मन्द्राः) हर्षित और (सु-जिह्वाः) अच्छी जीभ रहने के कारण अपने (आसभिः) मुखांसे (स्वरितारः) मली भौति बोलनेवाले हैं । ये (इन्द्रे सं-मिऽश्लाः) इन्द्र की सहायता पहुंचानेवाले हैं, अतः (परि-स्तुभः) सभी प्रकार से सराहनीय हैं ।

भाषार्थ— १६७ जनता का हित करने के लिए धारों के बाहु प्रस्तुत होने तथा भागे बहने लगते हैं और उनके डरोमाव पर एवं कंधों पर विभिन्न धारभूषण चमकते हैं । उनके धारण तीक्ष्ण धारामों से युक्त होते हैं । वंछी जिस भौति अपने डैनों से सुहाने लगते हैं, उसी प्रकार ये धार इन सभी आभूषणों एवं आयुधों से बडे भले प्रतीत होते हैं ।

१६८ धारों में जेष्ठ गुण विद्यमान हैं, इसी कारण से वे महान तथा ऊँचे पद पर विराजमान होते हैं और वे अत्यधिक सामर्थ्यवान्, वैश्वर्यवान्, दूरदर्शी, तेजस्वी, उत्सुहित, अच्छे भाषण करनेवाले और परमात्माके कार्य का शीघ्र उठावे के कारण सभी के लिए प्रशंसनीय हैं ।

टिप्पणी— [१६७] (१) एतः = तेजस्वी, भौति भौति के रणों से युक्त, वेग से जानेवाला । [१६८] (१) वि-भुः = बलवान्, प्रमुख, समर्थ, व्यापक, वासक । (२) दूरे-दृशः = दूर से ही दिखाई देनेवाले, दूर दृष्टि से युक्त, दूरदर्शी । (३) वि-भूति = विशेष वैश्वर्ययुक्त, वाक्किमान्, बटवन, बल, वैभवशालिता । (४) सु-जिह्वाः = मधुर भाषण करनेवाला, अच्छा वाणी । (५) स्वरितृ = उत्तम स्वर से बोलनेवाला ।

(१६९) तत् । वः । सुज्ञाताः । मरुतः । महिस्त्वन्म् । दीर्घम् । वः । दात्रम् । अदितेः ऽइव । व्रतम् ।
इन्द्रः । चन । त्यजसा । वि । हुणाति । तत् । जनाय । यस्मै । सुकृते । अराध्वम् ॥ १२ ॥
(१७०) तत् । वः । जामिस्त्वम् । मरुतः । परे । युगे । पुरु । यत् । शंसम् । अमृतासः । आवृत ।
अया । धिया । मनवे । श्रुष्टिम् । आव्यम् ।
साकम् । नरः । दुंसनेः । आ । चिकित्रिरे ॥ १३ ॥

अन्वयः- १६९ (हे) सु-जाताः मरुतः ! वः तत् महित्वन् अदिते इव दीर्घं व्रतं वः दात्रं, यस्मै सु-कृते
जनाय त्यजसा अराध्वं, तत् इन्द्रः चन वि हुणाति ।

१७० (हे) अमृतासः मरुतः ! वः तत् जामित्वं, यत् परे युगे शंसं पुरु आवृत, अया धिया
मनवे साकं दुंसनेः नरः श्रुष्टिं आव्य आ चिकित्रिरे ।

अर्थ- १६९ हे (सु-जाताः मरुतः !) कुलीन वीर मरुतो ! (व.) तुम्हारा (तत् महित्वन्) वह बड-
प्पन सचमुच प्रसिद्ध है । (अदिते-इव दीर्घं व्रतं) भूमि के विस्तृत मन के समान ही (वः दात्र)
तुम्हारी उदारता बहुत बड़ी है, (यस्मै) जिस (सु कृते) पुण्यात्मा (जनाय) मानव को तुम (त्यजसा)
अपनी त्यागवृत्ति से जो (अराध्वं) दान देते हो, (तत्) उसे (इन्द्र चन [चन] वि हुणाति) इन्द्र तक
विनष्ट नहीं कर सकता है ।

१७० हे (अमृतासः मरुतः !) अमर वीर मरुत्गण ! (वः तत् जामित्वं) तुम्हारा वह भाई-
पन बहुत प्रसिद्ध है, (यत्) जिस (परे युगे) प्राचीन काल में निर्मित (शंसं) स्तुति को सुनकर तुम
हमारी (पुरु आवृत) बहुत रक्षा कर चुके हो और उसी (अया धिया) इस बुद्धि से (मनवे) मनुष्य-
मात्र के लिए (साकं नर.) मिलजुलकर पराक्रम करनेवाले नेता बने हुए तुम (दुंसनेः) अपने कर्मों
से (श्रुष्टिं आव्य) ऐश्वर्य की रक्षा कर के उस में विद्यमान (आ चिकित्रिरे) दोषों को दूर हटाते हो ।

भाषार्थ- १६९ वीर पुरष बड़ी भारी उदारता से जो दान देते हैं, उसी से उनका बडप्पन प्रकट होता है । पृथ्वी
के समान ही ये बड़े विशालचेला एवं उदार हुआ करते हैं । शुभ कर्म करनेवाले को इन से जो सहायता मिलती है,
वह अप्रतिम सधा बेजोड़ ही है । एक बार ये वीर अगर कुछ कार्यकर्ता को दे सकें, तो कोई भी इस दान को
छीन नहीं सकता । वीरों की देन को छीन लेने की मजाल मला किस में होगी ? विशेषतया जब सुयोग्य वार्यकर्ता
उन दान को पाने के अधिकारी हों ।

१७० तुम वीरों का आतृवेम सचमुच अवर्णनीय है । अतीतकाल में तुम मछी भोंति हमारी रक्षा कर
चुके ही हो, लेकिन आगामी युग में भी उसी उदार मनोवृत्ति से सारे मानवों की रक्षा के लिए तुम सभी वीर मिल-
जुलकर एक दिल से अपने कर्मद्वारा जिस रक्षण के गुफरत कार्य को उठाना चाहते हो, वह भी पूर्णतया भ्रुद्धिहीन
एवं अतिकल है ।

टिप्पणी- [१६९] (१) अदिति. = (अ + दितिः) अक्षण्डित, धरती, प्रकृति, माय (अदि + ति) =
अक्ष देनेवाली, खानेकी चीजें देनेवाली । (२) दात्रं = दान, देन । (३) त्यजस् = त्याग, अर्पण, दान । [१७०]
, १] जामिः = एक ही वंश या परिवार में उत्पन्न होने से भाईवहन का सम्बन्ध, सख, स्नेह । जामित्वं = भाईपन,
भाई का प्यार । (२) श्रुष्टिः = सुनना, सहायता, घर, वैभवसंपन्नता, सुख, ऐश्वर्य । (३) दुंसनें = कर्म ।
(४) आ-चिकित् = चिकित्सा करना, दोष दूर करना ।

(१७१) येन । दीर्घम् । मरुतः । शूश्रवाम् । युष्माकेन । परीणसा । तुरासः ।
आ । यत् । ततनन् । वृजने । जनासः । एभिः । यज्ञेभिः । तत् । अभि । इष्टिम् ।
अश्याम् ॥ १४ ॥

(१७२) एषः । वः । स्तोमः । मरुतः । इयम् । गीः । मान्दार्यस्य । मान्यस्य । कारोः ।
आ । इषा । यासिष्ट । तन्वे । वयाध् । विद्याम् । इयम् । वृजनम् । जीरदानुम् ॥ १५ ॥

अन्वय — १७१ (हे) तुरास मरुतः । येन युष्माकेन परीणसा दीर्घं शूश्रवाम्, यत् जनास वृजने आ ततनन्, तत् इष्टि एभिः यज्ञेभिः अभि अश्याम् ।

१७२ (हे) मरुत । मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः, एष स्तोमः, इयं गीः वः, इषा तन्वे आ यासिष्ट, वया इयं वृजन जीरदानुं विद्याम् ।

वर्थ- १७१ हे (तुरास मरुतः) वेगवान् वीर मरुतो ! (येन युष्माकेन परीणसा) जिस तुम्हारे देश्वर्य के सत्ययोगसे हम (दीर्घ) बडेबडे कार्य (शूश्रवाम्) करते हैं और (यत्) जिससे (जनासः) सभी लोग (वृजने) समारों में (आ ततनन्) चतुर्विध फल जाते हैं- विजयी बन जाते हैं- (तत् इष्टि) उस तुम्हारे शुभ इच्छा को हम (एभिः यज्ञेभिः) इन यज्ञकर्मां से (अभि अश्यां) प्राप्त हों ।

१७२ हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (मान्दार्यस्य) हर्षित मनोवृत्ति के तथा (मान्यस्य) संमानार्थ (कारो) कारीगर या कथिका किया हुआ (एषः स्तोमः) यह काव्य तथा (इयं गीः) यह प्रशंसा (वः) तुम्हारे लिए है । यह सारी सराहना हमारे (इषा) अन्न के साथ (तन्वे) तुम्हारे शरीर की वृद्धि करने के लिए तुम्हें (आ यासिष्ट) प्राप्त हो जाए; उसी प्रकार (वयां) हमें (इयं) अन्न, (वृजनं) बल और (जीर दानु) शीघ्र विजय (विद्याम्) प्राप्त हो जाए ।

भाषार्थ १७१ तुम्हारी महान् सहायता वाकर ही हम बडे बडे कर्म कर चुके हैं और उसी तुम्हारी सहायता से सभी लोग भौति भौति के दुदों में विजयी बन चुके हैं । हमारी यही छालसा है कि, अब कुछ किये जानेवाले कर्मों में यही तुम्हारी पुरानी सहायता हमें मिल जाए ।

१७२ उच्च कोटि के कवि का बनाया हुआ यह काव्य तथा यह अन्न हम भेद धीरों का उत्साह बढ़ाने के लिए उन्हें प्राप्त हो जाय और हमें अन्न सामर्थ्य तथा विजय मिले ।

टिप्पणी- [१७१] (१) इष्टि = इच्छा, कामना, यज्ञ, अभीष्ट विषय । (२) परीणसु = (पू - पालनप्राणयो = विबुद्धता, अधिकता, अत्यन्त पेशव्यवृत्त । बहुनाम (निय ३१३) । (३) शूश्रू = (शब्-गतौ) जाना, चढ़ना । [१७२] (१) मान्दार्य = (मन्द = आनदित होना, प्रकाशना, स्तुति करना) हर्षित मनवाला, प्रकाशमान, स्तुतिपाठक । (२) कारः = करनेवाला, कारीगर, कवि, स्तोत्र । (३) जीर-दानु = (जीर = शीघ्र, चपल गति, लघुवार, दानु = विजयी, दान, वायु, वैभव) शीघ्र उद्यमि, शीघ्र विजयवाप्ति । (४) वृजनं = शत्रु को हरा देने की शक्ति, वह सामर्थ्य जिससे शत्रु दूर हो जाय ।

(क० १।१६।१२-११)

(१७३) आ । नः । अवंऽभिः । मरुतः । यान्तु । अच्छ ।

ज्येष्ठेभिः । वा । बृहत्-दिवैः । सु-मायाः ।

अध । यत् । एपाप् । नि-स्युतः । परमाः । समुद्रस्य । चित् । धनयन्त । परे ॥ २ ॥

(१७४) मिभ्यक्ष । येषु । सु-धिता । घृताची । हिरण्य-निर्णिक् । उपरा । न । ऋष्टिः ।

गुहा । चरन्ती । मनुषः । न । योपा । सभा-ज्वती । वि-दध्या-इव । सम् । वाक् ॥ ३ ॥

अन्वय — १७३ सु-मायाः मरुत अवोभि ज्येष्ठेभि बृहत्-दिवैः वा नः अच्छ आ यान्तु, अध यत् एपां परमाः नियुतः समुद्रस्य परे चित् धनयन्त ।

१७४ सु-धिता घृताची हिरण्य-निर्णिक् ऋष्टिः उपरा न, येषु सं मिभ्यक्ष, गुहा चरन्ती मनुषः योपा न, वि-दध्याइव वाक् सभा-ज्वती ।

अर्थ- १७३ (सु-मायाः) ये अच्छे कौशल से युक्त (मरुतः) धीर मरुत्-गण अपने (अवोभिः) संरक्षण-क्षम शक्तियों के साथ और (ज्येष्ठेभिः) श्रेष्ठ (बृहत्-दिवैः वा) रत्नों के साथ (नः अच्छ आ यान्तु) हमारे निकट आ जायें । (अध यत्) और तदुपरान्त (एपां परमाः नियुतः) इनके उत्तम घोड़े (समुद्रस्य परे चित्) समुन्द्र के भी परे चले जाकर (धनयन्त) धन लानेका प्रयत्न करें ।

१७४ (सु-धिता) भली भाँति सुदृढ ढंगसे पकड़ी हुई, (घृताची) तेज बनाई हुई, (हिरण्य-निर्णिक्) सुवर्ण के समान चमकनेवाली (ऋष्टिः) तलवार (उपरा न) मेघमण्डल में विद्यमान विजली के समान (येषु) जिन धीरोंके निकट (सं मिभ्यक्ष) सदैव रहा करती है, वह (गुहा चरन्ती) परदे में संचार करती हुई (मनुषः योपा न) मानवकी भारी के समान कभी अदृश्य रहती है और कभी कभी (वि-दध्याइव वाक्) यज्ञसभा की घाणी की न्याई (सभा-ज्वती) सभासभों में मरुट हुआ करती है ।

भावार्थ- १७३ नियुत धीर अपनी संरक्षणक्षम शक्तियों के साथ हमारी रक्षा करें और दिव्य रत्न प्रदान करके हमारी संपत्ति बढ़ा दें । उसी प्रकार इनके घोड़े भी समुद्रपार चले जाकर वहाँसे संपत्ति लायें और हमसे विहीन करें । १७४ धीरोंकी तलवार श्रेष्ठ कौशलकी बनी हुई है और वह तीक्ष्ण एवं स्वर्णवत् चमकीली शील पड़ती है । धीर लोग उसे बहुत मजबूत तरहसे हाथमें पकड़े रहते हैं । तथापि वह मानवी महिलाके समान कभी कभी मियानमें छिपी पड़ी रहती है और यज्ञिय संप्रयोग के समान वह किसी अवसरों पर मुक्तके जारी रहने पर बाहर अपना स्वरूप दर्शाती है ।

टिप्पणी- [१७३] (१) नियुत् = घोडा, पत्ति, बतार, पत्ति में खडी की हुई सेना । (२) बृहत्-दिव् = बडा तेजस्वी धन । [१७४] (१) घृताची = तैलयुक्त, जलयुक्त, तजस्वी, तेल में तेज बनायी हुई (भावार्थ यह अभिप्राय हो कि, कौलाद् का दाशत्रु गर्भ करके तेल में डुबा देते हैं या अच्छी तरह तपा कर जल में डाल देते हैं, ऐसा भी अर्थ होगा) । (२) गुहा = गुफा, टकी हुई बंद जगह, अंत करण, रमिवाम । (गुहा चरन्ती मनुषः योपा- जया साधारण महिलाएँ मियान में रखी हुई तलवार के समान घर के भीतर ही रहा करती थीं) । (३) हिरण्य-निर्णिक् = सुनहले रंग की । (४) उपरा (उपला) = मेघसमुदाय, मेघमाला, मेघ में विद्यमान विद्युत् । इस मन्त्रके दो अर्थ हो सकते हैं- (१) मेघपर अर्थ- (सु-धिता) भली भाँति रखी हुई (घृ-अची) जल छोड़नेवाली, धरसात करनेवाली (हिरण्य-निर्णिक्) सोने के समान चमकनेवाली (ऋष्टिः न) तलवारके समान प्रकाशित (उपरा) मेघ की विद्युत् मानवी महिला के समान कभी कभी (गुहा) बन्द जगह में गुप्त रूप से रहती है और किसी अवसरों पर (वि-दध्याइव वाक्) चमकनेवाली सभाके वेदयोगकी साई बाहर आ निकलती है, अर्थात् दामिनी कभी चमक उठती है और कभी बमकी दमक नहीं दिखाई देती है । (२) धीरोंकी तलवार- (सु-धिता) अच्छी तरह हाथ में धरी हुई

(१७५) परा । शुभ्राः । अयासः । यच्या । साधारण्याइव । मरुतः । मिमिक्षुः ।
 न । रोदसी इति । अप । नुदन्त । घोराः । जुपन्त । वृषम् । सख्याय । देवाः ॥४॥
 (१७६) जोषत् । यत् । इम् । असूर्या । सचर्थे । विसितस्तुका । रोदसी । नुस्मनाः ।
 आ । सूर्याइव । विधतः । रथम् । गात् । त्वेपप्रतीका । नभसः । न । इत्या ॥ ५ ॥

अन्वय - १७५ शुभ्रा अयासः मरुत साधारण्याइव यच्या परा मिमिक्षुः, घोराः रोदसी न अप नुदन्त, देवाः सख्याय वृष जुपन्त ।

१७६ असु-र्या नृ मना रोदसी यत् इं सचर्थे जोषत् विसितस्तुका त्वेप-प्रतीका सूर्या-इव विधतः रथं नभस इत्या न आ गात् ।

अर्थ- १७५ (शुभ्राः) तेजस्वी, (अयासः) शत्रु पर हमला करनेवाले (मरुतः) चीम मरुत (साधारण्या-इव) सामान्य नारी के साथ जैसे लोग यथावत् रखते हैं, उसी तरह (यच्या) जो उत्पन्न करनेवाली धरती पर (परा मिमिक्षु) बहुत चर्चा कर चुके हैं। (घोरा-) उन देवते ही मनमें तनिक भय उत्पन्न करनेवाले मरुतों (रोदसी) आकाश एवं धरती को (न अप नुदन्त) दूर नहीं हटा दिया। अर्थात् उनकी उपेक्षा नहीं की, क्योंकि (देवाः) प्रकाशमान उन मरुतों (सख्याय) सबसे मित्रता प्रस्थापित करनेके लिए ही (वृषं) ब्रह्मण्यका (जुपन्त) आंगिकार किया है।

१७६ (असु-र्या) जीवन देनेवाली और (नृ मनाः) धारों पर मन रखनेवाली (रोदसी) धरती या विद्युत् (यत् इं) जो इनके (सचर्थे) सहवास के लिए (जोषत्) उनकी सेवा करती है। यह (विसित-स्तुका) केश सँवारकर ठीक यथे हूप (त्वेप-प्रतीका) तेजस्वी अवयववाली (सूर्याइव) सूर्यासवित्री के समान (विधत- रथं) विधाता के रथपर (नभस इत्या न) सूर्य की गति के समान विशेष गति से (आ गात्) आ पहुँची।

भाषार्थ- १७५ जो धूर तथा वीर हैं, वे उर्वरा भूमि को बड़े परिश्रमपूर्वक जोतते हैं और मेघ भी देवी धरती पर पक्षेष्ट वर्षा करते हैं। जिस प्रकार सामान्य नारी से कोई भी सम्बन्ध रखता है, उसी प्रकार ये वीर भी मूलोक एवं सुलोक में विद्यमान सब चीजों से मित्रतापूर्वक सम्पर्क प्रस्थापित करते हैं। इसीसे इन वीरों को ब्रह्मण्य प्राप्त हुआ है।

१७६ वीरों की परती वीरों पर असीम प्रेम करती है और यह स्वर सँवारकर तथा वन-वन के या साज-सिंजार करके जैसे सावित्री पति के घर जाने के लिए विधाता के रथ पर बैठ गयी थी वैसे ही पतिव्रता पहुँचने के लिए यह भी वीरों के रथ पर बट गयी है।

(युत-अधी) तीक्ष्ण धारावाली (द्विष्य-निर्णिक्) स्वर्ण की ग्याई कान्तिमय द्विषाई देनेवाली (उपरा न) मेघकी पिजली के समान चमकनेवाली (सुकोट) वीरों की उत्पन्न सदैव वीरोंके निवृत्त रहा करती है, लेकिन यह कभी कभी (गुहा सन्नी) परदे में रहता हुई नारी के समान अदृश्य रहती है, जो एकाध अवसर पर जिस प्रकार यशमठप में वेदवणी प्रकट होती है, उसी तरह वह (विद्वेषा) युद्धभूमिमें या अपने अपना स्वरूप बरक़्त करती है। [१७५] (१) ग्रन्थं = (श्वाना क्षेत्रं) = जिस धरती में जो पैदा होत हो। (२) अयास = गतिशील, अ क्रमण करने-हार। [१७६] (१) सूर्या = सूर्य की पुत्री, अवपत्निता चण्ड। (२) इत्या = गति, जाना, सबक, पालकी, वाहन। (३) असु र्या = जीवन प्रदान करनेवाली। (४) प्रतीक = अवयव, चेहरा। (५) नभस् = मेघ, जल, आकाश, सूर्य।

(१७७) आ । अस्थापयन्त । युवतिम् । युवानः । शुभे । निऽमिंशाम् । विदधेषु । पूजाम् ।
 अर्कः । यत् । वः । मरुतः । हविष्मान् ।
 गायत् । गाथम् । सुतऽसोमः । दुवस्यन् ॥ ६ ॥

(१७८) प्र । तम् । विवक्षिम् । वक्ष्यः । यः । एयाम् । मरुताम् । महिमा । सत्यः । अस्ति ।
 सर्चा । यत् । ईम् । वृषऽमनाः । अहम्ऽयुः ।
 स्थिरा । चित् । जनीः । वहते । सुऽभागाः ॥ ७ ॥

अन्वयः— १७७ (हे) मरुतः । यत् अर्कः हविष्मान् सुत-सोमः वः दुवस्यन् विदधेषु गाथं आ गायत्, युवानः नि-मिंशां पूजां युवतिं शुभे अस्थापयन्त ।

१७८ एयां मरुतां यः वक्ष्यः सत्य महिमा अस्ति, तं प्र विवक्षिम्, यत् ईं स्थिरा चित् सचा वृष-मनाः अहं-युः सु-भागाः जनीः वहते ।

अर्थ— १७७ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (यत्) जय (अर्कः) पूजनीय, (हविष्मान्) हविष्यान्न समीप रखनेवाला और (सुत-सोमः) जिसने सोमरस निचोड़ रखा है, यह (वः) दुवस्यन् तुम वीरों की पूजा करनेहारा उपासक (विदधेषु) यहाँ में (गाथं) स्तोत्र का (आ गायत्) गायन करता है, तब (युवानः) तुम युवक वीर (नि-मिंशां) नित्य सहवास में रहती हुई (पूजां) बलशाली (युवतिं) नव-यौवना-स्वपत्नी को- (शुभे) अच्छे मार्ग में, यज्ञ में (अस्थापयन्त) प्रस्थापित करते हो, ले आते हो ।

१७८ (एयां मरुतां) इन वीर-मरुतों का (यः वक्ष्यः) जो वर्णनीय एवं (सत्यः) सच्चा (महिमा अस्ति) बख्पन है (तं प्र विवक्षिम्) उसका मैं भलीभाँति बखान करता हूँ। (यत् ईं) यह इस तरह कि यह (स्थिरा चित्) अदल धरती भी (सचा) इनका अनुसरण करनेवाली (वृष-मनाः) बल धारणों से मनःपूर्वक प्रेम करनेहारी पर वीरपत्नी बनने की (अहं-युः) अहंकार धारण करनेवाली और (सु-भागाः) सौभाग्य युक्त (जनीः) प्रजा (वहते) धारण करती है, उत्पन्न करती है ।

भावार्थ— १७७ जय उपासक तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, तब वीरों की धर्मपत्नी सम्मार्ग पर चलती हुई अपने पति का यश बढ़ाती है ।

१७८ वीरों की महिमा इतनी अर्णनीय है कि, धरतीमाता तक उनकी शूरता पर लुब्ध होकर अपनी भावदात्री प्रजा का धारणोपग करती है । इन वीरों की महिलाएँ भी इनके पराक्रम से संतुष्ट होकर अपने गुणों से युक्त संतान को जन्म देती हैं ।

टिप्पणी— [१७७] (१) पूज = बलशाली, सामर्थवान् । (२) दुवस् = (दुवस्यति = सम्मान देता है, पूजा करता है) सम्मान, पूजा । दुवस्यन् = पूजा करनेवाला, सम्मान करनेहारा । मंत्र १८५ देखो । [१७८] (१) वक्ष्यन् = (वक्ष् परिभाषणे) स्तुतिस्तोत्र, वक्ष्यः = स्तुत्य, वर्णनीय । (२) सत् = (समवाये सेचने सेचने च) = अनुसरण करना, निष्ठलम् बनना, सहवास में रहना, आज्ञा मान लेना, सहायता करना । (३) जनिः = जन्म, उत्पत्ति (प्रजा) संतति । (४) वृष-मनाः = बलिष्ठ पर आत्मक होनेवाली, जिसका चित्त पशु पर लगा हो, बलवान मनवाली ।

(१७९) पान्ति । मित्रावरुणौ । अवघात् । चयते । ईम् । अर्यमो इति । अग्रशस्तान् ।
उत् । च्यवन्ते । अच्युता । ध्रुवाणि । वृषे । ईम् । मरुतः । दातिवारः ॥ ८ ॥

(१८०) न्हि । नु । वः । मरुतः । अन्ति । असे इति । आराचात् । चित् । शवसः । अन्तम् । आपुः ।
ते । घृष्णुना । शवसा । शशुवांसः । अर्णः । न । द्वेषः । धृपता । परि । स्युः ॥ ९ ॥

अन्वयः— १७९ (हे) मरुतः । मित्रा-वरुणौ अवघात् ईं पान्ति, अर्यमा उ अ-ग्रशस्तान् चयते, उत् अ-च्युता ध्रुवाणि च्यवन्ते, ईं दाति-वारः वृषे ।

१८० (हे) मरुतः । वः शवसः अन्तं अन्ति आराचात् चित् असे न्हि नु आपुः, ते घृष्णुना शवसा शशुवांसः धृपता द्वेषः, अर्णः न, परि स्युः ।

अर्थ— १७९ हे (मरुतः) वीर-मरुतो ! (मित्रा-वरुणौ) मित्र एवं वरुण (अवघात्) निन्दनीय दोषों से (ईं पान्ति) रक्षण करते हैं । (अर्यमा उ) अर्यमा ही (अ-ग्रशस्तान्) निंदा करनेवाले यस्तुओं को (चयते) एक ओर कर देता है और (उत्) उसी प्रकार (अ-च्युता) न हिलनेवाले तथा (ध्रुवाणि) दृढ़ शत्रुओं को भी (च्यवन्ते) अपने पदों पर से ढकेल देते हैं, (ईं) यह तुम्हारा (दाति-वारः) दान का पर हमेशा (वृषे) बढ़ता जाता है । तुम्हारी सहायता अधिकाधिक मिलती रहती है ।

१८० हे (मरुतः) वीर-मरुतो ! (वः शवसः) तुम्हारी सामर्थ्य की (अन्तं) चरम सीमा (अन्ति) समीप से या (आराचात् चित्) दूर से भी (अस्मे) हमें (न्हि नु आपुः) सचमुच प्राप्त नहीं हुई है । (ते घृष्णुना शवसा) वे वीर भावेशयुक्त यल से (शशुवांसः) बढ़नेवाले, अपने (धृपता) शत्रुदल की धमिजियाँ उड़ानेवाले यल से (द्वेषः) शत्रुओं को (अर्णः न) जल के समान (परि स्युः) घेर लेते हैं ।

भावार्थ— १७९ वरुण को मित्र, वरुण तथा अर्यमा दोनों से और निंदा से बचाते हैं । उसी प्रकार वे वीर सुदिन शत्रुओं को भी पदभ्रष्ट काके सारी प्रथा को प्रगतिशील बनने में सहायता पहुँचाते हैं । सहायता करने का गुण इनमें प्रतिपक्ष बढ़ता ही रहता है ।

१८० पराक्रम कर दिसलाने की जो शक्ति वीरों में अंतर्निहित बनी रहती है, उसकी चरम सीमाका ज्ञान अभी तक किसी को भी नहीं है । चूँकि उन वीरों में यह सामर्थ्य छिपा पड़ा है कि, उनके शत्रुओं को तुल्य पराभूत तथा हतबल कर डाले, अतः वे प्रतिपक्ष बर्षिष्णु ही बने रहते हैं । इसी दुर्दम्य शक्ति के सहारे वे शत्रु को घेरकर उसे विभट कर देते हैं ।

टिप्पणी— [१७९] (१) दातिः = (दा दाने) दान, रवाय, सहायता; (दा छेदने) काटना, तोटना । (२) वारः = वर, समूह, राशि, वेला, दिवस, सन्धि । [१८०] (१) धृपन् = शत्रु का पराभव करनेवाला, इस पराभव करने की क्षमता से युक्त । (२) घृष्णु = वह साहसपूर्ण भाव कि जिससे शत्रुका पराभव अवश्य किया जाय । (३) द्विप = द्वेष करनेवाला, दुश्मन ।

(१८१) वयम् । अद्य । इन्द्रस्य । प्रेष्ठाः । वयम् । श्वः । वोचेमहि । सऽमये ।
 वयम् । पुरा । महि । च । नः । अनु । धूर् । तत् । नः । क्रमुक्षाः । नराम् । अनु । स्यात् ॥१०॥
 (१८२) एयः । वः । स्तोमः । मरुतः । इयम् । गीः । मान्दार्यस्य । मान्यस्य । कारोः ।
 आ । ह्वा । यासीष्ट । तन्वे । व्याम् । विद्याम् । इयम् । वृजन्म् । जीरऽदानुम् ॥ ११ ॥

(क. ११६८१-१०)

(१८३) यज्ञाऽयज्ञा । वः । समना । तुतुर्वणिः । धियम्ऽधियम् । वः । देवऽयाः । ऊँ इति । दुधिष्ये ।
 आ । वः । अर्वाचः । सुविताय । रोदस्योः । महे । ववृत्याम् । अवसे । सुवृक्तिऽभिः ॥ १ ॥

अन्वयः— १८१ अद्य अयं इन्द्रस्य प्रेष्ठाः, अयं श्वः, पुरा अयं नः महि च धूर् अनु स-मये वोचेमहि,
 तत् क्रमुक्षाः नरां नः अनु स्यात् ।

१८२ [क्र० ११६६।१५; १७२ देखिये ।] [१८१] यज्ञा-यज्ञा वः स-मना तुतुर्वणिः, धियं-
 धियं देव-याः उ दुधिष्ये, रोदस्योः सु-विताय महे अवसे सु-वृक्तिभिः वः अर्वाचः आ वपृत्यां ।

अर्थ— १८१ (अद्य अयं) आज हम (इन्द्रस्य प्र-इष्ठाः) इन्द्र के अतीव प्रिय बने हैं (अयं) हम (श्वः)
 कल भी उसी तरह उसके प्यारे बनेंगे । (पुरा अयं) पहले हम (नः) हमें (महि च) बढप्पन मिल
 जाय इस लिए (धूर् अनु) प्रतिदिन (स-मये) युद्धों में (वोचेमहि) हम घोषित कर चुके हैं-
 प्रार्थना कर चुके (तत्) कि (क्रमु-क्षाः) यह इन्द्र (नरां) सब मानवों में (नः) हमें (अनु स्यात्)
 अनुकूल बने । १८२ [क्र० ११६६।१५; १७२ देखिये ।]

१८३ (यज्ञा-यज्ञा) हर कर्म में (वः) तुम्हारा (स-मना) मन का सम भाव (तुतुर्वणिः)
 सेवा करने में त्वरा करने वाला है; तुम अपना (धियं-धियं) हर विचार (देव-याः उ) दैवी सामर्थ्य
 पाने की इच्छा से ही (दुधिष्ये) धारण करते हो । (रोदस्योः) आकाश एवं पृथ्वी की (सुविताय)
 सुस्थिति के लिए तथा (महे अवसे) सब के पूर्ण रक्षण के लिए (सु-वृक्तिभिः) अच्छे प्रशंसनीय
 मार्गों से (वः) तुम्हें (अर्वाचः) हमारी ओर (आ वपृत्यां) आकर्षित करता हूँ ।

भावार्थ— १८१ हम प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि, अतीत वर्तमान एवं भविष्य तीनों कालों में वह हम पर ह्वा-
 दित रत्ने मिलसे हमें बढप्पन मिले और स्वर्गों में उसकी मदद से विजयी बनें ।

१८२ [क्र० ११६६।१५, १७२ देखिये ।]

१८३ धीरों के मन की संतुलित दशा ही उन्हें हर शुभ कार्य में प्रेरित करती है, स्तुति प्रदान करती
 हैं । वे कपाल करते हैं कि, दैवी शक्ति पाकर सब लोगों की सुस्थिति एवं सुरक्षा के लिए ही उसका उपयोग करना
 चाहिए । इसीलिए ऐसे महान धीरों को अपने अनुकूल बनाना चाहिए ।

टिप्पणी— [१८१] (१) अयं = अयं, मानव । (२) स-अयं = अयंसे युक्त, समा, समाज, वर, युद्ध ।
 (३) ह्यु = दिवस, आकाश, स्वर्ग, प्रकाश । (४) क्रमु-क्षाः = (क्रमु) कारीगरों एवं शिल्पियों को (क्षाः)
 सुती जीवन देनेवाला, शिल्पनिपुण लोगों का पावन कर्ता, इन्द्र । [१८३] (१) सु-चित = उत्तम दशा है, मव,
 अच्छी राह । (२) स-मना = समत्व, मिलकर रहना, एक ही समय । (३) तुतुर्वणिः (तुतुर्व-निः) =
 त्वरापूर्वक कार्य निभाने का स्वभाव । (४) सु-वृक्ति = प्रशंसा, स्तुति । (५) आ-वृत् = पुनः पुनः आकृष्ट
 करना ।

(१८४) वृत्रासः । न । ये । स्वजाः । स्वतवसः । इपम् । स्वः । अभिजायन्त । धृतयः ।
 सहस्रियासः । अपाम् । न । ऊर्मयः । आसा । गावः । वन्द्यामः । न । उक्षणः ॥ २ ॥
 (१८५) सोमासः । न । ये । सुताः । तुप्तअंशवः । हृत्सु । पीतासः । दुवसः । न । आसते ।
 आ । एपाम् । अंसपु । रम्भिणीः । ररभे । हस्तेपु । रादिः । च । कृतिः । च ।
 सम् । दुधे ॥ ३ ॥

अन्वय — १८४ ये, वृत्रास न, स्व-जाः स्व-तवसः धृतय इपं स्वः अभिजायन्त, अपां ऊर्मय न, सहस्रि-यास, घन्द्यास गाव उक्षणः न आसा ।

१८५ सुता पीतास. हृत्सु तुप्त-अंशव सोमा न, ये दुवस. न, आसते, एपां अंसपु रम्भिणी-इय आ ररभे, हस्तेपु च रादि कृति च सं दधे ।

अर्थ- १८४ (ये) जो (वृत्रासः न) सुरक्षित स्थानों के समान सबको सुरक्षित रखते हैं और जो (स्व जाः) अपनी निजी स्फूर्ति से कार्य करते हैं और (स्व-तवसः) अपने बलसे युक्त होनेके कारण (धृतयः) शत्रुओं को हिला देते हैं ये (इपं) अघघ्रासि तथा (स्वः) स्वप्रकाश के लिए ही (अभिजायन्त) सभी तरहसे जन्मे होते हैं, ये (अपां ऊर्मयः न) जलक तरंगों के समान (सहस्रि-यासः) हजारों लोगों को प्रिय होते हैं; वेही (घन्द्यासः गावः उक्षणः न) पूज्य गौ तथा बैलों के समान (आसा) हमारे समीप रहें ।

१८५ (सुता) निचोडे हुए (पीतास.) पिये हुए (हृत्सु) हृदय में जाकर (तुप्त-अंशवः) कृति करनेवाले (सोमाः न) सोमरस के समान, (दुवसः न) पूज्य मान्यों के समानही जो वीर पुरुष राष्ट्र में (आसते) रहते हैं (एपां अंसपु) उनके कंधों पर (रम्भिणीश्च) लट्टु ले चढाई करनेवाली सैनी के समान हथियार (आ ररभे) विद्यमान हैं । उसी प्रकार उनके (हस्तेपु रादिः) हाथों में अलंकार तथा (कृतिः च) तलवार भी (सं दधे) भली प्रकार धरे हुए हैं ।

भाषार्थ - १८४ स्वयं प्रेरणा से ही वीर सैनिक जनता का संरक्षण करने के लिए आगे आते हैं। अपनी शक्ति से शत्रुओं का नाश करके वे जनता को भयमुक्त करते हैं। वे मानों लोगों को भय एवं तेजस्विता देने के लिए ही जन्मे हैं। पानी के समान सभी लोग उन्हें चाहते हैं और सब की यही इच्छा है कि, गाव बेल जैसे वे अपने समीप सदैव रहें ।

१८५ सोमरस के सेवन के उपरान्त जैसे हर्ष एवं उमंग में वृद्धि होती है उसी प्रकार जो वीर जनता में कर्म करने का उदाहरण बताते हैं उनके कर्षों पर हथियार और हाथ में बाल तलवार दिखाई देते हैं ।

टिप्पणी - [१८४] (१) आसा = (आम, आस) सुख, समीप, आँसूके सामने, सहमने, बिलकुल समीप । (२) वृत्रासः = (वम = आवपस्थान, टँकी हुई सुरक्षित जगह, जहाँ रहने पर अच्छी रक्षा हो सकती हो, आश्रय-स्थान) गुप्त । (३) स्व-जाः = अपनी प्रेरणा से आगे बढ़नेवाला, दूसरे के दबाव से नहीं । (४) स्व (स्व रा) आत्मतेज, धन प्रकाश (५) ऊर्मि = लहर, तरंग । [१८५] (१) अंसुः = सोमवह्नी, सोमरस । (२) कृतिः = (कृती छेदने = काटना) = काटनेवाला आयुध, तलवार । (३) रम्भ = एकटी, लाठी । रम्भिणी = लाठी लेकर चढाई करने वाली सेना । बाल के समान शस्त्र ।

(१८६) अव । स्वयुक्ताः । दिवः । आ । वृथा । युयुः । अमर्त्याः । कशया । चोदत । त्मना ।
अरेणवः । तुविऽजाताः । अचुच्यवुः । दृळ्हानि । चित् ।
मरुतः । भ्राजत्-ऋषयः ॥ ४ ॥

(१८७) कः । वः । अन्तः । मरुतः । ऋष्टिऽविद्युतः । रेजति । त्मना । हन्याऽइव । जिहया ।
धन्वऽच्युतः । इषाम् । न । यामनि । पुरुऽप्रेषाः । अह्नयः । न । एतशः ॥ ५ ॥

अन्वयः— १८६ स्व-युक्ताः दिवः वृथा अथ आ युयुः, (हे) अ-मर्त्याः ! त्मना कशया चोदत, अ-
रेणवः तुवि-जाताः भ्राजत्-ऋषयः मरुतः दृळ्हानि चित् अचुच्यवुः ।

१८७ (हे) ऋष्टि-विद्युतः मरुतः ! इषां पुरु-प्रेषाः धन्व-च्युतः न, अ-ह्नयः एतशः न, यः
अन्तः त्मना जिहया हन्याइव कः रेजति ।

अर्थ- १८६ (स्व-युक्ताः) स्वयं हीं कर्म में निरत होनेवाले वे वीर (दिवः) दुलोक से (वृथा)
अनायासही (अथ आ युयुः) नाँचे आये हुए हैं । हे (अ-मर्त्याः !) अमर वीरों ! (त्मना) तुम अपने
(कशया) कोड़े से घोड़ों को (चोदत) प्रेरित करो । ये (अ-रेणवः) निर्मल (तुवि-जाताः) यल के
लिए मसिख तथा (भ्राजत्-ऋषयः) तेजस्वी हथियार धारण करनेवाले (मरुतः) वीर मरुत
(दृळ्हानि चित्) सुदरों को भी (अचुच्यवुः) हिला देते हैं ।

१८७ हे (ऋष्टि-विद्युतः मरुतः !) आयुधों से विराजमान वीर मरुतो ! तुम (इषां) अन्न के
लिए (पुरु-प्रेषाः) बहुत प्रेरणा करनेवारे हो । (धन्व-च्युतः न) धनुष्य से छोड़े हुए बाण की न्याईं
या (अ-ह्नयः) जिते मारने की कोई आवश्यकता नहीं, ऐसे (एतशः न) सिखाये हुए घोड़े के
समान (यः अन्तः) तुममें (त्मना) स्वयं ही (जिहया) जीभ के साथ-बाणीसहित (हन्याइव) उड़ी
जैसे हिलती है, वैसेही (कः रेजति !) कौन भला प्रेरणा करता है ?

भाषार्थ- १८६ अपनी ही इच्छा से कार्य करनेवाले वे वीर दिव्यस्वरूपी हैं और निष्काम भाव से विविध
कार्यों में लूट जाते हैं । इन निर्मल एवं तेजस्वी वीरों में इतनी क्षमता है कि, प्रबल शत्रुओं में भी क्या मजाल कि
इनके सामने खड़े रह सकें ।

१८७ वीर सैनिक अन्न की वृद्धि के लिए बहुत प्रयत्न करते हैं । धनुष्य से छोड़ा हुआ तीर जैसे तीक
पहुँच जाता है, वैसे ही या भली भाँति सिखाया हुआ घोड़ा जैसे तीक चलता रहता है, वैसे ही तुम जो कार्य-
भार उठाते हो, उसे अच्छी तरह निभाते हो । भला इसमें तुम्हें अन्तःप्रेरणा कैसे मिलती होगी ?

टिप्पणी- [१८६] (१) रेणुः = धूलिकण, मल, अरेणु = स्वच्छ, दोषरहित । (२) स्व-युक्ताः = (स्वः
युक्तः, स्वेन युक्तः स्वे युक्तः) = अपने सभी वीरों के साथ, स्वयं ही अपने आप को प्रेरित करनेवाले, अपनी आयो-
जना स्वयं तैयार करनेवाले, खुद ही काम में लगे होनेवाले । (३) युक्तः = जुड़ा हुआ, एक स्थान पर आया हुआ,
योग्य, कुशल, कर्मों में कुशल (गीता), सिद्ध । (४) वृथा = व्यर्थ, जिसमें विशेष स्वार्थका कोई हेतु न हो इस दंग
से, आसानी से । [१८७] (१) पुरु-प्रेषा = भाँति भाँति की प्रेरणाएँ, इच्छाएँ, आकांक्षाएँ । (२) अ-ह्नयः
= जिते मारने या फटकारने की कोई जरूरत न हो । (३) [अह्न-यः = दिन में होनेवाला, प्रकाशकरण ।] (४
एतशः = घोड़ा, सिखाया हुआ घोड़ा, प्रकाशकरण ।

(१८८) कं । स्वित् । अस्य । रजसः । महः । परंम् । कं । अवरम् । मरुतः । यस्मिन् । आऽय्य ।
यत् । च्यवयथ । गिराऽइव । सम्ऽहितम् । वि । अद्रिणा । पतथ । त्वेषम् । अर्णवम् ॥६॥
(१८९) सातिः । न । वः । अमऽवती । स्वऽवती । त्वेषा । विऽपाका । मरुतः । पिपिष्वती ।
भद्रा । वः । रातिः । पूणतः । न । दक्षिणा । पृथुऽजयी । असुर्याऽइव । जज्ञती ॥७॥

अर्थ-— १८८ (हे) मरुतः! यस्मिन् आयय, अस्य महः रजसः परं क स्वित्? अवरं क? यत् सं-
हितं च्यवयथ, अद्रिणा वि-धुराइव त्वेषे अर्णवं वि पतथ ।

१८९ (हे) मरुतः! य साति न, यः राति-अम-वती स्वर-वती त्वेषा वि-पाका पिपिष्वती
भद्रा, पूणतः दक्षिणा न, पृथु-जयी असुर्याइव जज्ञती ।

अर्थ- १८८ हे (मरुतः !) घोर मरुतो ! (यस्मिन्) जहाँ से (आयय) तुम आते हो, (अस्य महः
रजसः) उस प्रसिद्ध विस्तृत अंतरिक्षलोको का (परं क स्वित् ?) उस ओर का छोर कौनसा है ?
(अवरं क ?) और इस ओर का भी कौन है ? (यत्) जब कि तुम (सं-हितं) इकट्ठे हुए मेघों को
तथा शत्रुओं को (च्यवयथ) हिला देते हो, उस समय (अद्रिणा) वज्र से (वि-धुराइव) निराश्रित
के समान (त्वेषे अर्णवं) उन तेजस्वी मेघों या शत्रुओं को तुम (वि पतथ) नीचे गिरा देते हो ।

१८९ हे (मरुत !) घोर-मरुतो ! (यः सातिः न ' तुम्हारी देन के समान ही (यः रातिः)
तुम्हारी कृपा भी (अम-वती) घलवान्, (स्वर-वती) सुख देनेवाली, (त्वेषा) तेजस्वी, (वि-पाका)
विशेष फल देनेवाली (पिपिष्वती) शत्रुदल को चकनाचूर करनेवाली तथा (भद्रा) कल्याणकारक
है, । पूणतः दक्षिणा न) जनता को संतुष्ट करनेवाले धनाह्य पुरप श्री दी हुई दक्षिणा के समान
(पृथु जयी) विशेष विजय दिलांनवाली और (असुर्याइव) दैवी शक्ति के समान (जज्ञती) शत्रु
से जूझनेवाली है ।

भाषार्थ- १८८ महान् तथा अभीम अंतर्िक्ष में से तुम आते हो और बादलों तथा दुग्धनों को विघटित करते
हो । एवं निराश्रितों के समान उन्हें नीचे गिरा देते हो । (इस अंग्र में बादल और शत्रुओं के बारे में समान भाव व्यक्त
रहित है ।)

१८९ वीरों का दान तथा दयालुता शक्ति, सुख, तेजस्विता और कल्याण प्रदान करनेवाली है ही, पर
उन्हीं से शत्रु का नाश करने की सामर्थ्य भी मिल जाती है ।

टिप्पणी- [१८८] (१) वि धुरा = निराश्रित, विधवा नाथी । [१८९] (१) सातिः = देन, स्वीकार,
नाश, महापता, अत, अगति । (२) रातिः = बदर, वैवार, मित्र, दान, कृपा । (३) दक्षिणा = देन, कीर्ति,
दुध र गौ, दक्षिण दिशा । (४) जजू, जज्जू = जाना लडना, शत्रुको हराना । (५) अम = घल, दबाव, रोव,
भय, रोग अनुपायी, प्रणवायु, अपरिमित । (६) वि-पाका = डकम परिपाक करनेवाली । (७) असुर्य =
दैवी । (८) पिपिष्वती = पूर्ण करनेवाली, चकनाचूर करनेवाली । (९) जि = जय पान, पराभव करना;
पृथु-जयी = विशेष विजय देनेवाली, विशेष कषाक ।

- (१९०) प्रति । स्तोभन्ति । सिन्धवः । पवित्र्यः । यत् । अत्रियाम् । वाचम् । उत्सृष्टीरयन्ति ।
अथ । समयन्त । विद्युतः । पृथिव्याम् ।
यदि । घृतम् । मरुतः । प्रुष्णुवन्ति ॥ ८ ॥
- (१९१) अद्यत । पृथिः । महते । रणाय । त्वेपम् । अयासाम् । मरुताम् । अनीकम् ।
ते । सप्सरासः । अजनयन्त । अम्बम् ।
आत् । इत् । स्वधाम् । इपिराम् । परि । अपदयन् ॥ ९ ॥

अन्वयः— १९० यत् पवित्र्यः अत्रियां वाचं उदीरयन्ति, सिन्धवः प्रति स्तोभन्ति, यदि मरुत घृतं प्रुष्णुवन्ति, पृथिव्यां विद्युतः अथ समयन्त ।

१९१ पृथिः महते रणाय अयासां मरुतां त्वेपं अनीकं असूत, ते सप्सरास अभ्यं अजनयन्त आत् इत् इपिरां स्व-धां परि अपदयन् ।

अर्थ- १९० (यत्) जब ये घोर (पवित्र्य) रथ के पहियों से (अत्रियां वाचं) मेघसदृश गर्जना (उदीरयन्ति) प्रयतित कर देते हैं, तब (सिन्धवः) नदियाँ (प्रति स्तोभन्ति) थोखला उठनां हैं (यदि) जिस समय (मरुतः) घोर मरुत (घृतं) जल (प्रुष्णुवन्ति) बरसने लगते हैं तब (पृथिव्यां) धरत पर (विद्युतः) बिजलियाँ मानों (अथ समयन्त) हँसनी हैं, ऐसा जान पड़ता है ।

१९१ (पृथिः) मातृभूमि ने (महते रणाय) बड़े भारी संग्राम के लिए (अयासां मरुतां) गतिमान् घोर मरुतों का (त्वेपं अनीकं) तेजस्वी सैन्य (असूत) उप-पन्न किया । (ते सप्सरास) ये इकट्ठे होकर हलचल करनेवाले घोर (अभ्यं अजनयन्त) बड़ी शक्ति प्रकट कर चुके । (आत् इत्) तदुपरान्त उन्होंने (इपिरां स्व धां) भग्न देनेवाली अपनी धारक शक्ति को ही (परि अपदयन्) चतुर्विक् देल लिया ।

भाषार्थ- १९० (आधिभौतिक अर्थ-) इन वीरों का रथ चरने लगे लो मेघों की दहाड़नी सुनाई पड़ती है और नदियों को वार करते समय जलप्राह में भारी ललबली मच जाती है । (आधिदैविक अर्थ-) जब वायुप्रवाह बढ़ने लगते हैं, तब मेघगर्जना हुआ करती है, दामिनी की दमक वील पड़ती है और मूलपापार वर्षाके कलत्ररूप नदियों में महान् बाढ़ आती है ।

१९१ शत्रु से जूझने के लिए मातृभूमि की प्रेरणा से वीरों की प्रबन्ध सेना अस्तित्व में आ गयी । एक त्रित बनकर शत्रु पर दूढ़ पड़नेवाले इन वीरों ने युद्ध में बड़ी भारी शक्ति प्रकट की और उन्होंने देखा कि, उस शक्तिमें भस्म का सृजन करने की श्रमता थी ।

टिप्पणी- [१९०] (१) स्तुम् = (रतम्) = रुन्ध होना; प्रति + स्तुम् = गलबली मचाना । (२) प्रुष्णु = (स्नेहनस्येदनप्रणेषु) घुटि करना, भीला करना । (३) पवि = पहियों की पट्टी चाभी, दज, भाके की नोक । [१९१] (१) सप्सरासः = [(सप्- समवाये) इकट्ठे होना, स = (गतौ) सरचना, जाना,] मिलजुलकर इकट्ठे होकर जानेवाले, संघर्ष होकर लड़नेवाले । (२) अम्बं = बड़ा मध्य, अमृतपूर्वनाकि (३) इपिर = रत्नपूर्ण, उत्तम, बलवान्, चपल, भक्ति, भस्म देनेवाला ।

(१९२) एपः । वः । स्तोमः । मरुतः । इयम् । गीः । मान्द्रार्थस्य । मान्यस्य । कारीः ।
आ । इपा । यासीष्ट । तन्वे । वयाम् । विधाम् । इयम् । वृजनम् । जिरिऽदानुम् ॥ १० ॥

(ऋ० १ । १०११-२)

(१९३) प्रति । वः । एना । नमसा । अहम् । एमि । सुऽउक्तेन । भिक्षे । सुऽमतिम् । तुराणाम् ।
रराणता । मरुतः । वेद्याभिः । नि । हेळः । घृत् । वि । मुचध्वम् । अध्वान् ॥ १ ॥

(१९४) एपः । वः । स्तोमः । मरुतः । नमस्वान् । हृदा । तष्टः । मनसा । धायि । देवाः ।
उप । इम् । आ । यात् । मनसा । जुपाणाः । यूयम् । हि । स्थ । नमसः । इत् । वृधासः ॥२॥

अन्वय - १९२ [श्रु. १।१९६।१५, १७० देखिये ।]

१९३ (हे) मरुतः । अहं एना नमसा सूक्तेन वः प्रति एमि, तुराणां सु-मतिं भिक्षे, वेद्याभिः
रराणता हेळः निधत्त, अध्वान् वि मुचध्वं ।

१९४ (हे) मरुतः । एपः नमस्वान् हृदा तष्टः वः स्तोमः मनसा धायि, (हं) देवाः । मनसा
इं जुपाणाः उप आ यात्, हि यूयं नमसः इत् वृधासः स्थ ।

अर्थ- १९२ [ऋ० १।१६६।१५, १७० देखिये ।]

१९३ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (अहं एना नमसा) मैं इस नमनसे तथा इस (सूक्तेन) स्तुति से
(वः प्रति एमि) तुम्हारे समीप आता हूँ-तुम्हारी उपासना करता हूँ। (तुराणां) वेगसे जानिवाले तुम धीरों
की (सु-मतिं) अच्छी बुद्धि की मैं (भिक्षे) याचना करता हूँ । (वेद्याभिः) इन जाननेयोग्य स्तुतियों
से (रराणता) आनन्दित हुए मनसे तुम अपना (हेळः) द्वेष (नि धत्त) एक ओर धर दो, उसे हमारे
निकट आने न दो, (अध्वान्) अपने रथ के घोड़ों को (वि मुचध्वं) मुक्त करे अर्थात् तुम हथर ही
रहो, यहाँ से अन्य किसी जगह न चले जाओ ।

१९४ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (एपः) यह (नमस्वान्) नम्रतासे (हृदा तष्टः) मनःपूर्वक
रचा हुआ (वः स्तोमः) तुम्हारा काव्य (मनसा धायि) एकतान वन के सुनो- अपने मनमें इसे स्थान
दो, हे (देवाः !) धोतमान धीरो ! (मनसा इं) मनसे यह हमारा काव्य (जुपाणाः) स्वीकार कर तुम
(उप आ यात्) हमारी ओर आओ । (यूयं हि) क्योंकि तुम (नमसः इत्) सत्कर्मों की ही, अथकीही
(वृधासः) समृद्धि करनेवाले हो ।

भावार्थ- १९२ [ऋ० १।१६६।१५, १७० देखिये ।]

१९३ मैं इन धीरोंकी उपासना करता हूँ उनके निकट जाकर रहना चाहता हूँ और चेष्टा कहता हूँ कि,
इसकी अच्छी बुद्धि से लाभ उठा सकूँ। ये हमपर कभी क्रोध न करें और वे प्रसन्नचित्त हो लगतार हमारे निकट
निवास करें। वम यही मेरी लालसा है ।

१९४ हे वीरो ! हमने बड़ी मज्जि से यह तुम्हारा काव्य बनाया है, तनिक ध्यानपूर्वक इसे सुनिये, हमारे
समीप आइए और हमारे लिए अच्छी बुद्धि कीजिये ।

टिप्पणी- [१९३] (१) रण् = (गवो लब्धे च) = शब्द करना, दर्शित होना । (२) रराणत् = आनन्दित
हुआ, प्रसन्न हुआ । (३) हेळः = (हेष्ट = हेल् = हेळ = hate) अनादर, तिरस्कार, घृणा, (क्रोध), द्वेष । [१९४] (१)
तष्ट = [तथ् = तनुकरणे = बटाना, ठीक ठीक बना देना, आरिसे खीरना] अच्छी तरह बनाया हुआ, भली भाँति
निर्मित । (२) हृदा तष्टः = मन-पूर्वक किया हुआ, लगन से रचा हुआ । (३) नमस्य = नमस्कार, नम्र, यज्ञ,
दान, यज्ञ (सत्कर्म) ।

(ऋ० १। १७२। १-३)

(१९५) चित्रः । घः । अस्तु । यामः । चित्रः । ऊती । सुदानवः ।
मरुतः । अहिभानवः ॥ १ ॥

(१९६) आरे । सा । वः । सुदानवः । मरुतः । क्रञ्जती । शरुः ।
आरे । अश्मा । यम् । अस्यथ ॥ २ ॥

(१९७) तृणस्कन्दस्य । नु । विशः । परि । वृङ्क्त । सुदानवः ।
ऊर्ध्वान् । नः । कर्त । जीवसे ॥ ३ ॥

अभ्ययः— १९५ (हे) सु-दानवः अ-हि-भानवः मरुतः । घः यामः ऊती चित्रः अस्तु ।

१९६ (हे) सु-दानवः मरुतः । घः सा क्रञ्जती शरुः आरे, यं अस्यथ अश्मा आरे ।

१९७ (हे) सु-दानवः ! तृण-स्कन्दस्य विशः नु परि वृङ्क्त, नः जीवसे ऊर्ध्वान् कर्त ।

अर्थ- १९५ हे (सु-दानवः!) अच्छे दानशूर और (अ-हि-भानवः) जिनका तेज कभी न घट जाता है, ऐसे (मरुतः!) धीर मरुतो! (घः) तुम्हारी (यामः) हलचल (चित्रः) आश्चर्यकारक तथा तुम्हारी (ऊती) संरक्षणक्षम शक्ति भी (चित्रः [चित्रा]) आश्चर्यकारक (अस्तु) होये।

१९६ हे (सु-दानवः मरुतः!) भली भाँति दान देनेवाले धीर मरुतो! (घः) यह तुम्हारा (क्रञ्जती) वेगसे शत्रुदल पर दूट पड़नेवाला (शरुः) हथियार हमसे (आरे) दूर रहे। (यं अस्यथ) जिससे तुम शत्रु पर फेंक देते हो, वह (अश्मा) वज्र भी हमसे (आरे) दूर रहने पाय।

१९७ हे (सु-दानवः!) अच्छे दानशूर धीरो! (तृण-स्कन्दस्य) तिनके के समान आसानीसे नष्ट होनेवाले (विशः) इन प्रजाजनों का नाश (नु) शीघ्रही (परि-वृङ्क्त) दूर हटा दो, अर्थात् उन्हें सुरक्षित रखो। (नः जीवसे) हम बहुत दिनोंतक जीवित रहें, इसलिए हमें (ऊर्ध्वान् कर्त) उच्च कोटिके बना दो।

भाषार्थ- १९५ शत्रुदल पर चढ़ाई करने की धीरों की योजना बड़ी ही बिलक्षण है और रक्षण करने की शक्ति भी बहुत बड़ी है।

१९६ धीरों का हाथियार हम पर न गिरे।

१९७ जो जनता तिनके के समान सुगमता से विनष्ट होती दो, उसे बचा कर उच्च पदतक के जाओ और शीघ्रपुनर्वसंघ करो।

टिप्पणी [१९५] (१) अ-हि-भानवः = (अ-हीन-भानवः = अ-हीनमान-भानवः) = जिनका तेज कभी कम न होता हो। (२) दान-घः = (दा-दाने) = दान देनेवाले, उदार, देव । दान-घः = (दा-छेदने) = टुकड़े करनेवाले, फल करनेवाले, शक्ति । [१९६] (१) क्रञ्ज = वेगसे जाना, दीबना, प्रपन्न करना, अलङ्कृत करना । क्रञ्जती = वेगसे जानेवाली, सरकनेवाली, सरपट जानेवाली । (२) शरुः = बाण, तीर, दास्य, वज्र, क्रोध । (३) अश्मन् = पथर, (पथर जैसा कड़ा हथियार) मेघ, वज्र, पहाड़, ओले । (घ) आरे = दूर, समीप । [१९७] (१) स्कन्द = (गतिशोपणयोः) गिर पड़ना, बट होना, हिलना, सूख जाना । (२) तृण-स्कन्द = घासफूस या तिनके की स्याईं इधर उधर पड़े रहना, सूख जाना । (३) ऊर्ध्व = ऊँचा ।

शुनकपुत्र गृह्यसमदश्रयि (पहले शुनहोत्रपुत्र आदिरस और उसके बाद शुनकपुत्र मार्गव) (श्र० २।२०।११)

(१९८) तम् । यः । शर्धम् । मारुतम् । सुम्नऽयुः । गिरा ।

उप । ब्रुये । नमसा । दैव्याम् । जन्मम् ।

यथा । रयिम् । सर्वेऽगोरम् । नशामहे । अपत्यऽसाचम् । श्रुत्यम् । द्विवेऽदिवे ॥११॥

(श्र० २।२४।१-१५)

(१९९) धारावराः । मरुतः । धृष्णुऽओजसः । मृगाः । न । भीमाः । तविपीभिः । अर्चिनः ।

अग्रयः । न । शुश्रुचानाः । ऋजीपिणः । भूमिम् । धमन्तः । अर्प । गाः । अन्नृष्वत् ॥१॥

अन्वय — १९८ व सं दैव्यं जन्मं मारुतं शर्धं सुम्न-यु नमसा गिरा उप ब्रुये, यथा सर्व-धीरं अपत्य-साचं श्रुत्यं रयिं दिवे-दिवे नशामहे ।

१९९ धारा घरा, धृष्णु ओजस, मृगाः न भीमाः, तविपीभिः अर्चिन, अग्रयः न, शुश्रुचानाः ऋजीपिणः भूमि धमन्तः मरुत गा अप अन्नृष्वत् ।

मर्थ- १९८ (घः) नुम्हारे (त) उस (दैव्य) तेजस्वी (जन्म) प्रकट हुए (मारुतं शर्धं) धीर मरुतों के बल की, (सुम्न युः) मैं सुखको चाहनेवाला, (नमसा) नमनसे और (गिरा) घाणी से (उप ब्रुये) सराहना करता हूँ । (यथा) इस उपाय स हम (सर्वं धीरं) सभी धीरों से युक्त (अपत्य-साचं) पुत्र-पीभावितों से युक्त तथा (श्रुत्यं) कानिसे युक्त (रयिं) धनको (दिवे दिवे) प्रति दिन (नशामहे) प्राप्त करें ।

१९९ (धारा घरा) युक्त के मोर्चे पर श्रेष्ठ प्रतीत होनेवाले, (धृष्णु-ओजसः) शत्रु को पछाड़ने के बलसे युक्त, (मृगा न भीमाः) सिंहकी भयार्ह भीषण (तविपीभिः) निज बलसे (अर्चिन-) पूजनीय ठहरे हुए (अग्रयः न) अग्नि के जैसे (शुश्रुचाना) तजभर्या, (ऋजीपिणः) घेग से जानिवाले या सोमरस पीनवाले आग (भूमि) घेग को (धमन्तः) उत्पन्न करनेवाले (मरुतः) धीर मरुत् (गाः) किरणों को [या गीर्वां को] शत्रु के कारागृह से (अप अन्नृष्वत्) रिहा कर डेते हैं ।

भाषार्थ- १९८ में धीरों के बल की प्रशंसा करता हूँ । इनसे हम सभी को धीरतायुक्त धन मिलता रहे । वह धन हम आँति मिल कि हमके साथ शूरता, धीरता, धीरज धीर सतत एवं यश भी प्राप्त हो । अगर धारा आदि शूरणीय गुणों से रहित धन हो, तो हमें वह नहीं चाहिए ।

१९९ वे धीर प्रथमान लडाईं के मोर्चे पर धेहना सिद्ध कर दिखाने हैं और धीरतापूर्ण कार्य करके बनजाते हैं । वे शत्रु को पछाड़ देते हैं । अपने निजी बलसे उच्च कोटिके कार्य निपन्न करके वदनीय धन जाते हैं । शत्रुदलको हराकर अपहरण की हुई गौर्वां को मुदा लाते हैं ।

टिप्पणी — [१९८] (१) जन्म = (अदर्शन) अभाव में डिलीन होना, पहुँचना, पाना, मिलना । (२) जन्म = जन्म जनी प्रादुर्भाव = उत्पन्न हुआ । (३) सर्वं धीरं = सभी तरह की शूरताकी शक्तियों से परिपूर्ण । [१९९] (१) धारा = श्रेष्ठ प्रवाद, सेना का मोर्चा मशूर, कीर्ति, सादृश्य, मापण । (२) अर्चिन = पूजा करनेवाला, प्रकाशमान (तविपीभिः) अर्चिन = बल से तेजस्वी या बल से मातृभूमि की पूजा करनेवाले । (३) ऋजू (गनिश्यामाजनेपुत्रेण) जना, प्राप्त करना, अपनी जगह स्थिर रहना, बलवान होना । (४) ऋजीपिण = गतिमान, स्थिर, बलिष्ठ, रस विचोदने पर बचा हुआ अन्न, सोम । (५) मृगा = सिंह, जानवर । (६) भूमि = अग्रण, प्रशंसा, शीघ्रता, आवर्त ।

(२००) घावः । न । स्तुभिः । चित्तयन्त । खादिनः ।

वि । अत्रियाः । न । द्युतयन्त । वृष्टयः ।

रुद्रः । यत् । वः । मरुतः । रुक्मऽवक्षसः ।

वृषा । अजनि । पृश्न्याः । शुक्रे । ऊर्धनि ॥ २ ॥

(२०१) उक्षन्ते । अश्वान् । अत्यान्ऽइव । आजिषु ।

नदस्य । कर्णेः । तुरयन्ते । आशुभिः ।

हिरण्यशिप्राः । मरुतः । दधिध्वतः । पृक्षम् । याथ । पृषतीभिः । सऽमन्यवः ॥३॥

अन्यवः— २०० स्तुभिः न घावः खादिनः चितयन्त, वृष्टयः, अत्रियाः न, वि द्युतयन्त, यत् (हे) रुक्म-वक्षसः मरुतः । वः वृषा रुद्रः पृश्न्याः शुक्रे ऊर्धनि अजनि ।

२०१ अत्यान् इव अश्वान् उक्षन्ते, नदस्य कर्णेः आशुभिः आजिषु तुरयन्ते, (हे) हिरण्य-शिप्राः स मन्यवः मरुतः । दधिध्वतः पृषतीभिः पृक्षं याथ ।

अर्थ— २०० (स्तुभिः न) नक्षत्रों से जिस प्रकार (घावः) छुलोक उसी प्रकार (खादिनः) कँगन-धारी धीर इन आभूषणों से (चितयन्त) सुहाते हैं । (वृष्टयः) बल की वर्षा करनेहारि वे धीर (अत्रियाः न) मेघ में विद्यमान विजली के समान (वि द्युतयन्त) विशेष ढंग से द्योतमान होते हैं । (यत्) फॉकि हे (रुक्म-वक्षसः) उरोभाग पर मुहरों के हार पहननेवाले (मरुतः) धीर मरुतो! (वः) तुम्हें (वृषा रुद्र) बलिष्ठ रुद्र (पृश्न्याः) भूमि के (शुक्रे ऊर्धनि) पवित्र उदरों से (अजनि) निर्माण कर चुका ।

२०१ (अत्यान् इव) घुड़दौड़ के घोड़ों के समान अपने (अश्वान्) घोड़ोंकी भी वे धीर (उक्षन्ते) बलिष्ठ करते हैं । वे (नदस्य कर्णेः) नाद करनेवाले, दिनदिनानवाले (आशुभिः) घोड़ों-सहित (आजिषु) युद्धों में, चढाई के समय (तुरयन्ते) धेग से चले जाते हैं । हे (हिरण्य-शिप्राः) सोने के साफ पहने हुए (स-मन्यवः) उत्साही (मरुतः) धीर मरुतो! (दधि-ध्वतः) शत्रुओं को हिलानेवाले तुम (पृषतीभिः) धम्येवाली हिरानयोंसहित (पृक्षं याथ) अन्न के समीप जाते हो ।

भाषार्थ— २०० धीरों के आभूषण पहनने पर वे धीर बहुत भले दिखाई देते हैं और वे विजली के समान चमकने लगते हैं । आशुभिः की सेवा के लिए ही वे अस्तित्व में आ चुके हैं ।

२०१ धीर मरुत अपने घोड़ोंको पुष्टिकाक अन्न देकर, उन्हें बलवान् बना देते हैं और दिनदिनानेवाले घोड़ों के साथ शीघ्र ही रथभूमि में तुरन्त जा पहुँचते हैं । वे शत्रुओं को परास्त कर विपुल अन्न पाते हैं ।

टिप्पणी— [२००] (१) स्तु = नक्षत्र, ताराका । (२) अत्रिया = मेघ में पैदा होनेवाली विजली । (३) वृष्टिः = तारा, धरती, अंतरिक्ष । [२०१] (१) नदस्य कर्णेः (कर्णः) = नाद करनेवाले, दिनदिनानेवाले (घोड़ों के साथ), [नदस्य आशुभिः कर्णेः = घोषणा करने के त्वराशील सौमसहित, कर्ण = Megro-Phone] । (२) अश्वान् = घोड़ा, ध्यापनेवाला, खूब खानेवाला, घोड़ेके समान बलवान् । (३) उक्ष = सँचन करना, गीला करना, सख होना । (४) आजि = (अज गवी) शत्रु का काने का धावा, हमला, शत्रुगर्भवक विद्युत्गतिसे की हुई चढाई । (५) मन्युः = उत्साह, स-मन्युः = उत्साहसे युक्त, (मंत्र २०३ देखो) । (६) दधिध्वत = (धन्वापने) हिलानेवाला ।

- (२०२) पृक्षे । ता । विश्वा । भुवना । ववक्षिरे । मित्राय । वा । सद्म । आं । जीरऽदानवः ।
 पृषत्सअध्वासः । अनवभ्रऽराधसः ।
 ऋजिप्यासः । न । वयुनेषु । धूऽसदः ॥ ४ ॥
- (२०३) इन्धन्वमिः । धेनुमिः । रप्यादूधमिः । अप्वस्ममिः । पथिमिः । भ्राजत्-ऋण्यः ।
 आ । हंसासः । न । स्वसराणि । गन्तन ।
 मधोः । मदाय । मरुतः । सऽमन्धवः ॥ ५ ॥

अन्वयः— २०२ जीर-दानवः पृषत्-अध्वासः अन्-अवभ्र-राधसः, ऋजिप्यासः न, वयुनेषु धूर-सदः, पृक्षे मित्राय सद् वा ता विश्वा भुवना आ ववक्षिरे ।

२०३ (हे) स-मन्वयः भ्राजत्-ऋण्यः मरुतः ! इन्धन्वमिः रप्यात्-ऊधमिः धेनुमिः अ-प्वस्ममिः पथिमिः मधोः मदाय, हंसासः स्व-सराणि न, आ गन्तन ।

अर्थ- २०२ (जीर-दानवः) शीघ्र विजय पानेवाले, (पृषत्-अध्वासः) धप्येवाले घोड़े समीप रखनेवाले, (अन्-अवभ्र-राधसः) जिनका धन कोई भी छीन नहीं सकता, ऐसे और (ऋजिप्यासः न) सीधी राह से उन्नति को जानेवाले के समान (वयुनेषु) सभी कर्मों में (धूर-सदः) अग्रभाग में बैठने-वाले ये वीर (पृक्षे) अग्रदान के समय (मित्राय सद् वा) मित्रों को स्थान देने के समान (ता विश्वा भुवना) उन सब भुवनों को (आ ववक्षिरे) आश्रय देते हैं ।

२०३ हे (स-मन्वयः) उत्साही, (भ्राजत्-ऋण्यः) तेजस्वी हथियार धारण करनेवाले (मरुतः) वीर मरुतो ! (इन्धन्वमिः) मज्जलित, तेजस्वी (रप्यात्-ऊधमिः) स्तुत्य और महान् धनों से युक्त (धेनुमिः) गौओं के साथ (अ-प्वस्ममिः) अविनाशी (पथिमिः) मार्गों से (मधोः मदाय) सोमरसजन्य आनन्द के लिए इस यज्ञ के समीप (हंसासः स्व-सराणि न) हंस जैसे अपने निवास-स्थान के समीप जाते हैं, उसी प्रकार (आ गन्तन) आभो ।

भावार्थ- २०२ वे वीर उदारचरिता, अक्षारोही, धनसम्पन्न, सरल मार्ग से उन्नत बननेवालों के समान सभी कार्य करते समय अग्रगता बननेवाले हैं । अन्न का प्रदान करते समय जैसे वे मित्रों को स्थान देते हैं उसी प्रकार सभी प्राणिपौको सहारा देनेवाले हैं ।

२०३ विपुल दूध देनेवाली गौओं के साथ सोमरस पीने के लिए वे वीर अच्छे सुपन्न मार्गों पर से इस यज्ञ की ओर आ जायें ।

टिप्पणी— [२०२] (१) जीर-दानुः = (जीर = जल्द, सरलवार; दानु = दूर, विजयी, विजैता, दान देने-वाला, काटनेवाला) शीघ्र विजयी, तुल्य दान देनेवाला, सरलवार ले मारकाट करनेवाला । (२) ऋजिप्य = (ऋजु-प्राप्य) सीधी राह से जानेवाला, सरलतया अपनी उन्नति करनेवाला । (३) वयुने = ज्ञान, कर्म, नियम, रीति, स्ववस्था (Rule, Order) । (४) अन्-अवभ्र-राधसः = अपत्यशील धन से युक्त । (५) धूर-सदः = प्रमुख, युक्त स्थान में बैठनेवाला । (६) भुवनं = भुवन, प्राणी, वनी हुई चीज । [२०३] (१) अ-प्वस्ममः = (पवंस् भवसंसने गौ) अविनाशी । (२) स्व-सर = [स्व-सू- (सर) गवै] स्वयमेव मिथर जाने की मरुति हो, वह स्थान, घर, अपना स्थान । (३) स-मन्वुः = उत्साही, समान अंतःकरण के, एक विचार के । (देखिए मंत्र २०१) ।

(२०४) आ । नः । ब्रह्माणि । मरुतः । सऽमन्यवः ।
 नराम् । न । शंसः । सर्वनानि । गन्तन ।
 अर्थाऽइव । पिप्यत । धेनुम् । ऊधनि ।
 कर्त । धियम् । जरित्रे । वाजऽपेशसम् ॥ ६ ॥

(२०५) तम् । नः । दात । मरुतः । वाजिनम् । रथे ।
 आपानम् । ब्रह्म । चितयत् । दिवेऽदिवे ।
 इयम् । स्तोतृऽभ्यः । वृजनेषु । कारये ।
 सनिम् । मेधाम् । अरिष्टम् । दुस्तरम् । सहः ॥ ७ ॥

अन्वयः— २०४ (हे) स-मन्यवः मरुतः । नरां शंसः न नः ब्रह्माणि सवनानि आ गन्तन, अर्थाइव धेनुं ऊधनि पिप्यत, जरित्रे वाज-पेशसं धियं कर्त ।

२०५ (हे) मरुतः । रथे वाजिनं, दिवे-दिवे ब्रह्म चितयत्, आपानं तं इयं स्तोतृभ्यः नः दात, वृजनेषु कारये सनिं मेधां अ-रिष्टं दुस्-तरं सहः ।

अर्थ— २०४ हे (स-मन्यवः मरुतः) उत्साही मरुतो ! (नरां शंसः न) शूरों में प्रशंसनीय वीरों के समान (नः ब्रह्माणि सवनानि) हमारे ज्ञानमय सोमसत्रकी ओर (आ गन्तन) था जाओ । (अर्थाइव) घोड़ी के समान हृष्टपुष्ट (धेनुं) गौको (ऊधनि) दुग्धाशय में (पिप्यत) पुष्ट करो । (जरित्रे) उपासक को (वाज-पेशसं) अन्नसे भली प्रकार सुरूपता देने का (धियं कर्त) कर्म करो ।

२०५ हे (मरुतः) वीर मरुतो ! हमें (रथे वाजिनं) रथमें बैठनेवाला वीर और (दिवे-दिवे) हरदिन (आपानं ब्रह्म चितयत्) प्राप्तय ज्ञान का संवर्धन करनेवाला ज्ञानी पुत्र दे दो, तथा इत भौंति (तं इयं) यह अभीष्ट अन्न भी (स्तोतृभ्यः नः दात) हम उपासको को देदो । (वृजनेषु कारये) युद्धों में पराक्रम करनेहारे वीर को धन की (सनिं) देन (मेधां) बुद्धि तथा (अ-रिष्टं) अविनाशी एवं (दुस्-तरं) अजेय (सहः) सहनशक्ति भी दे दो ।

भावार्थ— २०४ शूर सैनिकों में जो सबसे अधिक शूर होते हैं, उनका अनुकरण अन्य वीरोंको करना चाहिए । इन भौंति अधिक पराक्रम करके वे सदैव सत्रकों में अपना हाथ बँटाये । प्रतिपुष्ट घोड़ी के समान गौधुं भी चपल तथा पुष्ट रहें । गौधुं को अधिक दुग्धाशय बनाने की चेष्टा करें । अन्न से बल बढ़ाकर शरीर प्रमाणयुक्त रहे, इसीलिए भौंतिभौंति के प्रयोग करने चाहिए ।

२०५ हमें शूर, ज्ञानी, रथी, तथा सख्यनिष्ठ पुत्र मिले । हमें पर्याप्त अन्न मिले । छद्मार्थ में धीरतापूर्ण कार्य कर दिल्लानेवालों को मिलनेयोग्य देन, बुद्धिकी प्रचलता, अविनाशी और अजेय शक्ति भी हमें मिले ।

टिप्पणी— [२०४] (१) पेशसु = सुरूपता, तेजस्विता । (२) नृ = नेता, शूर । (३) धेनुं ऊधनि पिप्यत = गौका दुग्धाशय पुष्ट रते पेश करो, गौ अधिक दूध देने लगे पेश करो । (४) जरितृ = स्तोता, उपासक, भक्त । (५) वाज-पेशसु = अन्न से बल पाकर जो शारीरिक मज्ज होता हो । (६) धी = बुद्धि, कर्म, (ज्ञानपूर्वक क्रिया) हुआ कर्म । [२०५] (१) मेधा = शक्ति, धारणा-बुद्धि । (२) सहः = शत्रुके हमले सहन करके अपने स्थान पर अपरभूत दत्ता में खड़े रहने की शक्ति । (३) वृजने = दुर्ग, गढ़ में रहकर काने का युद्ध ।

(२०६) यत् । युञ्जते । मरुतः । रुक्मऽक्षसः ।
अश्वान् । रथेषु । भगं । आ । मुऽदानवः ।
धेनुः । न । शिथे । स्वसरेषु । पिन्वते ।
जनांषु । रातऽहविषे । महीम् । इषम् ॥ ८ ॥

(२०७) यः । नः । मरुतः । वृकऽताति । मर्त्यः ।
रिपुः । दुधे । वसतः । रक्षत । रिपः ।
वर्तयत । तपुषा । चक्रिया । अभि । तम् ।
अर्ष । रुद्राः । अशर्मः । हन्तन । वधरिति ॥ ९ ॥

अन्वय. २०६ यत् सु दानव. रुक्म वक्षस मरुत भगे अश्वान् रथेषु आ युञ्जते, धेनु. शिथे न,
रात हविषे जनाय रूपसरेषु मही इषे पिन्वते ।

२०७ (हे) वसतः मरुतः । यः मर्त्यं वृक-ताति नः रिपुः दुधे रिपः रक्षत, तं तपुषा चक्रिया
अभि वर्तयत (हे) रुद्रा ! अशर्म. वध अ हन्तन ।

अर्थ- २०६ (यत् सु-दानवः) अत्र दानवस्य एवं, रुक्म-वक्षस. मरुतः) वक्ष-स्थलपर स्वर्णमुद्रिकाओं
से बना द्वार धारण करनेवाले वीर मरुत् (भगे) ऐश्वर्यप्राप्ति के लिए अपने (अश्वान्) घोड़ों को (रथेषु
आ युञ्जते) रथों में जोड़ देते हैं, तपुषे (धेनु शिथे न) जैसे गौ अपने बछड़ के लिए दूध देती है
उसी प्रकार (रात हविषे जनाय) हविष्यान्न देनेवाले लोगों के लिए (स्व सरेषु) उनके अपने घरों में
ही (मही इषे पिन्वते) बड़ी भारी अन्नसमृद्धि पर्याप्त मात्रा में प्रदान करते हैं ।

२०७ हे (वसतः मरुतः) वसानेवाले वीर मरुतो ! (यः मर्त्यं) जो मानव (वृक ताति) भेड़िये
के समान भूत धन (न रिपुः दुधे) हमारे लिए शत्रुभूत होकर बैठा हो, उस (रिपुः) हिंसक से (रक्षत)
हमारा रक्षा कीजिए । (त) उसे (तपुषा) सतापदायक (चक्रिया) पहिचे जैसे हथियार से (अभि वर्त-
यत) धर डालो । हे (रुद्रा !) शत्रुका कलनेवाले वीरो ! (अशर्मः) पेदू (वध्यः) हननीय शत्रुका (आ
हन्तन) वध करो ।

भाषार्थ- २०६ वीर मुद्र के लिए रथपर चढ़कर जाते हैं और उधर भागे विजय वाकर धन साथ ले भागे हैं । पश्चात्
बड़ा पुराणों को पढ़ी धन उचित मात्रा में विभक्त करके बाँट देते हैं ।

२०७ जो मनुष्य क्रूर बनकर हमसे शत्रुपूर्ण व्यवहार करता हो उससे हमें बचाओ । चारों ओरसे उस
शत्रु को घेरकर नष्ट कर डालो ।

टिप्पणी- [२०६] (१) अश्वान् = घोड़ों, धन भाग्य, मुल, कीर्ति, वैभवशांतिता । [२०७] (१) चक्रिया =
(चक्र) = चक्र पू, बटिये के समान हथियार । (२) अशर्म = (अशर्म) = अशर्मस्त, दुष्ट (अश्र्) भक्षक,
पद । ३) तं तपुषा चक्रिया अभि वर्तयत = (१) उक्त शत्रु को (तपुषा) घबकानेवाले, अन्न तपनेवाले (चक्रिया)
चक्रवर्तु दिशाई देनेवाले शत्रुओं से चक्र (अभि) चतुर्दिक् (वर्तयत) घेर दो ।

(२०८) चित्रं । तत् । वः । मरुतः । याम् । चेकिते ।

पृथ्व्याः । यत् । ऊर्ध्वः । अपि । आपयः । दुहुः ।

यत् । वा । निदे । नवमानस्य । रुद्रियाः । ।

त्रितम् । जराय । जुरताम् । अद्राम्याः ॥ १० ॥

(२०९) तान् । वः । महः । मरुतः । एन्द्रयाज्ञः । पिप्पोंः । एपस्य । प्रुडभृथे । हवामहे ।
हिरण्यवर्णान् । ककुहान् । यत्स्रुचः । ब्रह्मण्यन्तः । शंस्यम् । राधः । ईमहे ॥ ११ ॥

अन्वयः— २०८ (हे) मरुत । व तत् चित्रं याम् चेकिते यत् अपय पृथ्व्याः अपि ऊध. दुहु, यत् (हे) अ-दाभ्याः रुद्रिया ! नवमानस्य निदे त्रितं जुरतां जराय वा ।

२०९ (हे) मरुत । एव य प्रः मह तान् वः पिप्पों. एपस्य प्र भृथे हवामहे, ब्रह्मण्यन्त यत् स्रुचः हिरण्य-वर्णान् ककुहान् शस्यं राधः इमहे ।

अर्थ— २०८ हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (य तत् चित्रं तुम्हारा यह आश्चर्यजनक (याम्) हमला (चेकिते) सब को विदित है, (यत्) क्योंकि सब से आपय.) मित्रता करनेवाले तम (पृथ्व्या. अपि ऊधः) गोक दुग्धाशय का (दुहु) दोहन करके दूध पीते हो । (यत्) उसी प्रकार हे (अ दाभ्या.) न वधनेवाले (रुद्रिया) महावीरों (नवमानस्य) तुम्हारे उपासक वी । निदे निदा करनेहारे तथा (त्रितं) त्रित नामधाले ऋषिओ (जुरतां) मारने का इच्छा करनेवाले शत्रुओं के (जराय वा) विनाश के लिए तुमही प्रयत्नशील हो, यह बात विख्यात है ।

२०९ हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (एव याम्) वेगसे जानेवाले (महः) तथा महत्त्वयुक्त ऐसे (तान् व) तुम्हें हमारे (पिप्पोंः) ध्यापय हितधी (एपस्य) इच्छा की (प्र भृथे) पूर्ति व लिए (हवामहे) हम बुलाते हैं । (ब्रह्मण्यन्त.) ज्ञानधी इच्छा करनेहारे तथा (यत् स्रुच.) पुण्य कमके लिए वट-पत्त हा उठनवाले हम (हिरण्य वर्णान्) सुवर्णयत् नेजस्यं एवं (ककुहान्) अत्यन्त ऊर्ध्व ऐसे इन वीरों के समीप (शस्यं राध) सराहनीय धनकी (ईमहे) याचना करते हैं ।

भाषार्थ— २०८ वीर वैदिक ऋगुच्छ पर जब धावा करते हैं, तो तम धदाईको दूर प्रेक्षक अचम्भेन भाते हैं । ये वीर गोदुग्ध को पीते हैं और अपने अनुयायियों को रक्षा करत हैं, अत वे शत्रुओं तथा निन्दकोंसे विरक्तुल नहीं डरत हैं ।

२०९ वीरों को बुलाते हैं हमारा वही अभिप्राय है कि वे हमारे सार्वजनिक हित की जा अभिलाषाएँ हैं उन्हें पूर्ण करनेमें सहायता दें । हम ज्ञान धाने की अभिलाषा करते हैं और उर्ध्व हम प्रयत्नशील भी हैं । इसलिए हम इन अर्ध वीरों के निकट जाकर उ से प्रसन्ननीय धन माँग रहे हैं । वे हमारी इच्छा पूर्ण कर ।

टिप्पणी— [२०८] (१) अद्राम्या = (अ-दाभ्या) व दवनवाला, जिसे बोह अति न पटु भी हो । (२) आपि = भास, सुगमता से प्राप्त होनेवाला, मित्र । (३) त्रित = त्रैतयाद् के तत्राज्ञान का प्रचार करनेवाला [एरुत, हित, त्रित ये तीन ऋषि विविध तत्राज्ञान के प्रवर्तक थे । एव, हित, त्रैत वादो का प्रवर्तन उन्होंने किया ।]

[२०९] (१) एव-यागन् = वेगपूर्वक जाने वाला । (२) ककुह = प्रवृत्त, उर्ध्व, मधसे अ्रेष्ठ । (३) यत् स्रुच = यज्ञकुण्ड में घृतकी अहुति देनेके लिए जिनसे सूत्रा संधार कर रनी हो (अच्छ कार्य करने के लिए जिनसे कमर कस ली हो, ऐसा स्वामी पुण्य) । (४) हिरण्य वर्ण = वीर मरुत् सुवर्णकान् से शोभित पीत रंग वर्णवाले थे (मरुद्भ्यो ये वैश्यं) । वा० य० ३०/१५) वैश्यों का रंग पीत बनलाया जाता है, इसी भाँति यहाँ पर मरुतों का वर्ण पीत है, ऐसा सूचित किया है ।

(२१०) ते । दशग्वाः । प्रथमाः । यज्ञम् । ऊहिरे ।
 ते । नः । द्विन्वन्तु । उपसः । विदुष्टिपु ।
 उपाः । न । रामीः । अरुणैः । अप । ऊर्णते ।
 महः । ज्योतिषा । शुचता । गोऽर्णसा ॥१२॥
 (२११) ते । क्षोणीभिः । अरुणोभिः । न । अञ्जिभिः । रुद्राः । ऋतस्य । सद्नेपु । वपुधुः ।
 निऽमेघमानाः । अत्येन । पाजसा । सुऽचन्द्रम् । वर्णम् । दुधिरे । सुऽपेशसम् ॥१३॥

अन्वय.— २१० दश-ग्वाः प्रथमाः ते एवं ऊहिरे, ते नः उपसः व्युष्टिपु द्विन्वन्तु, उपा न, अरुणैः रामीः महः शुचता गो-अर्णसा ज्योतिषा अप ऊर्णते ।
 २११ रुद्राः ते, क्षोणीभि अरुणोभिः न, अञ्जिभिः ऋतस्य सद्नेपु वपुधुः, नि-मेघमानाः अत्येन पाजसा सु-चन्द्रं सु-पेशसं वर्णं दुधिरे ।

अर्थ— २१० (दश-ग्वाः) दस मासतक यज्ञ करनेवाले तथा (प्रथमाः) अद्वितीय ऐसे (ते) उन वीरों ने (यज्ञ ऊहिरे) यज्ञ किया । (ते) वे (नः) हमें (उपसः व्युष्टिपु) उपःकाल के प्रारंभ में (द्विन्वन्तु) प्रेरणा दें । (उपाः न) उपा जिस प्रकार (अरुणैः) रक्षित किरणों से (रामीः) अंधेरी रात्री को आच्छादित करती है, वैसे ही वे वीर (महः) यज्ञ (शुचता) तेजस्वी (गो अर्णसा) किरणों के तेजसे (ज्योतिषा) प्रकाश से सारा संसार (अप ऊर्णते) ढक देते हैं ।

२११ (रुद्राः ते) शत्रुओंको रूलातेवाले वे वीर (क्षोणीभिः) चकणायुक्त किये हुए (अरुणोभिः न) केसरिया के समान पीतवर्णवाले (अञ्जिभिः) बल्लालंकारों से युक्त होकर (ऋतस्य) ऋकयुक्त (सद्नेपु) घरों में (वपुधु) बड़े । उसी प्रकार (नि-मेघमानाः) पूर्णतया स्नेहपूर्वक मिलकर कार्य करनेवाले वे (अत्येन पाजसा) अपने वेगयुक्त बलसे (सु-चन्द्रं) अत्यन्त आह्लाददायक एवं (सु-पेशसं) अति सुन्दर (वर्णं) कान्ति को (दुधिरे) धारण करते हैं ।

भावार्थ— २१० वे वीर एवं मैं दम महीने यज्ञकर्म करने में निगते हैं । वे हमें प्रतिदिन सत्कर्म की प्रेरणा दें अर्थात् दम के चारित्र्य को देखकर हमारे दिल में प्रति पल सत्कर्म की प्रेरणा होती रहे । वे वीर अपने पवित्र तेज से घोरतमान रहते हैं ।

२११ इन वीरों के पराभूयण बल रंग में रंगे हुए हैं । त्रिधर जल विपुलतया मिलता हो, बधर ही वे रहते हैं । शीतपूर्वक मिलकर रहनेवाले वे अपने वेग एवं बल से वीरता के कार्य करते रहते हैं, इसलिये बहुत तेजस्वी दीप्ति पड़ते हैं ।

टिप्पणी— [२१०] (१) दश ग्वाः (दस-गो [गम्]) दस दिशाओं में जानेवाले, दम गीर्ष माध रखतेवाले, दस मास चलनेहार । (२) रामीः= (राम=अंधेरा) अंधेरी रात, आगन्ध देवैवाली, रात्री । (३) व्युष्टि= (वि-उप्=दाहे)= विनेप प्रकाशित, विशेष मनोहर, दिन का आरम्भ, प्रकाश । (४) गो-अर्णसू= विरण-समुद्र, प्रकाश का प्रवाह, उजियारे का ओष । [२११] (१) पाजसू= बल । (२) नि-मेघमानाः (मेघतीति मेघः = मेघ-समुदाय)= पूर्णरूप से एकत्रित होनेवाले । (३) ऋतस्य सद्नेपु = जहाँ जल अधिक हो, ऐसे स्थानों में । (४) क्षोणी = (सु-चन्द्रे, सुद-संपेपणे) = शब्द करनेवाली, पृथ्वी, वर्ण किया हुआ, महीन भाटा करनेयोग्य । (५) अरण = छाल रंग, केसरिया वर्ण, वैशर, सुवर्ण ।

- (२१२) तान् । इयानः । महि । वरूथम् । ऊतये ।
 उप । घृ । इत् । एना । नमसा । गृणीमसि ।
 त्रितः । न । यान् । पञ्च । होतृन् । अभीष्टये ।
 आऽध्वर्तत् । अघरान् । चक्रिया । अपसे ॥ १४ ॥
- (२१३) यया । रत्रम् । पारयथ । अति । अंहः ।
 यया । निदः । मुञ्चथ । वन्दितारम् ।
 अर्वाची । सा । मरुतः । या । वृः । ऊतिः ।
 ओ इति । सु । वाथाऽइव । सुऽमतिः । जिगातु ॥ १५ ॥

अन्वयः— २१२ यान् अघरान् पञ्च होतृन् चक्रिया जवसे, अभीष्टये न त्रितः आध्वर्तत् तान् ऊतये महि धरूथं इयान एना नमसा उप इत् गृणीमसि घ ।

२१३ (हे) मरुत ! यया रत्रं अंह अति पारयथ, यया वन्दितारं निद मुञ्चथ, या व ऊति सा अर्वाची, सु-मति वाथाइव ओ सु जिगातु ।

अर्थ— २१२ (यान्) जिन (अघरान्) अत्यन्त श्रेष्ठ (पञ्च होतृन्) पाँच याजकों तथा वीरों को (चक्रिया) चक्रकी दाहूवाले हथियार से (अपसे) रक्षण करने के लिए (अभीष्टये न) तथा गर्माहृति के लिए (त्रितः) त्रिभि त्रितमे (आध्वर्तत्) अपने समीप बुला लिया था, (तान्) उनके समीप (ऊतये) संरक्षण के लिए (महि वरूथं) यथा आश्रयस्थान (इयानः) भोगनेवाले हम (एना नमसा) इस नमस्कार से (उप इत्) समीप जाकर उनकी (गृणीमसि घ) प्रशंसा करते हैं ।

२१३ हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (यया) जिसकी सहायता से तुम (रत्रं) उपासक को (अंहः) पाप के (अति पारयथ) परे ले जाते हो (यया) जिस से (वन्दितार) वन्दन करनेवाले को (निदः) निदा करनेवाले से (मुञ्चथ, छुड़ाते हो, (या व. ऊति.) जो इस भाँति तुम्हारी संरक्षणक्षम शक्ति है (सा अर्वाची) वह हमारी ओर आ जाए और तुम्हारी (सु-मति.) अच्छी बुद्धि (वाथाइव) रंजानेवाली शक्ति के समान (ओ सु जिगातु) भली प्रकार हमारे निकट आए, हमें प्राप्त हो ।

भाषार्थ— २१२ वे वीर इतने बलवान् हैं और अपने अनुयायियों की रक्षाका भार अपने ऊपर लेनेवाले हैं । हम उनसे अपना रक्षाकी अपेक्षा करते हैं और इसलिए उन्हें नमन करके उनकी मराहना करते हैं ।

२१३ तुममें विश्वमान जिन मरुत शक्तियों की सहायतासे तुम उपासकों को पापोंसे बचाते हो, निन्दक लोगोंसे बचाते हो, उन तुम्हारे संरक्षण की छत्रच्छाया में हम रहने पायें और तुम्हारी सुमति से हम काम उठावें ।

टिप्पणी - [११०] (१) वरूथं = वर, रक्षण, कवच, मसुदाय, बाल । (२) अ वर = (न विद्यते वर श्रेष्ठः अन्वयः येषां ते) श्रेष्ठ, (अवरात् सुभयान् । सायण) । [२१३] (१) रत्रं = (रत्र-दिसा-संस्थाप्यो) पूजा करने द्वारा, श्रीमान्, उदात्त, सुखी, सुख देनेवाला ।

शापिपुत्र विभ्यामित्र ऋषि (१० ३।२६।४—६)

(२१४) प्र । यन्तु । वाजाः । तविपीभिः । अग्रयः । शुभे । सम्जर्मिश्वाः । पृपतीः । अयुक्षत ।
वृहत् उक्षः । मरुतः । विश्वऽदसः । प्र । वेपयन्ति । पर्वतान् । अदाभ्याः ॥४॥

(२१५) अग्निऽश्रियः । गृहर्तः । विश्वऽकृष्टयः । आ । त्वेपम् । उग्रम् । अर्गः । ईमहे । वयम् ।
ते । स्त्रानिनः । रुद्रियाः । वर्षऽनिर्निजः । सिंहाः । न । हेपऽकतनः । सुऽदानवः ॥५॥

अन्वय — २१४ वाजा अग्रय तविपीभि प्र यन्तु, शुभे स मिश्वा पृपती अयुक्षत, अ दाभ्या विश्व-
वेदस वृहत् उक्ष मरुत पर्वतान् प्र वेपयन्ति ।

२१५ मरुत अग्निऽश्रिय विश्व कृष्टय, उग्र त्वेप अय आ ईमहे, ते वर्ष-निर्निज अश्रिया
हेप कतन सिंहा न स्वानिन सु दानव ।

अर्थ- २१४ (वाजा) चलवान् या अजवान् (अग्रय) अग्निवत् तेजस्वी वीर (तविपीभि) अपने
पलोंसहित शत्रुदलपर (प्र यन्तु) चढार करे या टूट पड़े । (शुभे) लाकरल्याण के लिए (स मिश्वा) इच्छे
हुए वे वीर (पृपती अयुक्षत) घरेवाली घोड़ियों या हरिणियों रथों में जोड़ देते हैं । (अ-दाभ्या) न
बधनेवाले (विश्व वेदस) सभी धर्मों से युक्त और (वृहत्-उक्ष) अतीव चलवान् वे (मरुत) वीर
मरुत् (पर्वतान् प्र वेपयन्ति) पहाड़ोंको भी हिला देते हैं ।

२१५ (मरुत अग्निऽश्रिय) वे वीर मरुत् अग्निवत् तेजस्वी हैं और (विश्व-कृष्टय) सभी किसानों
में से हैं । उनके (उग्र त्वेप अय) प्रकार तेजस्वी सरक्षणको (अय आ ईमहे) हम चाहते हैं । (ते वर्ष-
निर्निज) ये स्वदेशी गणवेश पहननेवाले हैं तथा (रुद्रिया) महावीर के समान शूरवीर और
(हेप कतन सिंहा न) गर्जना करनेवाले सिंह के समान (स्वानिन) बड़ा शत्रु करनेवाले हैं एव
(सु दानव) बड़े अच्छे दानी हैं ।

भाषार्थ- २१४ वीर अपना बल एकत्रित कर के शत्रुदल पर टूट पड़े । जनता का हित करने के लिए वे मिलजुल
कर कार्य करें । वे वीर किसी से बधनेवाले नहीं हैं और अच्छे जानी एव सामर्थ्यवान् होने के कारण यदि प्रयत्न करें,
तो पात-अग्निियों को भी अपनी जगह से उल्लाड़ फक देंगे ।

२१५ ये वीर अग्नि की नाईं तजस्वी हैं और कृष्टक होते हुए भी सेना में प्रविष्ट हुए हैं । वे स्वदेश में
बनाये हुए गणवेश का ही उपयोग करते हैं । हमारा इच्छा है कि वे हमें सड़कों से बचायें । वे वीर की नाईं देहावते
हैं और शत्रुको चुनावी देने में निरक्षक नहीं । वे बड़े उदार भी हैं ।

टिप्पणी- [२१४] (१) वाजा = अथ यज्ञ बल वग, लडाइ संपत्ति । (२) तविपी = (तविपु) बल, सामर्थ्य,
बलिष्ठ, पृथ्वी । (३) अग्रय = अग्नि के समान तेजस्वी । (अगले अग्र म ' अग्निऽश्रिय ' शब्द दत्तिए) । [२१५]
(१) वृप = (त्रिलसने) सींचना, पारिण करना, प्रभु व प्रस्थापित करना इल चलाना । (२) विश्व कृष्टि = सारे
कृष्टक, सभी मानव, सब को सींचनेवाला । दक्षिण ' इन्द्र आसीत्सीरपति शतत्रनु फीनाशा वामन् मरुत
सु दानव ॥ (अथर्व ३।२०।११) । (३) निर्निज = पुत्र, पवित्र, यश्र । (४) वर्ष = वर्षों दस । वर्ष निर्निज =
स्वदेश में बने हुए कपडे पहननेवाला, देशी वस्त्रों या गणवेश उपयोग में लानेवाला, वर्षों को ही जो पहनावा मानत हों ।

(२१६) द्वातंस्त्रातम् । गणम्ऽगणम् । सुशस्तिऽभिः । अग्नेः । भामंम् । मरुताम् । ओजः । ईमहे ।
पृपत्स्त्राथासः । अन्रभ्रजरीपसः । गन्तारः । यज्ञम् । त्रिदयेषु । धीराः ॥६॥

अभिषुत्र द्यावाभ्य ऋषि (ऋ० ५।५२।१-१०)

(२१७) प्र । इयात्स्त्राथ । धृष्णुऽया । अर्चं । मरुत्सभिः । ऋक्सभिः ।
ये । अद्रोघम् । अनुऽस्त्रधम् । श्रवं । मदन्ति । यज्ञियाः ॥१॥

अन्वयः— २१६ गणं गणं द्वातं-द्वातं अग्ने भामं मरुतां ओजः सु-शस्तिभि ईमहे, पृपत्-अध्यास
अन्-अवभ्र-राधस धीरा. विद्येषु यज्ञं गन्तारः ।

२१७ (हे) इयावाभ्य (इयाव-अभ्य ।) धृष्णु-या ऋक्सभिः मरुद्भिः प्र अर्चं, ये यज्ञियाः
अनु-स्व-धं अ द्रोघं श्रवः मदन्ति ।

अर्थ- २१६ (गणं-गणं) हर सैन्य-विभाग में और (द्वातं-द्वातं) हर समूह में (अग्नेः भामं) अग्नि
का तेज तः । (मरुतां ओजः) मरुतों का बल उत्पन्न हो इसलिए हम (सु शस्तिभिः) उत्तम, अच्छी
स्तुतियों से (ईमहे) उनकी प्रार्थना करते हैं । (पृपत् अध्यासः) धर्मों से युक्त धांडे रखनेवाले (अन्-
अवभ्र राधसः । जिनका धन छीना न जाता हो ऐसे वे (धीरा) धैर्ययुक्त वीर (विद्येषु) यज्ञों में या
युद्धों में (यज्ञं गन्तारः) हज्जनस्थान के समीप जानेवाले हैं ।

२१७ हे (इयाव अभ्य !) भूरे रंग के घोड़े पर बैठनेवाले वीर ! (धृष्णु या) शत्रु का पराभव
करने में उपयुक्त बल से परिपूर्ण तू (ऋक्सभिः मरुद्भिः) सराहनीय वीर मरुतों के साथ (प्र अर्चं) उनकी
पूजा कर । (ये यज्ञिया) जा पूज्य वीर (अनु स्व ध) अपनी धारक शक्ति से युक्त हो, (अ-द्रोघं) द्रोह-
रहित (अथः) कीर्ति पाकर (मदन्ति) हर्षित हो उठते हैं ।

भाषार्थ- २१६ हम वीरों के काव्य का गाव्य हमलिये करते हैं कि, वीरों के हर एक में तथा प्रायः विभाग में
तेजस्विता स्थिर रहने पाय । इन वीरों के निकट घोड़े रग हुए हैं और वे अती- धैर्यवाली हैं । इन के पास जो धन
है, वह न कभी घटना और न दुश्मनों को पतनीयुक्त करता है । मग्नान ने जिधर आत्मबलिदान का कार्य करना पड़े
उधर वे पहुँचकर काम पूरा कर देते हैं ।

२१७ जिस से शत्रु का पराभव हो जाय, ऐसा बल प्राप्त करना चाहिये और वीरों का भी सम्मान करना
चाहिये । वीर अपनी धारक शक्ति बढ़ा कर किसी का भी ह्वन न करे हुए बड़े बड़े कार्यों में सफलता पाकर यशस्वी
बन जाते हैं ।

टिप्पणी [२१६] (१) गण = समुदाय, सैन्य का विभाग (Division, अङ्ग्रेज़ियों का भग, जिस में २७ रथ,
२७ हाथी, ८१ घोड़े, १२५ पैदल सिपाही हो । देखिए मंत्र २४४ पर की टिप्पणी) । (२) द्वातः = समुदाय, समूह,
पौहव, पुरोधाय । (३) यज्ञः = यज्ञ, इविद्रव्य (जिस मन्त्रों में देवपूजा मातिकरण-दान होता दो,) आत्मसमर्पण ।
(४) धीरः = (धी-र) बुद्धि देनेवाले, परामर्श करनेवाले, धैर्यवान् । [२१७] (१) इयाव अभ्य = (इयाव)
भूरे रंग का (अथ) घोड़ा, उस घोड़े पर बैठनेवाला वीर, [इयावाभ्य ऋषि साव्यमाप्य ।] (२) अथस् = कान, यश,
धन, सराहनीय कर्म, कीर्ति । (३) अर्चं = (पूजार्थं) = पूजा करना, प्रशस्तना, सम्मान करना ।

- (२१८) ते । हि । स्थिरस्य । शर्वसः । सखायः । सन्ति । धृष्णुऽया ।
 ते । यामन् । आ । धृप्त्स्विनः । त्मना । पान्ति । शर्वतः ॥२॥
- (२१९) ते । स्पन्द्रासः । न । उक्षणः । अति । स्कन्दन्ति । शर्वरीः ।
 मरुताम् । अर्धं । महः । द्विवि । क्षमा । च । मन्महे ॥३॥
- (२२०) मरुत्सु । चः । दधीमहि । स्तोमम् । यज्ञम् । च । धृष्णुऽया ।
 विश्वे । ये । मानुषा । युगा । पान्ति । मर्त्यम् । रिषः ॥४॥

अन्वयः— २१८ धृष्णु-या ते हि स्थिरस्य शर्वसः सखायः सन्ति, ते यामन् शर्वतः धृपत् विनः त्मना आ पान्ति ।

२१९ स्पन्द्रासः न उक्षणः ते शर्वरीः अति स्कन्दन्ति, अर्ध मरुतां द्विवि क्षमा च महः मन्महे ।
 २२० ये विश्वे मानुषा युगा मर्त्यं रिष पान्ति, चः धृष्णु-या मरुत्सु स्तोमं यज्ञं च दधीमहि ।

अर्थ- २१८ (धृष्णु या ते हि) ये साहसी एवं आक्रमणकर्ता वीर (स्थिरस्य शर्वसः) स्थायी एवं मटल बल के (सखायः सन्ति) सहायक हैं। (ते यामन्) वे चढाई करते समय (शर्वतः) श्राभ्यत (धृपत् विनः) विजयशाल सामर्थ्य से युक्त वीरों का (त्मना) स्वयं ही (आ पान्ति) सभी ओरसे संरक्षण करते हैं।

२१९ (ते स्पन्द्रासः) शत्रु को विकम्पित करनेवाले (न उक्षणः) और बलवान् वीर (शर्वरीः) अति स्कन्दन्ति) रात्रियों का अतिभ्रमण करके भागे चले जाते हैं। (अर्ध) अर्ध इसलिये (मरुतां) मरुतों के (द्विवि क्षमा च) चुलुक में एवं धृष्वी पर विद्यमान (महः मन्महे) तेजःपूर्ण काव्यका ह्रम मनन करते हैं।

२२० (ये) जो वीर (विश्वे) सभी (मानुषा युगा) मानवी युगों में (मर्त्यं) मानवको (रिषः पान्ति) हिसक से यचाते हैं, येसे (चः) तुम (धृष्णु-या) विजयशाल सामर्थ्य से युक्त (मरुत्सु) मरुतों के लिए ह्रम (स्तोमं यज्ञं च) स्तुति तथा पवित्र कार्य (दधीमहि) अर्पण करते हैं।

भाषार्थ- २१८ ये साहसी और धुरवीर सैनिक बल ही ही सराहना करते हैं। जब ये शत्रुदल पर आक्रमण कर देते हैं, तब स्थायी एवं विजयी बल से परिपूर्ण वीरों की रक्षा करने का गुरुतर कार्यभार स्वयं ही श्रेष्ठता से उठाते हैं।

२१९ जो बलिष्ठ वीर शत्रु के दिल में घबकन पैदा करते हैं, वे रात्री के समय दुश्मनों पर चढाई करते हैं और विन के अग्रसर वर भी आक्रमण प्रचलित रखते हैं। इसीलिये ह्रम इन के मननीय चरित्र का मनन करते हैं।

२२० जो वीर मानवी युगों में शत्रुओं से अपनी रक्षा करते हैं, उन के सामर्थ्य की सराहना करनी चाहिये।

टिप्पणी- [२१८] (१) शर्वतः = असंख्य, द्विरवाल तक टिकनेवाला, सतत। [२१९] (१) मन्महे = इच्छा, स्तुति, (मननीय काव्य)। (२) शर्वरीः आति स्कन्दन्ति = ये वीर दिन या रात्री का तनिक भी खयाल न कर के अपनी आक्रमण धरावर जारी रखते हैं। (३) स्पन्द्रु = (विश्वरुचलने) = हिलना, हिलाना। [२२०] (१) युगं = युगल, पतिपत्नी, प्रजा, अनेक वर्षों का काल। (२) मर्त्यः = मानव, मरणधर्मा मनुष्य।

(२२१) अर्हन्तः । ये । सुदानवः । नरः । असामिऽश्वसः ।

प्र । यज्ञम् । यज्ञियैभ्यः । दिवः । अर्च । मरुत्ऽभ्यः ॥५॥

(२२२) आ । रुमैः । आ । युधा । नरः । ऋष्याः । ऋषीः । असृक्षत ।

अर्तु । एनान् । अर्ह । विऽधृतः । मरुतः । जज्ञतीऽश्व । मानुः । अर्त । त्मना । दिवः ॥६॥

(२२३) ये । वृधन्त । पार्थिवाः । ये । उरौ । अन्तरिक्षे । आ ।

वृजने । वा । नदीनाम् । सधऽस्थे । वा । महः । दिवः ॥७॥

(२२४) शर्धः । मारुतम् । उत् । शंस । सत्यऽश्वसम् । ऋभ्वसम् ।

उत । स्म । ते । शुभे । नरः । प्र । स्पन्द्राः । युजत । त्मना ॥८॥

अन्वय- २२१ ये अर्हन्तः सु-दानव अ-सामि-श्वस दिवः नरः यज्ञियैभ्यः मरुद्भ्यः यज्ञं प्र अर्च ।

२२२ रुमैः आ युधा आ ऋष्याः नरः दिव मरुत ऋषीः एनान् अनु ह जज्ञती इव विद्यु-
तः असृक्षत, भानु त्मना अर्त ।

२२३ ये पार्थिवाः, ये उरौ अन्तरिक्षे, नदीनां वृजने वा महः दिवः सध-स्थे वा आ वधृधन्त ।

२२४ सत्य-श्वसं ऋभ्वसं मारुतं शर्धं उत् शंस, उत स्म स्पन्द्राः नरः ते शुभे त्मना ॥ युजत ।

अर्थ— २२१ (ये) जो (अर्हन्तः) पूज्य, (सु-दानव) दानशूर, (अ-सामि-श्वसः) संपूर्ण धलसे युक्त तथा (दिवः) तेजस्वी, द्योतमान (नरः) नेता हैं, उन (यज्ञियैभ्यः) पूज्य (मरुद्भ्यः) वीर-मरुतों के लिए (यज्ञं) यज्ञ करो और उनकी (प्र अर्च) पूजा करो ।

२२२ (रुमैः आ) स्वर्णसुद्रा के हारों से और (युधा आ) आयुधों से युक्त, (ऋष्याः नरः) यज्ञे तथा नेतृत्वगुण से युक्त (दिवः) दिव्य वीर (ऋषीः) अपने भालोंको और (एनान् अनु ह) इनके अनुरोधसे ही (जज्ञतीः इव) घडघडाती हुई नदियों के समान (विद्युतः) तेजस्वी यज्ञ शशु पर (असृक्षत) फेंक देते हैं । इनका (भानुः) तेज (त्मना) उनके साथही (अर्त) चला जाता है ।

२२३ (ये पार्थिवाः) जो ये वीर पृथ्वी पर, (ये उरौ अन्तरिक्षे) जो विस्तीर्ण अन्तरिक्ष में या (नदीनां) नदियों के समीप के (वृजने वा) मैदानों में अथवा (महः दिवः) विस्तृत घुलोकके (सध-स्थे वा) स्थान में (आ वधृधन्त) सभी तरह से यदते रहते हैं ।

२२४ (सत्य-श्वसं) सत्य के धलसे युक्त तथा (ऋभ्वसं) हमले करनेवाले (मारुतं शर्धः) वीर मरुतों के सामुदायिक धल की (उत् शंस) स्तुति करो । (उत स्म) क्योंकि (स्पन्द्राः) शत्रुको विध-लित पर्व विकम्पित करनेवाले और (नरः) नेता ये वीर (शुभे) लोककल्याण के लिए किये जानेवाले सत्कार्य में (त्मना) स्वयं अपनी सदिच्छासे ही (प्र युजत) जुट जाते हैं ।

भावार्थ- २२१ पूजनीय, दानी वीरों का अच्छा सत्कार करना चाहिए ।

२२२ हार एवं हथियारों से सजे हुए ये वीर बहुत तेजस्वी प्रतीत होते हैं ।

२२३ ये वीर भूमि पर, अन्तरिक्ष में तथा घुलोक में भी अबाधरूप से संचार करते हैं ।

२२४ वीरों के सच्चे धल का बलान करो । ये वीर जनता के हित के लिए स्वेच्छापूर्वक यत्न करते रहते हैं ।

टिप्पणी- [२२१] (१) सामि = भाषा, अर्थः; अ-सामि = पूर्ण, अविकल, ममम ।

[२२४] (१) ऋभ्वस = बहुत दूर फैले हुए, धैर्यशाली, चढाई करनेवाले । (२) शर्ध = बल, समूह,

संघ, शत्रु के विनाश करनेका बल ।

मरुत् [हि.] १९

- (२२५) उत । स्म । ते । परुष्याम् । ऊर्णाः । वसत । शुन्ध्यः ।
 उत । पृथा । रथानाम् । अद्रिम् । भिन्दन्ति । ओजसा ॥९॥
- (२२६) आपथयः । विपथयः । अन्तःपथाः । अनुपथाः ।
 एतेभिः । मह्यम् । नामऽभिः । यज्ञम् । विस्तारः । ओहिते ॥१०॥
- (२२७) अध । नरः । नि । ओहते । अध । निद्युतः । ओहते ।
 अध । पारावताः । इति । चित्रा । रूपाणि । दृश्या ॥ ११ ॥

अन्वय - २२५ उत स्म ते परुष्या शुन्ध्यवः ऊर्णा वसत, उत रथानां पृथा ओजसा अद्रिं भिन्दन्ति ।
 २२६ आ-पथय वि-पथयः अन्त-पथा अनुपथा एतेभिः नामभि विस्तार मह्यं यज्ञं
 ओहिते ।

२२७ अध नर नि ओहते अध निद्युत, अध पारावता ओहते, इति रूपाणि चित्रा दृश्या ।

अर्थ- २२५ (उत स्म) और (ते) के वीर (परुष्या) परुषी नदी में (शुन्ध्यवः) पवित्र होकर
 (ऊर्णा वसत) ऊनी कपड़े पहनते हैं (उत) और (रथानां पृथा) रथों के पहियों से तथा (ओजसा)
 यज्ञ बलसे (अद्रिं भिन्दन्ति) पहाड़ को भी विभिन्न कर डालते हैं ।

२२६ (आ-पथय) समीप के मार्ग से जानेवाले, (विपथयः) विविध मार्गों से जानेवाले,
 (अन्त-पथा) गुप्त सड़कों परसे जानेवाले (अनु-पथा) अनुकूल मार्गों से जानेवाले, (एतेभिः नामभिः)
 ऐसे इन नामों से (विस्तार) विख्यात हुए ये वीर (मह्य) मेरे लिए (यज्ञ ओहिते) यज्ञ के हविष्यान्न
 होकर लाते हैं ।

२२७ (अध) कभी कभी ये वीर (नर) नेता यन्त्र संसार का (नि ओहते) धारण करते हैं,
 (अध निद्युत) कभी कभी म खड रहकर सामशायिक ढंगसे और (अध) उसी प्रकार (पारावता)
 दूर जगद खडे रहकर भी (ओहते) घोस्र दोते हैं, (इति) इस भौति उनके (रूपाणि) स्वरूप (चित्रा)
 आश्चर्यकारक तथा (दृश्या) देखनेयोग्य हैं ।

भाषार्थ- २२५ वीर नदी में नहाकर शुद्ध होते हैं और ऊनी कपड़े पहनकर अपने रथों के वेग से पहाड़ों तक को
 लॉथ कर चले जाते हैं ।

२२६ भौति भौति के मार्गों से जानेवाले वीर चहु ओर से अक्षसामग्री करते हैं ।

२२७ वीर पुरुष नेता बन जाते हैं और सेवा में दूर त्रयह या समीप खडे रहकर संरक्षण का समूचा भार
 उठा लते हैं । ये सुस्वरूप तथा दर्शनीय भी हैं ।

टिप्पणा- [२२५] (१) परस्= वीरों का अवयव, परुषी= शरीर, नदी का नाम । (२) ऊर्णा= ऊन,
 ऊनी कपड़े ।

[२२६] (१) आ-पथ = सरल राह । (२) वि-पथ = विशेष मार्ग, विरुद्ध दिशा में जानेवाली
 सड़क । (३) अन्त पथ = गुप्त विद्यमार्ग, भूमि के अन्दरकी सड़क, दरों में जानेवाला मार्ग । (४) अनु-पथ =
 पगडडियों या बडी मटक की शानू से जानेवाला सँकर मार्ग (Foot-paths) ।

[२२७] (१) निद्युत् = घोडा, स्तोत्रा, पवि । (२) पारावता = दूरदूर खडे हुए, दूर देश में
 रहे हुए ।

- (२२८) छन्दःस्तुभः । कुभन्यवः । उत्सम् । आ । कीरिणः । नृतुः ।
ते । मे । के । चित् । न । ताववः । ऊमाः । आसन् । दृशि । त्विपे ॥ १२ ॥
- (२२९) ये । ऋष्याः । ऋष्टिर्विद्युतः । कवयः । सन्ति । वेधसः ।
तम् । ऋपे । मारुतम् । गणम् । नमस्य । रमय । गिरा ॥ १३ ॥
- (२३०) अच्छे । ऋपे । मारुतम् । गणम् । दाना । मित्रम् । न । योपणा ।
दिवः । वा । धृष्णवः । ओजसा । स्तुताः । धीभिः । इष्यन्त ॥ १४ ॥

अन्वय.— २२८ छन्दः-स्तुभः कु-भन्यवः कीरिण उत्सं आ नृतु, ते के चित् मे तावव नः ऊमा-
दृशि, त्विपे आसन् ।

२२९ (हे) ऋपे! ये ऋष्याः ऋष्टि विद्युत कवय वेधस सन्ति, तं मारुतं गणं नमस्य गिरा रमय ।

२३० (हे) ऋपे! योपणा मित्रं न मारुतं गणं अच्छ दाना, ओजसा धृष्णवः दिवः वा

धीभिः स्तुताः इष्यन्त ।

अर्थ— २२८ (छन्दः-स्तुभः) छन्दों से सराहनीय तथा (कु भन्यव) मातृभूमि की पूजा करनेवाले
वीर (कीरिण) स्तुति करनेवाले के लिए (उत्सं) जलप्रवाह (आ नृतु) ला चुके। (ते के चित्) उनमें
से कुछ (मे) मेरे लिए (तावव न) चोरों के समान अदृश्य, कुछ (ऊमा) रक्षणकर्ता होकर
(दृशि) दृष्टिपथ में अवतीर्ण और कई (त्विपे) तेजोवल बढाते (आसन्) थे ।

२२९ (हे) ऋपे! ऋषियर! (ये) जो (ऋष्याः) बड़े बड़े, (ऋष्टि-विद्युतः) हवियारों से द्योतमान,
(कवयः) घानी होते हुए (वेधसः) कुशलतापूर्वक कर्म करनेवाले हैं (तं मारुतं गणं) उस वीर मरनों
के गण को (नमस्य) नमन कर और (गिरा रमय) वाणी से आनन्द दो ।

२३० हे (ऋपे!) ऋषियर! (योपणा मित्रं न) सुवती जिस तरह प्रिय मित्र की ओर चली
जाती है, उसी प्रकार (मारुतं गणं अच्छ) मरतृक्षेत्री और (दाना) दान लकर जाओ। (ओजसा
धृष्णवः) बल के कारण शत्रुदल की धजियाँ उड़ानेवाले ये वीर (दिव वा) तेजस्वी हैं। हे वीरो!
(धीभिः स्तुताः) स्तुतियों द्वारा प्रशंसित तुम इधर (इष्यन्त) आओ ।

भाष्यार्थ— २२८ वृद्धि वीर मातृभूमि के अन्त होने हैं इनलिये व सराहनीय हैं । उन में कुछ गुण रख ले, तो कई
प्रकट रूप से सब की रक्षा करते हुए तेज की वृद्धि करते हैं ।

२२९ वीर मैत्रिक महान् गुणी विशेष ज्ञानी, कुशलतापूर्वक कार्य करनेवाले एवं आशुघोषी होने के कारण
द्योतमान हैं । इस मररसध को रमणीय वाणी से हर्षित कर और नमन कर ।

२३० देन लेकर वीरों के समीप चले जाना चाहिये । बल से शत्रुदल पर बढाई करनी चाहिये । जो ऐसे
आक्रमणकर्ता होंगे, उम की स्तुति होगी ।

टिप्पणी— [२२८] (१) कु-भन्यवः (कु = शुष्की, भन् = पूजा करना) = मातृभूमि की पूजा करनेवाले ।
[(१) केचित् तावव न = चोरों के समान अदृश्य । (२) केचित् ऊमाः दृशि = दृश्य सरक्षक । (३) केचित्
त्विपे = शरीरान्त-संचारी, शारीरिकबलसंबन्धक ।]

[२२९] (१) वेधसू = [विन्धा = करना, उपसन्न करना, भाजा करना] कुशलतापूर्वक कार्य करनेवाला ।

[२३०] (१) योपणा = सुवती, (यु = जोड़ना, मिलना, एक जगह आना - (यौगति इति) = एक,

प्रित होने की अपेक्षा रखनेवाला ।

- (२३१) नु । मन्वानः । एषाम् । देवान् । अच्छ । न । वृक्षणा ।
 दाना । सचेत् । सुरिऽभिः । यामऽश्रुतेभिः । अजिभिः । ॥ १५ ॥
- (२३२) प्र । ये । मे । वन्धुऽप्ये । गाम् । वोचन्त । सूर्यः । पृथ्विम् । वोचन्त । मातरम् ।
 अर्थ । पितरम् । इप्सिणम् । रुद्रम् । वोचन्त । शिष्यः ॥ १६ ॥
- (२३३) सप्त । मे । सप्त । शाकिनः । एकम्ऽएका । शता । द्रुः ।
 यमुनायाम् । अर्थि । श्रुतम् । उत् । राधः । गव्यम् । मृजे । राधः ।
 अश्व्यम् । मृजे । ॥ १७ ॥

अन्ययः— २३१ वक्षणा न एषां देवान् अच्छ नु मन्वान सुरिभि याम-श्रुतेभिः अजिभिः दाना सचेत् ।
 २३२ वन्धु-एपे ये सूर्य मे प्र वोचन्त मां पृथ्वि मातरं वोचन्त, अथ शिष्यसः इप्सिणं
 रुद्रं पितरं वोचन्त ।

२३३ सप्त सप्त शाकिनः एक-एका मे शता द्रुः, श्रुतं गव्यं राधः यमुनायां अर्थि उत् मृजे,
 अश्व्यं राधः नि मृजे ।

अर्थ- २३१ (वक्षणा न) वाहन के सामान वार ले जानेवाले (एषां देवान् अच्छ) इन तेजस्वी धीरों
 की ओर (नु) शीघ्र पहुँच कर (मन्वानः) स्तुति करनेहारा, (सुरिभिः) क्षत्री, (याम-श्रुतेभिः) चढाई
 के वार में निर्यात एपे (अजिभिः) वखालंकारों से अलंकृत ऐसे उन धीरों से (दाना) दान के साथ
 (सचेत्) संगत होता है ।

२३२ उनके (वन्धु-एपे) बांधवोंक जाननेकी इच्छा करने पर (ये सूर्यः) जिन क्षत्री धीरोंने
 (मे प्र वोचन्त) मुझसे कहा, उन्होंने ' (मां) मैं तथा (पृथ्विम्) भूमि हमारी (मातरं) मातापै है' (वोचन्त)
 ऐसा कह दिया । (अथ) और (शिष्यसः) उन्हीं समर्थ धीरोंने ' (इप्सिणं रुद्रं) योगवान् महाधीर हमारा
 (पितरं) पिता है ' ऐसा भी कह दिया ।

अर्थ- २३३ (सप्त सप्त) सात सात सैनिकों की पंक्ति में जानेवाले (शाकिनः) इन समर्थ धीरोंमें से
 (एक-एका) हरेकने (मे शता द्रुः) मुझे सौ गौप्य दे दीं । (श्रुतं) उस विद्युत (गव्यं राधः) गोसमूहरूपी
 धनकी (यमुनायां अर्थि) यमुना नदी में (उत् मृजे) धो डालता हूँ और (अश्व्यं राधः) अश्वरूपी
 संपत्ति को यही पर (नि मृजे) धोता हूँ ।

भाषार्थ- २३१ वे धीर सङ्घोंमें से वार ले जानेवाले हैं और आक्रमण करने में बड़े विख्यात हैं । वे जानते हैं और
 वखालकारों से भूयिष्ठ रहते हैं । ऐसे उन तेजस्वी धीरों के पास दान लेकर पहुँच जाओ ।

२३२ गौ या भूमि भरतों की माता है और रुद्र उनका पिता है ।

२३३ धीरों से दानरूप में प्राप्त हुई गौप्य तथा मिले हुए बड़े नदीजल में घोकर साफसुधरे रखने चाहिए ।

टिप्पणी— [२३१] (१) वक्षणा-वक्षणा = अग्नि, छाडी, नदी का यात्र, नदी, वाहन ।

[२३२] (१) शिष्यसू = (शक्य षवती) समर्थ, यामर्थवान् ।

(क ५।५३।१—१६)

(२३४) कः । वेद । जानम् । एषाम् । कः । वा । पुरा । सुम्नेषु । आस । मरुताम् ।
यत् । युयुजे । किलास्यः ॥ १ ॥

(२३५) आ । एतान् । रथेषु । तस्थुषः । कः । शुश्राव । कथा । ययुः ।
कस्यै । सस्युः । सुसदासै । अनु । आपयः । इळाभिः । वृष्टयः । सह ॥ २ ॥

(२३६) ते । मे । आहुः । ये । आययुः । उप । घुभिः । विभिः । मदे ।
नरः । मर्याः । अरेपसः । इमान् । पश्यन् । इति । स्तुहि ॥ ३ ॥

अन्वय — २३४ यत् किलास्य युयुजे एषा जानं कः वेद, क वा पुरा मरुतां सुम्नेषु आस ?

२३५ रथेषु तस्थुष एतान् कथा ययुः, क आ शुश्राव, आपय वृष्टयः इळाभि सह कस्ये सु-दासे अनु सस्युः ?

२३६ ये घुभिः विभि मदे उप आययु ते मे आहुः, नरः मर्याः अ-रेपसः इमान् पश्यन् स्तुहि इति ।

अर्थ— २३४ वीर मरुताने (यत्) जब (किलास्यः) घब्येवाली हिरनिशों (युयुजे) अपने रथों में जोड़ दीं, तब (एषां) इनके (जानं) जन्मजा रहस्य (कः वेद) कौन भला जानता था ? (कः वा) और कौन भला (पुरा) पहले इन (मरुतां सुम्नेषु) वीर मरुतों के सुखचउरछाया में (आस) रहता था ?

२३५ (रथेषु तस्थुषः) रथोंमें बैठे हुए (एतान्) इन वीरों के समीप कौन भला (कथा ययुः) किस तरह जाते हैं, उसी प्रकार उनके प्रभाव का वर्णन (कः आ शुश्राव ?) भला किससे सुनने मिला ? (आपयः) मित्रवत् हितकर्ता एवं (वृष्टयः) वर्षाके समान शान्तिदायक ये वीर अपनी (इळाभिः सह) गीलों के साथ (कस्यै सु-दासे) किन् उत्तम दानी की ओर (अनु सस्युः) अनुकूल हो चले गये ?

२३६ (ये) जो (घुभिः विभि) तेजस्वी सोमों के साथ (मदे) आनन्द पानेके लिए (उप आययुः) इकट्ठे हुए (ते मे आहुः) ये मुझसे बोले कि, “ (नर) नेता, (मर्याः) मानवोंके हितकारक (अ-रेपसः) तथा दीपरहित (इमान् पश्यन्) इन वीरों को देखकर (स्तुहि इति) उनकी प्रशंसा करो । ”

भावार्थ— २३४ जब ये वीर रथ में बैठकर सवार करने लगे, तब भला किसे इन के जीवन का ज्ञान प्राप्त हुआ था ? उसी प्रकार कौन लोग इन के सङ्गरे रहते थे ? (ये वीर जब जनता के सुख के लिए प्रयत्नशील हुए, वही से लोगों को इनका परिचय प्राप्त हुआ और लोग इन के आश्रय में सुरापूर्वक रहने लगे ।)

२३५ वीर रथों पर बैठकर मित्रों से मिलने के लिए जाते हैं, उस समय वे गाँवें साथ लेकर ही प्रस्थान करने लगते हैं । इन के शौर्य का सम्मान करना चाहिये ।

२३६ सोमयाग में इकट्ठे हुए सभी लोग कहने लगे कि, वीरों के नाग्य वा गायन करना चाहिये ।

टिप्पणी - [२३४] (१) किलास्य = सुकेद घड्या । किलासी = घब्येवाली (हिरनी) ।

[२३५] (१) इळा- (इला-इला) गौ, भूमि, वाणी, दान, स्वर्ग, अन्न । (२) आपि = मित्र, सुगमतापूर्वक प्राप्त होनेवाला ।

[२३६] (१) विः = जानेवाला, पत्नी, घोडा, लगाम, सोम, यजमान ।

(२३७) ये । अजिपु । ये । वार्थीपु । स्वऽभानवः । स्रधु । रुक्मेपु । सादिपु ।
 श्रायाः । रथेपु । धन्वऽसु ॥ ४ ॥

(२३८) युष्माकम् । स्म । रथान् । अनु । मुदे । दधे । मरुतः । जीरऽदानवः ।
 वृष्टी । घावः । यतीऽइव ॥ ५ ॥

(२३९) आ । यम् । नरः । सुऽदानवः । ददाशुषे । दिवः । कोशम् । अचुच्ययुः ।
 वि । पर्जन्यम् । सृजन्ति । रोदसी इति । अनु । धन्वना । शन्ति । नृपयः ॥ ६ ॥

अन्वयः— २३७ ये स्व-भानव अजिपु ये वार्थीपु स्रधु रुक्मेपु सादिपु रथेषु धन्वसु श्रायाः ।
 २३८ (हे) जीर-दानवः मरुत ! मुदे वृष्टी यती इव घाव युष्माकं रथान् अनु दधे स्म ।
 २३९ नरः सु-दानवः दिवः ददाशुषे ये कोशं आ अचुच्ययुः रोदसी पर्जन्यं वि सृजन्ति,
 वृष्टय धन्वना अनु यन्ति ।

अर्थ- २३७ (ये) जो (स्व-भानवः) स्वयंप्रकाशमान धीर, (अजिपु) बखालंकारों में, (वार्थीपु) घुटारों में,
 (स्रधु) मालाओं में, (रुक्मेपु) स्वर्णमय हारों में, (सादिपु) कँगनों में, (रथेषु) रथों में और (धन्वसु)
 धनुष्यों में (श्रायाः) आश्रय लेते हैं, अर्थात् इनका उपयोग करते हैं ।

२३८ हे (जीर-दानवः मरुतः) शीघ्रतापूर्वक विजय पानेवाले धीर मरुतो ! (मुदे) आनंद
 के लिए मैं (वृष्टी) वर्षा के समान (यती-इव) योग्यपूर्वक जानेवाले (घाव) विजयियों के समान
 तेजस्वी (युष्माकं रथान्) तुम्हारे रथोंका (अनु दधे स्म) अनुसरण करता हूँ ।

२३९ (नरः) नेता, (सु दानवः) अच्छे वानी एवं (दिवः) तेजस्वी धीर (ददाशुषे) दानी लोगों
 के लिए (यं कोशं) जिस भाण्डार को (आ अचुच्ययुः) सभी स्थानों से बटोर लाते हैं, उसका वे
 (रोदसी) शूलोक एवं भूलोक को (पर्जन्यं) वृष्टि क समान (वि सृजन्ति) विभजन कर डालते हैं ।
 (वृष्टयः) वर्षा के समान शांतता देनेवाले ये धीर अपन (धन्वना) धनुष्यों के साथ (अनु यन्ति) खेल
 जाते हैं ।

भाषार्थ- २३७ ये धीर तेजस्वी हैं और गाम्भीर्य, कुशर, माटा, हार धारण करते हैं, तथा रथ में बैठकर धनुष्यों
 का उपयोग करते हैं ।

२३८ मैं धीरों के शय के पीछे चला आ रहा हूँ, (मैं उन के मार्ग का अनुसरण करता हूँ) ।

२३९ ये धीर शूरतापूर्ण कार्य कर के चारों ओर से धन कमा खाते हैं और उन का उचित बंटवारा कर के
 जनता को सुखी करते हैं ।

टिप्पणी- [२३८] (१) दानु = (दा दाने, दो अरण्यदने, दानु खण्डने) दान देनेवाला, प्र, विजेता, नाश
 करनेवाला ।

[२३९] (१) वृष्टु = गिरना, गँवागना, रफक जाना ।

(२४०) तत्तुदानाः । सिन्धवः । क्षोदसा । रजः । प्र । ससुः । धेनवः । यथा ।

स्यन्नाः । अर्थाःऽइव । अर्चनः । विऽमोचने । नि । यत् । वर्तन्ते । एन्थः ॥ ७ ॥

(२४१) आ । यत् । मरुतः । दिवः । आ । अन्तरिक्षात् । अमात् । उत ।

मा । अर्च । स्थात् । पराऽवर्तः ॥ ८ ॥

(२४२) मा । वः । रसा । अनितभा । कुभा । क्रुमुः । मा । वः । सिन्धुः । नि । रीरमत् ।

मा । वः । परि । स्थात् । सरयुः । पुरीपिणी । अस्मे इति । इत् । सुम्नम् । अस्तु । वः ॥ ९ ॥

अन्वय- २४० यत् एव्यः अध्वनः विमोचने स्यन्नाः अर्थाः इव वि वर्तन्ते क्षोदसा तत्तुदानाः सिन्धवः धेनवः यथा रजः प्र ससुः ।

२४१ (हे) मरुतः ! दिव उत अ-मात् अन्तरिक्षात् आ यात, परायत मा अर्च स्थात् ।

२४२ व अन्-इत-भा कु भा रसा मा नि रीरमत्, व- क्रुमु- सिन्धुः मा, व- पुरीपिणी सरयुः मा परि स्थात्, अस्मे इत् वः सुम्नं अस्तु ।

अर्थ- २४० (यत् एव्यः) जो नदियाँ (अध्वन विमोचने) मार्ग ढूँढ निकालने के लिए (स्यन्नाः अर्था इव) वेगवान् घोड़ोंके समान (वि वर्तन्ते) वेगपूर्वक यह जाती हैं, वे (क्षोदसा) उदकसे भूमि को (तत्तुदानाः) फोड़नेवाली (सिन्धवः) नदियाँ (धेनव यथा) गौर्षाँ के समान (रजः) उपजाऊ भूमियों की ओर (प्रससुः) यहने लगीं ।

२४१ हे (मरुतः ।) जोर मरतो ! (दिवः) धूलोक से तथा (उत) उसी प्रकार (अ-मात् अन्त-रिक्षात्) असीम अंतरिक्षमेंसे (आ यात) इधर आओ, (परायतः) दूरके देशमें ही (मा अर्च स्थात्) न रहो ।

२४२ (वः) तुम्हें (अन्-इत-भा) तेजदीन और (कु-भा) मलिन (रसा) रसानामक नदी (मा नि रीरमत्) रममाण न करे (वः) तुम्हें (क्रुमुः) वेगपूर्वक आक्रमण करनेद्वारा (सिन्धु) सिन्धु नदी घाँघमें ही (मा) न रोक दे, (वः) तुम्हें (पुरीपिणी) जल से परिपूर्ण (सरयुः) सरयु नदी (मा परि स्थात्) न घेर लेये । (अस्मे इत्) हमें ही (वः सुम्नं) तुम्हारा सुख (अस्तु) प्राप्त हो, मिल जाये ।

भाषार्थ- २४० ध्रुवोंपर वर्षा के पश्चात् नदियों में बाढ़ आने पर पृथ्वी को छिन्नभिन्न करके नदियाँ बढ़ने लगती हैं और उपजाऊ भूभाग को अधिक उर्वर बना देती हैं । २४१ यीर सदैव हमारे निकट आकर यहीं पर रहे । २४२ हे वीरो ! तुम रमा, सिन्धु पुरीपिणी एव सरयु नदियों से सींचे हुए प्रदेश में ही रममाण न बनो, अपि तु हमारे निकट आकर हमें सुख दिलाओ ।

टिप्पणी- [२४०] (१) तृद् = भिन्न करना, नाश करना । (२) पनी = नदी । (३) स्यन्त = (स्यन्द् प्रसवणे) वेगपूर्वक जानेवाला, पिघलकर बहनेवाला । [२४१] (१) अ-म = (अ मा = (माने) मापन करना) = अपरिमित, विस्तृत, असीम, (अग् गती) = शक्ति, वेग । [२४२] यहाँ पर रसा, सिन्धु, पुरीपिणी तथा सरयु इन चार नदियों का उल्लेख पाया जाता है । अध्यायवृत्त में भी इन चारों नदियों का स्थान माना जा सकता है, पर यैसी दृष्टा में इन शब्दों का पौगंडिक अर्थ करना पड़ेगा और योगके अनुभवसे निश्चित करना पड़ेगा कि, मानवी देहमें इन प्रवाहोंसे कौन से स्थान दर्शाये जाते हैं । स्थूल सृष्टि में इन नदियों का स्थान निश्चित है- सिन्ध देश में सिन्धु, अयोध्या के समीप सरयु, काश्मीर में पुरीपिणी (परणी) और शायद वायव्य सीमाप्राय में बहनेवाली किसी नदीका नाम रसा हो । अभी तक इस नदीके स्थानका निर्णय नहीं हो सका । इस ग्रन्थ में यह अभिप्राय व्यक्त हुआ है कि, ये वीर सैनिक उपर्युक्त नदियों के रमणीय प्रदेश में ही दिखबहाल करके न रहें, अपितु हमारे समीप आकर हमारी रक्षा करें । [' कुभा ' और ' क्रुमु ' भी नदियाँ हैं वेमा ' वैतरेयालोचनम् ' में (श्ल २३ पर) भट्टाचार्य हितव्रतशर्माजीने लिखा है ।]

(२४३) तम् । वः । शर्धम् । रथानाम् । त्वेषम् । गुणम् । मारुतम् । नव्यसीनाम् ।

अनु । प्र । यन्ति । वृष्टयः ॥ १० ॥

(२४४) शर्धम्ऽशर्धम् । वः । एषाम् । ज्ञातम्ऽज्ञातम् । गुणम्ऽगुणम् । सुऽशस्तिभिः ।

अनु । क्रामेम् । धीतिभिः ॥ ११ ॥

अन्वयः— २४३ तं वः नव्यसीनां रथानां शर्धं त्वेषं मारुतं गुणं अनु वृष्टयः प्र यन्ति ।

२४४ एषां च शर्धं-शर्धं ज्ञातं-ज्ञातं गुणं-गुणं सु-शस्तिभिः धीतिभिः अनु क्रामेम् ।

अर्थ- २४३ (तं) उस (च) तुम्हारे (नव्यसीनां) नये (रथानां शर्धं) रथों के बल के, सैन्य के एवं (त्वेषं) तेजस्वी (मारुतं गुणं) वीर मरुतों के समूह के (अनु) अनुरोध से (वृष्टयः प्र यन्ति) वर्षाएँ, वर्ष से खड़ी जाती हैं ।

२४४ (एषां च) इन तुम्हारे (शर्धं-शर्धं) हर सैन्य के साथ, (ज्ञातं-ज्ञातं) प्रत्येक समुदाय के साथ और (गुणं-गुणं) हर एक सैन्य के दल के साथ (सु-शस्तिभिः) अत्यन्त सराहनीय अनु-शासन के (धीतिभिः) विचारों से युक्त होकर (अनु क्रामेम्) हम अनुक्रम से चलते रहें ।

भाषार्थ- २४३ जिम्हर मरुतों के रूप चले जाते हैं, उधर युद्ध होता है, तथा वर्षा भी हुआ करती है ।

२४४ गणवेश पहनकर दलबल का जैसा अनुशासन हो, वैसे ही अनुक्रम से चलते चले जायें ।

टिप्पणी— [२४४] (१) शर्धः = सेना का छोटा विभाग । (२) ज्ञातः = सेना का उस से किन्हीं अधिक हिस्सा । (३) गुणः = सेना का और भी अधिक दल । यह अशौद्धिगी का अंग है, जिस में इस भौति सेना रहा करती है— गण - सेनाका वह विभाग, जिसमें २७ रथ, २७ हाथी, ८१ घोड़े १३५ पैदलसिपाही रहते हैं । यह देखने-योग्य है कि, गण में कितने मनुष्य पाये जाते हैं । रथ के साथ १ रथी, १ सारथी, १ पार्श्वहारथी, २ अक्षरक्षक, २ पृष्ठरक्षक, ४ मार्शल, मित्रकर ३३ मनुष्य होते हैं । इस के विना एक माण रखने की गाड़ी रहती है, जिसे हॉकनेवाला एक मनुष्य चाहिये; अर्थात् हर रथ के साथ १२ मनुष्य रहते हैं । इस गणवा के अनुसार २७ रथों के साथ २७×१२= ३२४ मनुष्य होते हैं । कमसे कम २७×११= २९७ को होने ही । हाथी के लिए २ घोड़ा, १ महाजघ, ५ साठमार, १ भंगी, १ जल दोनेवाला मित्रकर १० आदमी रहते हैं । २७ हाथियों के लिए २७० मनुष्य कार्य करने हैं । घोड़े का साथ एक वीर (सवार) तथा एक मार्शल ऐसे २ मनुष्य रहते हैं । ८१ घोड़ों के कारण १६२ मनुष्य होते हैं । अब पैदल सिपाहियों की संख्या ३३५ है । सब की गिनती कर देखिए, तो ८९१ मनुष्यसंख्या होती है । ये युद्ध करनेवाले सैनिक हैं, ऐसा समझना उचित है । घोड़ा मरुतों के हर गण में इतने मनुष्य रहते थे । मरुतों की एक पंक्ति में ७ वीर रहते हैं और दोनों ओर के दो पार्श्वरक्षक मित्रकर हर पंक्ति में ९ सैनिक होते हैं । इस तरह का ७ कतारों में ७×७= ४९ मरुत तथा १४ पार्श्वरक्षक कुल मित्रकर ६३ मरुतों का एक दल या छोटासा विभाग होता है । मरुतों का विभाग ७ संख्या से सुचित होता है, हमकिए उनके १४ विभागों में ६३×१४ = ८८२ होते हैं । यह संख्या ऊपर अशौद्धिगी की गणना के अनुसार ही हुई, ८९१ से मेल खाती है । हाँ, केवल ९ का अन्तर है, सायद कहीं पर विशिष्ट अंक कम-ज्यादा माना गया हो । ऐसा हो, तो उसे दूर कर सकते हैं । अर्थात् मरुतों के एक ' गण ' नामक सैन्यविभाग में ८८२ सैनिकों का अन्तर्भाव होगा था, ऐसा जान सकते हैं । ' शर्धं ' तथा ' ज्ञातं ' से कितने सैनिक सम्मिलित होते थे, सो द्वैतवा चाहिये । अनुसन्धानकर्ता विशिष्ट करें कि, क्या ६३ सैनिकों का ' शर्धं, ' (६३×७) = ४४१ सैनिकों का ' ज्ञातं ' एवं ८८२ सैनिकों का ' गण ' ऐसे विभाग माने जा सकते या नहीं । (३) धीतिः = भक्ति, विचार, भंगुलि, प्रसा, पेश, अपमान । (५) अनु+क्रम = एक के पीछे एक पर चलना ।

(२४५) कस्मै । अद्य । सुज्जाताय । रातःहृन्वाय । प्र । ययुः । एना । यामेन । मरुतः
॥ १२ ॥

(२४६) येन । तोकाय । तनयाय । धान्यम् । वीजम् । वहध्वे । अक्षितम् ।
अस्मभ्यम् । तत् । धत्तन । यत् । वः । ईमहे । राधः । विश्वऽआयु । सौमगम् ॥ १३ ॥
(२४७) अति । इयाम् । निदः । तिरः । स्वस्तिऽभिः । हित्वा । अवद्यम् । अरातीः ।
वृष्टी । शम् । योः । आपः । उस्ति । भेषजम् । स्याम । मरुतः । सह ॥ १४ ॥

अन्वयः— २४५ अद्य मरुतः एना यामेन कस्मै रात-हृन्वाय सु-जाताय प्र ययुः ?

२४६ येन तोकाय तनयाय अ-क्षितं धान्यं वीजं वहध्वे, यत् राध वः ईमहे तत् विश्व-आयु
सौमगं अस्मभ्यं धत्तन ।

२४७ (हे मरुतः !) स्वस्तिभि अवद्यं हित्वा अरातीः तिरः निदः अति इयाम्, वृष्टी योः
शं आपः उस्ति भेषजं सह स्याम ।

अर्थ- २४५ (अद्य) आज (मरुतः) वीर मरुत् (एना यामेन) इस रथ में से (कस्मै) भला किस
(रात-हृन्वाय) हाथियाय देनेवाले एवं (सु-जाताय) कुलान मानव की ओर (प्र ययु) चले जा
रहे हैं ?

२४६ (येन) जिससे (तोकाय तनयाय) पुत्रपौत्रों के लिए (अ-क्षितं) न घटनेवाले
(धान्यं वीजं) अनाज तथा बीज (वहध्वे) ढोकर छोटे हो, (यत् राधः) जिस धनके लिए (वः) तुम्हारे
पास हम (ईमहे) आते हैं, (तत्) वह और (विश्व-आयु) दीर्घ जीवन एवं (सौमगं) अच्छा ऐश्वर्य
(अस्मभ्यं धत्तन) हमें दे दो ।

२४७ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (स्वस्तिभिः) हित कारक उपायों द्वारा (अवद्यं हित्वा) दोष
नष्ट करके (अरातीः) शत्रुओं का एवं (तिरः निदः) गुप्त निन्दक का हम (अति इयाम्) पराभव कर
सकें । हमें (वृष्टी) शक्ति, (योः शं) एकतासे उत्पन्न होनेवाला मुख, (आपः) जल तथा (उस्ति भेषजं)
तेजस्वी भोज्य (सह स्याम) एक ही समय मिले ।

भाषार्थ - २४५ प्रश्न है कि, भला आज दिन किस जगह मरुत् पहुँचना चाहते हैं ? (उधर हम भी चलें ।)

२४६ हमे धन, धान्य, ऐश्वर्य तथा बल चाहिए । हमें ये सभी बातें उपलब्ध हों ।

२४७ स्वहित तथा क्षेम हमें मिल जाए । हमारे सभी शत्रु विनष्ट हों । ऐश्वर्यभाव से उत्पन्न होनेवाला
मुख, शक्ति, जल, परिणामकारक भोज्यियाँ हमें मिल जायें ।

टिप्पणी—[२४७] (१) योः = (यु = जोड़ना = एकता) एकतासे । (२) स्वस्ति (सु+अस्ति) =
अच्छी दशा में रहना । (३) अ-राति = अनुदार, शत्रु । (४) निदः = निन्दक, दुश्मन ।

(२४८) सुऽदेवः । समह । असति । सुऽवीरः । नरः । मरुतः । सः । मर्त्यः ।

यम् । त्रायध्वे । स्याम । ते ॥ १५ ॥

(२४९) स्तुहि । भोजान् । स्तुवतः । अस्य । यामनि । रणन् । गावः । न । यवसे ।

यतः । पूर्वान्द्रव्य । सखीन् । अनु । ह्य । गिरा । गृणीहि । कामिनः ॥ १६ ॥

(ऋ० ५५४११-१५)

(२५०) प्र । शर्धाय । मरुताय । स्वऽमानवे । इमाम् । वाचम् । अनज्ज । पर्वतऽच्युते ।

धर्मऽस्तुभे । दिवः । आ । पृष्टयज्वने । धुम्नऽश्रवसे । महि । नृम्णम् । अर्चत ॥ १ ॥

अन्वय.— २४८ (हे) नर मरुत ! य त्रायध्वे सः मर्त्यः सु-देव, स-मह, सु धीर असति, ते स्याम ।

२४९ स्तुवतः अस्य भोजान् यामनि, गायः न यवसे, रणन् स्तुहि, यत पूर्वान्द्रव्य कामिन सखीन् ह्य, गिरा अनु गृणीहि ।

२५० स्व-भानवे पर्वत-च्युते मरुताय शर्धाय इमां वाचं प्र अनज, धर्म-स्तुभे दिवः पृष्ट-यज्वने धुम्न-श्रवसे महि नृम्णे आ अर्चत ।

अर्थ— २४८ हे (नर, मरुतः!) नेता धीर मरुतो! (यं) जिसे (त्रायध्वे) तुम घचाते हो, (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (सु-देव) अन्यन्त तेजस्वी, (स मह) महत्तासे युक्त और (सु-धीरः) अच्छा धीर (असति) होता है। (ते स्याम) हम भी वैसे ही हों।

२४९ 'स्तुवत' अस्य' स्तवन करनेवाले इस भक्त के यक्ष में (भोजान्) भोजन पाने के लिए (यामन्) जाते समय (गाय न यवसे) गाएँ जिस तरह वासुकी और जाती हैं वैसे ही, (रणन्) आनन्द-पूर्वक गरजते हुए जानेवाले इन धीरों की (स्तुहि) प्रशंसा करो, (यत) क्योंकि वे (पूर्वान्द्रव्य) पहले परिचित तथा (कामिन) प्रेमभरे (सखीन्) मित्रों के समान अपने सहायक हैं। उन्हें (ह्य) अपने समीप बुलाओ और (गिरा) अपनी वाणी से उनकी (अनु गृणीहि) सराहना करो।

२५० (स्व-भानवे) स्वयंप्रसाद और (पर्वत-च्युते) पहाड़ों को भी हिलानेवाले (मरुताय शर्धाय) मरुतों के यक्ष के लिए (इमां वाच) इस अपनी वाणी की-कथिता को तुम (प्र अनज) भली भाँति संवारी, अलङ्कृत करो। (धर्म-स्तुभे) तेजस्वी धीरों की स्तुति करनेहारे, (दिवः पृष्ट-यज्वने) दिव्य स्थान से पीछे से आकर यज्ञ करनेवाले और (धुम्न-श्रवसे) तेजस्वी यक्ष पानेवाले धीरोंको (महि नृम्णे) विपुल धन देकर (आ अर्चत) उनकी पूजा करो।

भावार्थ— २४८ जिन्हें धीरों का सरक्षण प्राप्त होवे, वे बड़े तेजस्वी, महान तथा धीर होते हैं। हम उसी प्रकार बने।

२४९ भक्त के यक्षों में जात समय इन धीरों को बड़ा भारी हर्ष होता है। चूँकि ये स्व का हित चाहते हैं, इसलिए इनकी स्तुति सब की करनी चाहिए।

२५० अलङ्कारपूर्ण काव्य धीरों के वर्णन पर बनाओ और उन्हें धन देकर उनका सरकार करो।

टिप्पणी— [२४९] (१) भोज = युज-पालनाभ्यवहारयो = भोग प्राप्त करनेहारा। (२) यामन् = पूजा, यज्ञ, गति, हलचक्र, चढाई, हमला। (३) अनुभृग् प्रोत्साहन देना, अनुमति करना, सराहना करना, उमंग पडाना।

[२५०] (१) यज् = देना, यज्ञ करना, सहायता प्रदान करना, पूजा-संगति-दानप्रभक्त कार्य करता। (२) पृष्ट = पीछे, पीछे से। (३) धर्म = (धृ = सख्यदीप्त्योः) प्रकृतमान, तेजस्वी, उष्ण। (४) पृष्ट यज्या = पीछे से अर्थात् किसी को भी निर्दिष्ट न हो, इस दग से सहायता देनेवाला। (५) नृम्णं = (नृ-मन) = मानवी मन, जो मानवी मन को बरबस अपनी ओर खींच ले ऐसा धन।

(२५१) प्र । वः । मरुतः । तविषाः । उदन्यवः । वयःऽवृधः । अधऽयुजः । परिऽजयः ।
 सम् । विऽद्युता । दधति । वाशति । त्रितः । खरन्ति । आपः । अवना । परिऽजयः ॥२॥
 (२५२) विद्युत्-महसः । नरः । अश्म-दिघवः । वात-त्विषः । मरुतः । पर्वत-च्युतः ।
 अद्-दुऽया । चित् । मुहुः । आ । हादुनि-वृतः । स्तनयत्-अमाः । रभसाः । उत्-
 ओजसः ॥ ३ ॥

अन्वयः— २५१ (हे) मरुतः ! वः तविषाः उदन्यवः वयो-वृधः अश्व युजः प्र परि-जय, त्रितः विद्युता
 सं दधति वाशति परि-जय, आपः अघना खरन्ति ।

२५२ विद्युत्-महसः नरः अश्म दिघवः वात त्विषः पर्वत-च्युतः हादुनि-वृतः स्तनयत्-अमाः
 रभसाः उत्-ओजसः मरुतः मुहुः चित् आ अद्-दुऽया ।

अर्थ— २५१ हे (मरुतः!) वीर मरुतो ! (वः तविषा) तुम्हारे यलवान्, (उदन्य-वय) प्रजाके लिए
 जल देनेवाले, (वयो-वृध) अन्नकी समृद्धि करनेवाले तथा (अश्व-युजः) रथोंमें घोड़े जोड़नेवाले वीर
 जय (प्र परि-जयः) बहुत वेगसे चतुर्दिक् घूमने लगते हैं और तुम्हारा (त्रि-तः) तीनों ओर फैलनेवाला
 संघ (विद्युता सं दधति) तेजस्वी चमकते हुए होता है और (वाशति) शत्रुको चुनौती देता है,
 तय (परि-जयः) चारों ओर विजय देनेवाला (आपः) जीवन, जल (अवना) पृथ्वी पर (स्वरन्ति) गर्जना
 करते हुए संचार करता है ।

२५२ (विद्युत्-महसः) बिजली के समान यलवान्, (नरः) नेता, (अश्म दिघवः) इधियातोंके
 चमकने से तेजस्वी, (वात-त्विषः) वायु के समान गतिशील एवं तेजस्वी, (पर्वत च्युतः) पहाड़ों को
 हिलानेवाले, (हादुनि-वृतः) चमकते हुए, (स्तनयत्-अमाः) घोषणा करने की शक्तिके युक्त, (रभसाः)
 वेगवान्, (उत्-ओजसः) अच्छे यलवाली वे (मरुतः) वीर मरुत् (मुहुः चित्) यारंवार (आ अद्-दुऽया)
 चारों ओर जल देना चाहते हैं— शत्रुको अपना सच्चा तेज दिखाते हैं ।

भाषार्थ— २५१ बलिष्ठ वीर सैनिक प्रजा के लिए जल की व्यवस्था करते हैं, अन्न को वृद्धिगत करते हैं, रथों में
 घोड़े जोड़कर चारों ओर घूमकर समूची हालत को दूर ही देख लेते हैं और विजयी बन जाते हैं । बड़े अस्त्रे प्रसंग
 में अपने इधियात समीप रख लेते हैं और अश्वतथ विजयपूर्ण वायुमंडल का सृजन करते हैं, तथा भूमंडल पर नहरों से
 वा अश्व किन्हीं ढपारों से जल को चहुँ ओर पहुँचा देते हैं ।

२५२ तेजस्वी नेता दसदशों से सुमरिष्ठ बलका पहाड़ों तक को त्रिकुणित का देनेकी अपनी क्षमता को
 बजाते हैं और दुश्मन को आह्वान देकर अवश्य ही उन्हें अपना बल दर्शाते हैं ।

[संघविषयक अर्थ] बिजली चमक रही है, (अश्म) ओले गिर रहे हैं, भारी धूफान हो रहा है, दामिनी
 की दहाड़ सुनाई दे रही है, वायुवेग से जान पड़ता है कि, मानों पहाड़ टूट जायेंगे । इसके बाद भूमलाधार वर्षा हो
 चहुँ ओर जल ही जल दीख पड़ता है ।

टिप्पणी— [२५१] (१) उदन्यु = (उद्व + यु = उद्व + योजना) व्यासा, जल देनेवाला, पानी से
 युक्त होनेवाला । (२) वयस् = अन्न, शरीरप्रवृत्ति, यल, अश्वत्थ । (३) त्रि-त = (त्रि + ताप् = सन्तान-
 पालनयोः) तीनों ओर पंक्ति में जलनेवाला (त्रिपु स्थानेषु तावमान-सायनभाष्य) (४) तविष = (त्रु गति-वृद्धि-
 हिंसायं) बल, शक्ति, सामर्थ्य । (५) परि-जय (त्रि जयं) चारों दिशाओं में विजयी, चतुर्दिक् गमन, चहुँ ओर
 सफलता । (६) आपू = (आपू स्थासी) = स्थापक, आकाश, जल, जीवन ।

(२५३) वि । अकृन् । रुद्राः । वि । अहानि । शिक्वसः । वि । अन्तरिक्षम् । वि । रजांसि ।

धृतयः ।

वि । यत् । अजान् । अजथ । नावः । इम् । यथा । वि । दुःशानि । मरुतः ।

न । अह । रिष्यथ ॥ ४ ॥

(२५४) तत् । वीर्यम् । वः । मरुतः । महिःस्त्वन्म् । दीर्घम् । ततान् । सूर्यः । न । योजनम् ।

एताः । न । यामि । अश्वीतःशोचिपः । अनश्वःऽदाम् । यत् । नि । अयातन ।

गिरिम् ॥ ५ ॥

अन्वयः— २५३ (हे) धृतयः शिक्वसः रुद्राः मरुतः । यत् अकृन् वि, अहानि वि, अन्तरिक्षं वि, रजांसि वि अजथ, यथा नाप ई अजान् वि, दुर्गाणि वि, न अह रिष्यथ ।

२५४ (हे) मरुत । य. तन् योजनं वीर्यं, सूर्यः न, दीर्घं महित्वनं ततान, यत् यामि, एताः न, अ-श्वीत-शोचिपः अन्-अश्व-दां गिरिं नि अयातन ।

अर्थ— २५३ हे (धृतयः) शत्रुओं को हिलानेवाले, (शिक्वसः) सामर्थ्ययुक्त एवं (रुद्राः मरुतः!) दुश्मनों को रलानेवाले घोर मरुतो! (यत्) जब (अकृन् वि) रात्रियों में (अहानि वि) दिनों में (अन्तरिक्षं वि) अन्तरिक्षमें से या (रजांसि वि अजथ) धूलिमय प्रदेशमेंसे जाते हो, उस समय (यथा नापः ई) जैसे नोकार्ड समुन्द्रमें से जाती हैं, वैसे ही तुम (अजान् वि) विभिन्न प्रदेशों में से तथा (दुर्गाणि वि) वीहड़ स्थानोंमें से भी जाते हो, तब तुम (न अह रिष्यथ) विलकुल थक न जाओ, बिना थकावट के यह सब कुछ हो जाय ऐसा करो ।

२५४ हे (मरुतः!) धीर मरुतो! (यः तन्) तुम्हारी वे (योजनं) आयोजनाएँ तथा (वीर्यं) शक्ति (सूर्यः न) सूर्ययत् (दीर्घं महित्वनं) अति विस्तृत (ततान) फैली हुई हैं. (यत्) क्योंकि तुम (यामि) शत्रु पर किए जानेवाले आक्रमण के समय (एताः न) कृष्णसारों के समान वेगवान घनफर (अ-श्वीत-शोचिपः) एकड़ने में असंभय प्रभाव से युक्त हो और (अन्-अश्व-दां) जहाँ पर घोड़े पहुँच नहीं सकते, ऐसे (गिरिं) पर्वतपर भी (नि अयातन) हमले चढ़ाते हो ।

भावार्थ— २५३ जो बलिष्ठ घोर दोते हैं, वे रात को, दिन में, अन्तरिक्ष में से या रेगिरेतानमें से चले जाते हैं । वे समस्त भूमि पर से या वीहड़ पहाड़ी जगह में से बराबर आगे बढ़ते ही जाते हैं, पर कभी थक नहीं जाते । (इस अति शत्रुत्व पर लगातार हमले काके वे विजयी बन आते हैं ।)

२५४ वीरों की बनाई हुई युद्धकी आयोजनाएँ तथा उनकी संगठनशक्ति सधमुच बधी अन्ही है । दुश्मनों पर धावा करते वक्त वे जैसे समस्त भूमि पर आक्रमण करते हैं, उसी प्रकार वे शत्रु के दुर्ग पर भी चढ़ाई करनेमें हिच-किचाते नहीं ।

टिप्पणी— [२५३] (१) शिक्वसः = (शक् शब्दी) कुशल, सुखिमान, सामर्थ्ययुक्त । शिक्व = कुशल, सुखि-मान, समर्थ । (२) अजथ = खेप, समस्त भूमि ।

[२५४] (१) योजनं = जोड़नेवाला, इकट्ठा होनेवाला, व्यवस्था, प्रयत्न, आयोजना । (२) अन्-अश्व-दां (गिरिः) जहाँ पर घोड़े पग नहीं भा देते, ऐसा स्थान, पहाड़ी गड, दुर्गम पर्वत । (३) गिरिः = पर्वत, पारंगतिय दुर्ग, राणी ।

(२५५) अभ्राजि । शर्धः । मरुतः । यत् । अर्णसम् । मोपथ । वृक्षम् । कपनाइव । वेधसः ।
अध । स्म । नः । अरमतिम् । सज्जोपसः । चक्षुःइव । यन्तम् । अर्तु । नेपथ ।
सुजगम् ॥ ६ ॥

(२५६) न । सः । जीयते । मरुतः । न । हन्यते । न । ज्ञेधति । न । व्यथते । न । रिप्यति ।
न । अस्य । रायः । उप । दस्यन्ति । न । ऊतयः । ऋषिम् । वा । यम् । राजानम् ।
घा । सुर्वदथ ॥ ७ ॥

अन्ययः— २५५ (हे) वेधसः मरुतः ! शर्धः अभ्राजि, यत् कपनाइव अर्णसं वृक्षं मोपथ, अध स्म (हे) स-जोपसः ! चक्षुःइव यन्तं सु-गं अ-रमति नः अनु नेपथ ।

२५६ (हे) मरुतः ! यं ऋषिं वा राजानं वा सुसूदथ सः न जीयते, न हन्यते, न ज्ञेधति, न व्यथते, न रिप्यति, अस्य रायः न उप दस्यन्ति, ऊतयः न ।

अर्थ— २५५ हे (वेधसः) कर्तृत्ववान (मरुतः !) वीर मरुतो ! तुम्हारा (शर्धः) बल (अभ्राजि) घोट-
मान हो चुका है, (यत् कपनाइव) क्योंकि प्रबल आँधी के समान (अर्णसं वृक्षं) सागधानी पेड़ों को
भी तुम (मोपथ) तोड़मरोड़ देते हो । (अध स्म) और हे (स-जोपसः !) हर्षित मनवाले वीरो ! (चक्षुःइव)
आँख जैसे (यन्तं) जानेवाले को (सु-गं) अच्छा मार्ग दर्शाती है, वैसे ही (अ-रमति नः) बिना आराम
लिए कार्य करनेवाले हमें (अनु नेपथ) अनुकूल ढंगसे सीधी राहपर से ले चलो ।

२५६ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (यं ऋषिं वा) जिस ऋषि को या (राजानं वा) जिस राजा
को तुम अच्छे कार्य में (सुसूदथ) प्रेरित करते हो, (सः न जीयते) वह विजित नहीं बनता है, (न
हन्यते) उसकी हत्या नहीं होती है, (न ज्ञेधति) नष्ट नहीं होता है, (न व्यथते) दुःखी नहीं बनता है
और (न रिप्यति) क्षीण भी नहीं होता है । (अस्य रायः) इसके धन (न उप दस्यन्ति) नष्ट नहीं होते
हैं तथा (ऊतयः) इनकी संरक्षक शक्तियाँ भी नहीं घटती ।

भावार्थ— २५५ कर्तृत्ववाली वीरों का तेज चमकता ही रहता है । जिस प्रकार प्रबल आँधी घटे पेड़ों को जड़मूल
से टखाइ फेंक देती है, वैसे ही ये वीर शत्रुओं को हिलाकर गिरा देते हैं । वेप्र जैसे यात्री को सरल सड़क पर से ले
चलता है, ठीक उसी प्रकार ये वीर हम जैसे प्रबल पुरुषार्थी लोगों को सीधी राह से प्रगति की ओर ले चलें ।

२५६ जिसे वीरों की सहायता मिलती है, उसकी प्रगति सब प्रकार से होती है ।

टिप्पणी— [२५५] (१) अर्णस् = गतिमान, चंचल, जिसमें अलबली मची हुई हो ऐसा प्रवाह, जल, सागवान,
समुद्र । (२) अ-रमति = आराम न लेनेवाला, चारों ओर जानेवाला, आज्ञाधारक, रममाण न होनेवाला । (३) सुप् = (सुप् स्रग्ने मुप्यति, मोपति) क्षति करना, वध करना, तोड़ना मरोड़ना । (४) कपना = कपन, हिलाने-
वाला, शंसावात, शक्ति, क्रुमि । (५) वेधस = (वि घा) = कर्ता, कर्तृत्ववान, विघाता ।

[२५६] (१) सूद = प्रेरणा देना, पकाना, फेंकना, उँदेलना, पीटा देना, वध करना । (२) रिप्य =
(रप्) क्षीण होना ।

(२५७) नियुत्वंन्तः । ग्रामजितः । यथा । नरः । अर्यमणः । न । मरुतः । क्वचिन्धिनः ।
पिन्वन्ति । उत्सम् । यत् । इनासः । अस्वरन् । वि । उन्दन्ति । पृथिवीम् । मध्वः ।
अन्धसा ॥ ८ ॥

(२५८) प्रवत्वती । इयम् । पृथिवी । मरुद्भ्यः । प्रवत्वती । घौः । भवति । प्रयत्द्भ्यः ।
प्रवत्वती । पृथ्याः । अन्तरिक्ष्याः । प्रवत्वन्तः । पर्वताः । जीरदानवः ॥९॥

अन्वय — २५७ यथा नियुत्वंन्तः ग्राम-जित नर क्वचिन्धिन मरुत, अर्यमण न, यत् इनास अस्वरन्
उत्स पिन्वन्ति पृथिवीं मध्य अन्धसा वि उन्दन्ति ।

२५८ (हे) जीर-दानव ! इय पृथिवी मरुद्भ्य प्रवत्-वती, घो प्रयद्भ्य प्रवत्-वती
भवति अन्तरिक्ष्या पृथ्या प्रवत् घती, पर्वता प्रवत्-वन्त ।

अर्थ- २५७ (यथा) जैसे (नियुत्वंन्त) छोड़े समीप रखनेवाले, (ग्राम-जित) दुश्मनोंके गाँव जीतने-
वाले, (नर) नेता (क्वचिन्धिन) समीप जल रखनेवाले (मरुत) घोर मरुत् (अर्यमण, न) अर्यमाने
समान (यत् इनास) जव वेगसे जाते हैं तव (अस्वरन्) शब्द करते हैं, (उत्स पिन्वन्ति) जलकुण्डों
को परिपूर्ण बना रखते हैं और (पृथिवी) भूमि पर (मध्व) मिठास भरे (अन्धसा) अन्न की (वि
उन्दन्ति) विशेष समृद्धि करते हैं ।

२५८ हे (जीरदानव !) शीघ्र विजयी बननेवाले वीरो ! (इयं पृथिवी) यह भूमि (मरुद्भ्य)
घोर मरुतों के लिए (प्रवत् वती) सरल मार्गोंसे युक्त बन जाती है, (घौ) शुलोक भी (प्रयद्भ्य) वेग
पूर्वक जानेवाले इन वीरों के लिए (प्रवत् वती) आसानीसे जानियोग्य (भवति) होता है, (अन्तरिक्ष्या
पृथ्या) अन्तरिक्ष की सड़क भी उनसे लिए (प्रवत् वती) सुगम बनती है और (पर्वता) पहाड़
भी (प्रवत् वत) उनके लिए सरल पथवत् बने दीख पड़ते हैं ।

भावार्थ- २५७ बुद्धसवार वीर सशुभो के ग्राम जीत लेते हैं, तथा वेगपूर्वक दुश्मनों पर धावा करते हैं । उस समय
वे वही भारी घोषणा करते हैं और लड़कुण्ड पानी से भरकर भूमिजल के अपुरिमामय अन्नजल की समृद्धि की वस्तु
विपुलता का देते हैं ।

२५८ वीरों के लिए पृथ्वी, पर्वत, अन्तरिक्ष एवं आकाशपथ सभी सुसाध्य एवं सुगम प्रतीत होते हैं ।
(वीरों के लिए कोई भी जगह बीहद या दुर्गम नहीं जान पड़ती है ।)

टिप्पणी- [२५७] (१) नियुत् - छोड़ा, परि । (२) अन्धस् = अन्न (अन्-धस्) प्राण का धारण करने-
वाला अन्न । (३) क्वचिन्धन् = लड़कुण्ड या पानी की बोतलें (Water-bottles) समीप रखनेवाले ।

[२५८] (१) प्रयत् = सुगम मार्ग, समतल राह, ऊँचाई, बाल ।

(२५९) यत् । मरुतः । सऽभरसः । स्वऽनरः । सूर्ये । उत्सृष्टे । मर्दथ । दिवः । नरः ।
न । वः । अश्वः । श्रथयन्त । अहं । सिंसतः । सद्यः । अस्य । अध्वनः । पारम् ।
अश्रुथ ॥१०॥

(२६०) अंसेपु । वः । ऋषयः । पत्सु । खादयः । वक्षःसु । रुक्माः । मरुतः । रथे । शुभः ।
अग्निऽभ्राजसः । विद्युतः । गभस्त्वोः । शिप्राः । शीर्षसु । विस्तताः । हिरण्ययीः ॥११॥

(२६१) तम् । नाकम् । अर्यः । अगृभीतऽशोचिपम् । रुश्रत् । पिप्पलम् । मरुतः । वि । धुनुथ ।
सम् । अच्यन्त । वृजना । अतिव्यपन्त । यत् । स्वरन्ति । घोषम् । विस्ततम् ।
ऋतुऽयवः ॥१२॥

अन्वयः— २५९ (हे) मरुतः ! स-भरसः स्वर-नरः सूर्ये उदिते मर्दथ, (हे) दिव नरः ! यत् वः
सिंसत. अश्वः न अह श्रथयन्त, सद्य अस्य अध्वन पारं अश्रुथ । २६० (हे) रथे शुभः मरुतः !
वः अंसेपु ऋषयः, पत्सु खादयः, वक्षःसु रुक्माः, गभस्त्वोः अग्नि-भ्राजसः विद्युतः, शीर्षसु हिरण्ययीः
वितताः शिप्राः । २६१ (हे) अर्यः मरुतः ! तं अ-गृभीत शोचिपं नाकं दशत् पिप्पलं वि. धुनुथ,
वृजना सं अच्यन्त अतिव्यपन्त, यत् ऋत यवः विततं घोषं स्वरन्ति ।

अर्थ- २५९ हे (मरुत !) धीर मरुतो ' (स भरसः) समान रूपसं कार्यका योद्ध उठानेवाले, मानों (स्वर-
नरः) स्वर्गके नेता तुम (सूर्ये उदिते) सूर्यके उदय होनेपर (मर्दथ) हर्षित होते हो । हे (दिव. नरः !)
तेजस्वी नेता एवं वीरो ! (यत्) जतरु (वः) सिंसतः अश्वः) तुम्हारे दौड़नेवाले घोड़े (न अह श्रथयन्त)
तनिरु भी नहीं थक गये हैं, तभी तक (सद्यः) तुरन्तही तुम (अस्य अध्वनः पारं) इस मार्ग के अन्त
(अश्रुथ) पहुँच जाओ । २६० हे (रथे शुभः मरुतः !) रथोंमें सुहानेवाले धीर मरुतो ! (वः अंसेपु)
तुम्हारे कंधोंपर (ऋषयः) भाले बिराजमान हैं, (पत्सु खादयः) पैरों में कटे, (वक्षःसु रुक्माः) उरोभा-
गपे स्वर्णमुद्राओंके हार, (गभस्त्वोः) भुजाओं पर (अग्नि-भ्राजसः विद्युतः) अग्निचत् चमकाले वज्र और
(शीर्षसु) माथे पर (हिरण्ययीः वितताः शिप्राः) सुवर्णके भव्य शिरस्त्राण रते हुए हैं । २६१ हे (अर्यः
मरुत !) वृजनीय धीर मरुतो ! (तं अ-गृभीत-शोचिपं) उस अप्रतिहत तेजस्वी (नाकं) आकाशमेंसे (दशत्)
तेजस्वी (पिप्पलं) जलको (वि धुनुथ) विशेष हिलाओ, चर्पा करो । उसके लिए तुम (वृजना) अपने दलों
का (सं अच्यन्त) संगठन करके अपने (अतिव्यपन्त) तेज बढ़ाओ; (यत्) क्योंकि (ऋत-यवः) पानी
चाहनेवाले लोग (विततं) विस्तृत (घोषं स्वरन्ति) घोषणा करके कहते हैं कि, हमें जल चाहिए ।

भाषार्थ- २५९ सभी कामों का भार धीर सैनिक सम भावसे बराबर बँट कर उठाते हैं । दिनका प्रारम्भ होने पर
(अर्थात् काम शुरु करना सुगम होता है, इसलिए) ये आनन्दित होते हैं । ऐसे वस्त्राही वीर घोड़ोंके थक जानेके पहले ही
अपने गन्तव्यस्थान पर पहुँच जायें । २६० इस मंत्र में मरुतों के जिस बहनाये का बखान किया है, वह (Military
uniform) ही है । २६१ अपने दल का संगठन करके तेजस्विता बढ़ाओ । चर्पाका जल इकट्ठा करके सबको वह बँट
दो, क्योंकि जनता जल प्यास मात्रा में पाने के लिए अतीव कालापित है ।

टिप्पणी- [२५९] (१) भर = भार, बोझ, आकृति, समूह, दोनेवाला । स-भरस् = सम भाव से कारभार
उठानेवाला । [यत् न श्रथयन्त, सद्यः अध्वन. पारं अश्रुथ = जब लौ अपने अवयव थक नहीं जाते, तभी तक मानव
अपने आदर्श का ध्येयको पहुँचनेका प्रयत्न करें ।] [२६०] (१) हिरण्ययीः वितताः शिप्रा = सुवर्णकी घेल पत्तियों
के किनारवाले साके । [२६१] (१) ऋत-यु = यज्ञ करने की इच्छा करनेवाला, सत्यकी-जलकी चाह रखनेवाला ।
(२) पिप्पल = पानी, पीजल का पेड़, इन्द्रियभोग । (३) वितत = विस्तृत, सिस्र, बिरल, फैला हुआ ।

(२६२) युष्माद्दत्तस्य । मरुतः । विञ्चेतसः । रायः । स्याम । रथ्यः । वर्धस्वतः ।
 न । यः । युच्छति । तिप्यः । यथा । दिवः । अस्मे इति । रन्त । मरुतः । सहस्रिणम् ॥१३॥
 (२६३) युष्म । रुषिम् । मरुतः । स्पार्हवीरम् । युयम् । ऋषिम् । अत्रथ । सामंस्विप्रम् ।
 युयम् । अर्वन्तम् । भरताय । वाजम् । युयम् । धृत्य । राजानम् । श्रुष्टिमन्तम् ॥१४॥
 (२६४) तत् । वः । यामि । द्रविणम् । सद्यःऽऊतयः । येन । स्वः । न । ततनाम । नृन् । अभि ।
 इदम् । सु । मे । मरुतः । ह्येत । वर्चः । यस्य । तरेम । तरसा । शतम् । हिमाः ॥१५॥

अन्वयः— २६२ (हे) वि-चेतसः मरुतः ! युष्मा-दत्तस्य घयस्-वतः रायः रथ्यः स्याम, (हे) मरुतः !
 अस्मे यः, दिवः तिप्यः यथा, न युच्छति सहस्रिणं रन्त । २६३ (हे) मरुतः ! यूयं स्पार्ह-वीरं रथि,
 यूयं साम-विप्रं ऋषिं अत्रथ, यूयं भरताय अर्वन्तं वाजं, यूयं राजानं श्रुष्टि-मन्तं धृत्य । २६४ (हे) सद्य-
 ऊतयः ! वः तत् द्रविणं यामि, येन नृन् स्वः न अभि ततनाम, (हे) मरुतः ! इदं मे सु-यचः ह्येत, यस्य
 तरसा शतं हिमाः तरेम ।

अर्थ— २६२ हे (वि-चेतसः मरुतः !) विशेष धार्मी धीर मरुतो ! (युष्मा-दत्तस्य) तुम्हारे विये हुए
 (घयस्-वतः) अन्नसे युक्त होकर (रायः) ऐश्वर्य के (रथ्यः) रथ भरके जानेवाले हम (स्याम) हैं। हे
 (मरुतः !) धीर मरुतो ! (अस्मे) हमें (यः) यह (दिवः तिप्यः यथा) आकाश में विद्यमान नक्षत्र के
 समान (न युच्छति) न नष्ट होनेवाला (सहस्रिणं) हजारों किस्म का धन देकर (रन्त) संतुष्ट करो ।
 २६३ हे (मरुतः !) धीर मरुतो ! (यूयं) तुम (स्पार्ह-वीरं) स्पृहणीय वीरों से युक्त (रथिं) धन
 का संरक्षण करते हो; (यूयं साम-विप्रं) तुम शांतिप्रधान या सामगायक विद्वान (ऋषिं अत्रथ) ऋषि
 का रक्षण करते हो; (यूयं) तुम (भरताय) जनता का भरणपोषण करनेवाले के लिए (अर्वन्तं वाजं)
 घोड़े तथा अन्न देते हो और (यूयं) तुम (राजानं) नरेश को (श्रुष्टि-मन्तं) वैभवयुक्त करके उसे
 (धृत्य) धारित एवं पुष्ट करते हो ।

२६४ हे (सद्य-ऊतयः !) तुरन्त संरक्षण करनेवाले धीरो ! (वः तत्) तुम्हारे उस (द्रविणं
 यामि) शय्य की हम इच्छा करते हैं। (येन) जिससे हम (नृन्) सभी लोगों को (स्वः न) प्रकाश के
 समान (अभि ततनाम) दान दे सकें। हे (मरुतः !) धीर मरुतो ! (इदं मे सु-यचः) यह मेरा अच्छा ध्वज
 (ह्येत) स्थापित कर लो; (यस्य तरसा) जिसके बलसे हम (शतं हिमाः) सौ हेमन्तकतु, सौ वर्ष
 (तरेम) दुःखों से तरकर पार पहुँच सकें, जीवित रह सकें ।

भावार्थ— २६२ सहस्रों प्रकारका धन और अन्न हमें प्राप्त हो। वह धन आकाशके नक्षत्रकी न्याईं अक्षय एवं अटल रहे।
 २६३ धीर हुए शूरवीरयुक्त धन का वितरण करके ज्ञानी वरवश का पोषण करके प्रजापालनतरवार भूपाक
 का पालनपोषण एवं संवर्धन करते हैं ।

२६४ हे संरक्षणकर्ता धीरो ! हमें अशुभ धन दो चाकि हम उसे सब लोगों में बाँट दें। मैं अपना यह
 ध्वज दे रहा हूँ। इसी भाँति करते हम सौ वर्षों तक दुःख हटाकर जीवनयात्रा वितायें ।

टिप्पणी— [२६३] (१) श्रुष्टि = सुननेवाला, सहायता, वर, वैभव, सुख ।

[२६४] (१) स्वर = स्वर्ग, जल, सूर्यकिरण, प्रकाश । (२) ह्येत (गतिकान्तयोः) = गति करना,
 हटा करना । (३) यामि (वाचे) = याचना करता हूँ, चाहता हूँ । (४) स्वः न = (स्वरं न, स्वर्गं) = सूर्यप्रकाश-
 नाद, जैसे सूर्य अपने किरणों को समान रूप से बाँट देता है वैसे । [शतं हिमाः तरेम = पर्येव शरदः शतम् ।
 जीवेम शरदः शतम् ॥ (वा० यज्ञ० ३६/२७)]

(क्र० ५।५।१-१०)

(२६५) प्रऽयज्यवः । मरुतः । भ्राजत्ऽऋषयः । वृहत् । वयः । दुधिरे । रुक्मऽवक्षसः ।
 ईयन्ते । अश्वैः । सुऽयमेभिः । आशुभिः । शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥१॥

(२६६) स्रयम् । दधिध्वे । तविपीम् । यथा । विद । वृहत् । महान्तः । उर्विया । वि । राजथ ।
 उत । अन्तरिक्षम् । ममिरे । वि । ओजसा । शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥२॥

अन्वयः- २६५ प्र-यज्यव भ्राजत्-ऋषय रुक्म-वक्षस मरुत वृहत् वयः दुधिरे, सु यमेभिः आशुभिः
 अश्वैः ईयन्ते, रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत ।

२६६ यथा विद म्ययं तविपीं दधिध्वे, महान्तः उर्विया वृहत् वि राजथ, उत ओजसा
 अन्तरिक्षे वि ममिरे, रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत ।

अर्थ- २६५ (प्र-यज्यवः) विशेष यजनीय कर्म करनेहारि (भ्राजत्-ऋषय) तेजस्वी दधियारों से युक्त
 तथा (रुक्म-वक्षसः मरुत-) वक्ष-स्थलपर स्वर्णहार धारण करनेवाले वीर मरुत, (वृहत् वयः दुधिरे) बड़ा
 भारी बल धारण करते हैं । (सु-यमेभि) भली भोंति नियमित होनेवाले, (आशुभिः) वेगवान (अश्वैः)
 घोड़ों के साथ, ये (ईयन्ते) चले जाते हैं । उनके (रथाः) रथ (शुभं यातां) लोककल्याण के लिए
 जाते समय उन्हीं के (अनु अवृत्सत) पीछे चले जाते हैं ।

२६६ (यथा) चूँकि तुम (विद) बहुत ज्ञान प्राप्त करते हो और (स्रयं तविपीं दधिध्वे)
 स्वयमेव विशेष बल भी धारण करते हो, तुम (महान्त) बड़ हो और (उर्विया) मातृभूमि का
 हिल करने की लालसा से (वृहत् वि राजथ) विशेष रूपसे सुशोभित होते हो । (उत) और (ओजसा)
 अपने बल से, (अन्तरिक्षे वि ममिरे) अन्तरिक्षको भी ध्यास कर डालते हो, (रथाः) इनके रथ (शुभं
 यातां) लोककल्याण के लिए जाते समय, (अनु अवृत्सत) इन्हीं का अनुसरण करते हैं ।

भावार्थ- २६५ अच्छे कर्म करनेवाले, तेजस्वी भावुध धारण करनेवाले, भावपूर्णों से सुशोभित वीर अपने बल को
 अलाधिक रूप से बढ़ाते हैं और अपने अश्वोंपर आरुढ़ होकर जनता का हिल करने के लिए सहस्रद्वार धावा करना
 शुरू करते हैं ।

२६६ वीर पुरुष ज्ञान प्राप्त करके अपना बल बढ़ाकर मातृभूमि का यश बढ़ाने के लिए प्रयास करते हैं ।
 अपने इन अद्भ्य अश्वबलियों के फलस्वरूप वे अत्यन्त सुशोभित दीख पड़ते हैं और अपनी ऊँची उडानों से समुदा
 अन्तरिक्ष भी ध्यास कर डालते हैं ।

टिप्पणी- [२६५] (१) वयस्= अन्न, बल, सामर्थ्य, तारक्य ।

[२६६] (१) उर्व= (हिंसावाम्) घब कराना । (उर्वी)= भूमि, मातृभूमि । (उर्विया)= मातृभूमि के
 वाते में शुभ बुद्धि, श्रेष्ठविषयक विस्तृत भावना । (२) मा (माने)= गिनना, अन्वभूत हो जाना, ध्यास होना ।

(२६७) साकम् । जाताः । सुऽभ्यः । साकम् । उक्षिताः ।
 श्रिये । चित् । आ । प्रऽत्तरम् । ववृधुः । नरः ।
 विऽरोकिणः । सूर्यस्यऽइव । रश्मयः ।
 शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥३॥

(२६८) आऽभूषण्यम् । वः । मरुतः । महिऽत्वनम् ।
 दिदृक्षेण्यम् । सूर्यस्यऽइव । चक्ष्णम् ।
 उतो इति । अस्मान् । अमृतऽस्ये । दघातन् ।
 शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥ ४ ॥

अन्वयः— २६७ साकं जाताः सु-भ्यः साकं उक्षिताः नरः श्रिये चित् प्र-तरं आ ववृधुः, सूर्यस्यइव रश्मयः वि-रोकिणः, रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत ।

२६८ (हे) मरुतः ! वः महित्वनं आ-भूषण्यं सूर्यस्यइव चक्ष्णं दिदृक्षेण्यं, उत अस्मान् अ-मृतस्ये दघातन्, रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत ।

अर्थ- २६७ जो (साकं जाताः) एक ही समय प्रकट होनेवाले, (सु-भ्यः) अच्छी प्रकार उत्पन्न हुए, (साकं उक्षिता) संघ करके चलसंपन्न होनेवाले (नरः) नेता थे वीर, (श्रिये चित्) वैभव पाने के लिए द्वा (प्र तरं) अधिकाधिक (आ ववृधुः) बढ़ते हैं, ये (सूर्यस्यइव रश्मयः) सूर्यकिरणों के समान (वि-रोकिणः) विशेष तेजस्वी हैं । (रथा शुभं ...) [मंत्र २६५ वाँ देखिए ।]

२६८ हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (वः महित्वनं) तुम्हारा बड़प्पन (आ-भूषण्यं) सभी प्रकार से शोभायमान ह और वह (सूर्यस्यइव चक्ष्णं) सूर्य के दृश्य के समान (दिदृक्षेण्यं) दर्शनीय है । (उत) इसीलिए तुम (अस्मान् अ-मृतस्ये दघातन्) हमें अमरण को पहुँचाओ । (रथाः शुभं यातां०) [मंत्र २६५ वाँ देखिए,]

भावार्थ- २६७ ये वीर वायुदलप आह्वान करते समय एक ही समय प्रकट होते हैं, अपना उत्तम जीवन बिताने हैं, संघ बनाकर अपने बल की वृद्धि करते हैं और सदैव बल के लिए ही सचेष्ट रहा काने हैं । ये सूर्यकिरणवत् तेजस्वी वन प्रकाशमान होते हैं ।

२६८ हे वीरो ! तुम्हारा बड़प्पन सचमुच वर्तनीय है । तुम सूर्यवत् तेजस्वी हो, इसीलिए हमें अ-मृतोंमें स्थान दो ।

टिप्पणी- [२६७] (१) वि-रोकिन् = (रोकि = तेजस्विता) = विशेष तेजस्वी । (२) सु-भ्यः = (सु+भू) अच्छी तरह उत्पन्न मरणपर से चलनेवाला । सुभ्यन् = पमकीला, तेजस्वी । (३) उश् = सीचना, घलपान होना । (४) जातः = प्रकट, पैदा हुआ ।

[२६८] (१) चक्ष्णं = रूप, तथा दर्शन, दृश्य ।

(२६९) उत् । ईरयथ । मरुतः । समुद्रतः । युयम् । वृष्टिम् । वर्षयथ । पुरीषिणः ।
 न । वः । दक्षाः । उप । दस्यन्ति । धेनवः । शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥५॥
 (२७०) यत् । अश्वान् । धूःऽसु । पृपतीः । अयुग्धम् । हिरण्ययान् । प्रति । अत्कान् । अमुग्धम् ।
 विश्वाः । इत् । स्पृधः । मरुतः । वि । अस्यथ । शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥६॥
 (२७१) न । पर्वताः । न । नद्यः । वरन्त । वः । यत्र । अर्चिध्वम् । मरुतः । गच्छथ । इत् ।
 ऊँ इति । तत् ।

उत् । धावापृथिवी इति । याथन । परि । शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥७॥

अन्वयः— २६९ (हे) पुरीषिणः मरुतः ! यूयं समुद्रतः उत् ईरयथ, वृष्टिं वर्षयथ, (हे) दक्षाः ! वः धेनवः न उप दस्यन्ति, रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत ।

२७० (हे) मरुतः ! यत् पृपतीः अश्वान् धूर्षु अयुग्धं, हिरण्ययान् अत्कान् प्रति अमुग्धं, विश्वाः इत् स्पृधः वि अस्यथ, रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत ।

२७१ (हे) मरुतः ! वः पर्वताः न वरन्त, नद्यः न, यत्र अर्चिध्वं तत् गच्छथ इत् उ, उन धावा-पृथिवी परि याथन, रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत ।

अर्थ— २६९ हे (पुरीषिणः मरुतः !) जलसे युक्त चौर मरुते ! (यूयं) तुम (समुद्रतः) समुद्र के जल को (उत् ईरयथ) ऊपर प्रेरणा देते हो और (वृष्टिं वर्षयथ) वर्षा का प्रारम्भ करते हो । हे (दक्षाः !) शत्रुको विनष्ट करनेवाले धीरो ! (वः धेनवः) तुम्हारी गौण (न उप दस्यन्ति) क्षीण नहीं होती हैं । (रथाः शुभं) [मंत्र २६५ वाँ देखिए ।]

२७० हे (मरुतः !) चौर मरुते ! (यत् पृपतीः अश्वान्) जय ध्वजेवाले घोड़ों को तुम, (धूर्षु) रथों के अग्रभाग में जोड़ देते हो और (हिरण्ययान् अत्कान्) स्वर्णमय कवच (प्रति अमुग्धं) हर कोई पहनते हो, तब (विश्वाः इत्) सभी (स्पृधः) चट्टाऊपरी करनेवाले दुश्मनोंको तुम (वि अस्यथ) विभिन्न प्रकारों से तितरवितर कर देते हो । (रथाः शुभं) [मंत्र २६५ वाँ देखिए ।]

२७१ हे (मरुतः !) चौर मरुते ! (वः) तुम्हारे मार्गमें (पर्वताः) पहाड़ (न वरन्त) रक्षाघट न डालें, (नद्यः न) नदियाँ भी रोके न अटकवायें । (यत्र) जिधर (अर्चिध्वं) जाने की इच्छा हो, (तत्) उधर (गच्छथ इत् उ) जाओ, (उत्) और (धावा पृथिवी) भूमंडल एवं दुलोक में (परि याथन) चारों ओर घूमो । (रथाः शुभं ...) [मंत्र २६५ वाँ देखिए ।]

भावार्थ— २६९ समुद्र में विद्यमान जल को वे मरुत् ऊपर आकाश में डहा के जाते हैं और यहाँ से फिर वर्षा के द्वारा उसे भूमिपर पहुँचा देते हैं । इस वर्षा के कारण गौओं का पोषण होता है । २७० चौर सुन्दर दिशाई देनेवाले अश्वों को रथ में जोड़कर कवचधारी बन बैठने हैं और मारे शत्रुओं को मार भगा देते हैं । २७१ पर्वत तथा नदियोंके कारण चौरों के पथ में कोई रक्षाघट खड़ी न होने पाय । विजयी बनने के लिए जिधर भी जाना उन्हें पसंद हो, उधर बिना किसी विघ्न के वे चले जायें और सर्वत्र विजय का संज्ञा फहरायें ।

टिप्पणी— [२६९] (१) दक्षः = जंगली, उग्र । (दम् = फेंकना, नाश करना, जीतना, प्रयातमान होना ।) फेंकनेवाला, शत्रुविनाशक, विजयवीर, प्रकाशमान । (२) पुरीष = जल (निघण्टु), मरु, विद्या । (पुरि-इय) नगी में जो इष्ट है वह; शरीर में जो इष्ट है वह ।

[२७०] (१) अत्कः = (अत् साहाय्यमाने) = यात्री, भयव, जल, विस्तृत, पक्ष, कवच । (२) प्रति-मुध् = पहनना, शरीरपर धारण करना ।

- (२७२) यत् । पूर्वम् । मरुतः । यत् । च । नूतनम् । यत् । उद्यते । वसवः । यत् । च । शस्यते । विश्वस्य । तस्य । भवथ । नवेदसः । शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥८॥
- (२७३) मरुतः । नः । मरुतः । मा । वधिष्टन । असम्यम् । शर्म । बहुलम् । वि । यन्तन । अधि । स्तोत्रस्य । सख्यस्य । गातन । शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥९॥
- (२७४) यूयम् । अस्मान् । नयत । वस्यः । अच्छ । निः । अहतिः । मरुतः । गृणानाः । जुषधाम् । नः । हव्यः । यजत्राः । वयम् । स्याम । पतयः । रयीणाम् ॥१०॥

अन्वय — २७२ (हे) वसव मरुत ! यत् पूर्वम्, यत् च नूतन, यत् उद्यते, यत् च शस्यते, तस्य विश्वस्य नवेदस भवथ रथा शुभ याता अनु अवृत्सत ।

२७३ (हे) मरुत ! न मरुत, मा वधिष्टन, असम्य बहुल शर्म वि यन्तन, स्तोत्रस्य सख्यस्य अधि गातन, रथा, शुभ याता अनु अवृत्सत ।

२७४ (हे) गृणाना, मरुत ! यूय अस्मान् अहतिभ्य नि. वस्य अच्छ नयत, (हे) यजत्रा ! न हव्य दाति जुषध वय रयीणा पतय स्याम ।

अर्थ— २७१ हे (वसव मरुत !) लोगों को वसानेहारे वीर मरुतो ! (यत् पूर्वम्) जो पुरातन, पुराना है (यत् च नूतन) वीर जो नया है (यत् उद्यते) जो उत्कृष्ट है और (यत् च शस्यते) जो प्रशंसित होता है (तस्य विश्वस्य) उस सभाके तुम (नवेदस भवथ) जाननेवाले होओ । (रथा शुभम्) [मंत्र २६५ वॉ देखिए ।]

२७२ हे (मरुत !) वीर मरुतो ! (न मरुत) हमें सुखी बनाओ, (मा वधिष्टन) हमें न मार डालो (असम्य) हमें (बहुल शर्म वि यन्तन) बहुत सारा सुख दे दो और हमारी (स्तोत्रस्य सख्यस्य) स्तुतियोग्य मित्रता को तुम (अधि गातन) जान लो । (रथा शुभम्) [मंत्र २६५ वॉ देखिए ।]

२७३ हे (गृणाना मरुत !) प्रशंसनीय वीर मरुतो ! (यूय) तुम (अस्मान् अहतिभ्य नि.) हमें दुर्दशासे दूर हटाकर (वस्य अच्छ) वसने के लिए योग्य जगह की ओर (नयत) ले चलो । हे (यजत्रा !) यज्ञ करनेवाले वीरो ! (न हव्य-दाति) हमारे दिये हुए हविष्याघका (जुषधम्) सेवन करो । (वय) हम (रयीणा पतय स्याम) विभिन्न प्रकारके धनों के स्वामी या अधिपति बन जायें, ऐसा करो ।

भाषार्थ— २७२ पुराना हो या नया, जो कुछ भी ऊँचा या वर्णनीय ध्येय है, उसे वीर जान लें और उसके लिए सचेत रहें । २७३ हमें सुख, आनन्द व नवदाण प्राप्त हो ऐसा करो । जिस से हमारी क्षति हो जाए उसा कुछ भी न करो और हम से मित्रतापूर्ण व्यवहार रहो ।

२७४ हमें वीर पुरुष पापों से बचाएँ और सुखपूर्वक जहाँ निवास कर सकें वही स्थान तक हमें पहुँचा दें । हम जो कुछ भी दृष्टिवास प्रदान करत हैं उसे स्वीकार कर हमें भौतिक भौतिक के घन मिले, ऐसा करना उन्हें उचित है ।

टिप्पणी— [२७०] (१) यत् उद्यते = उद्यते = ऊर्ध्वं प्राप्यते (सायणभाष्य) ऊँचा प्राप्त है । (२) नवेदस = नवदस = " नभाणरपात्रवेदां " - पा० सू० ६३ ७५ द्वारा इस पद की सिद्धि की है, पर अर्थ निरूपणमक हीन पदवा है । सायणाचार्यने ' जाननेवाला ' ऐसा अर्थ दिया है । श्र १ १६५ ३३ में ' नवेदा ' पद है और यहाँपर भी (सा० ना० में) वही अर्थ किया है । ' अनुसम ' (मयसे उत्तम) पदसे समान ही ' नवेदा ' पदका अर्थ बहुव्रीहि समास से ' अधिक ज्ञानी ' यों करना चाहिए ।

[२७४] (१) अहति = दान, पाप, पिशा, कष्ट, दुःख, आपत्ति, बीमारी ।

(४० ५।५६। १-९)

- (२७५) अग्ने । शर्धन्तम् । आ । गणम् । पिष्टम् । रुक्मेभिः । अज्जिभिः ।
 विशः । अद्य । मरुताम् । अर्ष । ह्वये । दिनः । चित् । रोचनात् । अधि ॥१॥
- (२७६) यथा । चित् । मन्यसे । हृदा । तत् । इत् । मे । जग्मुः । आऽशसः ।
 ये । ते । नेदिष्टम् । हवनानि । आऽगमन् । तान् । वर्ध । भीमऽसँदशः ॥२॥
- (२७७) मीळहुष्मतीऽहव । पृथिवी । पराऽहता । मरुन्ती । एति । अस्मत् । आ ।
 ऋक्षः । न । वः । मरुतः । शिमीऽगान् । अर्मः । दुभ्रः । गौऽह्व । भीमऽयुः ॥३॥

अन्वय — २७५ (हे) अग्ने । अन्य शर्धन्त रुक्मेभि अधिभि पिष्ट गण मरुता विश रोचनात् दिव्य अधि अद्य आ ह्वये ।

२७६ हृदा यथा चित् मन्यसे तत् इत् आ शस मे जग्मु ये ते हवनानि नेदिष्ट आगमन् तान् भीम-सदश वर्ध ।

२७७ मीळहुष्मतीहव पृथिवी पर-अ-हता मरुन्ती अस्मत् आ एति, (हे) मरुत । व अम. ऋक्ष न शिमी वान् दु भ्र गौ इव भीम-यु ।

अर्थ- २७५ हे (अग्ने) अग्ने ! (अद्य) आज दिन (शर्धन्त) शत्रुघनाशक, (रुक्मेभिः अज्जिभि) स्वर्ण हारों एवं वीरों के आभूषणों से (पिष्ट) अलकृत (गण) वीर मरुतों क समुदाय को तथा (मरुता विश) मरुता के प्रजाजनों को (रोचनात् दिव्य अधि) प्रकाशमय ध्रुलोक से (अद्य आ ह्वये) म नीचे धुलाता हूँ ।

२७६ हे अग्ने ! तू उन्ह (हृदा यथा चित्) अत करणपूर्वक जैसे पूज्य (मन्यसे) समझता है, (तत् इत्) उसी प्रकार वे (आ-शस) चतुर्दिक् शत्रुदल की धजिया उधानेवाले वीर (मे जग्मु) मेरे निकट आ चुके ह (ये) जो (ते) तुम्हारे (हवनानि) हवना के (नेदिष्ट) समीप (आगमन्) आ गये, (तान् भीम-सदश) उन उग्र-स्वरूपी वीरों का (वर्ध) तू बढ़ा द ।

२७७ (मीळहुष्मतीहव) उदार तथा (पर अ हता) शत्रुसे पराभूत न हुई ओर इसीलिये (मरुन्ती) हर्षित हुई वीरसेना (अस्मत् आ एति) हमारे निकट आ रही है । हे (मरुत !) वीर मरुतो ! (व अम) तुम्हारा बल (ऋक्ष न) सप्तर्षिया क समान (शिमी-वान्) कार्यक्षम तथा (दु भ्र) शत्रुओं से घिरे जाने में अक्षय्य है और (गौ इव) गेले के समान वह (भीम-यु) भयकर दृगसे सामर्थ्यवान है ।

भाषार्थ- २७५ जनता के हित के लिए हम अपने बीच वीरों को धुलाते हैं । व वीर सैनिक द्वार आ जायँ और मचली रभा के द्वारा सब को सुखी बना द ।

२७६ पूज्य वीरों को अब आदि दकर उनके यथावत् आदरसंस्कार करें, तथा जिससे उनकी वृद्धि हो ऐसे कार्य सम्पन्न करने चाहिए ।

२७७ शिकस्त न खात्री हुई उमग मरी वीर सेना हम महायता पहुँचाने के लिए आ रही है । वह प्रबल है इसीलिये शत्रु उसे धर नहीं सकते हैं और इसे देख गये से दुर्गकों के मन में तनिक भय का संचार होता है ।

टिप्पणी- [२७५] (१) पिष्ट = (पिशु-तजस्वी करना व्यवस्था करना अलकृत काना आकार देना) विभूषित, सजाया हुआ । [२७६] (१) आ-शस् = (शस्-हिमायाम्) शत्रुका वध, वध । [२७७] (१) मीळहुष्मती = (मीढ्यस-मती) = उदार, दातृत्वशुक्ल, स्नेहयुक्त । (२) शिमी-वान् = (शिमी = प्रयत्न उद्यम; कम) प्रबल, प्रयत्नशील, तमर्ष । (३) ऋक्ष = विनाशक, धातक, सप्तर्षि, सर्वोद्यम, अग्नि (सायण) ।

- (२७८) नि । ये । रिणन्ति । ओजसा । वृथा । गावः । न । दुःधुरः ।
 अश्मानम् । चित् । स्वर्षम् । पर्वतम् । गिरिम् । प्र । च्यवयन्ति । यामभिः ॥४॥
- (२७९) उत् । तिष्ठ । नूनम् । एषाम् । स्तोमैः । सम्-उक्षितानाम् ।
 मरुताम् । पुरु-उतमम् । अपूर्णम् । गवांम् । सर्गम्-इव । ह्ये ॥५॥
- (२८०) युद्गध्वम् । हि । अरुषीः । रथे । युद्गध्वम् । रथेषु । रोहितः ।
 युद्गध्वम् । हरी इति । अजिरा । धुरि । वोळ्हेवे । वहिष्ठा । धुरि । वोळ्हेवे ॥६॥

अन्वय — २७८ दुर-धुर गाव न ये ओजसा वृथा नि रिणन्ति यामभिः अश्मान गिरि स्वर्-यं पर्वतं चित् प्र च्यवयन्ति ।

२७९ उत् तिष्ठ, नूनं स्तोमैः सम्-उक्षितानां एषां मरुतां पुरु-तमं अ-पूर्णं गवां सर्गं इव ह्ये ।

२८० रथे हि अरुषीः युद्गध्वं, रथेषु रोहितः युद्गध्वं, अजिरा वहिष्ठा हरी वोळ्हेवे धुरि वोळ्हेवे धुरि युद्गध्वं ।

अर्थ- २७८ (दुर-धुरः गावः न) जीर्ण धुराका नाश जैसे बेल करते हैं, उसी प्रकार (ये) जो वीर (ओजसा) अपनी सामर्थ्य से दानुओं का (वृथा) आसानी से विनाश करते हैं, ये (यामभिः) हमलों से (अश्मानं गिरिं) पथरीले पहाड़ों को तथा (स्वर्-यं पर्वतं चित्) आकाशचुम्बी पहाड़ों को भी (प्र च्यवयन्ति) स्थानभ्रष्ट कर देते हैं ।

२७९ (उत् तिष्ठ) उठो, (नूनं) सचमुच (स्तोमैः) स्तोत्रों से (सम्-उक्षितानां) इकट्ठे पड़े हुए (एषां मरुतां) इन वीर मरुतों के (पुरु-तमं) बहुतही बड़े (अ-पूर्णं) एवं अपूर्ण गण की, (गवां सर्ग-इव) बैलों के समूह की जैसे प्रार्थना की जाती है, वैसे ही (ह्ये) मैं प्रार्थना करता हूँ ।

२८० तुम अपने (रथे हि) रथ में (अरुषीः) लालिमामय हरिणियों (युद्गध्वं) जोड़ दो और अपने (रथेषु) रथ में (रोहितः) पञ्ज लालवर्णवाला हरिण (युद्गध्वं) लगा दो, या (अजिरा) वेगवान् (वहिष्ठा हरी) दोगे वी क्षमता रखनेवाले दो घोड़ों को रथ (वोळ्हेवे धुरि वोळ्हेवे धुरि) खींचने के लिए धुरा में (युद्गध्वं) जोड़ दो ।

भावार्थ- २७८ अपनी क्षमि के सहारे वीर दानुओं का पथ करते हैं और पर्वतधेनी को भी प्रगह से हिला देते हैं ।

२७९, मैं वीरों की सहायता करता हूँ । (वीरों के काव्य का गायन करता हूँ ।)

२८० रथ खींचने के लिए घोड़े, हरिणियाँ या हरिण खने हैं ।

टिप्पणी- [२७८] (१) स्वर्-यं = स्वर्ग तक पहुँचा हुआ, आकाश को छूनेवाला, । (२) दुर-धुर = बुरी धुरा, जीर्ण धुरा ।

[२७९] (१) सम्-उक्षित = सचमुच, (मम्) एकतापूर्वक (उक्षित) बलवान बनाया हुआ ।

[२८०] (१) अरुषी = (अरथ = लालिमामय) रक्षित वर्णवाली (घोड़ी-हरिणी) अ-रुषी = (रथ = श्रेय करना) = शक्ति प्रकृति की (हरिणी) । (२) अजिरा = (अज् गतौ) वेगवान् । (रथों में हरिणी या कृष्ण-मार जोड़ने का उल्लेख मंत्र १३ तथा १७ की टिप्पणी में देखिए ।)

- (२८१) उत । स्यः । वाजी । अरुपः । तुविस्वनिः । इह । स्म । धायि । दर्शतः ।
 मा । वः । यामेषु । मरुतः । चिरम् । करत् । प्र । तम् । रथेषु । चोदत ॥७॥
- (२८२) रथम् । जु । मारुतम् । वयम् । श्रवस्युम् । आ । हुवामहे ।
 आ । यस्मिन् । तृश्वौ । सुऽरणानि । विभ्रती । सर्वा । मरुत्सु । रोदसी ॥८॥
- (२८३) तम् । वः । शर्धम् । रथेऽशुभम् । त्वेषम् । पनस्युम् । आ । हुवे ।
 यस्मिन् । सुऽजाता । सुऽभगा । महीयते । सर्वा । मरुत्सु । मीळहुपी ॥९॥

अन्वयः— २८१ उत स्यः अरुपः तुवि-स्वनिः दर्शतः वाजी इह धायि स्म, (हे) मरुतः! वः यामेषु चिरं मा करत्, तं रथेषु प्र चोदत ।

२८२ यस्मिन् सु-रणानि विभ्रती रोदसी मरुत्सु सचा आ तस्यौ (तं) श्रवस्युं मारुतं रथं वयं आ हुवामहे ।

२८३ यस्मिन् सु-जाता सु-भगा मीळहुपी मरुत्सु सचा महीयते तं वः रथे-शुभं त्वेषं पनस्युं शर्धं आ हुवे ।

अर्थ— २८१ (उत) सचमुच (स्यः) यह (अरुपः) रक्तिम आभासे युक्त (तुवि-स्वनिः) षडे जोरसे दिनदिनानेवाला (दर्शतः) देखनेयोग्य (वाजी) घोडा (इह) इस रथकी घुरा में (धायि स्म) जोटा गया है । हे (मरुतः!) धीर मरुतो! (वः यामेषु) तुम्हारी चढाइयों में वह (चिरं मा करत्) विलम्ब न करेगा, (तं) उसे (रथेषु प्र चोदत) रथों में बैठकर भली भाँति हाँक दो ।

२८२ (यस्मिन्) जिसमें (सु-रणानि) अच्छे रमणीय वस्तुओंको (विभ्रती) धारण करनेवाली (रोदसी) छायापृथिवी (मरुत्सु सचा) धीर मरुतों के साथ (आ तस्यौ) बैठी हुई हैं, उस (श्रवस्-युं) कीर्तिको समीप करनेवाले (मारुतं रथं) धीर मरुतों के रथका (वयं आ हुवामहे) धर्मेण हम सभी तरह से कर रहे हैं ।

२८३ (यस्मिन्) जिस में (सु-जाता) भली भाँति उत्पन्न, (सु-भगा) अच्छे भाग्यसे युक्त एवं (मीळहुपी) उदार छायापृथिवी (मरुत्सु सचा) धीर मरुतों के साथ (महीयते) महत्त्व को प्राप्त होती है, (तं) उस (वः) तुम्हारे (रथे-शुभं) रथ में सुढानेवाले (त्वेषं) तेजस्वी और (पनस्युं) सराहनीय (शर्धं) बलकी (आ हुवे) ठीक प्रकार में प्रार्थना करता हूँ ।

भाषार्थ— २८१ रथको शीघ्रही अश्रमुक्त करके शीघ्र चलनेके लिए उन्हें प्रेरणा करो और बहुत जल्द दुःखमनों पर धावा करो ।
 २८२ छायापृथिवी अच्छे रमणीय वस्तुओं को धारण करके जिनके भावार्थ से टिकी है, उन मरुतों के विजयी रथ का कांक्ष्य हम रचते हैं तथा गावण भी करते हैं ।

२८३ जिसमें समूचा भाग्य समाया हुआ है, ऐसे तेजस्वी मरुतोंके दिव्य बलकी सराहना मैं करता हूँ ।

टिप्पणी— [२८१] (१) तं रथेषु प्र चोदत— यहाँ पर ऐसा श्लोक पड़ता है कि, एक वचन के लिए 'रथेषु' बहुवचन का प्रयोग किया गया है अथवा हर एक मरुत् के रथ की इसी भाँति योजना होने के कारण यह बहुवचन का प्रयोग बिलकुल सार्थ है, ऐसा कहा जा सकता है ।

[२८२] (१) रणः-र्ण = युद्ध, समरभूमि, आनंद, रमणीयता । (२) श्रवस्-युः = कीर्ति से संयुक्त होनेवाला, अन्न से सुढानेवाला ।

[२८३] (१) सु-जात = अच्छी तरह बना हुआ, कुलीन, उत्तम वंशसे प्रकट हुआ या निष्पन्न ।
 (२) सु-भगा = वैभवशाली, भाग्ययुक्त, अच्छे भाग्यवाला ।

(क० ५।५।५।१-८)

(२८४) आ । रुद्रासः । इन्द्रवन्तः । सजोपसः । हिरण्यरथाः । सुविताय । गन्तन ।
 इप् । वः । अस्मत् । प्रति । हर्यते । भ्रतिः । तृष्णजे । न । दिवः । उत्साः । उदन्वये ॥१॥
 (२८५) वाशीमन्तः । ऋष्टिमन्तः । मनीषिणः । सुधन्वानः । इपुमन्तः । निपङ्गिणः ।
 सुअश्वः । स्य । सुअरथाः । पुश्रिमातरः । सुआयुधाः । मरुतः । याधन । शुभम् ॥२॥
 (२८६) धनुथ । घाम् । पर्वतान् । दाशुपे । वसु । नि । वः । वना । जिहते । यामनः । भिया ।
 कोपयथ । पृथिवीम् । पुश्रिमातरः । शुभे । यत् । उग्राः । पृपतीः । अयुग्वम् ॥३॥

अन्वयः— २८४ (हे) इन्द्र-वन्तः स-जोपसः हिरण्य-रथाः रुद्रासः ! सुविताय आ गन्तन, इयं
 अस्मत् मतिः यः प्रति हर्यते, (हे) दिवः । तृष्णजे उदन्वये उत्साः न ।

२८५ (हे) पृथि मातरः मरुतः ! वाशी-मन्तः ऋष्टि-मन्तः मनीषिणः सु-धन्वानः इपु-मन्तः
 निपङ्गिणः सु-अश्वः सु-रथाः सु-आयुधाः स्य शुभं याधन ।

२८६ दानुपे वसु धां पर्वतान् धनुथ, य. यामनः भिया यना नि जिहते, (हे) पृथि-मातरः !
 शुभे यत् उग्राः पृपतीः अयुग्वं पृथिवीं कोपयथ ।

अर्थ— २८४ हे (इन्द्र-वन्तः) इन्द्रके साथ रहनेवाले, (स-जोपसः) प्रेम करनेवाले, (हिरण्य-रथाः) सुवर्ण
 के घनाये रथ रखनेवाले तथा (रुद्रासः) शत्रु को कलानेवाले वीरों ! (सुविताय) हमारे वैभव को
 बढ़ाने के लिए (आ गन्तन) हमारे समीप आओ । (इयं अस्मत् मतिः) यह हमारी स्तुति (यः प्रति हर्यते)
 तुममें से हरेक की पूजा करती है । हे (दिवः) तेजस्वी वीरों ! जिस प्रकार (तृष्णजे) प्यासे और
 (उदन्-वये) जलको चाहनेवालेके लिए (उत्साः न) जलकुंड रखे जाते हैं, उसी प्रकार हमारे लिए तुम हो ।

२८५ हे (पृथि-मातरः मरुतः) भूमि को माता माननेवाले वीर मरुतो ! तुम (वाशी-मन्तः)
 कुडारसे युक्त, (ऋष्टि-मन्तः) भाले धारण करनेवाले, (मनीषिणः) अच्छे धानी, (सु-धन्वानः) सुन्दर
 धनुष्य साथ रखनेवाले, (इपु-मन्तः) बाण रखनेवाले, (निपङ्गिणः) तृणारवाले, (सु-अश्वः सु-रथाः)
 अच्छे घोड़ों तथा रथोंसे युक्त एवं (सु-आयुधाः) अच्छे हथियार धारण करनेवाले (स्य) हो और इसी-
 लिए तुम (शुभं) लोककल्याण के लिए (वि याधन) जाते हो ।

२८६ (दानुपे) दानी को (वसु) धन देनेके लिए जय तुम चढ़ाई करते हो तब (धां) घुलोक
 को और (पर्वतान्) पहाड़ोंको भी तुम (धनुथ) हिला देते हो । उस (यः) तुम्हारे (यामनः भिया)
 हमले के डरसे (घत्) बरस्य भी ; नि जिहते) बहुतही काँपने लगते हैं । हे (पृथि-मातरः) ! भूमिको
 माता समझनेवाले वीरों ! (शुभे) लोककल्याण के लिए (यत्) जय तुम (उग्राः) उग्र स्वरूपवाले वीर
 पन (पृपतीः) ध्वंशवाली हरिणिवीरों रथों में (अयुग्वं) जोड़ते हो, तब (पृथिवीं कोपयथ) भूमिको धुंध
 कर डालते हो ।

भाषार्थ— २८४ वीर हमारे पास आ जायें और प्यासे हुए लोगोंको ब्रह्म दें और हमारी धानी उनका काव्यगायन
 करें । २८५ सभी ऋषि के वक्ताओं एवं हथियारोंसे सुवज्र बनकर वे वीर शत्रुदल पर भीषण आक्रमण का सूत्रपात
 करते हैं । २८६ वीर मैत्रिक हाथ में तक्षत्र लेकर जब सज्ज होते हैं तब सभी लोप सहज जाते हैं ।

टिप्पणी— [२८४] (१) इन्द्रः = इन्द्र, राजा, ईश्वर, श्रेष्ठ, प्रभु । इन्द्रवन्तः = राजा के साथ रहनेवाले वीर,
 जिनका प्रभु इन्द्र हो । (२) सुविता = सुदय, कल्याण, वैभव की सृष्टि । (३) स-जोपसः = (समानप्रीतवः)
 एक दूसरे पर समान प्रीति करनेवाले, समान उत्साही ।

(२८७) वातऽत्विषः । मरुतः । वर्षऽनिर्णिजः । यमाऽइव । सुऽसंदशः । सुऽपेशसः ।
पिशङ्गऽअश्वाः । अरुणऽअश्वाः । अरेपसः । प्रऽत्वक्षसः । महिना । द्यौऽइव । उरवः ॥४॥

(२८८) पुरुऽद्रुप्साः । अज्जिमन्तः । सुऽदानवः । त्वेपऽसंदशः । अनवभ्रऽराधसः ।
सुऽजातासः । जनुया । रुक्मऽवक्षसः । दिवः । अर्काः । अमृतम् । नाम । भेजिरे ॥५॥

(२८९) क्रुष्टयः । वः । मरुतः । अंसयोः । अर्धि । सहः । ओजः । वाहोः । वः । वलम् । हितम् ।
नृग्णा । शीर्षऽसु । आयुधा । रथेषु । वः । विश्वा । वः । श्रीः । अर्धि । तनूपु । पिपिशे ॥६॥

अन्वयः— २८७ मरुतः वात-त्विषः वर्ष-निर्णिजः यमाःइव सु-सदशः सु-पेशसः पिशङ्ग-अश्वाः अरुण-
अश्वाः अरेपसः प्र-त्वक्षसः महिना द्यौ इव उरवः । २८८ पुरु-द्रुप्साः अज्जि-मन्तः सु-दानवः त्वेप-
संदशः अन्-अवभ्र राधसः जनुया सु-जातासः रुक्म-वक्षसः दिवः अर्काः अ-मृतं नाम भेजिरे । २८९
(हे) मरुतः । वः अंसयोः क्रुष्टयः, वः याहोः सहः ओजः वलं आधि हितं, शीर्षसु नृग्णा, वः रथेषु विश्वा
आयुधा, वः तनूपु श्रीः आधि पिपिशे ।

अर्थ— २८७ (मरुतः) धीर मरुत् (वात-त्विषः) प्रखर तेजसे युक्त, (वर्ष-निर्णिजः) स्वदेशी कपडा
पहननेवाले हैं । (यमाःइव) यमज भाई के समान (सु-सदशः) विलकुल तुल्यरूप तथा (सु पेशसः)
सुन्दर रूपवाले हैं । वे (पिशङ्ग-अश्वाः) भूरे रंगके एवं (अरुण-अश्वाः) लाल रंगके घोड़े समीप रखने-
वाले, (अ-रेपसः) पापरहित तथा (प्र-त्वक्षसः) शत्रुओंका पूर्ण विनाश करनेवाले, अपने (महिना)
महत्त्व के कारण (द्यौःइव उरवः) आकाश के तुल्य बड़े हुए हैं । २८८ (पुरु-द्रुप्साः) यथेष्ट जल
समीप रखनेवाले, (अज्जि-मन्तः) घरालंकार गणवेश-धारण करनेवाले, (सु दानव) दानशूर, (स्वैप-
संदशः) तेजस्वी दीख पड़नेवाले, (अन्-अवभ्र-राधसः) जिनका धन कोई छीन नहीं ले जा सकता ऐसे,
(जनुया सु-जातासः) जन्मसे उत्तम परिवारमें उत्पन्न (रुक्म-वक्षसः) सुवर्णके अलंकार छाती पर धरने-
हारे, (दिवः) तेजःपुञ्ज तथा (अर्का) पूजनीय वीर (अ-मृतं नाम भेजिरे) अमर कीर्ति पा चुके । २८९ हे
(मरुतः!) धीर मरुतो! (वः अंसयोः क्रुष्टयः) तुम्हारे कंधों पर भाले रचे हैं। (वः वाहोः) तुम्हारी भुजाओं
में (सहः ओजः) शत्रु को पराभूत करनेका बल तथा (वलं) सामर्थ्य (अधि हितं) रखा हुआ है। (शीर्षसु)
माथों पर (नृग्णा) सुवर्णमय शिरविपिन, (वः रथेषु) तुम्हारे रथों में (विश्वा आयुधा) सभी हथियार
विद्यमान हैं। (वः तनूपु तुम्हारे शरीरों पर (श्रीः) आधि पिपिशे) तेज अत्यधिक शोभा बढ़ा रहा है।

भाषार्थ— २८७ जो वीर शत्रुका नाश करते हैं, वे अपने प्रभावसे ही बहत्वनको प्राप्त होने हैं। २८८ वीर सैनिक पराक्रम
करके बड़ी भारी यशस्विता एवं श्रेयसि प्राप्त करें। २८९ वीर सैनिक तथा उनके रथ हथियारोंसे सदैव सुमग्न रहते हैं।

टिप्पणी— [२८७] (१) वात = (वा गतिबन्धनयो) हँका हुआ, अटकवाया (प्रखर), वायु । (२) वर्ष = बरसात,
वेश, राष्ट्र । निर्णिज = वस्त्र, आच्छादन । वर्ष-निर्णिज = (१) वर्षा जिनका पहनावा है। (२) स्वदेशी पहनावा
करनेवाले । मरुत् भूमिकी माया समझनेवाले (पृथिवी-मातरः) है, इसलिए अपने देशमें बना हुआ कपडा ही पहनते
हैं। यह अर्थ अधिमृतपक्ष में संभवनीय है। अधिदैवत पक्षमें मरुत् आँधी के वायुपवाद है, जिनका पहनावा वर्षा
है। दोनों स्थलोंमें अर्धका रूप आसानीसे ध्यानमें आ सकता है। [२८८] (१) द्रुप्सा = गिर पड़ना, बिन्दु, जल-
बिन्दु (Drop) । पुरु-द्रुप्सा = समीप यथेष्ट जल रखनेवाले, पानीसे तर । [२८९] (१) नृग्णं = पौर्य, बल,
धैर्य, धन, पगड़ी (छापण) । हम मंत्र से प्रतीत होता है कि, मरुतोंका रथ बहुत ही विशाल तथा वृद्धाकार का रहा
हो। क्योंकि इस रथ पर (विश्वा आयुधा) समूचे सस्त्रास्त्र रखे जाते हैं, शिबर घनुष्य (मंत्र ९१) तथा चल घनुष्य
भी पाये जाते हैं। शत्रुदल के वीर घनुष्य की शोरियाँ लोढ़ने पर तुलें रहते हैं वीर कभी कभी घनुष्यके भी तोड़े जानें
मरुत् [हिं.] १५

(२९०) गोऽमृत । अश्वऽवत् । रथऽवत् । सुऽवीरम् । चन्द्रऽवत् । राधः । मरुतः । उड्ड । नः ।

प्रऽदास्तिम् । नः । कृणुत । रुद्रियासः । मध्वीय । वः । अर्वसः । दैव्यस्य ॥७॥

(२९१) ह्ये । नरः । मरुतः । मृळत । नः । तुविमघासः । अमृताः । ऋतऽज्ञाः ।

सत्यऽश्रुतः । कवयः । युवानः । वृहत्ऽगिरयः । वृहत् । उधर्माणाः ॥८॥

(ऋ० ५/५८/१-८)

(२९२) तम् । कुं इति । नूनम् । तविपीऽमन्तम् । एषाम् । स्तुपे । गुणम् । मारुतम् । नव्यसीनाम् ।

ये । आशुऽअथाः । अमऽवत् । वहन्ते । उत । ईश्वरे । अमृतस्य । स्वऽराजः ॥१॥

अन्वयः— २९० (हे) मरुतः! गो-मत् अश्व-वत् रथ-वत् सु-वीरं चन्द्र-वत् राधः नः दद, (हे) रुद्रियासः! नः प्र-दास्ति कृणुत, वः दैव्यस्य अर्वसः भक्षीय । २९१ ह्ये नरः मरुतः! तुवि मघासः अ-मृता ऋत ज्ञा सत्य-श्रुतः कवयः युवानः वृहत् गिरयः वृहत् उक्षमाणाः नः मृळत । २९२ स्व-राजः ये जाशु जश्वा भ्रम घत् वहन्ते उत अ-मृतस्य ईश्वरे तं उ नूनं एषां नव्यसीनां मारुतं तविपी-मन्तं गणं स्तुपे ।

अर्थ— २९० हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (गो-मत्) गौओं से युक्त, (अश्व-वत्) घोड़ों से युक्त, (रथ-वत्) रथों से युक्त, (सु-वीरं) वीरों से परिपूर्ण तथा (चन्द्र-वत्) सुवर्ण से युक्त, (राधः) अन्न (नः दद) हमें दे दो । हे (रुद्रियासः!) वीरो! (नः) हमारी (प्र-दास्ति) वैभवशालिता (कृणुत) करो । (वः) तुम्हारी (दैव्यस्य अर्वसः) दिव्य संरक्षणशक्ति का हम (भक्षीय) सेवन कर सकें, ऐसा करो ।

२९१ (ह्ये नरः मरुतः!) हे नरा एषं वीर मरुतो! (तुवि-मघासः) बहुत सारे धनसे युक्त, (अ-मृताः) अमर, (ऋतज्ञाः) सत्य को जाननेवाले, (सत्य-श्रुतः) सत्य कीर्ति से युक्त, (कवयः युवानः) प्राणी एवं युवक, (वृहत् गिरयः) अत्यन्त सराट्ठीय और (वृहत् उक्षमाणाः) प्रचंड ढल से युक्त तुम (नः मृळत) हमें सुखी धनाशो ।

२९२ (स्व राजः) स्वयंशासक पैसे (ये) जो वीर (आशु-अथाः) बेगवान घोड़ों को समीप रखनेवाले हैं, इसलिये (अम-वत् वहन्ते) आतपेग से चले जाते हैं, (उत) और जो (अ-मृतस्य ईश्वरे) अमर लोक पर प्रभुत्व प्रस्थापित करते हैं (तं उ नूनं) उस सबमुच (एषां) इन (नव्यसीनां) नराट्ठीय (मारुतं) वीर मरुतों के (तविपी-मन्तं गणं स्तुपे) यल्लिप्त गण-संघ की तू स्तुति कर ले ।

भाषार्थ— २९० हर तरह से सहायता करके और हमारा संरक्षण करने वीर हमारी प्रगति में मददगार हों । हमें शत्रु भी प्राप्ति देती हो कि निमके साथ गौ, रथ, अश्व एवं वीर मैतिक की सहाई हो जाय ।

२९१ ऐसो वीर जनता का संरक्षण कर हम सब को सुखी बना दें ।

२९२ जो वीर वन्दनीय हो उनकी प्रशंसा सभी को करनी चाहिये । येही वीर इहलोक तथा परलोक पर प्रभुत्व प्रस्थापित करने को क्षमता रखते हैं ।

की सम्भावना होने के कारण बहुत से घनुच्य रचना अनिवार्य हो, जो आश्रय नहीं । वैसे ही उड्डाटी, भाला, गदा तथा अन्य हथियार रथ में ही रखने पड़ते थे । अतः रथ बहुत बड़ा हो, तो स्वाभाविक है । ये सभी आधुनिक मली भौति पृथक् पृथक् रखने चाहिये और प्रबंध ऐसा हो कि चाहे जो हथियार ठीक मंके पर हाथमें ला जाय । यदि इस तरहकी व्यवस्थाकी मानते तो यह इरादे हैं कि, इन महाहथियारोंका रथ अथवा विशाल प्रमाण पर बना हुआ होगा । [२९०]

(१) चन्द्र = कर्पूर, जल, मोना, चन्द्रमा । (२) प्र-दास्ति = स्तुति, वर्णन, मार्गदर्शकता, उद्घटना (वैभव) । [२९१] (१) मघं = दान, धन, महत्त्वयुक्त द्रव्य । (२) गिरि = पर्वत, वागी, स्तुति, आदर्शपूर्ण, माननीय । [२९२]

(१) स्व-राज = (राज् दीप्तो = प्रकाशना, अधिकार प्रस्थापित करना) स्वयंशासक, स्वयंशासक । (२) नव्यसीनां (सुरतुर्गां) = प्रशंसा करना; मरितुं योग्यः नव्यः) = नूतन, सराट्ठीय । (३) अ-मृत = अमर, अमरपन, देव, स्वर्ग, संपत्ति ।

(२९३) त्वेपम् । गणम् । त्वसम् । खादिऽहस्तम् । धुनिऽव्रतम् । मायिनम् । दातिऽवारम् ।
 मयःऽभुवः । ये । अमिताः । महिऽत्वा । वन्दस्व । विप्र । तुविऽराधसः । नृन् ॥२॥
 (२९४) आ । यः । यन्तु । उदऽवाहासः । अद्य । वृष्टिम् । ये । बिभ्ये । मरुतः । जुनन्ति ।
 अयम् । यः । अग्निः । मरुतः । संऽइन्द्रः । एतम् । जुपध्वम् । क्वयः । युवानः ॥३॥
 (२९५) यूयम् । राजानम् । इयम् । जनाय । विभ्वऽतष्टम् । जनयथ । यजत्राः ।
 युष्मत् । एति । मुष्टिऽहा । बाहुऽजूतः । युष्मत् । सत्ऽअश्वः । मरुतः । सुऽवीरः ॥४॥

अन्वयः— २९३ हे (विप्र !) ये मयो-भुवः महित्या अ-मिताः तुवि राधसः नृन्, त्वसं खादि हस्तं धुनि-
 व्रतं मायिनं दाति-वारं त्वेपं गणं वन्दस्व । २९४ ये उद-वाहासः वृष्टिं जुनन्ति विद्ये मरुतः अद्य यः आ
 यन्तु, (हे) क्वयः युवानः मरुतः ! यः अयं अग्निः सम्-इन्द्रः एतं जुपध्वं । २९५ (हे) यजत्राः मरुतः !
 यूयं जनाय इयं विभ्व-तष्टं राजानं जनयथ, युष्मत् मुष्टि-हा पाहु-जूतः एति. युष्मत् सत्-अश्वः सु-वीरः ।

अर्थ- २९३ हे (विप्र !) भानी पुरुष ! (ये मयो-भुव) जो मुखदायक, (महित्या) चढपन से (अ-
 मिताः) असीम म्नामर्थ्यमान तथा (तुवि-राधसः) यद्येष्ट धनाढ्य हैं, उन (नृन्) नेता वीरपुरुषों को
 तथो (त्वसं) बलिष्ट एवं (खादि-हस्तं) हाथ में बलय कडे-धारण करनेवाले, (धुनि-व्रतं) शत्रुओं
 को हिला देने का व्रत जिन्होंने ले लिया हो, ऐसे (मायिनं) कुशल (दाति वारं) दानी या शत्रु का
 घघ करके उसे दूर करनेवाले, (त्वेपं) तेजस्वी ऐसे उन वीरों के (गणं वन्दस्व) संघ को नमन कर ।

२९४ ये उद-वाहासः) जो जल देनेवाले (वृष्टिं जुनन्ति) वृष्टि को प्रेरणा देते हैं, ये (विभ्वे
 मरुतः) सभी वीर मरुत ! अद्य आज (यः) तुम्हारी ओर (आ यन्तु) आ जायें । हे (क्वयः) दानी
 तथा (युवानः मरुतः !) युवक वीर मरुतो ! (यः अयं) जो यह (अग्निः सम्-इन्द्रः) अग्नि प्रज्वलित
 किया गया है, (एतं जुपध्वं) इसका सेवन करा ।

२९५ हे (यजत्राः मरुतः !) यज्ञ करनेवाले वीर मरुतो ! (यूयं) तुम (जनाय) लोक-
 कल्याण के लिए (इयं) शत्रुविनाशक तथा (विभ्व-तष्टं) कुशलतापूर्वक कार्य करनेवाले (राजानं)
 राजा को (जनयथ) उत्पन्न कर देते हो । (युष्मत्) तुमस (मुष्टि हा) मुष्टि-योधी और (बाहु-जूतः)
 बाहुबल से शत्रु को हटानेवाला वीर (एति) आ जाता है, इमें भास होता है । (युष्मत्) तुमसे ही (सत्-
 अश्वः) अच्छे घोड़े रखनेवाला (सु-वीरः) अच्छा वीर तैयार हो जाता है ।

भावार्थ- २९३ सभी लोग बसे वीरोंका अभिवादन कर । २९४ सबको जल देकर संतुष्ट करनेवाले वीर जनताके निन्द
 भाकर उन्हें संतुष्ट करें भीर यही पर जलती वा घबकती हुई अंगीठीके समीप बैठ जायें । २९५ जनताका हिन हो इसलिए
 हुइमनों को विनष्ट करनेवाला, कुशलतापूर्वक सभी राज्यशासनके कार्य करनेवाला नरेश राष्ट्रपतिकी हेनिघतसे पदाधिकारी
 चुना जाता है । उसी प्रकार मुष्टियोधी महाबाहु वीर तथा अच्छे घोड़े समीप रखनेवाला वीर भी राष्ट्रमें जगम ले लता है ।

टिप्पणी- [२९३] (१) व्रत = शपथ, वचन, मिश्रव, कृत्य, वोजना । धुनि-व्रत = शत्रुदल को हिलाने का
 व्रत जिसने लिया हो । (२) दाति वारः = (दातिः = देन, वारः = बटा प्रमाण, समूह) बडे पैमाने पर दान
 देनेवाला ; (दा अघकषडने) [दाति,] वध करके [वार] विवागक. शत्रुको हटानेवाला । [२९४] (१) उद-वाह =
 जल देनेवाला, मेघ, पानी पहुँचानेवाला । [२९५] (१) इयं = प्रेरक, स्वामी, चपल, शक्तिमान ; (शत्रुओंका)
 विनाश करनेवाला । (२) राजानं इयं = तेजस्वी राजा को (शत्रुको) । (३) विभ्व-तष्ट = (विभ्वः = कुशल,
 वारीगर, व्यापक) ; (तष्ट) = (ठक् तमूकण = बनाना,) कुशलतापूर्वक कार्य करनेवाला । (विभ्वः) चतुर तथा
 निष्णात शिक्षकों द्वारा सिखाकर (तष्ट) तैयार किया हुआ ।

(२९६) अराःइव । इत् । अचरमाः । अहाइव । प्रप्र । जायन्ते । अकवा । महःऽभिः ।
 पृथैः । पुत्राः । उपमासः । रभिष्ठाः । स्वया । मत्या । मरुतः । सम् । मिमिभुः ॥५॥
 (२९७) यत् । प्र । अयासिष्ट । पृपतीभिः । अथैः । वीळुपविऽभिः । मरुतः । रथैभिः ।
 क्षोदन्ते । आपः । रिणते । वनानि । अव । उन्नियः । वृपमः । क्रन्दतु । घौः ॥६॥
 (२९८) प्रथिष्ट । यामन् । पृथिवी । चित् । एषाम् । मर्ताइव । गर्भम् । स्वम् । इत् । शवः । धुः ।
 घातान् । हि । अथान् । धुरि । आऽपुयुजे । वर्पम् । स्वेदम् । चक्रिरे । रुद्रियासः ॥७॥

अन्वयः— २९६ अरा.इव इत् अचरमाः अहाइव महोभिः अकवा. प्र प्र जायन्ते, उप मासः रभिष्ठाः
 पृथैः पुत्राः स्वया मत्या सं मिमिभुः । २९७ (हे) मरुतः । यत् पृपतीभिः अथैः वीळु-पविभिः रथैभिः
 प्र अयासिष्ट आपः क्षोदन्ते वनानि रिणते, उन्नियः वृपमः घौः अव क्रन्दतु । २९८ एषां यामन् पृथिवी
 चित् प्रथिष्ट, मर्ताइव गर्भं स्वं इत् शवः धुः, हि घातान् अथान् धुरि आयुयुजे रुद्रियासः स्वेदं वर्पं चक्रिरे ।
 अर्थ— २९६ (अराःइव इत्) पहिले के भारों के समानही (अचरमाः) सभी समान दीख पड़नेवाले
 तथा (अहाइव) दिग्दन्तुस्य (महोभिः) बड़े भारों तेजसे युक्त होकर (अकवाः) अवर्णनीय ठहरनेवाले
 ये वीर (प्र प्र जायन्ते) प्रकट होते हैं । (उप मासः) लगभग समान कदके (रभिष्ठाः) अतियोगवान् ये
 (पृथैः पुत्राः) मातृभूमि के सुपुत्र (मरुतः) वीर मरुत् (स्वया मत्या) अपने मनसे ही (सं मिमिभुः)
 सब कोई मिलकर एकतापूर्वक विरोध कार्य का सृजन करते हैं ।

२९७ हे (मरुत्) वीर मरुतो ! (यत्) जब (पृपतीभिः अथैः) धरत्येवाले घोड़े जोते हुए (वीळु-
 पविभिः) हृद तथा सामर्थ्यवान् पहियोंसे युक्त (रथैभिः) रथोंसे तुम (प्र अयासिष्ट) जाने लगते हो तब
 (आपः क्षोदन्ते) सभी जलप्रवाह क्षुब्ध हो उठते हैं, (वनानि रिणते) घनाका नाश होता है, तथा (उन्नियः
 वृपमः) प्रशाशयुक्त वर्षा करनेहारा, (घौः) आकाश तक (अव क्रन्दतु) भीषण शब्दमें गूँज उठता है ।
 २९८ (एषां यामन्) इन धीरों के भाक्मणसे (पृथिवी चित्) भूमितक (प्रथिष्ट) विद्ययात हो
 चुकी है, (मर्ता इव) पति जैसे पत्नी में (गर्भं) गर्भ की स्थापना करता है, जैसे ही इन्होंने (स्वं इत्)
 अपनाही (शवः धुः) बल अपने राष्ट्र में प्रस्थापित किया (हि) और (घातान् अथान्) घगयान् घोड़ों को
 (धुरि आऽपुयुजे) रथ के अगले भाग में जोत दिया और (रुद्रियासः) उन धीरोंने (स्वेदं वर्पं चक्रिरे)
 अपने पसीने की मानों घर्षाणी की, पराक्रम की पराकाष्ठा कर दिखायी ।

भाषार्थ— २९६ ये सभी वीर तुल्यरूप दीख पड़ते हैं और समान ङंठे तेजस्वी हैं । वे अपने कर्तव्य वेगसे पूर्ण
 कर देते हैं और अपनी मातृभूमि की सेवामें मिलजुलकर अविषम भावसे विविध कार्योंको संपन्न कर देते हैं । २९७
 जब मरुत् मातृभूमि पर हमले करने लगते हैं, यत्ने बाधु बहने लगती है, उस समय जकड़बाध बौलस्य उठते हैं, घनके
 वेद हट गिरने लगते हैं और आकाश के वर्षा करनेहारे मेघ भी गरजने लगते हैं । २९८ इन धीरों के मातृभूमि पर
 होनेवाले आक्रमणों के चरित्ररूप मातृभूमि विषयात् हुई । इन्होंने अपना बल राष्ट्र में प्रस्थापित किया और घोड़ों से
 रथ संयुक्त करके जब ये चढ़ाई करने लगे, तब (हम युद्ध में) पसीने से तर होने तक वीरतापूर्ण कार्य करते रहे ।

टिप्पणी— [२९६] (१) अरम = अविम, निम्न श्रेणीका (छोटासा, अल्प प्रमाण का) । अचरम = बड़ा, तुल्य,
 निम्न श्रेणीका नहीं । (२) अकवाः (अक् = वर्णन करना) = अवर्णनीय अद्भुत, अकुसित । (३) सं-मिभु = सं-
 मिभु = मिश्रणकरना (To mix with), निर्माण करना (endow with, to prepare, to furnish) तथा
 करना, सुपन्न बनाना । उपमासः रभिष्ठाः पृथैः पुत्राः स्वया मत्या संमिमिभुः = ये मातृभूमि के सुपुत्र वीर
 समानतापूर्ण भाव करते हैं अविषम दशामें रहते हैं और अपने कर्तव्यको वेकयसे निभाते हैं । देखो मंत्र २०५, ४५३;
 [२९७] (१) उन्निय = गौविषयक, बैटके धारमें, बल, प्रकाश, वृध, चट्टा ।

(२९९) ह्ये । नरः । मरुतः । मृरुतं । नः । तुविंऽमघासः । अमृताः । ऋतंऽज्ञाः ।
सत्यंऽश्रुतः । कत्रयः । युवानः । वृहंतंऽगिरयः । वृहत् । उक्षमाणाः ॥८॥

(ऋ० ५।५।११-८)

(३००) प्र । वुः । स्पद् । अक्रन् । सुवितायं । दावनें । अर्चं । दिवे । प्र । पृथिव्यै । ऋतम् । भरे ।
उक्षन्ते । अश्वान् । तरुपन्ते । आ । रजः । अनुं । स्वम् । भानुम् । श्रथयन्ते । अर्णवैः ॥१॥

(३०१) अमात् । एषाम् । भियसां । भूमिः । एजति । नौः । न । पूर्णा । क्षरति । व्यथिः । यती ।
दूरेऽदृशः । ये । चितयन्ते । एमंभिः । अन्तः । महे । विदथे । येतिरे । नरः ॥२॥

अन्ययः— २९९ [ऋ० ५।५।७।८; २९१ देखिए ।] ३०० वः सुविताय दावने स्पद् प्र अक्रन्, दिवे अर्चं, पृथिव्यै ऋतं प्र भरे, अश्वान् उक्षन्ते, रजः आ तरुपन्ते, स्वं भानुं अर्णवैः अनु श्रथयन्ते । ३०१ एषां अमात् भियसा भूमिः एजति, पूर्णा यती व्यथि नौः न, क्षरति, दूरे-दृशः ये एमभिः चिनयन्ते (ते) नरः विदथे अन्तः महे येतिरे ।

अर्थ— २९९ [ऋ० ५।५।७।८; २९१ देखिए ।]

३०० (वः सुविताय) तुम्हारा अच्छा कल्याण हो तथा (दावने) अच्छा दान दिया जा सके, इस-
लिए (स्पद्) याज्ञक इस कर्म का (प्र अक्रन्) उपक्रम या प्रारंभ कर रहा है, तूमी (दिवे अर्चं)
प्रकाशक देव की, खुलोककी पूजा कर और मैं भी (पृथिव्यै) मातृभूमि के लिए (ऋतं प्र भरे) स्तोत्र का
गायन करता हूँ । वे वीर (अश्वान् उक्षन्ते) अपने घोड़ों को बलवान बनाते हैं तथा (रजः आ तरुपन्ते)
अन्तरिक्षसे भी परे चले जाते हैं और (स्वं भानुं) अपने नेत्रको (अर्णवैः) समुद्रों से-समुद्रपर्यटनोंद्वारा-
समुद्रमें से भी (अनु श्रथयन्ते) कैला देते हैं ।

३०१ (एषां) इनके (अमात् भियसा) बलके डरसे (भूमिः एजति) पृथ्वी काँप उठती है
और (पूर्णा) वस्तुओं से भरी होने के कारण (यती) जाते समय (व्यथिः नौः न) पीड़ित होनेवाली
नौका के समान यह (क्षरति) आन्दोलित, स्पन्दित हो उठती है । (दूरे-दृशः) दूरसे दिखाई देनेवाले,
(ये) जो (एमभिः) धेगयुक्त गतियों से (चितयन्ते) पहचाने जाते हैं, वे (नरः) नेता वीर (विदथे
अन्तः) युद्ध में रहकर (महे) बड़प्पन पाने के लिए (येतिरे) प्रयत्न करते हैं ।

भाषार्थ— [२९९ ऋ० ५।५।७।८; २९१ देखिए ।] ३०० सयका भला हो और सयको सहायता पहुँचे, इन हेतु से
याज्ञक इस यज्ञका प्रारंभ करता है । प्रकाशक देवताकी पूजा करो और मातृभूमिके सुक्तोंका गायन करो । वीर अपने घोड़ों
को किसी भी भूभाग पर चढाई करनेके लिये सज्ज दशामें रखते हैं और (विमान पर चढकर) अन्तरिक्षमें संचार करते हैं,
(तथा नौका एवं जहाजों परसे समुद्रयात्रा करके समुद्रतीरों देशोंमें अपना तेज फैला देते हैं) । ३०१ इन वीरोंमें भारी बल
विद्यमान है, इस कारणसे भूमंडल परके देश मारे डरके काँपने लगते हैं । लड़ी हुई परिपूर्ण नौका जिस तरह पवनके कारण
हिलनेडोलने लगी, तो तनिक मय प्रतीत होने लगता है, ठीक उसी प्रकार सभी लोग इनकी दीप्रगामिता के परिणाम-
स्वरूप कुछ भय में भयभीत हो जाते हैं । चूँकि इनका धावा विद्युत्गति से हुआ करता है, अतः इन वीरों को सभी
पहचानते हैं । जब वे रणक्षेत्र में शत्रुदल से जूझते हैं, तब इनके मनमें एक ही विचार तथा उपाय जागृत रहता है कि,
यथासंभव बड़प्पन प्राप्त करना ही चाहिए ।

टिप्पणी— [२९९] [ऋ० ५।५।७।८; २९१ देखिए ।] [३००] (१) तरुयः = जीतनेवाला, तरुयति = चढाई
करना, तरुस् = लडाई, छेड़व, हमला करना । (२) स्पद् (सशु) = दृष्ट, होना, याज्ञक, निरीक्षक । स्वं भानुं अर्णवैः
अनु श्रथयन्ते = अपना तेज समुद्रोंके परे ले जाकर फैला देते हैं । [३०१] (१) दूरे-दृशः = दूरसे दीख
पड़नेवाले, दूरदर्शिता से कार्य करनेवाले, दूरदर्शी ।

- (३०२) गवांसइव । श्रियसे । शृङ्गम् । उत्सृजम् । सूर्यः । न । चक्षुः । रजसः । विसर्जने ।
 अत्याऽइव । सुधम्भः । चारवः । स्थन । मर्याऽइव । श्रियसे । चेतथ । नरः ॥३॥
- (३०३) कः । वः । महान्ति । महताम् । उत् । अश्रवत् । कः । काव्या । मरुतः । कः । ह । पाँस्या ।
 यूयम् । ह । भूमिम् । किरणम् । न । रेजथ । प्र । यत् । भरध्वे । सुविताय । दावने ॥४॥

अन्यथा— ३०२ (हे) नरः । गवांसइव उत्तमं शृङ्गं श्रियसे, रजसः विसर्जने, सूर्यः न, चक्षुः; अत्याऽइव
 सु-भ्यः चारवः स्थन, मर्या इव, श्रियसे चेतथ ।

३०३ (हे) मरुतः ! महतां वः महान्ति कः उत् अश्रवत्, कः काव्या, कः ह पाँस्या, यत्
 सुविताय दावने प्र भरध्वे यूयं ह, किरणं न, भूमिं रेजथ ।

वर्ष- ३०२ हे (नरः !) नेता वीरो ! (गवांसइव उत्तमं शृङ्गं) गौश्रों के अच्छे साँग के तुह्य (श्रियसे)
 शोभा के लिए तुम सुन्दर शिरोवेष्टन धारण करने हो, तथा (रजसः विसर्जने) अँधेरा दूर हटाने के
 लिए (सूर्यः न चक्षुः) सूर्य की नाईं तुम लोगों के नेत्र यन्त्रे हो । (अत्याऽइव) तुम शाहूगामी घोड़ों के
 समान स्वयमेव (सु भ्यः) उत्तम वने हुए एवं (चारवः) दर्शनीय (स्थन) हो और (मर्याऽइव) मर्याओं
 के समान (श्रियसे चेतथ) एख्यप्रगति के लिए तुम सचेष्ट वने रहते हो ।

३०३ हे (मरुतः !) धीर मरुते ! (महतां वः) तुम जैसे महान सैनिकों की (महान्ति) महानता
 या घडप्पन की (कः उत् अश्रवत्) भला कौन परायरी करता है ? (कः काव्या ?) कौन भला तुम्हारे
 काव्य रचने की स्फूर्ति पाता है ? (कः ह पाँस्या) किसे भला तुम्हारे तुह्य सामर्थ्य प्राप्त हुए ? (यत्)
 जय (सुविताय दावने) अत्यन्त उच्च कोटिके दान देनेके लिए तुम (प्र भरध्वे) पर्याप्त धन पाता हो, तब
 (यूयं ह) तुम सचमुच (किरणं न) एकाध धूलिकणके समान (भूमिं रेजथ) पृथ्वीको भी हिला देते हो ।

भाषार्थ- ३०२ वे धीर शोभा के लिए मार्ग पर शिरोवेष्टन धर देते हैं । जैसे सूर्य अँधेरे को हटाना है, जैसे ही वे
 धीर जनता की उदासीनता को दूर भगा देने हैं और जैसे उमंग एवं होमले से भर देते हैं । घुड़दौड़ के लिए तैयार
 किए हुए घोड़े जैसे सुन्दर प्रणीत होते हैं, जैसे ही वे मनोहर स्वरूपवाले होते हैं और हमेशा अपनी प्रगति तथा ईश्वर-
 शालिता करने के लिए प्रयत्न करते रहते हैं ।

३०३ हम भवनीक पर भला देना कौन है, जो इन वीरोंके समकक्ष बन सके ? इनके अतिरिक्त क्या कोई
 ऐसा है, जिसके विषयमें गौरवपूर्ण काव्योंका सूजन कोई करे ? इनमें जो वीरता है, जो पुराणार्थ है, भला वह किमी दूरमें
 पाये भी जाते हैं ? शिम ममय वे भूमि भूमि दान देनेके लिए प्रसुर धन कटोभनेकी चेष्टामें संलग्न रहते हैं अथवा भीष्म
 एवं हीमहर्षण युद्ध छेड़ देते हैं, तब समूची पृथ्वी विचलित हो उठती है, साता भू-मंडल रंजित हो जाता है ।

टिप्पणी- [३०२] (१) रजसम् = धूलि, पाग, किण, अँधेरा, मानसिक अज्ञान, अस्तरिध, मेघ । (२) मर्याः =
 मार्ग, मानव, पुत्रक, वृद्धा (Suitor) । मर्याः इव श्रियसे चेतथ = दुहरे के समान शोभा के लिए तुम
 प्रयत्न करते हो ।

[३०३] (१) किरण = किरण, धूलिकण, किरणपत्र ईं दीप्त पड़नेवाला कण ।

(३०६) वयः । न । ये । श्रेणीः । पत्तुः । ओजसा । अन्तान् । दिवः । बृहतः । सानुनः । परि ।
अर्थासः । एपासु । उभयै । यथा । विदुः । प्र । पर्वतस्य । नभनन् । अचुच्युः ॥७॥
(३०७) मिमातु । द्यौः । अदितिः । वीतये । नः । सम् । दानुञ्चित्राः । उपसः । यतन्ताम् ।
आ । अचुच्युः । दिव्यम् । कोशम् । एते । ऋषे । रुद्रस्य । मरुतः । गृणानाः ॥८

(श. ५।६।१।१-४, ११-१६)

(३०८) के । स्थ । नरः । श्रेष्ठतमाः । ये । एकः एकः । आऽप्य ।
परमस्याः । पराऽवतः ॥१॥

अन्वयः— ३०६ ये वयः न, श्रेणीः भोजसा दिवः अन्तान् बृहतः सानुनः परि पत्तुः, यथा उभये विदुः
एपां अर्थासः पर्वतस्य नभनन् प्र अचुच्युः ।

३०७ द्यौः अदितिः नः वीतये मिमातु, दानु-चित्राः उपसः सं यतन्तां, (हे) ऋषे । गृणानाः
एते रुद्रस्य मरुतः दिव्यं कोशं आ अचुच्युः ।

३०८ (हे) श्रेष्ठ-तमाः नरः । के स्थ ? ये एकः-एकः परमस्याः परावतः आप्य ।

अर्थ— ३०६ (ये) जो वीर (वयः न) पंछियों का तरह (श्रेणीः) पंक्तिरूपमें समूह में (भोजसा)
वेगसे (दिवः अन्तान्) आकाश के दूसरे छोरतक तथा (बृहतः) घड़े घड़े (सानुनः) पर्वतों के शिखर
पर भी (परि पत्तु) चारों ओरसे पहुँचते हैं । (यथा) जैसे एक दूसरेका घल (उभये विदुः) परस्पर जान
लेते हैं, वैसे ही ये कर्म करते हैं । (एपां अर्थासः) इनके घोड़े (पर्वतस्य नभनन्) पहाड़ के टुकड़े करके
(प्र अचुच्युः) नीचे गिरा देते हैं ।

३०७ (द्यौः) एलोक तथा (अदितिः) भूमि (नः वीतये) हमारे सुपसमाधानके लिए (मिमातु)
तैयारी कर लें, (दानु-चित्राः) दानुद्वारा आश्चर्यचकित कर डालनेवाले (उपसः) उपकाल हमारे लिए
(सं यतन्तां) भली भाँति प्रयत्न करें । हे (ऋषे !) ऋषिवर ! (गृणानाः) प्रशंसित हुए (एते) ये
(रुद्रस्य मरुतः) वीरभद्र के वीर मरु (दिव्यं कोशं) दिव्य कोश या भाण्डार को (आ अचुच्युः)
सभी ओर से उगडेल देते हैं ।

३०८ हे (श्रेष्ठ-तमाः नरः !) अति उच्च कौटिक के तथा नेता के पदपर अधिष्ठित वीरो ! तुम (के
स्थ) कौन हो ? (ये) जो तुम (एकः-एकः) अकेले अकेले (परमस्याः परावतः) अति सुदूर देश से
यहाँ पर (आप्य) आते हो ।

भाषार्थ— ३०६ में वीर पंक्ति में रहकर समान रूप से पग उठाते एवं धरते हुए चलने लगते हैं और इनकी वेग-
शक्त मति के कारण दूसरों को अचकित कर देते हैं, जिनमें से अन्ततः के अन्तिम छोर तक इसी भाँति जाते रहेंगे ।
पर्वतश्रेणियों पर भी ठीक इसी प्रकार वे चल आते हैं । एक दूसरे की शक्ति से परिचित वीर जैसे लड़ते हैं, वैसे ही वे
जूमते हैं और इनके घोड़े पहाड़ों तक को चकनाचूर कर आगे निकल जाते हैं । ३०७ एलोक तथा भूलोक हमारे सुख
को बढ़ा दें । उपकाल का प्रारम्भ होते ही देन देने का प्रारम्भ हो जाय । ये सराहनीय वीर विजय पाकर अन्तका
गुहाकार अज्ञाना से भाँप और उस द्रविणभाण्डार को हमारे सामने उगडेल दें । ३०८ अत्यन्त सुदूरवर्ती प्रदेशों में से
बिना यकावट के आनेवाले वीर भला तुम कौन हो ?

टिप्पणी— [३०६] (१) नभन् = (नभ = कष्ट देना, घोरमोह देना) क्षति पहुँचानेवाला, नदी, दृष्टाकृत
विभाग । [३०७] (१) दिव्य = स्वर्गीय, आश्चर्यकारक । (२) च्यु = (गवाँ) बटोरना, गिर जाना । (३)
मा (माने) = मगना, समाना, तैयार करना, बाँटना, दर्शाना । (४) वीतिः = जाना, उत्पन्न करना, इत्यादि,
उपभोग, मरना, तेज ।

- (३०९) कं । वः । अर्थाः । कं । अभीश्वः । कथम् । श्रेक । कथा । यय ।
पुष्टे । सद्दः । नसोः । यमः ॥२॥
- (३१०) जघने । चोदः । एषाम् । वि । सफथानि । नरः । यमुः ।
पुत्रकुथे । न । जनयः ॥३॥
- (३११) परा । वीरासः । इतन । मर्यासः । भद्रजानयः ।
अग्निस्तपः । यथा । असथ ॥४॥

अन्वयः— ३०९ वः अभ्याः क्व ? अभीश्व क्व ? कथं श्रेक ? कथा यय ? पुष्टे सद्दः नसोः यमः ।
३१० एषां जघने चोदः, पुत्र-कुथे जनयः न नरः सफथानि वि यमुः ।
३११ हे वीरासः मर्यासः भद्र-जानयः अग्नि-तपः । यथा असथ परा इतन ।

अर्थ- ३०९ (वः अभ्याः क्व ?) तुम्हारे घोड़े किधर है ? (अभीश्व-क्व ?) उनके लगाम कहाँ है ? (कथं श्रेक ?) किसके आधार से या कैसे तुम सामर्थ्यवान हुए हो ? और तम (कथा यय ?) भला कैसे जाते हो ? उनकी (पुष्टे सद्दः) पीठपर की फाटी जीन [पर्याण] एवं (नसोः यमः) नपुनेमें डाली जानवाली रस्सी कहाँ धर दिये हैं ?

३१० जघ (एषां) इन घोड़ों की (जघने) जाँघों पर (चोदः) चायुरु लगता है, तय (पुत्र-कुथे) पुत्रप्रसूति के समय (जनयः न) स्त्रियाँ जैसे गोर्दोंको तानती हैं, वैसे ही वे (नरः) नेता वीर सफथानि उन घोड़ों की जाँघों का (वि यमुः) विशेष ढंगसे नियमन करते हैं ।

३११ हे (वीरासः) वीर, (मर्यासः) जनता के हितकर्ता, (भद्र-जानयः) उत्तम जन्म पाये हुए और (अग्नि-तपः) अग्नि तुल्य तेजस्वी वीरो ! (यथा असथ) जैसे तुम भय हो, वैसे हो (परा इतन) इधर आओ ।

भाषार्थ- ३०९ इन वीरों के घोड़े लगाम, पर्याण, अन्य वस्तुएँ कहाँ हैं और कैसी हैं ?

३१० घुड़सवार होने पर ये वीर जब अश्वजघापर कोटे लगाना शुरू करते हैं, तब ये घोड़े अपनी जघाओंको विस्तृत करने लगते हैं, पर ये वीर सैनिक उन्हें नियमित करते अर्थात् रोक देते हैं। (अपनी जघाओंसे पोर्कों को दृढ़ धरते हैं, हिलने नहीं देते हैं ।)

३११ वीर हमारे निकट आ जायें ।

टिप्पणी- [३०९] (१) सद्दस् = घर, आसन, बैठ जाने का साधन, जीन । “ नसोः यमः ? = क्या घोड़ों के नपुनें में रस्सी डालते थे ! आसकल घोड़े के मुँह में लौहमय ढालाका डाल कर उसे लगाम लगा देते हैं । इस मंत्र में ‘ अभ्याः ’ पद पाया जाता है और अन्त में (नसोः यमः) ‘ नपुनेंमें रस्सी ’ रखने या निर्देश है । यह प्रयोग विचार करनेयोग्य है ।

[३१०] (१) नर- सफथानि वि यमु = वीर घोड़े पर अचल, अटल, अडिग हो बैठे, ताकि वह घोड़े पर से न गिर जाय ।

(३१२) से । ईम् । वहन्ते । आशुभिः । पिन्तः । मदिरम् । मधु ।

अत्र । अवांसि । दधिरे ॥११॥

(३१३) येषाम् । श्रिया । अधि । रोदसी इति । त्रिऽभ्राजन्ते । रथेषु । आ ।

दिवि । रुक्मऽइव । उपरि ॥१२॥

(३१४) युवा । सः । मारुतः । गणः । त्वेपरथः । अनेघः ।

शुभम्ऽयावा । अप्रतिऽस्तुतः ॥१३॥

अवयव — ३१२ ये मदिर मधु पिन्त आशुभिः ई वहन्ते अत्र अवांसि दधिरे ।

३१३ येषां श्रिया रोदसी अधि, उपरि दिवि रुक्म इव, रथेषु आ विभ्राजन्ते ।

३१४ स मारुत गण युवा त्वेपर-रथ. अनेघ. शुभ यावा अ-प्रति-स्तुतः ।

अर्थ- ३१२ (ये) जो (मदिर मधु) मिठासमरा सोमरस (पिन्त) पीनेवाले वीर (आशुभिः) वेगवान घोड़ों के साथ (ई वहन्ते) शास्त्र चले जाते ह, वे (अत्र) यहाँ पर (अवांसि दधिरे) बहुतसा धन वे देते ह ।

३१३ (येषां श्रिया) जिन की शोभासे (रोदसी) छुलोक तथा भूलोक (अधि) अधिष्ठित-सुशोभित हुए ह, वे वीर (उपरि दिवि) ऊपर आकाश में (रुक्म इव) प्रकाशमान सूर्य के तुल्य (रथेषु आ विभ्राजन्ते) रथों में घातमान होते ह ।

३१४ (स) यह (मारुत गण) वीर मरुतों का संघ (युवा) तरुण, (त्वेपर-रथः) तेजस्वी रथ में घेठेनेवाला, (अ-नेघ) अनिर्दनीय, (शुभम्-यावा) शुभ कार्य के लिए ही हलचल करनेवाला और (अ प्रति स्तुत) अपराजित- सदैव विजयी है ।

भावार्थ- ३१२ अच्छे अस्त्रगण का सेवन करना चाहिये और वेगवान चाहनों द्वारा शत्रुसेनापर आक्रमण करना उचित है, क्योंकि ऐसा करनेसे उच्च कीर्ति का धन मिलता है ।

३१३ रथों में बैठकर वीर सैनिक जब कार्य करने लगते हैं, तब वे अतीव सुदाने लगते हैं ।

३१४ वीरों का समुदाय सशक्त करनेमें निरत, निर्याप, हमेशा विजयी तथा लक्ष्यबलवत् उमरा एव उत्साह से परिपूर्ण रहता है ।

टिप्पणी- [३१२] (१) अयस् = सुनना, कीर्ति, धन मन्त्र, प्रशस्तनीय कृत्य । यहाँ पर 'अवांसि' बहुवच. नाम्न पद है, इत्यल्प 'यश्' अर्थ लेने की अपेक्षा 'घन' अर्थ करना, ठीक प्रतीत होता है क्योंकि यश का अनेक होनेका समर नहीं, लेकिन घन विविध प्रकार के हुआ करते हैं, अतः बहुवचनी प्रयोग किये जानेपर 'अवांसि' का अर्थ धनसमूह करनाही ठीक है ।

[३१३] रुक्मः = सुवर्णका टुकड़ा, सुहर, प्रकाशमान । दिवि रुक्म = आकाश में प्रकाशमान (सूर्य) ।

[३१४] स्तु = ब्रह्मा, उठा लेना, ब्याप्त होना । प्रतिस्तु = ब्रह्मा (परामृत करना) अ-प्रतिस्तुतः = विजयी, जो कभी न हारा हुआ हो ।

- (३१५) कः । वेद् । नूनम् । एषाम् । यत्र । मदन्ति । धृतयः ।
 ऋतऽजाताः । अरेपसः ॥१४॥
- (३१६) यूयम् । मर्तेम् । विपन्यवः । प्रऽनेतारः । इत्या । धिया ।
 श्रोतारः । यामऽहृतिषु ॥१५॥
- (३१७) ते । नः । वसन्ति । काम्या । पुरुऽचन्द्राः । रिशादसः ।
 आ । यज्ञियासः । ववृत्तन ॥१६॥

अन्वयः— ३१५ धृतयः ऋत-जाताः अ-रेपसः यत्र मदन्ति एषां कः नूनं वेद् ?
 ३१६ (हे) वि-पन्यवः ! यूयं इत्या मर्ते प्र-नेतारः याम-हृतिषु धिया श्रोतारः ।
 ३१७ पुरु-चन्द्राः रिश-अदसः यज्ञियासः ते नः काम्या वसन्ति आ ववृत्तन ।

अर्थ- ३१५ (धृतयः) शत्रुओं को हिलानेवाले, (ऋत-जाताः) सत्य के लिए जन्मे हुए और (अ-रेपसः) निष्पाप ये धीर (यत्र मदन्ति) जहाँ आनन्द का उपभोग लेते हैं, वह (एषां) इनका डीर (कः नूनं वेद्) सचमुच कौन भला जानता है ?

३१६ हे (वि-पन्यवः) प्रशंसनीय धीरो ! (यूयं) तुम (इत्या) इस प्रकारसे (मर्ते प्र-नेतारः) मान्यों को उत्कृष्ट प्रेरणा देनेवाले हो और (याम-हृतिषु) शत्रुदल पर चढाई करते समय पुकारने पर तुम (धिया) मनःपूर्वक यड़ी लगानसे उस प्रार्थना को (श्रोतारः) सुन लेते हो ।

३१७ हे (पुरु-चन्द्राः) अत्यन्त आह्लाददायक, (रिश-अदसः) शत्रुदल के विनाशकर्ता (यज्ञियासः !) तथा पूज्य धीरो ! (ते) पेले प्रसिद्ध तुम (नः काम्या) हमारे अभीष्ट (वसन्ति) धन हमें (आ ववृत्तन) घापिस लौटा दो ।

भाषार्थ- ३१५ कौनसा स्थान धीरों को आनन्द देता है ?

३१६ शत्रु पर चढाई करते वक्त मददके लिए पुकारा जाय, तो ये धीर सैनिक तुम्हें उस प्रार्थना पर ध्यान देते हैं, सहायार्थी की पुकार सुन लेते हैं ।

३१७ धीरों की सहायता से हमें सभी प्रकारके धन मिले । [यदि शत्रुने उन्हें डीन लिया हो, तो वह सारी सभ्यता हमें पुनः वापस मिले ।]

टिप्पणी- [३१५] (१) ऋत-जात = सत्य के लिए पैदा हुआ, सीधा कार्य करने के लिए ही जो अपने जीवन का बलिदान देता है । (२) रेपस् = हीम, टेडा, क्रूर, कलंक, पाप । अ-रेपस् = ऊँचा, सरल, शान्त, निष्कलङ्क, पापाहित ।

[३१६] (१) यामः = दुश्मनों पर किया जानेवाला आक्रमण, हमला । (२) हृतिः = पुरार, पुकारा । याम-हृतिः = शत्रुओं पर हमले चढाते समय की हुई पुकार ।

अत्रिपुत्र एवयामरुत् ऋषि (ऋ० पा० ७१-९)

(३१८) प्र । वुः । महे । मृतयः । यन्तु । विष्णवे । मरुत्वते । गिरिऽजाः । एवयामरुत् ।
 प्र । शर्षाय । प्रऽयज्यवे । सुऽखादये । त्वसे । मन्दत्ऽइष्टये । धुनिऽव्रताय । शर्वसे ॥१॥
 (३१९) प्र । ये । जाताः । महिना । ये । च । नु । स्वयम् । प्र । विदना । व्रुवते । एवयामरुत् ।
 ऋत्या । तत् । वः । मरुतः । न । आऽष्टये । शर्वः । दाना । मद्वा । तत् । एयाम् ।
 अधृष्टासः । न । अद्रयः ॥२॥

अन्वयः- ३१८ एवयामरुत् गिरि-जाः मृतयः यः मरुत्-वते महे विष्णवे प्र यन्तु, प्र-यज्यवे सु-
 खादये त्वसे मन्दत्-इष्टये धुनि-व्रताय शर्वसे शर्षाय प्र ।

३१९ ये महिना प्र जाताः, ये च नु स्वयं विदना प्र, एवयामरुत् व्रुवते, (हे) मरुतः । यः तत्
 दानाः कृत्वा न जा-धृषे, एषां तत् दाना मद्वा, अद्रयः न, न-धृष्टासः ।

वर्ष- ३१८ (एवयामरुत्) मरुतों के अनुसरण करनेवाले ऋषि की (गिरि-जाः) वाणी से निकले
 हुए (मृतयः) विचार एवं काव्यमय श्लोक (वः) तुम्हारे (मरुत्-वते) मरुतों से युक्त (महे विष्णवे)
 यज्ञे व्यापक देव के पास (प्र यन्तु) पहुँचें । तुम्हारे (प्र-यज्यवे) अत्यन्त पूजनीय, (सु-खादये) अच्छे
 फल, बल्य धारण करनेवाले, (त्वसे) बलवान्, (मन्दत्-इष्टये) अच्छी आकांक्षा करनेवाले, (धुनि-
 व्रताय) दानु वगैरे दाने का व्रत लेनेवाले (शर्वसे) वेगपूर्वक जानेवाले (शर्षाय) बल के लिए ही
 तुम्हारे विचार एवं काव्यप्रवाह (प्र यन्तु) प्रयतित हो चले ।

३१९ (ये) जो अपनी निजी (महिना) महारव से (प्र जाताः) प्रकट हुए (ये च) और जो (नु)
 स्वयमुच (स्वयं विदना) अपनी निजी विद्या से (प्र) प्रसिद्ध हुए, उन वीरों का (एवयामरुत् व्रुवते)
 एवयामरुत् ऋषि वर्णन करता है । हे (मरुतः !) वीर मरुतों ! (यः तत् दानः) तुम्हारा यह बल
 (ऋत्या) ऋषि से युक्त होने के कारण (न आ धृषे) पराभूत नहीं हो सकता है, (एषां तत्) ऐसे तुम
 वीरों का यह बल (दाना) दानसे (मद्वा) तथा मदत्वि से युक्त है । तुम ता (अद्रयः न) पर्यतों के समान
 (न-धृष्टासः) किसी से परास्त न होनेवाले हो ।

भाषार्थ- ३१८ ऋषि सर्वव्यापक ईश्वर के सम्मुख में विचार करते हैं, उसके रत्नों का गायन करते हैं और उन
 की प्रतिभा-शक्ति परमात्मा की ओर मुद्र जाती है । उनी प्रसार, बल बढ़ा कर शत्रु को मरिचामेंट करने के गुरुरर कार्य
 की ओर भी बननी मनोवृत्ति मुक्त जाय ।

३१९ तुम्हारी निवा एवं महना अवाधान छोड़िकी है । तुम्हारा बल इतना विशाल है कि, कोई तुम्हें पर-
 दलित तथा पराभूत या पराधन नहीं कर सकता है । तुम्हारा दान भी बहुत बड़ा है और जैसे पर्वत अपनी जगह स्थिर
 रखा करता है, वैसे ही तुम विषय नहीं रहते हो, उधर भले ही दुश्मन भीषण हमले कर डालें, लेकिन तुम अपने स्थान
 पर अचल, अचल तथा अटिग रह कर उसे दबा देते हो ।

टिप्पणी- [३१८] (१) मन्द = सुदौरी होना, उपाग होना, आनन्दित बनना, सम्मान देना, पूजा करना । (२)
 इष्टिः = इष्ट-आकांक्षा, विचार, हृत् वस्तु यज्ञ । (३) एवयाम = संरक्षण करना, मार्ग परसे जाना, निश्चित राह परसे
 चलना । एवयामरुत् = मरुतों के पथ से जानेवाला, मरुतों का अनुगामी, ऋषि । (सा० भा०) ।

[३१९] (१) अद्रु = बल बुद्धि, सहायन, दापि, निश्चय, आयोजना, इच्छा । (२) दानस = बल,
 शत्रु का नाश करने में समर्थ बल । (३) अधृष्ट = अकम्पित ।

(३२०) प्र । ये । दिवः । बृहत्तः । शृण्विरे । गिरा । सुऽशुक्रानः । सुऽभ्यः । एवयामरुत् ।
 न । येषाम् । इरी । सधस्ये । ईष्टे । आ । अग्रयः । न । स्वविद्युतः । प्र ।
 स्पन्द्रासः । धुनीनाम् ॥३॥

(३२१) सः । चक्रमे । महतः । निः । उरुऽक्रमः । समानस्मात् । सदेसः । एवयामरुत् ।
 यदा । अयुक्त । त्मना । स्वात् । अधि । स्नुभिः । विऽस्पर्धसः । विऽर्महसः ।
 जिगति । शेऽवृधः । नृऽभिः ॥४॥

अन्वयः— ३२० सु-शुक्रानः सु-भ्यः ये बृहत्तः दिवः प्र शृण्विरे, एवयामरुत् गिरा, येषां सध-स्ये इरी न आ ईष्टे, अग्रयः न, स्व-विद्युतः, धुनीनां प्र स्पन्द्रासः ।

३२१ यदा एवयामरुत् स्नुभिः नृभिः त्मना स्वात् अधि अयुक्त, (तदा) उरु-क्रमः सः समानस्मात् महतः सदेसः निः चक्रमे, वि-महसः शे-वृधः वि-स्पर्धसः जिगति ।

अर्थ- ३२० (सु-शुक्रानः) अत्यन्त तेजस्वी तथा (सु-भ्यः) उत्तम ढंग से रहनेवाले (ये) जो वीर (बृहत्तः) विशाल (दिवः) अन्तरिक्ष में ने जाने समय जनता की की हुई स्तुतियाँ (प्र शृण्विरे) सुनते हैं, उनकी ही (एवयामरुत् गिरा) एवयामरुत् कृपि अपनी वाणीद्वारा स्तुति करना है । येषां सध-स्ये) जिनके प्रदेस में उनके (इरी) प्रेरक का हैसियत से उनपर (न आ ईष्टे) कोई भी प्रभुत्व नहीं प्रस्थापित करता है, ये (अग्रयः न) अग्नि के तुल्य (स्व-विद्युतः) स्वयंप्रकाशी वीर (धुनीनां) गर्जना करनेवाले शत्रुओं को भी (प्र स्पन्द्रासः) अत्यन्त विकम्पित कर डालनेवाले हैं ।

३२१ (यदा एवयामरुत्) जब एवयामरुत् कृपि अपने (स्नुभिः नृभिः) वेगवान लोगों के साथ (त्मना) स्वयं ही (स्वात्) अपने निवासस्थान के समीप (अधि अयुक्त) अश्व जोतकर तैयार हुआ, तब (उरु क्रमः सः) यदा भाग आक्रमण करनेवाला वह मरुतों का संघ (समानस्मात्) सब के लिए समान पसे (सधसः) अपने निवासस्थान से (निः चक्रमे) बाहर निकल पड़ा और (वि-महसः) विलक्षण तेजस्वी एवं (शे-वृधः) सुख बढ़ानेवाले वे वीर (वि-स्पर्धसः) बिना किसी स्पर्धा से गुरुरत उधर (जिगति) आ पहुँचे ।

भावार्थ- ३२० ये वीर तेजस्वी तथा अरुत आकर रहनेवाले हैं । ये स्वयं-दायित्व हैं, इन पर अन्य किसी की प्रभुता नहीं प्रस्थापित है । ये स्वयंप्रकाशी होने हुए रहनेवाले बड़े बड़े वीर दुश्मनों को भी भयभीत कर देते हैं, जिस से वे काँपने लगते हैं ।

३२१ जब कृपि इन वीरों का सुस्वागत करने के लिए तैयार हुआ, तब ये वीर उस अपने निवासस्थल से, जो सब के लिए समान था, निकलकर स्वयं ही उग के समीप जा पहुँचे । ये वीर बड़े ही तेजस्वी एवं जनता का सुख बढ़ानेवाले थे ।

टिप्पणी- [३२०] (१) धुनि (धृन् शब्दे) = गरजनेवाला, बृहत्त मानेवाला, (धृन् कम्पने) हिलानेवाला । (२) सु-भू = बलयान, समोह्य, अच्छे ढंग से रहनेवाले । (३) शुभ्रवन् = शुभ्र = प्रकाशमान = प्रकाशमान, तेजस्वी । 'येषां इरी न ईष्टे' = जिन का दूसरा कोई भी प्रेरक नहीं होता है, अर्थात् जो स्वयं-दासक हैं । (संख १८, २९२, ३०८, देखिए ।)

[३२१] (१) समानं सद्दः = सब के लिए समान रूप से सुखा हुआ निवासस्थान, भैतियों के बैरक (Barracks), (संख ११०, ३२५, ४४० देखिए ।) (२) वि-स्पर्धस् = विशेष स्पर्धा करनेवाले, स्पर्धातटित । (३) शे-वृधः = (शं=सुख, दास) = सुख में बड़े हुए, दासों में बड़े हुए- निष्पन्न, पारंगत । (तेग = सुख, संगति, ऊँचाई+वृधः) सुख-संपदा बढ़ानेवाले ।

- (३२२) स्वनः । न । वः । अमऽवान् । रेजयत् । वृषा । त्वेपः । ययिः । तव्विपः । एवयामरुत् ।
येन । सहन्तः । ऋज्वत् । स्वऽरौचिपः । स्थाऽरश्मानः । हिरण्ययाः । सुऽआयुधासः ।
इष्मिणः ॥५॥
- (३२३) अपारः । वः । महिमा । वृद्धऽशयसः । त्वेपम् । शयः । अवतु । एवयामरुत् ।
स्थातारः । हि । प्रऽसितौ । सुऽदृशि । स्वन । ते । नः । उरुप्यत् । निदः । शुभ्र-
कांसः । न । अग्रयः ॥६॥

अन्वयः— ३२० वः अम-वान् वृषा त्वेपः ययिः तव्विपः स्वनः एवयामरुत् न रेजयत्, येन सहन्तः
स्व-रोचिपः स्थाऽ-रश्मानः हिरण्ययाः सु-आयुधासः इष्मिणः ऋज्वत् ।

३२३ (हे) वृद्ध-शयसः । वः महिमा अ पारः, त्वेपं शयः एवयामरुत् अवतु, प्रसितौ हि
संहृदि स्थातारः स्वन, अग्रयः न, शुशुक्वांसः ते नः निदः उरुप्यत् ।

अर्थ— ३२० (वः अम जान्) तुम्हारा चलवान (वृषा) समर्थ, (त्वेपः) तेजस्वी, (ययि) योग से
जानेहारा व्यं (तव्विपः स्वन) प्रभावशाली शब्द । एवयामरुत् न रेजयत् । एवयामरुत् ऋषि को
कंपित या भयभीत न करे । (येन) जिससे (सहन्तः) शत्रुओं का प्रतिकार करनेहारे (स्व-रोचिपः)
जपने तेजसे युक्त, (स्थाऽ-रश्मानः) स्थायी तेज धारण करनेहारे, (हिरण्ययाः) सुवर्णालंकार पहननेवाले,
(सु-आयुधासः) अच्छे दृष्टियार रखनेवाले तथा (इष्मिणः) अन्न का संग्रह समीप रखनेवाले तुम
धीर प्रगति के लिए (ऋज्वत्) प्रयत्न करते हो ।

३२३ हे (वृद्ध-शयसः !) प्रयत्न सामर्थ्यवान धीरो ! (वः महिमा) तुम्हारा बड़प्पन सचमुच
(अ पारः) असीम एवं अमर्याद है । तुम्हारा (त्वेपं शयः) तेजस्वी बल इस (एवयामरुत् अवतु)
एवयामरुत् ऋषि का रक्षण करे । शत्रु का (प्रसितौ) आक्रमण होने पर भी (संहृदि) दृष्टिपथ में
ही तुम, स्थातार स्थान) स्थिर रहते हो । (अग्रयः न) अशितुष्य (शुशुक्वांस) तेजस्वी (ते) मेसे
तुम (नः) हमें (निदः उरुप्यत्) निन्दक से बचाओ ।

भावार्थ— ३२२ तुम्हारी जनि में सामर्थ्य है, पर वह ऋषि उस गम्भीर रक्षा से भयभीत नहीं होगा है, क्योंकि
इस के साथ तुम अच्छे दायर लेकर सब की उन्नति के लिए तत्प्रेष रहा करते हो ।

३२३ तुम धीरों की महिमा असीम है और उन के सामर्थ्य से ऋषियों का रक्षण होता है । दुश्मनों की
बधाई हो, जो वे समीप ही रहते हैं, इमलिए धीर आर जनताकी मदद करते हैं । हमारी इच्छा है कि, वे हमें निन्दकों
से बचायें ।

टिप्पणी— [३२२] (१) अम = चल, योग, भय, धार, अनुवायी । (२) ऋज्वत् = वेग से दौड़ना, हुसना,
प्रयत्न करना, शोभा लाना । (३) सह् = सहन करना, धारण करना, पराभव करना, प्रतिकार करना ।

[३२३] (१) प्रसितौ = जाला, घंघन, हमला, पाकि, सत्ता । (२) उरुप्यु = रक्षा करने की इच्छा
करनेहारा । (उरुप्यत्) प्रतिकार करना, रक्षा करना ।

(३२४) ते । रुद्रासः । सुऽमराः । अग्रयः । यथा । तुविऽधुम्नाः । अबन्तु । एवयामरुत् ।
दीर्घम् । पृथु । पप्रथे । सर्व । पार्थिवम् । येषाम् । अज्मेपु । आ । गृहः । शर्धांसि ।
अद्भुतऽएनसाम् ॥७॥

(३२५) अद्वेषः । नः । मरुतः । गातुम् । आ । इतन । श्रोत । हवम् । जरितुः । एवयामरुत् ।
विष्णोः । महः । सुऽमन्यवः । युयोतन । स्मत् । रथ्यः । न । दंसना । अप ।
द्वेषांसि । सनुतरिति ॥८॥

(३२६) गन्त । नः । यज्ञम् । यज्ञियाः । सुऽशमि । श्रोत । हवम् । अरक्षः । एवयामरुत् ।
ज्येष्ठासः । न । पर्वतासः । विऽओमनि । यूयम् । तस्य । प्रऽचेतसः । स्यात् । दुःऽधर्तवः । निदः ॥९॥

अन्वयः— ३२४ सु-मराः, अग्रय यथा तुवि-धुम्नाः, ते रुद्रास एवयामरुत् अबन्तु, दीर्घं पृथु पार्थिवं सन्न पप्रथे, अद्भुत-एनसां येषां अज्मेपु मह शर्धांसि आ । ३०५ (हे) मरुतः ! अ-द्वेषः गातुं न आ इतन जरितु एवयामरुत् हव श्रोत, (हे) स मन्यव ! विष्णोः महः युयोतन, रथ्यः न स्मत्, दंसना सनुतः द्वेषांसि अप । ३२६ (हे) यज्ञियाः ! सु-शमि न यज्ञं गन्त, अ-रक्ष एवयामरुत् हव श्रोत, वि-ओमनि, पर्वतास न, ज्येष्ठास, प्र-चेतसः यूयं तस्य निद दुर-धर्तवः स्यात् ।

अर्थ ३२४ (सु-मराः) उच्च कोटि के यज्ञ करनेहारे, (अग्रयः यथा) अग्नि के तुल्य (तुवि धुम्नाः) अति तेजस्वी (ते रुद्रासः) वे शत्रु को रलानेवाले धीर (एवयामरुत् अबन्तु) एवयामरुत् ऋषि का संरक्षण करें । (दीर्घं) विस्तीर्ण तथा (पृथु) भव्य (पार्थिवं सन्न) भूमंडल पर का निवासस्थान उन्हीं के कारण (पप्रथे) विख्यात हो चुका है । (अद्भुत एनसां) पापरहित ऐसे (येषां) जिन वीरों के (अज्मेपु) आक्रमणों के समय (महः शर्धांसि) यड़े बड़े बल उनके साथ (आ) जाते हैं ।

३२५ हे (मरुतः) ! धीर मरुतो ! (अ-द्वेषः) द्वेष न करनेहारे तुम वीरों के (गातुं) काव्य का गायन करने के समय तुम (नः आ इतन) हमारे समीप आओ । (जरितुः एवयामरुत्) स्तुति करनेवाले, एवयामरुत् ऋषि की यह प्रार्थना (श्रोत) सुन लो । हे (स-मन्यवः) ! उस्ताही वीरो ! तुम (विष्णोः महः) व्यापक देव की शक्तियों से (युयोतन) एकरूप बनो । तुम (रथ्यः न) रथमें जोतनेयोग्य घोड़े के समान (स्मत्) प्रशंसा के योग्य हो, इसलिए (दंसना) अपन पराक्रम से, कर्म से (सनुतः द्वेषांसि) गुप्त शत्रुओं को (अप) दूर हटाओ । ३२६ हे (यज्ञियाः) ! पूज्य वीरो ! (सु-शमि) अच्छे शान्त ढंगसे (नः यज्ञं) हमारे यज्ञकी ओर (गन्त) आओ । (अ-रक्षः) आरक्षित ऐसे (एवयामरुत्) एवयामरुत् ऋषि की (हव) यह प्रार्थना (श्रोत) सुनो । (वि-ओमनि) विशेष रक्षण के कार्य में तुम (पर्वतासः न) पहाड़ों के तुल्य (ज्येष्ठासः) श्रेष्ठ हो । (प्र-चेतसः) उच्छ्रेष्ठ ढंग से विचार करनेहारे तुम (तस्य निदः) उस निन्दक के लिए (दुर-धर्तवः) दुर्धर्म-अजिण्य (स्यात्) बनो ।

गृहस्थतिपुत्र शंयुक्षपि (तृणपाणि) (ऋ० ६।१८।११-१५, २०-२१)

(३२७) आ । सखायः । सवःऽदुघाम् । धेनुम् । अजघ्नम् । उप । नच्यसा । वचः ।

सृजध्वम् । अनपस्फुराम् ॥११॥

(३२८) या । शर्षाय । मरुताय । स्वभानवे । श्रवः । अमृत्यु । पुक्षत ।

या । मृळीके । मरुताम् । तुराणाम् । या । सुम्नेः । एवऽयावरी ॥१२॥

(३२९) भरत्ऽवाजाय । अर्ष । पुक्षत । द्विता ।

धेनुम् । च । विश्वऽदौहसम् । इषम् । च । विश्वभोजसम् ॥१३॥

जम्बयः— ३२७ (हे) सखायः ! नच्यसा वचः सवर-दुघां धेनुं उप आ अजघ्वं अन्-अप स्फुरां सृजध्वं ।
३२८ या स्व-भानवे मरुताय शर्षाय अ-मृत्यु अयः पुक्षत, या तुराणां मरुतां मृळीकं, या
सुम्नेः एवया-वरी ।

३२९ भरत्-वाजाय द्विता अथ पुक्षत, विश्व-दोहसं च धेनुं विश्व भोजसं इषं च ।

जम्ब ३२७ हे (सखायः!) मित्रे! (नच्यसा वचः) नया काव्यगायन सुनते हुए (सवर-दुघां) विपुल दूध देनेहारी (धेनुं उप) गाय के निम्न (आ अजघ्वं) आभे और उस (अन्-अप-स्फुरां) स्थिर गौ को (सृजध्वं) बंधन में से छोड़ दो ।

३२८ (या) जो (स्व भानवे) स्वयंपकारी (मरुताय शर्षाय) वीर मरुतों के दल के लिए दुग्धरूप (अ-मृत्यु) कभी नष्ट न होनेवाली (श्रवः) सम्पत्ति या (पुक्षत) उत्पादन करती है, (या) जो (तुराणां मरुतां) घेगवान वीर मरुतों को (मृळीके) आनन्द देने के लिए तत्पर धाँस पड़ती है, (या) जो (सुम्ने) अनेक सुनों के साथ (एवया-वरी) आकर इच्छा का पूर्ति करती है ।

३२९ हे वीरो! (भरत्-वाजाय) क्षत्रि भरद्वाज को (द्विता) दो दान (अथ पुक्षत) दे दो; एक तो (विश्व दोहसं धेनुं) सब के लिए दूध देनेहारी गाय और दूसरा (विश्व भोजसं) सब के भरणपोषण के लिए पर्याप्त (इषं च) अन्न ।

भाषार्थ— ३२७ मयें वाग्ध का गायन करते हुए तर्पण गौ-नाए में जाकर यथेष्ट दूध देनेहारी तथा दुहते समय निश्रम रखी रहनेवाली गौ के समीप चलकर उसे पहल बंधन से बन्धुक करना चाहिए ।

३२८ गौ अपने जीवनवर्धक दूध से वीरों को घृद्धगत करती है । वह उन्हें हर्ष देती है और कई प्रकार के सुखों को साँप लेकर उन के निम्न जाकर इच्छाओं की पूर्ति करती है ।

३२९ मरुत नात्रा में दूध देनेहारी गौ तथा यथेष्ट अन्न का सृजन करनेवाली भूमि दो वस्तुएँ समीप हों, तो जीवनविवाह की बन्धन समस्या हल होती है और आजीविका की सुविधा हुआ करती है ।

सुख, वैभवं, आरोग्य, धार्मि । (२) अ-रक्ष = (नारित रक्षा वश्य) अरक्षित । (३) वि+ओमन् = (विशेष) संरक्षण, कृपा, दया । [३२७] (१) स्फुर = दिलना । अनपस्फुर = स्थिर तथा अचक रूपसे खड़े रहना । अन्-अप-स्फुरा = दूध दुहते समय ॥ दिलते हुए शांति से खड़ी होनेवाली (गाय) । [३२८] (१) एवया = रक्षा करना, वेगपूर्क आना, इच्छापूर्ति करना । (२) अ मृत्यु-श्रवः = मृत्यु को दूर हटानेवाला यज्ञ, पुनर्त निवोद्धा हुआ धारोप्य दूध । [३२९] भरत्-वाज = एक क्षत्रि का नाम, (जो अन्न, चक एवं सम्पत्ति को ससुद्धि करता दो ।)

- (३३०) तम् । वः । इन्द्रम् । न । सुऽऋतुम् । वरुणम्ऽऽत्र । मायिनम् ।
 अर्यमणम् । न । मन्द्रम् । सुप्रऽभोजसम् । विष्णुम् । न । स्तुपे । आऽदिशे ॥१४॥
- (३३१) त्वेपम् । शर्धः । न । मारुतम् । तुविऽस्वनि । अनर्वाणम् । पूषणम् । मम् । यथा । जता ।
 सम् । सहस्रा । कारिपत् । चर्षणिऽभ्यः । आ । आविः । गृह्हा । वसु । कर्त् ।
 सुऽवेदा । नः । वसु । कर्त् ॥१५॥
- (३३२) वामी । वामस्य । धृतयः । प्रऽनीतिः । जस्तु । सूनृता ।
 देवस्य । वा । मरुतः । मर्त्यस्य । ज्ञा । ईजानस्य । प्रऽयज्यवुः ॥२०॥

अन्वय — ३३० इन्द्र न सु-ऋतु, वरुणश्च मायिन, अर्यमण न मन्द्र, विष्णु न सुप्र भोजस य त आ दिशे स्तुपे । ३३१ न त्वेप तुवि स्वनि अन् अर्वाण पूषण मारुत शर्ध यथा चर्षणिभ्य शतास सहस्रा स आ कारिपत्, गृह्हा वसु आवि करत्, न- वसु सु-वेदा कर्त् । ३३२ (हे) धृतय प्र-यज्यत्र मरुत- ! देवस्य वा ईजानस्य मर्त्यस्य वा वामस्य ॥ नीति वामी सूनृता जस्तु ।

अर्थ— ३३० (इन्द्र न) इन्द्रके समान (सु-ऋतु) अच्छे कर्म करनेहार (वरुणश्च) वरुण की नाउ (मायिन) कुशल कारीगर (अर्यमण न) अर्यमणे तुल्य (मन्द्र) जान-बूझापक (विष्णु न) विष्णु के जैसे (सुप्र-भोजस) पर्याप्त अन्न देनेवाले, पालनपोषण करनेहार (य त) तुम्हारे उन धीरोंके सवर्गी, हमें (आ-दिशे) मार्ग दर्शाये, इसलिए (स्तुपे) सराहना करता ह ।

३३१ (न) अत्र (त्वेप) तेजस्वी (तुवि-स्वनि) मरान् जावाज करनेहार, (अन-अर्वाण) शत्रु रहित तथा (पूषण) पोषण करनेवाले (मारुत शर्ध) उन धीर मरुतोंका साथिय बल (यथा) जैसे (चर्षणीभ्य) मानवों को (शतास) सो गकार के धन या (सहस्रास) हजारों ढग के धन एकट्ठी समय (आ कारिपत्) समीप लाये और (गृह्हा वसु) गुप्त धनको (आवि कर्त्) प्रकट करे, उसी प्रकार (न) हमें (वसु) धन (सु-वेदा) सुगमतापूर्वक प्राप्त हा सने पसा करे ।

३३२ हे (धृतय) शत्रुसेनाओं हिला देनेवाले तथा (प्र-यज्यत्र) अत्यन्त पूजनीय (मरुत !) धीर मरुतों ! (देवस्य वा) देवकी या (ईजानस्य मर्त्यस्य वा) यज्ञ करनेवाले मानवकी (वामस्य प्र नीति) धन पानकी प्रणाली (वामी) प्रशासनीय तथा (सूनृता) सत्यपूर्ण (जस्तु) हो जाण ।

भाषार्थ— ३३० अच्छे कर्म करनेहार, कुशल, जान-बूझ एवं पयास अन्नपानीय देनेवाले धीरों के का प्र वा गायक हम प्रशंसित करते हैं, क्योंकि उस के कारण सम्भव है कि हम उगी पथ का ज्ञान हो जाय । [इन मरुतों में इन्द्र का पराक्रम, वरुण की कुशलता, अर्यमा का सुखदायित्व और विष्णु का प्रजापालक व समाया हुआ है ।] ३३१ अज्ञात शत्रु एवं महाबलवान धीर मरुत अपने बल से सभी जानवांको विभिन्न ढग के धन द सुने हैं और उनी प्रकार वह सुग भी मिल सके, गसा व कर । ३३२ गाथ न्यायपूर्णक घन प्राप्त कर ।

टिप्पणी— [३३०] (१) भोजसु = खानपान, अन्न । (२) सुप्र भोजसु = भरपट अन्न देनेवाला । (सुप्र = धीरधीरे आना, सरकते हुए जाना, भुज्ज = रमा करना उपभोग लगा, सत्ताप्रदर्शन करना) = धारण आये हुए लोगों की रक्षा करनेवाला शत्रु पर सत्ता प्रस्थापित करनेवाला । (३) आ दिशे = दर्शाना, पथप्रदर्शन होना, आज्ञा देना लक्ष्यवेध करना । [३३१] (१) गृह्हा वसु = भूमि म पडा हुआ धन (धारिण चर्षति ?) गुप्त धन । (२) आ-ऋ (To bring near) समीप लाया, बगेरगा, पूर्व रूपसे बगान । (३) अर्बु = (गना हिसाया व) अर्जुन = गरिमान, घोडा, हिसक दुश्मता । अनर्वा = अ शत्रु अभावशत्रु, पित्त के समीप घोडा न हो । [मत्र द मरु [हि] १७

(३३३) सद्यः । चित् । यस्ये । चूर्कतिः । परिं । घाम् । देवः । न । एति । सूर्यः ।
स्वेपम् । शर्वः । दुधिरै । नाम । युञ्जियम् । मरुतः । वृत्रऽहम् । शर्वः । ज्येष्ठम् ।
वृत्रऽहम् । शर्वः ॥२१॥

वृहस्पतिपुत्र भरद्वाज ऋषि (ऋ० ६।१।१-११)

(३३४) वपुः । नु । तत् । चिकितुषे । चित् । अस्तु । समानम् । नाम । धेनु । पत्यमानम् ।
मत्तैषु । अन्यत् । दोहसे । पीपाय । सुकृत् । शुक्रम् । दुदुहे । पृश्निः । ऊर्धः ॥१॥

(३३५) ये । अग्रयः । न । शोशुचन् । इघानाः । द्विः । यत् । त्रिः । मरुतः । वृधन्त ।
ओरणवः । हिरण्ययासः । एषाम् । साकम् । नृग्नैः । पौस्वैभिः । च । भुवन् ॥२॥

अन्वय — ३३३ यस्य चर्कति देवः सूर्यं न, सद्य चित् छां परि एति मरुतः स्वेपं शवः यक्षियं नाम
दधिरै, शयः वृत्र-हं वृत्र-हं शवः ज्येष्ठं । ३३४ तत् धेनु समानं नाम पत्यमानं वपुः नु चित् चिकितुषे
यस्तु अन्यत् मत्तैषु दोहसे पीपाय, शुक्रं सकृत् पृश्नि ऊर्धः दुदुहे । ३३५ ये मरुत इघाना, अग्रयः
न, शोशुचन्, यत् द्वि त्रिः वृधन्त, एषां अ-रेणवः हिरण्ययासः नृग्नै पौस्वैभि च साकं भुवन् ।

अर्थ— ३३३ (यस्य) जिनका (चर्कति) कर्म (देवः सूर्यः न) प्रकाशमान सूर्य के तुल्य (सद्यः
चित्) तुरन्त (छां परि एति) चुलोकमें चारों ओर फैलता है, उन (मरुतः) धीर मरुतोंने (स्वेपं शवः)
तेजस्वी बल तथा (यक्षियं नाम) पूजनीय यज्ञ (दधिरै) प्राप्त किया। उनका वह (शयः) बल (वृत्र-हं)
वृत्रना वध करनेवाला था और सचमुच वह (वृत्र हं शवः ज्येष्ठं) वृत्रविनाशक बल उद्य कोटिका था ।

३३४ (तत्) वह जो (धेनु समानं नाम) धेनु एकही नाम है, (पत्यमानं) उसे धारण करने-
वाला (वपुः) स्वरूप (नु चित्) सचमुचही (चिकितुषे) ज्ञानी पुरपोंकी परिचित (अस्तु) रहे। (अन्यत्)
उनमेंले एक रूप (मत्तैषु) मानवोंमें मर्त्य लोकमें (दोहसे) दूध का दोहन करने के लिए गोरूप से
(पीपाय) पुष्ट होता रहता है और (शुक्रं) दूसरा तेजस्वी रूप (सकृत्) एक बारही (पृश्निः) अन्तरिक्ष
के मेघरूपी (ऊर्धः) दुग्धाशय से (दुदुहे) दोहन किया हुआ है ।

३३५ (ये मरुतः) जो मरुत-धीर (इघानाः) प्रज्वलित (अग्रयः न) अग्निके तुल्य (शोशुचन्)
घोतमान हुआ करते हैं और (यत्) जो (द्विः त्रिः) दुगुनी या त्रिगुनी भासामें घलिष्ठ होकर (वृधन्त)
पढते हैं (एषां) इनके रथ (अ रेणवः) निर्मल (हिरण्य यासः) स्वर्णरन्जित हैं, और वे धीर (नृग्नैः)
गुह्य तथा (पौस्वैभि च साकं) बलके साथ (भुवन्) प्रकट होते हैं ।

आशार्थ— ३३३ जैसे सूर्य का प्रकाश चुलोक में फैलता है, वही प्रकार मरुतोंका जल तथा बल चिकितुषे अस्तु होकर
है और धीरनेवाले शयु को कुबल देता है । ३३४ दो प्रसिद्ध गौर्य ' धेनु ' नाम से विख्यात हैं । एक धेनु नामवाली
गोमाता मानवोंके पोषणार्थ दूध देती है और दूसरी अन्तरिक्षमें रहनेवाली (मेघरूपी माता) वर्षमें एक बार जलकी यथेष्ट
वर्षा करके सबको गृह करती है । ३३५ धीर सैनिक अपने बलको दुगुना, त्रिगुना बराबे हैं और अत्यधिक बन्दे हो जाते
हैं । इन के रथ साकमुषरे तथा स्वर्णसे विभूषित हैं । अपनी बुद्धि तथा बलको व्यक्त करके वे धीर विख्यात बनते हैं ।

टिप्पणी देखिए ।] [३३९] (१) घाम = घन । (२) नीतिः = बतोंव रखने के नियम । (३) प्र नीतिः =
मांगरसकता, बतोंव । (४) सुदुत = रमणीय, सखपूर्ण, मन प्रपंक, सोय, विनयशील । [३३३] (१) वृत्रः =
(वृणोति इति) दहनेवाला, घेरनकर्ता, शत्रु, वृत्र राक्षस । (२) चर्कतिः = कृति, कर्म, बारंबार की जानेवाली कृति,
यज्ञ, रीति । (३) यक्षियं नाम = मन्त्र १ तथा १४९ टिप्पणी देखिए । [३३४] (१) वपुः = शरीर, सुन्दर, भाकृषि,

(३३६) रुद्रस्य । ये । मीळहुपः । सन्ति । पुत्राः । यान् चो इति । नु । दाधृविः । भरध्वै । विदे । हि । माता । महः । मही । सा । सा । इत् । पृश्निः । सुडन्वे । गर्भम् । आ । अधात् ॥३॥
 (३३७) न । ये । ईपन्ते । जनुषः । अया । नु । अन्तरिति । सन्तः । अवद्यानि । पुनानाः । निः । यत् । दुहे । शुचयः । अतुं । जोषम् । अनुं । श्रिया । तन्वम् । उक्षमाणाः ॥४॥
 (३३८) मधु । न । येषु । दोहसे । चित् । अयाः । आ । नाम । धृष्णु । मारुतम् । दधानाः । न । ये । स्तौनाः । अयासः । मद्वा । नु । चित् । सुडानुः । अब । यासत् । उग्रान् ॥ ५ ॥

अन्वयः— ३३६ ये मीळहुप रुद्रस्य पुत्राः सन्ति, दाधृवि-यान् चो नु भरध्वै, महः हि माता मही विदे, सा पृश्निः सु-भ्ये इत् गर्भं आ अधात् । ३३७ अन्तः सन्तः अवद्यानि पुनाना ये नु अया जनुष-न ईपन्ते, यत् श्रिया तन्वं अनु उक्षमाणा शुचयः जोषं अनु नि दुहे । ३३८ येषु धृष्णु मारुतं नाम आ दधाना न दोहसे चित् मधु अयाः, सु-दानु न ये अयासः स्तौनाः उग्रान् नु चित् मत्वा नय यासत् ।

अर्थ— ३३६ (ये) जो धीर (मीळहुपः रुद्रस्य) स्नेहयुक्त रुद्रके (पुत्राः सन्ति) सुपुत्र हं, (दाधृवि-) स्वयंका धारण करनेवाली पृथ्वी (यान् चो नु) जिनके सचमुचही (भरध्वे) पालनपोषणके लिए ह ओर जो (महः हि) महान धीरोंकी (माता) माता होनेके कारण (मही) यटी (विदे) समझी जाती है, (सा पृश्नि यह मादभूमि (सु-भ्ये इत्) जनताका कल्याण हो, इसीलिये (गर्भं आ अधात्) गर्भ धारण कर चुकी है ।

३३७ (अन्तः सन्तः) अन्दर रहकर (अवद्यानि) दोषाको, पापोंको (पुनाना-) पवित्र करते हुये (ये नु) जो धीर सचमुचही (अया) अपनी गतिसे (जनुषः) जनतासे (न ईपन्तं) दूर नहीं जाते हैं, तथा (यत्) जो (श्रिया) अपनी आभासे (तन्वं) शरीरका (अनु) अनुकूलतासे (उक्षमाणाः) यल-यान करते हैं वे (शुचयः) पवित्र धीर (जोषं अनु) इच्छाके अनुकूल दान (निः दुहे) देते रहते हैं ।

३३८ (येषु) जिनमें धीर (धृष्णु) शत्रुसेनाका धर्षण करनेद्वारा (मारुतं नाम) मरुतोंका नाम (आ दधानाः) धारण करते हैं और जो (दोहसे चित्) जनताके पोषणके लिए (मधु) नुरन्त (अया-) अप्रगामी घनते हैं वे (सु-दानुः) अच्छे दानी धीर (न) अभी (ये) जो (अयास-) भट करनेवाले (स्तौनाः) चोर हैं उन्हें (उग्रान् नु चित्) भीषण डाकुओंको भी (अय यासत्) परास्त कर देते हैं ।

भाषार्थ— ३३६ ये धीर सैनिक ब्राह्मणके सुपुत्र हैं । सारी पृथ्वी इनका पोषण करती है । यही कारण है कि पृथ्वीका बहष्पन चहुँओर विद्यमान है । लोककल्याणके लिए पृथ्वी धान्यरूपी गर्भका धारण करती है । ३३७ ये धीर समाजमेंही रहते हैं और दोषोंको दूर हटाकर पवित्रतापूर्ण वातावरण फैला देते हैं । वे कभी जनताका परित्याग करके दूर नहीं जाते हैं । और अपना तेज बढ़ाकर सबको अनुकूलतापूर्वक दान देते रहते हैं । ३३८ जिन्दगि भरका माम धारण किया है और जो जनताके पुष्टार्थ प्रयत्नशील बने रहते हैं वे प्रबल डाकुओंको भी दूर हटाते हैं ।

रूप । (२) अन्वयत् = दूसरा, बदला हुआ, अलग, अनूठा । (३) चिकित्स्वस् = जाननेवाला, परिचित, अनुभविक, ज्ञानी । [३३५] (१) रेणुः = धूलि, मल, अ रेणवः = निमेल (निष्पाव) । [३३६] (१) मीळहुप = (मीड्वस्) स्नेहयुक्त, उदार, प्रभावी, सुखसंपन्न, सिंचन करनेवाला । (२) दाधृविः = (ध धारणे) सदैव धारण करनेवाली (पृथ्वी) । (३) भरध्विः = (भ्र धारणपोषणयोः) पालनपोषण । [मह. माता मही] = महान् पुरयोरी माता है, क्या इसीलिये पृथ्वीको 'मही' नाम दिया गया है । [३३७] (१) अया = गति । (२) ईप् = उद गाना, देना, देखना, चढाई करना, यथ करना, सुपटेले चले जाना, सटक जाना । (३) जनुस् = उत्पत्ति, प्राणी, जीव, जन्मभूमि । (४) जोष = समाधान, सुख, आनन्द, उपभोग । (५) [अन्तः सन्तः अवद्यानि पुनानाः] = शरीरके

(३३९) ते । इत् । उग्राः । शवसा । घृष्णुऽमेनाः । उमे इति । युजन्त । रोदसी इति ।

सुमेके इति सुऽमेके ।

अर्ध । स्म । एषु । रोदसी । स्वऽशोचिः ।

आ । अमयत्सु । तस्थौ । न । रोकेः ॥६॥

(३४०) अनेनः । वः । पुरुतः । यामः । अस्तु । अनश्वः । चित् । यम् । अजति । अरथीः ।

अनवसः । अनभीशुः । रजऽतुः ।

वि । रोदसी इति । पथ्याः । याति । मार्धन् ॥७॥

अन्वय — ३३९ ते शवसा उग्रा घृष्णु सेनाः सुमेके उमे रोदसी युजन्त इत्, अर्ध स्म एषु अम-यन्तु रोदसी स्व शोचिः, रोके न जा तस्थौ ।

३४० (हे) मरतः ' वः यामः अन्-पनः अस्तु, अन् अश्वः अरथी चित् यं अजति, अन्-अवसः 'अन-अभीशु रजस् नृः साधन् रोदसी पथ्याः वि याति ।

अर्थ— ३३९ (ते) वे (शवसा) अपने बलसे (उग्रा) उग्र प्रतीत होनेवाले, ओर (घृष्णु-सेना) साहसी सेनासे युक्त वीर (सुमेके) मुहानेवाले (उमे रोदसी) भूलोक एवं बूलोकमें (युजन्त इत्) सुसज्ज बने रहते हैं । (अर्ध स्म) और (अम-यन्तु) बलवान (एषु) इन वीरोंके तैयार रहते समय (रोदसी) आकाश तथा पृथ्वी (स्व-शोचिः) अपने तेजस युक्त होने के ओर पश्यान् (रोकः) उन्हें किसी प्रकारसे (न जा तस्थौ) मुठभेद नहीं करनी पड़नी है ।

३४० हे (मरत ') वीर मरतो ! (वः यामः) तुम्हारा रथ (अन्-पनः) दोपरहित (अन्तु) रहे, उमे (अन-अश्व) घोटे न जोते दों, तोभी (अ रथीः) रथपर न बैठेनेवाला भी (यं अजति) जिने चलाता है । (अन् पन) जिसमें रक्षाया साधन नहीं तथा (अन्-अभीशुः) लगाम नहीं ओर (रजस् नृः) धूल उछानेवाला तो तथापि वह (साधन्) इच्छापूर्ति करता हुआ (रोदसी) आकाश एवं पृथ्वी परने (पथ्या) मार्गमें (वि याति) विविध प्रकारसे जाता है ।

आचार्य— ३३९ वं वीर तथा इनकी साहसपूर्ण सेना सदैव तैयार रहती है, अत इनकी राहमें कोई रकावट नहीं रहती है । इसी कारणसे जिना किसी वशिनार्ह वा विधनके थे अपना कर्मका पूरा करते हैं ।

३४० मरतोके रथमें दोप नहीं है । उसमें घोड़े नहीं जोते हैं । जो मनुष्य रथ चलानेसे अनपगत है, वह भी उसे चला सकता है । युद्धमें समय उपयोग दे सके, ऐसा कोई रकावट साधन उसपर नहीं है और खींचनेके लिए लगाम भी नहीं है । यह रथ जब चलने लगता है, तब धूल या गर्द उड़ाना हुआ भूमिपरसे जाता है और उसी प्रकार अन्तर्िक्षमेंसे भी जाता है ।

अन्तर रहने आधुनिक लोग दूर दूराकार उसे पवित्र करनेवाले (अव्याप्तनपक्षमें मन्त्र-प्राण) । [३३८] (१) घृष्णु नाम = ऐसा नाम कि जिससे झुके दिग्में अथ उत्पन्न हो । (२) स्नान = उग्र, ओर, उच्छा । (३) यस् = प्रदान करना । अन्-यस् = दूर करना, हटाना । [३३९] (१) रोके = वेजस्वित्वा, दीप्ति । [३४०] (१) अन्पन = अन्, मरुत, अंशुश्व, घन, यति, यश, समाधान, इच्छा, आकाश । (२) रजस्-नृः = अन्तर्िक्षमेंसे रजस्वत् रोगसे जानेवाला । (३) रोदसी पथ्याः याति = अन्तर्िक्षमेंसे रथ जाता है । (देने) मय ६०, ८० ।

(३४१) न । अम्य । वर्ता । न । तरुता । सु । अस्ति ।

मरुतः । यम् । अवथ । वाजससातो ।

तोके । घा । गोपु । तनये । यम् । अप्सु ।

सः । वृजं । दर्ता । पायं । अथ । घोः ॥८॥

(३४२) प्र । चित्रम् । अर्कम् । गृणते । तुरायं । मरुताय । स्वस्तंसे । भरध्वम् ।

ये । महामि । सहसा । सहन्ते । रेजते । अग्ने । पृथिवी । मुखेभ्यः ॥९॥

अन्वयः— ३४१ मरुतः ! वाज-सातो यं अवथ अस्य वर्ता न तरुता नु न अस्ति, अथ तोके तनये गोपु अप्सु वा यं स पायं घोः वृजं दर्ता ।

३४२ (हे) अग्ने ! ये सहसा सहांसि सहन्ते, मुखेभ्यः पृथिवी रेजते, गृणते तुराय स्व-तनये मारुताय चित्रं अर्कं प्र भरध्वं ।

अर्थ— ३४१ हे (मरुत !) वीर मरुतो ! (वाज सातो) संग्राममें (यं अवथ) जिसकी रक्षा तुम करने हो, (अस्य) उसका (वर्ता न) घेनेवाला कोई नहीं है, या उसका (तरुता) विनाशक भी कोई (नु न अस्ति) नहीं रहता है । (अथ) उसी प्रकार (तोके) पुत्रोंमें, (तनये) पौत्रोंमें, (गोपु) गोधोंमें या (अप्सु) जलमें रहनेवाले (यं) जिस मानवका संरक्षण तुम करने हो, (सः) वह (पायं) युद्धमें (घोः) तेजस्वी तुल्योक्तनी (वृजं) गोशालाका भी (दर्ता) निगरण करता है, अपने अधीन करता है ।

३४२ हे (अग्ने !) अग्ने ! तथा अग्निके अनुयायी लोगों ! (ये) जो अपने (सहसा) बलसे (सहांसि) शत्रुओंके आक्रमणों को (सहन्ते) बरदाश्त करते हैं, उन (मुखेभ्यः) बड़े वीरोंके वेगसे (पृथिवी रेजते) भूमितरु दहल उठती है, उन (गृणते) स्तोत्रपाठ करनेवाले, (तुराय) शीघ्र जानेवाले एवं (स्व-तनये) अपने निजी बलसे युक्त (मारुताय) वीर मरुतों के संघ के लिए (चित्रं) आश्चर्य-कारक, (अर्कं) पूजनीय तथा प्रशंसनीय वस्तु (प्र भरध्वं) पर्याप्त मात्रामें दे दो ।

भावार्थ— ३४१ ये वीर जिसके संरक्षणका बीडा उठाने हैं, वह कभी पराभूत या विनष्ट नहीं होता है । पुत्रपौत्रों, पशुओं या जलप्रवाहोंके मध्य रहनेवाले जिन अनुयायियोंका संरक्षण ये वीर करने लगते हैं वे स्वर्गके तमाम शत्रुओंका निवृत्त कर सकते हैं, (देवी दत्तांत्रे वे भूमन्त्वर विररनेवाले शत्रुओंकी रजिबों उडातेकी क्षमता रखें, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं) ।

३४२ इन वीरोंके आक्रमण के समय पृथ्वी भी विस्मित हो उठती है । ऐसे इन वीरोंके सब को सभी तरह का भय दे दो और इन्हें शत्रुएं रसो ।

टिप्पणी— [३४१] (१) वर्तुं = (घृणतेः) आरक, घेरनेवाला, घेदनकर्ता । (२) वाज = लज्ज, शक्ति, अन्न, बल, यत्न । वाज साति = अन्न पानेके लिए की हुई चढाऊपरी । (३) साति = देना, स्वीकारना, देन, मदद, विनाश, सम्पत्ति । (४) तन्तु = जीतनेवाला, आत्मात्मक, पारले चलनेवाला । (५) वृजं = गोष्ठ, गोशाला, (६) घोः वृजः = स्वर्गकी गोशाला । [३४२] (१) मरुतः = (मरु गतौ = जाना, हिलना, हिलाना) वेगसे जानेवाला, हिलनेवाला, हिलानेवाला, पूज्य, रमणीय, आनदी, चपल, महान, बड़ा । (२) अर्कं = सूर्य, अग्नि, प्रकाशकरण, तेज, पूज्य, धार्मिक ।

- (३४३) त्विपिंमन्तः । अध्वरस्यैव । दिद्युत् । तृपुञ्चयसः । जुह्वः । न । अग्नेः ।
 अर्चत्रयः । धुनेयः । न । वीराः । आजत्जन्मानः । मरुतः । अधृष्टाः ॥ १० ॥
 (३४४) तम् । वृधन्तम् । माहेतम् । आजत्क्रष्टिम् । रुद्रस्य । सुनुम् । ह्वसः । आ । विवासे ।
 द्विवः । शर्षीय । मुनेयः । मनीषाः । गिर्यः । न । आपः । उग्राः । अस्पृधन् ॥ ११ ॥
 मित्रावरणपुत्र वसिष्ठकपि (ऋ० ७।५।१-२०)

(३४५) के । ईम् । विडम्बताः । नरः । सनीळाः ।
 रुद्रस्य । मर्याः । अघे । सुडम्बः ॥ ११ ॥

अन्वय.— ३४३ मरुतः अध्वरस्यैव त्विपि-मन्तः तृपु-चयसः, अग्नेः जुह्वः न, दिद्युत् अर्चत्रयः, वीराः न धुनेयः, आजत्-जन्मानः अ-धृष्टाः । ३४४ तं वृधन्तं आजत्-क्रष्टि रूद्रस्य सुनुं मारुतं ह्वसा भा विवासे, द्विव शर्षीय उग्रा शुचयः मनीषाः, गिर्यः आप न, अस्पृधन् । ३४५ अघ रूद्रस्य स-नीळाः मर्या सु-अम्बः व्यक्ता नरः ई के ?

अर्थ— ३४३ (मरुतः) वे वीर मरुत् (अ-ध्वरस्यैव) अहिंसायुक्त कर्मके समान (त्विपि-मन्तः) तेजस्वी, (तृपु-चयसः) वेगपूर्वक याहूर निकलनेवाले, (अग्नेः जुह्वः न) अग्नि की लपटों के तुल्य (दिद्युत्) प्रकाशमान, (अर्चत्रय) पूजनीय, (वीराः न) वीरोंके समान (धुनेयः) शत्रुओंके हिलानेवाले, (आजत्-जन्मानः) तेजस्वी जीवन धारण करनेहारि हे तथा (अ-धृष्टाः) इनका पराभव दूसरे कर्मी नहीं कर सकते हैं । ३४४ (तं वृधन्तं) उस बढ़नेवाले तथा (आजत्-क्रष्टि) तेजस्वी भाले धारण करनेहारि (रूद्रस्य सुनुं) वीरभद्रके सुपुत्र (मारुतं) वीर मरुतोंके संघका भ (आ विवासे) सभी तरहसे स्वागत करता हैं । उसी प्रकार (द्विवः शर्षीय) दिव्य बलकी प्राप्ति के लिए हमारी (उग्राः शुचयः) उग्र तथा पवित्र (मनीषाः) इच्छाएं (गिर्यः आपः न) पर्वत से रहनेवाली जलधाराओंके समान (अस्पृधन्) स्पर्श करती हैं । ३४५ (अघ) और (रूद्रस्य स-नीळाः मर्या) महावीरके, एक घरमें रहनेहारि वीर मरुत (सु-अम्बः व्यक्ता नरः) उत्कृष्ट घोड़े समीप रखनेवाले, सयकी परिचित एवं नेता (ई के) भला सचमुच कौन है ?

भाषार्थ— ३४३ वे वीर तेजस्वी, वेगसे धावा करनेवाले, शत्रुत्वकी हटानेवाले हैं, अतएव इनका पराभव होना कदापि संभव नहीं ।

३४४ में इन तत्त्वज्ञानसे सुसज्ज वीरोंका सुस्वागत करता हूँ । हम अपनी पवित्र आकांक्षाओंको इनके निकट पड़ी स्पर्शसे भेजते हैं, ताकि हमें दिव्य बल प्राप्त हो जाय और इस विषयमें सचेष्ट रहते हैं कि लक्षिकालिक बल हमें प्राप्त हो जाय ।

३४५ हे लोगो ! जो महावीरके सैनिक, जगताके दिव्यकर्मा एव लच्छे घोड़े समीप रखनेवाले होनेके कारण सबको परिचित हैं, मला वे कौन हैं ?

टिप्पणी— [३४३] (१) तृपु=प्यासा, शीघ्र-वेगसे जानेवाला । (२) जुह्व=बाहर निकलना, गिर पडना, टपकना । [३४५] (१) व्यक्त = साफ दिखाई देनेवाला, प्रकट हुआ, अलक्ष्य, स्वच्छ, सबको ज्ञात, सजाना । (२) मर्या = (मर्त्यो) दिना । सायणभाष्य) मानवोंका हित करनेहारि रूद्रस्य मर्या = महावीरके वीर सैनिक (३) स-नीळाः=एक पारमें (Barrack में) रखनेवाले । (वेदिको मंत्र ११७, ३२१ ४४७) ।

- (३४६) नकिः । हि । एषाम् । जन्पि । वेद । ते । अद्ग्य । विद्रे । मिथः । जनित्रम् ॥२॥
 (३४७) अभि । स्वऽपूमिः । मिथः । वपन्त । वार्तऽस्वनसः । श्येनाः । अस्पृधन् ॥४॥
 (३४८) एतानि । धीरः । निष्या । चिकेत । पृश्निः । यत् । ऊर्धः । मही । जभार ॥४॥
 (३४९) सा । विद् । सुऽवीरा । मरुत्ऽभिः । अस्तु । सनात् । सहन्ती । पुष्यन्ती । नृम्णम् ॥५॥
 (३५०) यामम् । येष्ठाः । शुभा । शोभिष्ठाः । श्रिया । समूऽर्मिष्ठाः । ओजऽभिः । उत्राः ॥ ६

अन्यथा— ३४६ एषां जन्पि नकिः हि वेद, ते मिथः जनित्रं अद्ग्य विद्रे ।

३४७ स्व-पूमिः मिथः अभि वपन्त, वार्त-स्वनसः श्येनाः अस्पृधन् ।

३४८ धी-रः एतानि निष्या चिकेत, यत् मही पृश्निः ऊर्धः जभार ।

३४९ सा विद् मरुद्भिः सु-वीरा, सनात् सहन्ती, नृम्णं पुष्यन्ती अस्तु ।

३५० यामं येष्ठाः, शुभा शोभिष्ठाः, श्रिया सं-मिष्ठाः, ओजोभिः उत्राः ।

अर्थ— ३४६ (एषां) इन धीरोंके (जन्पि) जन्म (नकिः हि वेद) कोईभी नहीं जानता है। (ते) वे धीर ही (मिथः) एक दूसरेका (जनित्रं) जन्मस्थान (अद्ग्य) सचमुच (विद्रे) जानते हैं। ३४७ वे धीर जब (स्व-पूमिः) अपने पवित्रता करनेहारोंके साथ (मिथः अभि वपन्त) एकत्र जुट जाते हैं, तब (वार्त-स्वनसः) पवनके तुल्य यदा भारी शब्द करनेवाले वे धीर (श्येनाः) याज पंछियोंकी नाईं वेगमें (अस्पृधन्) स्पर्धा करते हैं।

३४८ (धी-रः) बुद्धिमान पुरुष इन ही धीरों के (एतानि निष्या) ये गुप्त कार्यकलाप (चिकेत) जान सकता है। (यत्) जिन्हें (मही) महान (पृश्निः) गौने अपने (ऊर्धः) दुग्धाशयनसे दूध पिलाकर (जभार) पुष्ट किया है।

३४९ (सा विद्) वह प्रजा (मरुद्भिः) धीर मरुतोंके सहायतासे (सु-वीरा) अच्छे धीरोंसे युक्त होकर (सनात्) हमेशा ही (सहन्ती) शत्रुका पराभव करनेहारी तथा (नृम्णं पुष्यन्ती) बलका संघर्ष करनेहारी (अस्तु) बने।

३५० वे धीर शत्रु पर (यामं) हमले करनेके (येष्ठाः) प्रयत्न करनेहारों, (शुभा शोभिष्ठाः) अलंकारोंसे सुहानेवाले, (श्रिया) क्रांतिसे (सं-मिष्ठाः) जुट जानेवाले तथा (ओजोभिः उत्राः) शारीरिक सामर्थ्यसे उग्र स्वरूपवाले प्रतीत होते हैं।

भाषार्थ— ३४६ किसीकीभी इनका जन्मवृत्तान्त ज्ञात नहीं, शायद वेही अपना जन्म जानते हों। ३४७ धीर सैनिक अपनी शक्ति बढ़ानेके काममें चढाउपरी करते हैं, होठ लगाते हैं। ३४८ इन धीरोंके शत्रुतापूर्ण कार्यकेवल बुद्धिमान पुरुषकोही विदित हैं। इन धीरोंका पोषण गौने अपने दुग्धके प्रदानसे किया है। [ये गौँकी अपनी माता समझनेवाले हैं।] ३४९ समूची प्रजा शत्रु एवं धीर बने, वह अपना बल बढ़ाती रहे और शत्रुका पराभव करती रहे। ३५० ये धीर शत्रुपर हमले चढानेमें तत्पर, शोभायमान, तेजस्वी, एवं सामर्थ्यवान हैं।

टिप्पणी— [३४७] (१) वपं= बोना, फैलाना, फैलाना, उत्पन्न करना। अभि-वपं= फैलाना, बोना, ढरना। (२) पू= (पवने) पवित्र करना, स्वच्छ करना, उन्मुक्त करना, [३४८] (१) निष्य= दका हुआ, पुष्ट, आश्रय-जनक। [३५०] (१) येष्ठ= (वेष्= प्रयत्न करना, चेष्टा करना, कोशिश करना + स्थ= स्थिर रहना) कोशिश करते हुए अटल खड रहनेवाले। या= जाना, (यान-इष्ट) अत्यन्त वेगसे जानेवाले (अर्थात् शत्रुपर चढाई करते समय वेगसे जानेवाले।)

(३५१) उग्रम् । वः । ओर्जः । स्थिरा । श्वासि । अर्थ । मृत्तऽभिः । गणः । तुर्विप्मान् ॥ ७
 (३५२) शुभ्रः । वः । शुष्मः । कुष्मी । मनांसि । धुनिः । मुनिःऽइव । शर्धस्य । धृष्णाः ॥ ८
 (३५३) सनेमि । अस्त् । युयोत । दिद्युम् । मा । वः । दुःऽप्रतिः । इत् । प्रणक् । नुः ॥ ९
 (३५४) प्रिया । वः । नाम । हुवे । तुराणांम् ।

आ । यत् । तृप्त् । मृत्तः । प्राज्ञानाः ॥ १० ॥

अन्वय — ३५१ व ओर्ज उग्र श्वासि स्थिरा षध मरुद्धि गण तुविप्मान् । ३५२ व शुष्म शुभ्र मनांसि कुष्मी धृष्णा शर्धस्य धुनि मुनि इव । ३५३ स-नेमि दिद्यु अस्त् युयोत, व इत्-मति इत् न मा प्रणक् । ३५४ (हे) मरत् । तुराणा व प्रिया नाम आ अये, यत् प्राज्ञाना तृप्त् ।

अर्थ— ३५१ (व ओर्ज) तुम्हारा शारीरिक सामर्थ्य (उग्र) उग्र स्वरूप का है और तुम्हारे (श्वासि स्थिरा) सभी बल स्थिर है । (अध) ओर (मरुद्धि) वीर मरुतोंके कारणही (गण) तुम्हारा सब (तुविप्मान्) सामर्थ्यवान हो चुका है । ३५२ (व शुष्म) तुम्हारा बल (शुभ्र) निष्कल है, तुम्हारे (मनांसि) मन दाशुओंके बारेमें (कुष्मी) नाथसे भरे होत है और (धृष्णा) शत्रुका धर्षण करने की तुम्हारे (शर्धस्य) सामर्थ्यना (धुनि) धम (मुनि इव) मुनिकी तरह मननपूजक होनेवाला है । ३५३ यह तुम्हारा (स नेमि) अत्यन्त तीव्रण आराका (दिद्यु) तैत्स्वी हृदियार (अस्त् युयोत) हमसे दूर हटाओ । (व) तुम्हारी शत्रुको दूर करनेवाली युद्धि (इह), यहाँपर (न) हम (मा प्रणक्) विनष्ट न कर । ३५४ हे (मरत्) 'जग मरुता' (तुराणा व) त्वरित कार्य करनेवाले तुम्हारे (प्रिया नाम) प्यारे नामसे तुम्हें (आ हुवे) युगता है । (यत्) जिसकीही (प्राज्ञाना) इच्छा करनेवाले तुम (तृप्त्) रहत हो ।

भावार्थ— ३५१ इन बीसकी शक्ति कमा घटती नहीं, हतनाही नहीं भवितु वह हमला बरसोहा है ।

३५२ बीसका बल निष्कल है अत यह, सधना कल्याण करनेके लिए या कार्य करना है, उसमें उपयुक्त रहना । जो शत्रु है उसपरहः बोध करना उचित है और विवादना न मनुष्यके लिये, आक्रमण ना वग निश्चित करत समय सावधानीसे काम करना चाहिए ।

३५३ बीसका हृदियार पृथ उतका यह शत्रुको कुचलकी भावाग्ना बरत् शत्रुपरही प्रयुक्त होय । स्थकीय जनतापर उतका प्रयोग न होने पाय । (जो शत्रु शत्रुपर प्रयाग करनेके लिए है, उनका उपयाग अपनेही बाधवा तथा लोगोंपर नहीं करना चाहिए ।)

३५४ बीस सनिक भयना काय शीघ्रतासे कहत हैं और 'जग अपने बलका वजन सुन लते हैं तथ शत्रु हो जात है ।

टिप्पणी— [३५१] (१) श्वासि स्थिरा श्वासी बल अर्थात् शत्रु चाहे जैसे आक्रमण कर ले तोभी या चाह जैसे आपत्तिया उठ लडा हों, तथापि इन बलोंम दृढता न दीय पड । (२) गण तुविप्मान् = समूचा सब बलवान, सुद्विबान पथ सतत धर्षिष्ण रहनेवाला । (३) तुविस् युद्धि, बल, शक्ति । [३५२] (१) मुनि इव धृष्णा शर्धस्य धुनि = मनन करनेवाले मानवकी हृत्कलये लिये, शत्रुका विध्वंस करनेके लिए कामम आनेवाले सामर्थ्यना धम वशी सतर्कतासे निर्धारित करना चाहिए । अत्रिचारवश वा उपावलेपनसे अपनेही धार्मार्थीगी नहीं मचानी चाहिए । (२) शुभ्र = (शुभ्र) साधुसुधत निर्मल, शुभ, निष्कलक । (३) शुष्म प्य = (स्य, अग्नि, वायु) शक्ति, बल तेज । शुष्मन् = बल, शक्ति का अर्थ । [३५३] (१) सनेमि = (सन्-नेमि) बहुत प्राचीन (सायण) । स-नेमि = (नेमि = परिष धारा बलुत्तना ओर) अनिज्ज तीय धारासे युक्त ।

- (३५५) सुऽआयुधासः । इष्मिणः । सुऽनिष्काः । उत । स्वयम् । तन्वः । शुभ्रमानाः ॥११॥
 (३५६) शुचीं । वः । हृव्या । मरुतः । शुचीनाम् । शुचिम् । हिनोमि । अध्वरम् । शुचिऽभ्यः ।
 ऋतेन । सत्यम् । ऋतऽसापः । आयन् । शुचिऽजन्मानः । शुचयः । पावकाः ॥१२॥
 (३५७) अंसेपु । आ । मरुतः । रादयः । वः । वक्षःसु । रुक्माः । उपऽशिथियाणाः ।
 वि । विद्युतः । न । वृष्टिभिः । रुचानाः । अनु । स्वधाम् । आयुधैः । यच्छमानाः ॥१३॥

* अन्वयः— ३५५ सु-आयुधासः इष्मिणः सु-निष्काः उत स्वयं तन्वः शुभ्रमानाः । ३५६ (हृ) मरुतः ! शुचीनां वः शुची हृव्या, शुचिभ्यः शुचि अध्वरं हिनोमि, ऋत-साप-शुचि-जन्मानः शुचयः पावकाः ऋतेन सत्यं आयन् । ३५७ (हे) मरुतः ! वः अंसेपु रादयः आ, वक्ष-सु रुक्माः उप-शिथियाणाः, विद्युतः न, रुचानाः वृष्टिभिः आयुधैः स्व-धां अनु यच्छमानाः ।

अर्थ— ३५५ वे वीर (सु-आयुधासः) अच्छे हथियार समीप रखनेहारे, (इष्मिणः) वेगसे जानेहारे, (सु-निष्काः) सुन्दर मुहरोंके द्वार धारण करनेवाले (उत) और वे (स्वयं) अपनेही (तन्वः) शरीरोंको (शुभ्रमानाः) सुशोभित करनेहारे हैं ।

३५६ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (शुचीनां व) पवित्र ऐसे तुम्हें (शुची हृव्या) शुद्ध ही हवि-
 प्यात्र हम देते हैं, (शुचिभ्यः) विद्युद् ऐसे तुम्हारे लिए (शुचि अध्वरं) पवित्र यज्ञो ही (हिनोमि)
 मैं करता हूँ । (ऋत-साप) सत्यकी उपासना करनेहारे, (शुचि-जन्मानः) विद्युद् जन्मवाले, कुलीन
 (शुचयः) स्वयं पवित्र होते हुए दूसरोंको (पावकाः) पवित्र करनेवाले तुम (ऋतन) सत्यकी सहायता-
 से (सत्यं) अमरपनको (आयन्) पाते हो ।

३५७ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वः अंसेपु) तुम्हारे कंधोंपर (खादयः आ) आभूषण तथा
 (वक्षःसु रुक्माः) छातीपर स्वर्णमुद्राओंके द्वार (उप-शिथियाणा) लटकते रहते हैं । (विद्युतः न)
 थिजलियोंके तुल्य (रुचानाः) चमकनेवाले तुम (वृष्टिभिः आयुधैः) वर्षा करनेवाले हथियारोंकी सहाय-
 तासे (स्व-धां) धारकशक्ति बढ़ानेवाला पुष्टिकारक अन्न हमें (अनु यच्छमानाः) देते रहो ।

माथार्थ— ३५५ वीर सैनिकोंके हथियार अच्छे हैं और वे वेगसे हमला करनेवाले एवं धनाढ्य हैं । वे वस्त्रों एवं
 आभूषणोंसे अपने शरीर को सुशोभित करते हैं । ३५६ वीर पुरुष स्वयमेव विद्युद् हैं और उनका धर्ताव निर्दोष
 है । वे शुद्ध भक्त सधन करते हैं वीर सत्यका पालन करते हैं । वे स्वयं पवित्र जीवन बिताते हुए दूसरों को पवित्र
 करते हैं । सत्यकी राहपर चलते हुए वे अमृतत्वको प्राप्त कर लेते हैं । ३५७ वीर सैनिकोंके कंधोंपर तथा
 वक्षस्थलोंपर आभूषण दीख पड़ते हैं । दामिनीकी दमकके तुल्य उनके हथियार चमक उठते हैं । इन अपने हथियारोंसे वे
 शत्रुदलकी घनिजर्षा उठा देते हैं और हमें पौष्टिक एवं अन्न कोटिके अन्न दिया करते हैं ।

टिप्पणी— [३५५] (१) निष्क = सुवर्ण, सोनेकी मुद्रा, स्वर्णका अलकार । [तन्वः शुभ्रमानाः उत सु-
 निष्काः] = वे वीर शारीरिक दृष्ट्या सुन्दर हैं और अलकारोंसे भी शोभा एवं शारताको बढ़ाते हैं । इष्मिन् = इष्ट
 भक्त तथा धनसे युक्त । [३५६] (१) ऋत = (Right) सरलता । (२) सत्य = (Sooth)
 सत्य । (३) साप = (समवाये) प्राप्त होना । (४) ऋत-सापः = (कृत = सत्य, साप = सम्मान देना, जोडना,
 पूजा करना) सत्यकी उपासना करनेवाले (Observers of law) । [३५७] (१) रादि = आभूषण,
 वलय, कँगन । (२) वृष्टि = (वृष्ट = बलवान होना) बल, वर्षा (किसी भी वस्तुकी यथेष्ट समृद्धि या विपुलता) ।
 (३) रुचानाः = (रच् = प्रकाशित होना, सुन्दर दीख पडना, मिय होना) प्रकाशमान ।

(३५८) प्र । वृध्ण्या । चः । ईरते । मर्हासि । प्र । नामानि । प्रऽयज्यवः । तिरध्वम् ।
 सहस्रियम् । दम्यम् । भागम् । एतम् । गृहऽमेधीयम् । मरुतः । जुपध्वम् ॥१४॥
 (३५९) यदि । स्तुतस्यं । मरुतः । अधिऽइथ । इत्या । विप्रस्य । वाजिनः । हवीमन् ।
 मधु । रायः । सुऽवीर्यस्य । दातु । नु । चित् । यम् । अन्यः । आऽदभन्तु । अरावा ॥१५॥
 (३६०) अत्यासः । न । ये । मरुतः । सुऽअञ्चः । यक्षऽदशः । न । सुभयन्त । मर्याः ।
 ते । हर्म्येऽस्थाः । शिञ्जवः । न । शुभ्राः । वत्सासः । न । प्रऽक्रीलिनः । पयःऽधाः ॥१६॥

अन्वय — ३५८ (हे) प्र-यज्यवः मरुतः ! चः वृध्ण्या मर्हासि प्र ईरते, नामानि प्र तिरध्वं, एतं सहस्रियं दम्यं गृह-मेधीयं भागं एतम् । ३५९ (हे) मरुतः ! वाजिनः विप्रस्य हवीमन् स्तुतस्य यदि इत्या अधीयं, सु-वीर्यस्य रायं मधु दातु, अन्यः अ रावा नु चित् यं आदभन्तु । ३६० ये मरुतः अत्यासं न सु-अञ्चः, यक्ष-दशः मर्याः न सुभयन्त, ते हर्म्येऽस्थाः शिञ्जवः न शुभ्राः, पयोऽधाः यत्सासः न प्र क्रीलिनः ।

अर्थ-३५८ हे (प्र-यज्यवः मरुतः !) पूज्य वीर मरुतो ! (चः) तुम्हारे (वृध्ण्या मर्हासि) मौलिक धातुसंज्ञक सामर्थ्य तथा बल (प्र ईरते) प्रकट होते हैं। तुम अपने (नामानि) यज्ञोक्तो (प्र तिरध्वं) पर तटफो ले चलो, यदा वो। (एतं) इस (सहस्रियं) सहस्रावधि गुणोंसे युक्त (दम्यं) धरके (गृह-मेधीयं) गृहयज्ञके (भागं) विभागका तुम (जुपध्वं) सेवन करो।

३५९ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वाजिनः) अन्नयुक्त (विप्रस्य) ज्ञानी पुरुषकी (हवीमन्) हविष्यान्न प्रदान करते समय की हुई (स्तुतस्य) स्तुतिको (यदि) अगर (इत्या) इस प्रकार तुम (अधीयं) जानते हो, तो (सु-वीर्यस्य) अच्छी वीरतासे युक्त (रायः) धन (मधु) तुरन्तही उसे (दातु) दे दो। नहीं तो (अन्यः) दूसरा कोई (अ-रावा) शत्रु (नु चित्) सचमुचही (यं) उसे (आदभन्तु) विनष्ट कर डालेगा।

३६० (ये मरुतः) जो वीर मरुत् (अत्यासं न) घुड़दोड़के घोड़ोंके तुल्य (सु-अञ्चः) उत्तम ढंगसे शीघ्रतया जानेवाले हैं, (यक्ष-दशः) यक्षका दर्शन लेने आये हुए (मर्याः न) लोगोंके तुल्य जो (सुभयन्त) अपने आपमें दोभायमान करते हैं, (ते) ये वीर (हर्म्येऽस्थाः) राजप्रासादमें रहनेवाले (शिञ्जवः न) बालकों के समान (शुभ्राः) सुदानेवाले हैं और (पयोऽधाः यत्सासः न) दूधपर पले जानेवाले बालकों के समान (प्र-क्रीलिनः) अत्यधिक खिल्लाड़ीपनसे परिपूर्ण हैं।

भावार्थ-३५८ वीरोंमें जो बल शिव वश हैं वे प्रकट हों और उनका अन्न दत्तविशालोत्तम प्रकृत हो। गृहयज्ञके समय उनके लिए शिव हुए भागका ये सेवन करें। ३५९ अन्नदान करते समय ज्ञानीकी धर्म्यताको यदि ये वीर समझ लें, तो ये उसे तुरन्त श्रुतासे पूर्ण धन दे दालें। अगर ऐसा न हुआ तो दूसरा कोई शत्रु उन सम्पत्तिको दबा बैठेगा। ३६० ये वीर सैनिक गणितमान, सुसोभित, सुन्दर तथा खिल्लाड़ी हैं।

टिप्पणी— [३५८] (१) प्र-तिर = मरुतके पार चल जाना, पैदली पहुँचना। (२) वृध्ण्या = शरीर, आकाश, मौलिक, अपना, अनयोर्भा। (३) दम्य-भं = धर, स्तनियप्रण, घरेलू बनाना, पुत्र कर्मसे मनको परास्त करानेवाली शक्ति। दम्य = धरपर क्रिया हुआ। (४) गृह-मेध = धर्मसे किया हुआ यज्ञ, गृहयज्ञका कर्तव्य यज्ञ, गृहस्थ। गृह-मेधीय = गृहस्थका दिया हुआ, धरके यज्ञका। [३५९] (१) अरावा = (अ-रावा) शत्रु न देनेवाला रूपण, दुष्टामा (दुष्ट लोग, शत्रु)। (२) दम् (दम्भ) = दुबाना (नाया करना) ठगाना, जाना, दबाना। [३६०] (१) यक्ष = (यक्ष पूजा) पूजा, यज्ञ, यक्षजातिका वीर।

(३६१) दशस्यन्तः । नः । मरुतः । मृळन्तु । वरिवस्यन्तः । रोदसी इति । सुमेके इति सुडमेके ।
 आरे । गोऽहा । नृऽहा । वधः । वः । अस्तु । सुम्नेभिः । अस्मे इति । वसवः । नमघ्नम् ॥१७
 (३६२) आ । वः । होतः । जोहवीति । सत्तः । सत्रार्चीम् । रातिम् । मरुतः । गृणानः ।
 यः । ईवतः । वृषणः । अस्ति । गोपाः । सः । अर्द्धयावी । हवते । वः । उन्धैः ॥१८
 (३६३) इमे । तुरम् । मरुतः । रमयन्ति । इमे । सहः । सहसः । आ । नमन्ति ।
 इमे । शंसम् । वनुष्यतः । नि । पान्ति । गुरु । द्वेषः । अरूपे । दुधन्ति ॥१९॥

अन्वय.— ३६१ दशस्यन्त सुमेके रोदसी वरिवस्यन्त मरुत. न मृळन्तु (हे) वसव । गो हा नृ-हा व वधः आरे अस्तु, सुम्नेभि अस्मे नमघ्नः । ३६२ (हे) वृषण. मरुत. । सत्त सत्रार्ची राति गृणान होता व. आ जोहवीति, यः ईवत गोपा अस्ति स अर्द्धयावी वः उन्धै हवते । ३६३ इम मरुत तुरं रमयन्ति, इमे सह सहस. आनमन्ति, इमे शंस वनुष्यत नि पान्ति, अरूपे गुरु द्वेष दधन्ति ।

अर्थ— ३६१ शत्रुओंका (दशस्यन्त.) विनाश करनेहारे तथा (सुमेके रोदसी) सुस्थिर धावापृथ्वीको (वरिवस्यन्त.) आश्रय देनेहारे (मरुत) वीर मरुत् (न मृळन्तु) हमें सुखी बना दें । हे (वसव !) यज्ञानवाले वीरों ! (गो-हा) गोवध करनेहारा (नृ-हा) तथा शत्रुदलम विद्यमान वीरोंको मार गिरानेवाला (व. वध) तुम्हारा आयुध हमसे (आरे अस्तु) दूर रहे. तुम (सुम्नेभिः) अनेक सुखोंके साथ (अस्मे नमघ्न) हमारी ओर आनेके लिए निकल पडो । ३६२ हे (वृषण मरुत !) दलयान वीर मरुतो ! (सत्त) अपने स्थानपर बैठना हुआ तथा (सत्रा-अर्ची) सभी जगह पहुँचनेवाले (राति) दानकी (गृणान) स्तुति करनेहारा एवं (होता) सुलनेवाला याजक (व आ जोहवीति) तुम्हें बुला रहा है, (य) जो (ईवत गोपा) प्रगति करनेवालोंका संरक्षक (अस्ति) है, (स) वध (अ-र्द्धयावी) अनन्यभाषसे युक्त होकर (व) तुम्हारी (उन्धै) स्तोत्रोंसे (हवते) प्रार्थना करता है । ३६३ (इमे मरुत) ये वीर मरुत् (तुर) तुराशील वीरोंको (रमयन्ति) आनन्द दते ह. (इमे) ये अपनी (सह) सहनशक्तिसे सहारे (सहस) विजयधीको (आ नमन्ति) श्रुकाते ह, पाते ह । (इमे) ये (शंस) स्तोत्रना (वनुष्यत) आदर करनेहारे भक्तोंकी (नि पान्ति) रक्षा करते हैं । (अरूपे) शत्रुओं पर अपना (गुरु द्वेष) बड़ा भारी द्वेष (दधन्ति) करते ह ।

भाषार्थ— ३६१ समूचे विश्वको सुख देनेहारे तथा शत्रुका नाश करनेवाले ये वीर हमें सुख दें । इनके जो शत्रुवार शत्रुदलके सहायक हैं, वे हमपर न गिर पडें । उनके कारण हम मीतके मुहमें न चले जायें । हमें ये सभी प्रकारसे सुख दे दें । ३६२ याजक इन वीरोंको यज्ञमें बुला लता है और वह प्रगतिशील मानसोंका संरक्षण करता है । वह उल्लेखपूर्ण बर्ताव न बरता हुआ वीरोंसे का-व्यका गायन करता है । ३६३ जो शत्रु कर्म करते हैं, उन्हें वीर पुरुष आनन्दित करते हैं, अपने वीरपक्षे विजयी बनते हैं, भक्तोंका संरक्षण करते हैं और शत्रुओं पराधी अपना तागा मोघ डालत हैं ।

टिप्पणी— [३६१] (१) सु-मेक = सुस्थिर । (२) दशस्यन्त = (दश = चषाचषाकर जाना, काट जाना, [नाश करना] विनाशक । (३) वरिवस्यन्त = स्थान देनेहारा, विश्राम देनेवाला । वरिवस = स्थान, विश्राम, सुषु । [३६२] (१) सत्त = (सद् = बैठना) स्थानापन्न हुआ, अपनी जगह बैठनेवाला । (२) राति = दान, उदार, मित्र, शूबा । (३) ईवत = जानेवाला, (प्रगति करनेवाला) अत्यन्त बढ़ा मन्य । (४) अ-र्द्धयाविन् = द्विधा भाव विचार नहीं (अनन्यभाषसे प्रेरित), अर्द्ध एक बाहर अन्यहीं कुछ सो आचरण न करनेवाला । (५) गो-पा = गौका संरक्षक, संरक्षक । [३६३] (१) तुर = वेगवान, शक्तिमान, अग्रगामी, प्रगतिशील, घायल, वेग । (२) सहस् = बल, वेग, तेज, जल, विजय । (३) नम् = श्रुका, सुदना, (पाना) (४) वन् = (वन्द्याचनसमन्विषु) = सम्मान देना, पूजा

(३६४) इमे । रधम् । चित् । मरुतः । जुनन्ति ।
भूमिम् । चित् । यथा । वसवः । जुपन्त ।
अर्प । वाघध्वम् । वृषणः । तर्मांसि ।
धत्त । विश्वम् । तर्नयम् । लोकम् । अग्ने इति ॥२०॥

(३६५) मा । वः । दायात् । मरुतः । निः । अराम ।
मा । पृथात् । दुध्म । रध्व्यः । विऽभागे ।
आ । नः । स्वाहे । भजतन । वसव्यै ।
यत् । ईम् । सुऽज्ञातम् । वृषणः । वः । अस्ति ॥२१॥

अन्वय — ३६४ इमे वसवः मरुतः यथा रधं चित् जुनन्ति भूमिं चित् जुपन्त, (हे) वृषणः । तर्मांसि अप वाघध्वं, अग्ने विश्वं लोकं तर्नयं धत्त ।

३६५ (हे) रध्व्यः भक्त । वः दायात् मा निः अराम, वि-भागं पृथात् मा दुध्म, (हे) वृषणः । य सु-जातं यत् ईं अस्ति स्वाहे वसव्ये न आ भजतन ।

अर्थ- ३६४ (इमे) ये (वसवः) वसनेहारे (मरुतः) वीर मरुत् (यथा) जैसे (रधं चित्) समृद्धि-
नाली मानवके निकट (जुनन्ति) जाते हैं, उसी प्रकार (भूमिं चित्) भटकनेवाले भीष्ममैगेके समीप भी ये
(जुपन्त) जाते रहते हैं; हे (वृषण) बलिष्ठ वीरो ! (तर्मांसि अप वाघध्वं) अंधेरे को दूर हटा दो और
(अग्ने) हमारे लिए (विश्वं तर्नयं लोकं) सभी पुत्रपौत्रों-संतानों-को (धत्त) दे दो ।

३६५ हे (रध्व्यः मरुतः) रथपर बैठनेवाले वीर मरुतो ! (वः) तुम्हारे (दायात्) दानके
स्थानसे हम (मा निः अराम) चट्टत दूर न रहें । (वि-भागं) धनका बँटवारा होते समय (पृथात् मा
दुध्म) हमें सबके पीछे न रहो । हे (वृषण!) बलिष्ठ वीरो ! (वः) तुम्हारा (सु-जातं) उच्चकोटिका
(यत् ईं) जो कुछ धन (अस्ति) है, उम (स्वाहे वसव्ये) स्पृहणीय धनमें (नः) हमें (आ भजतन) सब
प्रकारसे अंदाभागी करो ।

भावार्थ- ३६४ वीर सैनिक जिस प्रकार धरादलोंका संरक्षण करते हैं, उसी प्रकार वे निर्धनोंका भी संरक्षण करते हैं ।
वीरोंकी उचित हे कि ये विधरभी सले जायँ उचर अंधियारी दूर करके मन्के प्रवाहाका भाग बटला दें । हमारे पुत्रपौत्रों-
को सुरक्षित रख दें ।

३६५ हमें धनका बँटवारा ठीक समयपर मिल जाय ।

करना, उच्चार करना, हैंटना, विष होना । (५) अररस् = जानेवाला, हिलनेवाला, दायु, शय (अ-प्रयच्छन्,
सायनः ।) रा = देना, ररस् = देनेवाला, अ-ररस् = न देनेहारा, जो दान न देता हो- (कज्म, वृषण ।)

[३६४] (१) रध = (शय संसिद्धि) = घनिक, उदार, सुखी, दुःख देनेवाला, पूजा करनेहारा ।
(२) भूमि = (अम् चकने = भटकना) मैसावात, शीघ्रता, दृष्ट उचर घूमनेवाला (भीष्ममैगा) । (३) जुन
(गर्गो) = जाना, हिलना ।

[३६५] (१) दायां = काटनेका इधियात, दान, दानका स्थान । मा+अं = जिस दानसे प्राण-रक्षण
होना हो, यह दान ।

(३६६) सम् । यत् । हनन्त । मन्युऽभिः । जनासः ।

शूराः । यद्भीषु । ओपधीषु । विष्णु ।

अध । स्म । नः । मरुतः । रुद्रियासः । आतारः । भूत । पृतनासु । अयः ॥२२॥

(३६७) भूरि । चक्र । मरुतः । पित्र्याणि ।

उक्थानि । या । वः । शस्यन्ते । पुरा । चित् ।

मरुत्ऽभिः । उग्रः । पृतनासु । साल्हा ।

मरुत्ऽभिः । इत् । सनिता । वाजम् । अर्वा ॥२३॥

अन्वय - ३६६ (हे) रुद्रियासः अयः मरुत ! यत् शूरा जनास यद्भीषु ओपधीषु विष्णु मन्युभिः न हनन्त अध पृतनासु न आतार भूत सः ।

३६७ (हे) मरुतः । पित्र्याणि भूरि उक्थानि चक्र, व या पुरा चित् शस्यन्ते, उग्र मरुद्रिः पृतनासु साल्हा, मरुद्रिः इत् अर्वा वाजं सनिता ।

अर्थ- ३६६ हे (रुद्रियासः) महावीरके (अयं) पूज्य (मरुतः) वीर मरुतो ! (यत्) जब तुम्हारे (शूराः जनास) शूर लोग (यद्भीषु) नदियों में (ओपधीषु) अरण्य में- वृक्षकुंजमें (विष्णु) प्रजा में (मन्युभिः) उरसाह-पूर्यक शत्रुपर (सं हनन्त) मिलाकर हमला करते हैं (अध) तब इन ऐसे (पृतनासु) युद्धों में (न) हमारे (आतारः भूत सः) संशयक बने रहो ।

३६७ हे (मरुत !) वीर मरुतो ! तुम (पित्र्याणि) पित्रों के संबंध में (भूरि) बहुतसे (उक्थानि) स्तोत्र (चक्र) कर चुके हो, (य) तुम्हारे (या) इन स्तोत्रों की (पुरा चित्) पहलेसे (शस्यन्ते) प्रशंसा होती है । (उग्र) उग्र स्वरूपवाला वीर (मरुद्रिः) मरुतोंकी सहायतासे (पृतनासु) युद्धों में शत्रुओं का (साल्हा) पराभव करना है, (मरुद्रिः इत्) वीर मरुतोंकी प्रेरणासे (अर्वा) घोडा भी (वाजं) युद्धक्षेत्रमें (सनिता) अपने कार्य पूर्ण करता है ।

भाषार्थ— ३६६ वीर सैनिक जब उरसाहपूर्वक शत्रुपर हमले करते हैं, तब उनकी सहायकों नदियोंमें, नरगियोंमें विद्यमान बने निकुंजोंमें तथा जंगलोंमें मध्य हुआ करते हैं । ऐसे युद्धोंमें वे इनकी रक्षा करें ।

३६७ वीर मरुत ब्रवी हैं । उनके कान्धोंकी प्रशंसा सभी करते हैं और इनकी सहायतासे वीर सैनिक शत्रुओंको परास्त करते हैं तथा घोडे भी युद्धमें अपना कार्य ठीक प्रकारसे निभाते हैं ।

टिप्पणी— [३६६] (१) यद्भीषु= यद्भी, शान्तिमान, चपल, चञ्चल । यद्भी= नदी, आकाश, वृक्षी, प्रात काक का-सायकालका दिनका-रात्रिका भाग । युद्ध तीन खलोंमें हुआ करते हैं । (१) यद्भीषु= नदियोंके स्थलमें, नदी खोवते समय हमले होते हैं । (२) ओपधीषु= जंगलोंमें, मध्य वृक्षनिकुंजोंमें जिसे हमसे बेटकर शत्रुपर चढ़ाई की जाती है और (३) विष्णु= जंगलोंमें, जंगलोंमें घना वस्त्रियों के मध्य, जंगल कर्मोंमें छेनेके लिए । इस भाँति तीन प्रकारके समरोंमें वे वीर हमें बचायें । (२) ओपधी= (दोपधी, निरक्त) नदीरके दोष हननेके लिए उपयुक्त भीषधि (भीष) वेन (धी) धारण करनेहारी वनस्पति, जगल, कुज, अरण्य । [३६७] (१) उग्रं= वायव्य, श्लोक, सोन, पशु । (२) वाजं= भल, युद्ध, जल, बल । (३) साल्हा= (मरु- पराभव करना, जीतना) पराभव करनेहारा, विजेता । (४) सन्= (समकी) विभाग करना, सेवन करना, पाना, ग्रिय होना, सम्मान देना । मरुतो वे ब्रवी होनेके मध्यममें बड़े २००, २०१, २०४, २०५, ३९३ मर्मोंमें देखिए ।

(३६८) असे इति । वीरः । मरुतः । शुष्मी । अस्तु । जनानाम् । यः । असुरः । विडधर्ता ।
 अपः । येन । सुदक्षितये । तरेम । अर्ध । स्म । ओकः । अभि । वः । स्याम् ॥२४॥
 (३६९) तत् । नः । इन्द्रः । वरुणः । मित्रः । अग्निः । आपः । ओषधीः । उनिनः । जुपन्त ।
 शर्मन् । स्याम् । मरुताम् । उपस्ये । यूयम् । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥२५॥

(क्र० ५१७१-७)

(३७०) मध्यः । यः । नाम । मरुतम् । यज्ञज्ञाः । प्र । यज्ञेषु । शर्वसा । मुदन्ति ।
 ये । रेजयन्ति । रोदसी इति । चित् । उर्वो इति । पिन्वन्ति । उत्सम् । यत् । अर्यासुः । उग्राः ॥१॥

जन्म्य-३६८ हे मरुतः । य असु-र जनाना विधर्ता असे वीरः शुष्मी अस्तु, येन सु-क्षितये अप
 तरेम, नद्य व सं भोज' अभि स्याम् । ३६९ इन्द्र, मित्र वरुणः अग्नि, आप ओषधी यनिन नः तत्
 जुपन्त, मरुता उप-स्ये शर्मन् स्याम्, यूयं स्वस्तिभिः सदा न पात । ३७० (हे) यज्ञज्ञा । वः मरुतं
 नाम मध्य यज्ञेषु शर्वसा प्र मदन्ति, यत् उग्रा अर्यासु, ये उर्वो चित् रोदसी रेजयन्ति, उत्सं पिन्वन्ति ।

अर्थ- ३६८ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! । य जो अपना (असु-र.) जीवन देकर (जनानां वि धर्ता)
 लोगों का विशेष ढंगसे धारण करता है वह (असे वीर) हमारा वीर (शुष्मी अस्तु) बलिष्ठ रहे ।
 (येन) जिनकी सहायतासे हम (सु क्षितये) उत्तम निवास करने के लिए (अप.) समुद्रको भी (तरेम)
 तैरकर चले जाते हैं, (अर्ध) और (न) तुम्हारे मित्र बनकर हम (स्वं भोज) अपने निजी घरमें (अभि
 स्याम्) सुखपूर्वक निवास करते ह ।

३६९ (इन्द्र) इन्द्र, (मित्र.) मित्र, (वरुण.) वरुण, (अग्नि.) अग्नि, (आपः) जल, (ओषधी.)
 औषधियों तथा (यनिन) घनके पेड़ (न तत्) हमारा यह स्तोन (जुपन्त) प्रीतिपूर्वक सेवन करते हैं ।
 (मरुता उप स्ये) वीर मरुतां के निम्नम सहवास में हम (शर्मन् स्याम्) सुखसे रहें । हे धीरो !
 (यूयं) तुम (स्वस्तिभिः) बल्याणकारक उपायों से (सदा) हमेशा (नः पात) हमारी रक्षा करो ।

३७० हे (यज्ञज्ञा !) पूज्य धीरो ! (य मारुतं नाम) तुम वीर मरुतां का नाम सचमुचही
 (मध्यः) मिठासका घातक है । ये वीर (यज्ञेषु) यज्ञों में (शर्वसा) बलके कारण (प्र मदन्ति) अतीव
 हर्षित एवं संतुष्ट हो उठते हैं । (यत्) जब ये (उग्रा.) उग्र वीर (अर्यासु) शत्रुओंपर चढ़ाई करने
 जाने लगते हैं तब (ये) ये (उर्वो चित्) बड़ी विस्तीर्ण (रोदसी) आकाश एवं पृथ्वी को भी (रेजयन्ति)
 विचलित, प्रभ्रमित कर डालते हैं और (उत्सं पिन्वन्ति) जलप्रवाहको भी उहा देते हैं ।

भावार्थ- ३६८ अपने जीवनका बलिदान करके समूची जनताका संरक्षण करनेहारा हमारा पुत्र बलवान वीर बने ।
 हमारा निवास सुप्रसन्न हो, हमलिये हम बीचकी सभी कठिनाइयों दूर करेगे और वीरोंके मित्र बनकर अपने स्थानमें
 सुखसे रहेंगे । ३६९ हमारा स्तोत्रका सेवन सभी देव कर लें । वीरोंके समीप हम सर्वथे जीवनयात्रा पिताय । वीर कल्याण-
 पथके साधनों से हमारी रक्षा करें । ३७० यज्ञके कारण हर्षित होनेवाले ये वीर यज्ञसे अपनी सामर्थ्यसे प्रमत्तबला
 हो जाते हैं । जब ये वीर शत्रुओंपर आक्रमण कर बैठते- है तब समूची पृथ्वी दहल उठती है और उस समय ये
 जलप्रवाहोंको भूमिपर प्रवर्तित कर देते हैं । इनके वेगपूर्ण तथा विध्वंसकित से चलने हमलोंके कलस्वरूप सत्तारभरमें
 कंपर्षी पैदा हो जाती है और जलप्रवाह बहने लगत हैं ।

टिप्पणी— [३६८] (१) अप = जन्म्यह, गल, कर्म, वन । (२) नू = वीर जाना, दावी बाना, जीवना,
 नास कराना, किन्ही के चारने का जाना । [३७०] (१) नाम = नाम, यज्ञ, वीरि ।

(३७१) निःचेतारः । हि । मरुतः । गृणन्तम् । प्रऽनेतारः । यजमानस्य । मन्म ।

अस्माकम् । अद्य । विद्वेषु । वहिः । आ । वीतये । सदत् । विप्रियाणाः ॥२॥

(३७२) न । एतावत् । अन्ये । मरुतः । यथा । इमे । भ्राजन्ते । रुग्मैः । आयुधैः । तनूमिः ।
आ । रोदसी इति । विश्वऽपिशः । पिशानाः । समानम् । अज्जि । अज्जते । शुभे । कम् ॥३॥

(३७३) ऋधक् । सा । वः । मरुतः । दिद्यत् । अस्तु । यत् । वः । आगः । पुरुषता । कराम ।
मा । वः । तस्याम् । अपि । भूम । यजत्राः । असे इति । वः । अस्तु । सुऽमतिः । चर्निष्ठा ॥४॥

अन्वयः— ३७१ (हे) मरुतः ! गृणन्तं नि-चेतारः हि, यजमानस्य मन्म प्र-नेतारः, विप्रियाणाः अद्य अस्माकं विद्वेषु वीतये वहिः आ सदत् । ३७२ इमे मरुतः रुग्मैः आयुधे तनूमिः यथा भ्राजन्ते, न एतावत् अन्ये, विश्व-पिश रोदसी पिशानाः शुभे समानं अज्जि कं आ अज्जते । ३७३ (हे) यजत्राः मरुतः ! यत् वः आग पुरुषता कराम सा व दिद्यत् ऋधक् अस्तु, वः तस्यां अपि मा भूम, असे वः चर्निष्ठा सु-मति अस्तु ।

अर्थ— ३७१ हे (मरुत !) वीर मरुतो ! तुम (गृणन्त) काव्यका सृजन करनेवालोंको (नि-चेतारः हि) इच्छे करते हो और (यजमानस्य) याजक के (मन्म) मननीय काव्यका (प्र-नेतार) निर्माता भी हो । (विप्रियाणाः) सदा हर्षित एवं प्रसन्न रहनेवाले तुम (अद्य) आज (अस्माकं विद्वेषु) हमारे यज्ञमें (वीतये) एविष्याद्यका सेवन करनेके लिए इस (वहिं) कुशामनपर (आ सदत्) आकर बैठो ।

३७२ (इमे मरुतः) ये वीर मरुत् (रुग्मैः) स्वर्गमुद्राओंके हारोंसे (आयुधैः) एधियारोसे तथा (तनूमि) अपने शरीरोंसे भी (यथा भ्राजन्ते) जिस भाँति जगमगाते हैं (न एतावत् अन्ये) उस प्रकार दूसरे कोई नहीं प्रकाशमान हो उठते हैं । (विश्व-पिशः) सज्जो तेजस्वी बनानेहारे तथा (रोदसी) बुलोक एवं भूलोकको भी (पिशाना-) संघारते हुए वे वीर (शुभे) शोभाके लिए (समानं अज्जि) सदाश वीरभूषण या गणवेश (कं आ अज्जते) सुरपूर्वक पहनते हैं, प्रकाशमान होते हैं ।

३७३ हे (यजत्रा मरुतः !) पूज्य वीर मरुतो ! (यत्) यद्यपि हमसे (व आगः) तुम्हारा अपराध (पुरुष-ता कराम) मानवताको भूल करना, अपराध करना, स्वाभाविक होनेसे हुआ हो, तो भी (सा वः) यह तुम्हारा (दिद्यत्) चमत्तनेवाला एह्यह हमसे (ऋधक् अस्तु) दूर रहे, (वः) तुम्हारे (तस्यां) उस आयुधके समीप हम (अपि) तनिकभी (मा भूम) न रहे । (असेम्) हमारे लिए अनुकूल (वः) तुम्हारे (चर्निष्ठा) अन्न देनेकी (सु मति अस्तु) अच्छी बुद्धि हो ।

भाषार्थ— ३७१ ये वीर काव्य बनानेवालोंको पृथिवि करनेवाले तथा स्वयंभी काव्यकी रचना करनेवाले हैं । अतः हमारे यज्ञमें वे आ जायँ और आसनपर बैठ एविष्याद्यका ग्रहण तथा सेवन कर लें । ३७२ ये वीर भामूषण एवं हाथियार धारण करके बड़े ही अन्दे उगसे अपने आपको भँजारते हैं और दूसरे लोगोंकोभी सुशोभित करते हैं । ये सभी वीर समान भलकार या गणवेश पहनते हैं । ३७३ हमसे भूलें, गलतियाँ होना स्वाभाविक हैं, क्योंकि हम मानव ही हैं । अतः अगर हमसे इन वीरोंका कोई अपराध हुआ हो, तोभी ये क्षमा हमपर हाथियार न चलायँ । हाँ, हमें यथेष्ट अन्न प्रदान करनेकी इतनी सद्बुद्धि हमेशा हमारी ओर मुझ जाय ।

टिप्पणी— [३७१] (१) नि + चि = हँडना, इच्छा करना, चढेरना । (२) मन्म = इच्छा, स्नेह, मनन करने योग्य काव्य । (३) प्र + नी = ले चलना, प्रवृत्त करना, आधार देकर चलाना । प्रणेता = निर्माण करनेवाला नेता, पथप्रदर्शक । [३७२] (१) अन्ज् = स्वाभाविक करवाना, दर्शाना, सम्मान देना, अलहृत करना, (मंत्र = देलिये) । अज्जि- सैनिक

(३७४) कृते । चित् । अग्र । मरुतः । रणन्त । अनवघातः । शुचयः । पावकाः ।
प्र । नः । अवत । सुमतिभिः । यजत्रा ।

प्र । वज्रिभिः । तिरत । पुण्यसे । नः ॥ ५ ॥

(३७५) उव । स्तुतासः । मरुतः । व्यन्तु । विश्वेभिः । नामभिः । नरः । हवीषि ।
ददात । नः । अमृतस्य । प्रजार्थे ।
जिगृत् । शयः । सूनुता । म्रपानि ॥ ६ ॥

अन्यथा- ३७४ अन्-अवघास शुचय पावकाः मरुत अग्र कृते चित् रणन्त, (हे) यजत्राः ! सु-मतिभिः
प्र अवत, नः वज्रिभिः पुण्यसे प्र तिरत ।

३७५ उत विश्वेभिः स्तुतास नरः मरुतः हवीषि व्यन्तु, नः प्रजार्थे अ-मृतस्य ददात, सूनुता
शयः मघानि जिगृत् ।

अर्थ- ३७४ (अन्-अवघासः) अनिदनीय (शुचय) स्वयं पवित्र होते हुए दूसरोंको (पावकाः) पवित्र
करनेहारो ये (मरुतः) धीर मरुत् (अब कृते चित्) यहाँपर हमारे चलावे हुए कर्ममें-पहलमें (रणन्त)
रममाण हों, हे (यजत्राः !) पूजनीय धीरो ! (नः) हमारा तुम (सु-मतिभिः) अच्छी बुद्धियोंसे (प्र अवत)
भली भाँति रक्षा करो । (नः) एम (वज्रिभिः) अघोंसे (पुण्यसे) पुष्ट हों, इस लिए हमें संकटोंसे
(प्र तिरत) परे ले चलो ।

३७५ (उव) निश्चयपूर्वक (विश्वेभिः नामभि) सभी नामोंसे (स्तुतासः) प्रशंसित ये (नरः
मरुतः) नेता धीर मरुत् (हवीषि व्यन्तु) हविष्यन्न प्राप्त करें । हे धीरो ! (नः प्रजार्थे) हमारी प्रजाको
(अ-मृतस्य) अमरपनका (ददात) प्रदान करो और (सूनुता शयः) आनन्ददायक धन तथा (मघानि)
सुखोंकीभी (जिगृत्) दे दो ।

भाषार्थ- ३७४ ये धीर निष्कलक, विमुक्त तथा पवित्रता कावेहारे हैं । हम जिस कार्यका सूत्रराज करने चले हैं,
उसमें ये रममाण हैं । वह कार्य उन्हें अत्यन्त सवे । ये हमारी रक्षा करें और अशुभ शक्तसे हमारा पोषण ही, इसलिये
हमें संकटोंसे छुड़ा दें ।

३७५ प्रशस्तनीय धीर सभी प्रकारके उत्तम अन्न प्राप्त कर लावे । समूची प्रजाको अविच्छिन्न सुख प्रदान
करें और सभी भौतिके धन एवं सम्पत्ति प्राप्त कर दें ।

अपने वारिदोर (सामान अजि Uniform) समानरूपका वेत घट देवे हैं । (१) पिशु = आकार देना, सजाना,
अवधारित होना, प्रकाशमान होना, तैयार रहना, अलकृत करना ।

[३७३] (१) क्षुधन्- (क्) = शूधक्, दूर । (२) वानिष्ठा = (वनस्-स्थ) बहुवसा अन्न देनेहारी,
दातावगुणमे स्थिर । [अग्र. पुरुषता कराम- मूले करना मानकी स्वभावके अनुकूल है- To err is human]

[३७४] (१) प्र-तिर = पहले उत्तर जाता, उस पार चले जाना । (२) कृत = कृत्य, कर्म, प्रवेव,
सेवा, परिणाम ।

[३७५] (१) धी = (यति-रवाप्ति-प्रजनन-कामि-असन्न सादनेषु) = जाना, उत्पन्न करना,
पाना, ज्ञाना । (२) सूनुत = सत्यपूर्ण, आनन्ददायक, मंगल, शिव । (३) मघ = सुख, दान, सम्पत्ति । (४)
शु = देना ।

(३७६) आ । स्तुतासः । मरुतः । विश्वे । ऊती । अच्छ । सूरीन् । सर्वस्ताता । जिगात ।
ये । नः । त्मना । शतिनः । वर्धयन्ति । युयम् । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥७॥

(ऋ० ७।५८।१-६)

(३७७) प्र । साकम् उद्धे । अर्चत । गणाय । यः । दैव्यस्य । धाम्नः । तुविष्मान् ।
उत् । क्षोदन्ति । रोदसी इति । महिष्ट्वा । नक्षन्ते । नार्कम् । निःस्रतेः । अवंशात् ॥१॥
(३७८) जन्ः । चित् । वः । मरुतः । त्वेष्येण । भीमासः । तुविष्मन्वयः । अयासः ।
प्र । ये । महःभिः । ओजसा । उत् । सन्ति । विश्वः । वः । यामन् । भयते । स्वःऽदृक् ॥२॥

अन्वयः— ३७६ (हे) स्तुतास मरुतः ! विश्वे सर्व-ताता सूरीन् अच्छ ऊती आ जिगात, ये त्मना शतिनः नः वर्धयन्ति, यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात । ३७७ यः दैव्यस्य धाम्नः तुविष्मान् साकं-उद्धे गणाय प्र अर्चत, उत् अवंशात् निर्ऋतेः क्षोदन्ति, महिष्ट्वा रोदसी नार्कं नक्षन्ते । ३७८ (हे) भीमासः तुविष्मन्वयः अयास मरुतः ! वः जन्ः त्वेष्येण चित्, उत् ये मरुभि ओजसा प्र सन्ति, वः यामन् स्वः-दृक् विश्वः भयते ।

अर्थ— ३७६ हे (स्तुतासः मरुतः !) प्रशंसनीय वीर मरुतो ! तुम (विश्वे) सभी लोग उस (सर्व ताता) सभी जगह फैलनेवाले यक्षकर्म में काम करनेवाले (सूरीन् अच्छ) विद्वानोंकी ओर (ऊती) संरक्षक शक्तियों के साथ (आ जिगात) आओ । (ये) जो तुम (त्मना) स्वयंही (शतिनः नः) हम जैसे सैनिकों मान्योंको (वर्धयन्ति) बढ़ाते हैं । (यूयं) तुम (स्वस्तिभिः) कल्याणकारक उपायोंद्वारा (सदा) सदैवके लिए (नः पात) हमारी रक्षा करो । ३७७ (य) जो (दैव्यस्य धाम्नः) दिव्य स्थान या (तुविष्मान्) हाता है, उस (साकं-उद्धे) संघ के यलको धारण करनेहारे (गणाय) वीरों के समूहकी (प्र अर्चत) पूजा करो । (उत्) क्योंकि ये वीर (अवंशात्) वंश के विनाशरूपी (निर्ऋते) आपत्ति को (क्षोदन्ति) चकनाचूर कर देते हैं, विनष्ट करते हैं, और (महिष्ट्वा) घडपनसे (रोदसी) आकाश एवं पृथ्वी तथा (नार्कं) स्वर्ग के मध्य (नक्षन्ते) जा पहुँचते हैं, व्याप्त होते हैं । ३७८ हे (भीमासः) भीषण रूपधारी, (तुविष्मन्वय) अत्यंत उल्हास से परिपूर्ण एवं (अयास मरुतः !) धैरवान वीर मरुतो ! (वः जन्) तुम्हारा जन्म (त्वेष्येण चित्) तेजस्वितासे युक्त है, (उत्) उसी प्रकार (ये मरुभि) जो महारोसे तथा (ओजसा) शारीरिक बलसे (प्र सन्ति) प्रसिद्ध हैं, ऐसे (वः) तुम्हारे (यामन्) शत्रुदलपर हमले करते समय (स्वः-दृक्) आकाश की ओर दृष्टि देकर (विश्वः भयते) समूचा प्राणिसमूह भयभीत हो उठता है ।

भाषार्थ— ३७६ ये वीर सैनिकोंको सबधन करते हैं । इस यक्षकर्ममें जो विद्वान् कार्यमें निरत हुए हैं, उनकी रक्षाका भार ये वीर उठाएँ और कल्याण करनेके सभी साधनोंसे हम सबकी रक्षा करें । ३७७ ये वीर उस दिव्य स्थानको जानते हैं, जहाँ पहुँचनेकी इच्छा सबके मनमें उठ खड़ी होती है । इन वीरोंमें साधिक बल विद्यमान है, इसीलिए इनका साकार करो । ये वंशनाशकी घोर आपत्ति से बचाते हैं और अपने घडपनसे भूमंडल, आकाश एवं स्वर्गमें भी अप्रतिहत संचार करते हैं । ३७८ ये वीर सैनिक बड़ेही उल्हासी एवं प्रभावी हैं । उनका जन्मही तेजस्वी वृद्धि करनेके लिए है । अपने बलसे तथा प्रभावसे ये सभी जगह प्रसिद्ध हैं । जब ये शत्रुपर आक्रमण कर बैठते हैं, तब उनके प्रचण्ड वेगसे सभी जीवजन्तु भयभीत हो जाते हैं ।

टिप्पणी— [३७६] (१) सर्व-ताता = बड़, जिसका परिणाम सभी जगह फैल सके ऐसा अच्छा कर्म । (२) ताति = वंश, फैलनेवाला । [३७७] (१) तुविष् = वृद्धि, शक्ति, ज्ञान । (२) निर्ऋतिः = नाश, विपत्ति, संकट,

(३७९) वृहत् । वयः । मघवत्सभ्यः । दधात । जुजोपन् । इत् । मरुतः । सुस्तुतिम् । नः । गतः । न । अध्वा । वि । तिराति । जन्तुम् । प्र । नः । स्पार्हाभिः । ऊतिभिः । तिरेत ॥३॥
 (३८०) युष्माऽऽतः । विप्रः । मरुतः । शतस्वी । युष्माऽऽतः । अर्वा । सहुरिः । सहस्री । युष्माऽऽतः । सम्-राट् । उत । हन्ति । वृत्रम् । प्र । तत् । वः । अस्तु । धृतयः । देष्णम् ॥४॥

अन्वयः— ३७९ (हे) मरत ! मघ वद्भ्य वृहत् वयः दधात, न सु-स्तुतिं जुजोपन् इत्, गतः अध्वा जन्तुं न वि तिराति, नः स्पार्हाभिः ऊतिभिः प्र तिरेत ।

३८० (हे) मरतः ! युष्मा-ऽतः विप्र- शतस्वी सहस्री, युष्मा-ऽतः अर्वा सहुरिः, उत युष्मा-ऽतः सम्- राट् वृत्रं हन्ति, (हे) धृतयः ! वः तत् देष्णं प्र अस्तु ।

अर्थ— ३७९ (हे मरतः !) वीर मरतो ! (मघ-वद्भ्यः) धनिकों के लिए (वृहत् वयः) बहुत आरोग्य एवं सुदीर्घ जीवन (दधात) दे दो । (नः सु-स्तुतिं) हमारी अच्छी सराहना का तुम (जुजोपन् इत्) सेवन करो । तुम (गतः अध्वा) जिस राहपरसे जा चुके हो, वह मार्ग (जन्तुं) प्राणी को बिलकुल (न तिराति) धिन्ध नहीं करेगा । उसी प्रकार (नः) हमारा (स्पार्हाभिः ऊतिभिः) स्पृहणीय संरक्षक शक्तियों से (प्र तिरेत) संवर्धन करो ।

३८० हे (मरतः !) वीर मरतो ! (युष्मा-ऽतः) तुमसे सुरक्षित हुआ, (विप्रः) शानी मनुष्य (शतस्वी सहस्री) सैकड़ों तथा हजारों प्रकार के धनसे युक्त होता है । (युष्मा-ऽतः) जिसकी रक्षा एवं देवामाल तुमने की है, ऐसा (अध्वा) घोडातक (सहुरिः) सहनशक्तिसे युक्त होता है- विजयी बनता है । (युष्मा-ऽतः) तुम्हारी सहायतासे सुरक्षित बना हुआ (सम्-राट्) सार्यभौम नरेश (वृत्रं) निरोधक दुश्मनोंको (हन्ति) मार डालता है । हे (धृतयः !) शत्रुओंको हिलानेवाले वीरो ! (वः तत्) तुम्हारा यह (देष्णं) दान हमें (प्र अस्तु) पर्याप्त मात्रामें उपलब्ध हो ।

भाषार्थ— ३७९ जो धनिक है, उन्हे उत्तम आरोग्य तथा दीर्घ जीवन मिले । जिस राहपरसे वीर पुरुष चले हैं, उसपर उनके भ्रष्टे प्रबंधके कारण अब किसीको भी कुछ कष्ट नहीं उठाना पड़ता है और इनकी संरक्षक शक्ति उधर काम कर रही हैं, अतः सभी की उत्तम रक्षा हो रही है ।

३८० यदि ये वीर किसी मानव के संरक्षण का बीड़ा उठा लें, तो वह अवश्यही धनाक्षय, विजयी, एवं सावंभौम बनता है ।

धाप, पृष्ठीना तल । (३) ध्रुव् (गती सपेयणे च) = जाना, कुचलना, चकमाचूर करना । (४) नश् (गयी) = समीप भावा, पहुँचना । (५) अ-वंदा= निर्वन्त होना, वंशनाश । अ-वंदात् निर्ऋति = निर्वन्त हो जानेका भय । यह बड़ा गतरनाक है, क्योंकि संततिसातलसे अमरपन की प्राप्ति होती है । (शिल्पि-प्रजाभिः अमृतत्वं । ऋग्वेद ५।१।१०) । [३७८] (१) अयः= गति, वेग, चढाई, हमला । (२) यामन्= गति, जाना, आक्रमण, हमला । (३) स्वर-टक्= लगाकर देखनेवाला । [३७९] (१) मघ= सुख, दान; संपत्ति । (२) वयस्= अन्न, आयुष्य, जीवन, ताकि, हविष्यान्न, आरोग्य । (प्रायः देखा जाता है कि धनिक लोग रोगी, क्षीण, अल्पायु तथा संतानविहीन होते हैं, इसीलिए यहाँपर जो यह प्रतिपादन किया है कि धनाढ्य पुरुषोंको दीर्घ जीवन एवं आरोग्य मिले, यह बिलकुल उचित है ।) [३८०] (१) सहुरि (सह मर्षणे वृष्टौ च) = बरदात करनेवाला, पराभव करनेवाला, विजयी, पृथ्वी, सूर्य । (२) वृत्र= (वृन् आवरणे) शत्रु, मेघ, अंधेरा, आवाज, घेरनेवाला दुश्मन । (३) देष्णं= दान, देन ।

(३८१) तान् । आ । रुद्रस्य । मीळ्हुपः । विवासे । कुवित् । नंसन्ते । मरुतः । पुनः । नः ।
 यत् । सस्वती । जिहीळिरे । यत् । आविः । अवं । तत् । एनः । ईमहे । तुराणाम् ॥५॥
 (३८२) प्र । सा । वाचि । सुस्तुतिः । मघोनाम् । इदम् । सुस्तुक्तम् । मरुतः । जुपन्त ।
 आरात् । चित् । द्वेषः । वृपणः । युयोत् । यूयम् । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥६॥

(सं० ७५५१७-११)

(३८३) यम् । त्रायध्वे । इदमुद्दम् । देवासः । यम् । च । नयथ ।
 तस्मै । अग्ने । वरुण । मित्र । अर्यमन् । मरुतः । शर्म । यच्छत ॥१॥

अन्वयः— ३८१ मीळ्हुपः रुद्रस्य तान् आ विवासे, मरुतः नः कुवित् पुनः नंसन्ते, यत् सस्वती यत्
 आविः जिहीळिरे तुराणां तत् एनः अय ईमहे ।

३८२ मघोनां सु-स्तुतिः सा वाचि प्र, मरुतः इदं सूक्तं जुपन्त, (हे) वृपणः ! द्वेष आरात्
 चित् युयोत्, यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात ।

३८३ (हे) देवासः ! यं इदं-इदं त्रायध्वे यं च नयथ, तस्मै (हे) अग्ने ! वरुण ! मित्र !
 अर्यमन् ! मरुतः ! शर्म यच्छत ।

अर्थ— ३८१ (मीळ्हुपः) बलिष्ठ (रुद्रस्य तान्) रुद्रके उन वीरोंकी (आ विवासे)में सेवा करता हूँ।
 (मरुतः) वे वीर मरुत् (नः) हमें (कुवित्) अनेक बार तथा (पुनः) बारंबार (नंसन्ते) सहायता पहुँचाते
 हैं, हममें सम्मिलित होते हैं। (यत् सस्वती) जिन गुप्त या (यत् आवि-) प्रकट पापोंके कारण वे
 (जिहीळिरे) हमपर क्रोध प्रकट करते आये हैं, उन (तुराणां) शीघ्रतासे अपना कर्तव्य करनेवालों
 के संबंधमें किया हुआ यह (एनः) पाप हम अपनेसे (अय ईमहे) दूर हटाते हैं।

३८२ (मघोनां) धनाढ्य वीरोंकी यह (सु-स्तुतिः) उत्कृष्ट सराहना है, (सा) यह सदैव
 हमारे (वाचि प्र) संभाषणमें निवास करे। (मरुतः) वीर मरुत् (इदं सूक्तं) इस सूक्तका (जुपन्त)
 सेवन करें। हे (वृपणः) बलिष्ठ वीरो ! हमारे (द्वेष) द्वेषाओं को (आरात् चित्) जब तक वे दूर हैं,
 तभीतक हमसे (युयोत्) दूर करो। (यूयं) तुम (स्वस्तिभिः) कल्याणकारक उपायोंद्वारा (सदा) हमेशा
 (नः पात) हमारी रक्षा करो।

३८३ हे (देवासः) ! देवो ! (यं) जिसे तुम (इदं-इदं) इस भाँति (त्रायध्वे) सुरक्षित रखते
 हो (यं च) और जिसे अच्छी तरहसे (नयथ) ले चलते हो, (तस्मै) उसे हे (अग्ने !) अग्ने !
 हे (वरुण !) वरुण ! हे (मित्र !) मित्र ! हे (अर्यमन् !) अर्यमन् ! तथा हे (मरुतः) ! वीर मरुतो !
 (शर्म यच्छत) सुख दे दो।

भावार्थ— ३८१ हम इन वीरोंकी सेवा करते हैं, इसलिये वे बारंबार हमारी मदद करते हैं। पाप कानेसे उन्हें
 क्रोध आता है, अतः हम पापी विचारधाराको बहुत दूर हटाते हैं।

३८२ इन वीरोंके संबंधमें यह काव्य हमारे मुँहमें सदैव रहने पाय। जबलौ हमारे शत्रु मुद्दर स्थानोंमें हैं,
 तभीतक उनका नाश वे वीर सैनिक करें और हमारी रक्षाका अच्छा प्रबंध करके कल्याण करें।

३८३ जिसकी रक्षाका भार वीर अपने ऊपर ले लेते हैं, वह सुखी बनता है।

टिप्पणी— [३८१] (१) नस्= पहुँचना, समीप जाना, छुटना, नष्ट होना, सामने रखा होना। (२) एनस्=
 पाप, अपराध, दोष, त्रुटि। (३) जिहीळिरे = (हेद्द बनादरे) अनादर दर्शाया, धिक्कार किया, दुलतारा।

- (३८४) युष्माकम् । देवाः । अवसा । अहनि । प्रिये । ईजानः । तरति । द्विपः ।
 प्र । सः । क्षयम् । तिरते । वि । महीः । इपः । यः । वः । वराय । दाशति ॥२॥
- (३८५) नहि । वः । चरमम् । चन । वसिष्ठः । परिऽमंसते ।
 अस्माकम् । अद्य । मरुतः । सुते । सर्वा । विश्वे । पियत । कामिनः ॥२॥
- (३८६) नहि । वः । ऊतिः । पृतनासु । मर्धति । यस्मै । अराध्वम् । नरः ।
 अभि । वः । आ । अवर्त् । सुऽमतिः । नवीयसी । तूयम् । यात । पिपीपवः ॥४॥

अन्वयः— ३८४ (हे) देवा ! युष्माकं अवसा प्रिये अहनि ईजानः द्विपः तरते, यः यः वराय महीः इपः वि दाशति सः क्षयं प्र तिरते ।

३८५ (हे) मरुतः ! वसिष्ठः यः चरमं चन नहि परिमंसते, अद्य अस्माकं सुते कामिनः विश्वे सचा पियत ।

३८६ (हे) नर ! यस्मै अराध्वं, यः ऊतिः पृतनासु नहि मर्धति, यः नवीयसी सु-मतिः अभि अवर्त्, पिपीपवः नृप आ यात ।

अर्थ— ३८४ हे (देवा !) प्रनाशमान वीरो ! (युष्माकं अवसा) तुम्हारी रक्षाते सुरक्षित हो (प्रिये अहनि) अभीष्ट दिन (ईजान) यज्ञ करनेद्वारा (द्विपः तरति) द्वेष्य लोगोंको लौंघ जाता है, शत्रुओंका पराभव करता है । (यः) जो (यः वराय) तुम जैसे श्रेष्ठ पुरुषोंको (महीः इपः) बहुत सारा अन्न (वि दाशति) प्रदान करता है, (सः) यह (क्षयं) अपने नियासस्थान को (प्र तिरते) निर्भय बना देता है ।

३८५ हे (मरुत !) वीर मरुतो ! (वसिष्ठः) यह वसिष्ठ ऋषि (यः चरमं चन) तुममेंसे अंतिमका भी (नहि परिमंसते) अनादर नहीं करता है, सबकी बराबर सराहना करता है । (अद्य अस्माकं) आज दिन हमारे यहाँ (सुते) सोमरसके निचोड़ चुकनेपर उसे पानिके लिए (कामिनः) अपनी चाह धरन करनेवाले तुम (विश्वे) सभी (सचा) मिलजुलकर उस रसको (पियत) पी लो ।

३८६ हे (नरः !) नेता वीरो ! तुम (यस्मै) जिसे संरक्षण (अराध्वं) देते हो, वह (यः) ऊति) तुम्हारी संरक्षणधम शक्ति (पृतनासु) युद्धोंमें उसका (नहि मर्धति) विनाश नहीं करती है । (यः) तुम्हारी (नवीयसी) नायिग्यपूर्ण (सु-मतिः) अच्छी बुद्धि (अभि अवर्त्) हमारी ओर मुड़ जाए । (पिपीपवः) सोमपान करनेकी इच्छा करनेद्वारे तुम (नृप आ यात) शीघ्रही इधर आओ ।

भाषार्थ— ३८४ वीरोंकी सहायता पाकर मानव सुरक्षित पने, यज्ञ करे, अंगदान करें और निर्भय पन सुसंपूर्णक बालकता करे ।

३८५ वीरोंका आदर करना चाहिये, उन्हें सोमरस पीनेके लिए देना चाहिये और वीर भी उसे ग्रहण कर सेवन करे ।

३८६ जिन्हें वीरोंका संरक्षण प्राप्त हुआ, वे सदैव सुरक्षित रहते हैं ।

टिप्पणी— [३८४] (१) वरः = चुनाव, इच्छा, विनंति, दान, वा, श्रेष्ठ, उत्तम । [३८५] (१) मन् = (माने, अवबोधने सम्भवे च) मानना, पूजा करना, आदर करना । परि-मन् = विपरीत ढंगसे मानना, अनादर करना, पूजा के भाव दशाना । (२) वसिष्ठः (वासवति इति) = जो कि सबका निवास सुसंपूर्णक हो, इसलिये प्रयत्नशील रहता है, ५९ करि । [३८६] (१) नृप = वीर ।

(३८७) ओ इति । सु । घृष्ट्विऽराधसः । यातनं । अन्धांसि । पीतये ।

इमा । वः । ह्य्या । मरुतः । रेरे । हि । कम् । मो इति । सु । अन्यत्र । गन्तु ॥५॥

(३८८) आ । च । नः । चर्हिः । सदत । अचित । च । नः । स्पार्हाणि । दातवे । वसु ।

अस्त्रेधन्तः । मरुतः । सोम्ये । मधौ । स्वाहा । इह । मादयाध्वे ॥६॥

(३८९) सस्वरिति । चित् । हि । तन्वः । शुम्भमानाः । आ । हंसासः । नीलऽपृष्ठाः । अपसन् । विश्वम् । शर्धः । अभितः । मा । नि । सेद् । नरः । न । रण्याः । सर्वने । मदन्तः ॥७॥

अन्ययः— ३८७ (हे) घृष्ट्वि-राधसः मरुतः । अन्धांसि पीतये सु ओ यातन, हि चः इमा ह्य्या रेरे, अन्यत्र मो सु गन्तु ।

३८८ स्पार्हाणि वसु दातवे नः अचित च, नः चर्हिः आ सदत च, (हे) अ-स्त्रेधन्तः मरुतः । इह मधौ सोम्ये स्वाहा मादयाध्वे ।

३८९ सस्याः चित् हि तन्वः शुम्भमानाः नील-पृष्ठाः हंसासः सवने मदन्तः रण्याः नरः न आ अपसन्, विश्वं शर्धः मा अभितः नि सेद् ।

अर्थ— ३८७ हे (घृष्ट्वि-राधसः मरुतः) संघर्षमें सिद्धि पानेवाले वीर मरुतो ! (अन्धांसि पीतये) अन्नरस पीनेके लिए (सु ओ यातन) अच्छी व्यवस्थाले आओ । (हि) क्योंकि (वः) तुम्हें (इमा ह्य्या) ये हविष्यान्न मैं (रेरे) प्रदान कर रहा हूँ, अतः तुम (अन्यत्र) दूसरी ओर कहीं भी (मो सु गन्तु) विलकुल न जाओ ।

३८८ (स्पार्हाणि) स्पृहणीय (वसु) धन (दातवे) देनेके लिए (नः) हमारी ओर (अचित च) आओ और (नः चर्हिः) हमारे इन आसनोंपर (आ सीद्त च) बैठ जाओ । हे (अ-स्त्रेधन्तः मरुतः) आर्हिसक वीर मरुतो ! (इह) यहाँके (मधौ) मिठास से पूर्ण (सोम्ये) सोमरस के (स्वाहा) भागका, स्वीकार कर (मादयाध्वे) आनन्दित हो जाओ ।

३८९ (सस्याः चित् हि) गुप्त जगह रहनेपरभी (तन्वः शुम्भमानाः) अपने शरीरों को सुशोभित करनेवाले ये वीर (नील-पृष्ठाः हंसासः) नीलवर्ण-काली पीठसे युक्त हंसों की नारें या (सवने मदन्तः) यक्षमें अनर्नदित होनेवाले (रण्याः नरः न) रमणीय नेताओं के तुल्य (आ अपसन्) हमारे समीप आ जायें और इनका (विश्वं शर्धः) समूचा धूल (मा) भेरे (अभितः नि सेद्) चारों ओर रहे ।

भावार्थ— ३८७ वीर हमारे समीप आ जायें और इन स्वाध्वेयसामग्रीका सेवन करें, तथा इस संघर्षमें यक्ष मिलने-तक सहायक बनें ।

३८८ अच्छा धन प्रदान करो । यहाँपर पधारकर मिठासभरे अन्नका सेवन करके प्रसन्नचेता बनो ।

३८९ गुप्त स्थानपर-तुर्गम-रहते हुए भी अपने आपको सजाते-सँवारेते हुए ये वीर सैनिक अपने सारे बलोंके साथ हममें आकर निवास कर लें । जैसे हंस पंक्तिमें, कतारमें उड़ने लगते हैं, वैसेही ये वीर कतारमें चलने लगें, और जिस प्रकार यक्षों उपदिष्ट रहनेके लिए यात्रा करनेवाले नेतागण घन-ठनके प्रस्थान करते हैं, उसी प्रकार ये वीर शोभायमान होते हुए सभी कार्यकलाप निभायें ।

टिप्पणी— [३८७] (१) घृष्ट्वि= संघर्षमें चतुर, राधस्= सिद्धि, धान, यक्ष । घृष्ट्वि-राधस्= संघर्षमें सफलता पानेवाला । (२) अन्यत्र= अन्न, सोम, सोमरस । [३८८] (१) स्त्रिध्व= हुल्लाहा, विनाश करना, घष करना,

(२) स्वाहा = हविभाग, अन्नभाग । [३८९] (१) सस्या= अन्तर्हित, दबा हुआ, गुप्त (निघंटु ३।२५) ।

- (३९०) यः । नः । मरुतः । अभि । दुःऽहृणायुः । तिरः । चिचानि । वसवः । जिघांसति ।
 दुहः । पाशान् । प्रति । सः । मुचीष्ट । तपिष्ठेन । हन्मना । हन्तुन । तम् ॥८॥
- (३९१) सांस्तपनाः । इदम् । हविः । मरुतः । तत् । जुजुष्टन ।
 युष्माकं । ऊती । रिशादसः ॥९॥
- (३९२) गृहमेधासः । आ । गत । मरुतः । मा । अप । भूतन ।
 युष्माकं । ऊती । सुदानवः ॥१०॥
- (३९३) इहइह । वः । स्वतवसः । कवयः । सूर्यत्वचः ।
 यज्ञम् । मरुतः । आ । वृणे ॥११॥

अन्वय — ३९० (हे) वसव मरुतः ! दुर्हृणायुः तिरः यः नः चिचानि अभि जिघांसति सः दुहः पाशान् प्रति मुचीष्ट तं तपिष्ठेन हन्मना हन्तुन ।

३९१ (हे) सान्तपनाः रिश-अदसः मरुत ! इदं तत् हविः जुजुष्टन, युष्माकं ऊती ।

३९२ (हे) गृह-मेधासः सु-दानव मरुत ! युष्माक ऊती आ गत, मा अप भूतन ।

३९३ (हे) स्व-तवस कवयः सूर्य-त्वच मरुतः ! इह-इह यज्ञं यः आ वृणे ।

अर्थ- ३९० हे (वसव, मरुत, !) यशानेवाले घोर मरुतो ! (दुर्हृणायुः) अतीव क्रोधी तथा (तिरः) तिरस्करणीय (य) जो दुरात्मा (न, चिचानि) हमारे दिलका (अभि जिघांसति) नाश करता चाहता है, (स.) यह (दुह, पाशान्) द्रोहके फंदों को (प्रति मुचीष्ट) हमपर डाल देगा, तव (तं) उस हत्यारे को (तपिष्ठेन हन्मना) अति तप्त आयुधसे (हन्तुन) मार डाले ।

३९१ हे (सान्तपना) शत्रुओंको परित्याग देनेवाले तथा (रिश-अदसः) हिंसकों को धिन्ध करनेहारि (मरुतः !) घोर मरुतो ! तुम (इदं तत् हविः) इस उस हविष्यान्नका (जुजुष्टन) सेवन करो और (युष्माक ऊती) तुम्हारी संरक्षणदाकि यदाओ ।

३९२ (गृह-मेधासः) गृहस्थधर्म को निभाते हुए (सु-दानवः) उच्चम दान करनेहारि (मरुतः !) घोर मरुतो ! तुम (युष्माक ऊती) अपनी संरक्षक शक्तियों के साथ (आ गत) हमारे समीप आओ, हमसे (मा अप भूतन) दूर न चले जाओ ।

३९३ (स्व-तवसः) अपने निजी मूलसे युक्त होनेवाले, (कवय) शान्ती और (सूर्य-त्वच) सूर्यवत् तेजस्वी (मरुतः !) घोर मरुतो ! (इह-इह) अर यहाँ (यज्ञं) यज्ञ करके (य) तुम्हें मैं (आ वृणे) संतुष्ट करता हूँ ।

भावार्थ— ३९० दुरात्मा शत्रु हमारे मनमें विद्यमान सुविचारोंको नष्ट करके, हमसे द्वेषपूर्ण व्यवहार करके, हमें परतन्त्र भी करना चाहते हैं । ऐसे लोगों का समीपगम्य तिरस्कार हो और तीक्ष्ण हविषारोंसे उनका विनाश किया जाय ।

३९१ जनताको दक्षिण है कि वह योरोंके लिए अन्न दें और वससे वे अपनी संरक्षक दक्षिण पदा दें ।

३९२ घोर पुरुष हमारे समीप रहे और हमारी रक्षा करें । वे कभी हमसे दूर न हों ।

३९३ यज्ञमें घोर सैनिकों एवं पुरुषोंको बुलवाकर उनका सम्मान करना चाहिये ।

टिप्पणी— [३९०] (१) दुर्-हृणायुः = (हृणीयते, हृ लज्जायां रोपणे च), (हृणायुः=क्रोधी) - बहुत क्रोध करनेवाला, बहुत निंदा करनेवाला । (२) तपिष्ठ= (वर्ण मवापे) उपाया हुआ, विनाशक । (३) दुह= द्वेष करना, विरोध करना । [३९३] (१) वृण= (वीणे) = मंत्रुष्ट करना, बुल-आवाज देना । आ + वृण= अपवासा करना, श्वाकारण ।

(ऋ० ७।१०।१।८)

(३९४) वि । तिष्ठध्वम् । मरुतः । विश्व । इच्छत । गुभायतं । रक्षसः । सम् । पिनष्टन ।
वयः । ये । भूत्वी । पतयन्ति । नक्तमिः । ये । वा । रिपः । दधिरे । देवे । अष्टरे ॥१८॥

विदु या अङ्गिरसपुत्र पृतदशरूपि । (ऋ० ८।१५।१-१२)

(३९५) गौः । धयति । मरुताम् । श्रवस्युः । माता । मघोनाम् । युक्ता । वह्निः । रथानाम् ॥१९॥
(३९६) यस्याः । देवाः । उपस्ये । व्रता । विश्वे । धारयन्ते । सूर्यामासां । इशे । कम् ॥२०॥

अन्वय — ३९४ (हे) मरुतः ! विश्व वि तिष्ठध्वं, ये वयः भूत्वी नक्तमि पतयन्ति, ये वा देवे अध्वरे रिपः दधिरे रक्षसः इच्छत, गुभायत, सं पिनष्टन । ३९५ रथानां वह्निः युक्ता श्रवस्युः मघोनां मरुतां माता गौः धयति । ३९६ यस्याः उप-स्ये विश्वे देवाः व्रता धारयन्ते, सूर्या-मासा इशे कं ।

अर्थ— ३९४ हे (मरुतः) वीर मरुतो ! तुम (विश्व) प्रजाओं में (वि तिष्ठध्वं) रहो । (ये) जो (वयः भूत्वी) बलिष्ठ बनकर (नक्तमिः) रात्री के समय (पतयन्ति) दूट पड़ते हैं, (ये वा) अथवा जो (देवे अध्वरे) दिव्य यज्ञमें (रिपः दधिरे) हिंसा करते हैं, उन (रक्षसः, राक्षसों को (इच्छत) तुम हूँद निकालो, (गुभायत) पकड़ लो और उनको (सं पिनष्टन) पूरी तरह कुचल दो । ३९५ (रथानां वह्निः) रथों को लीचनेवाली, (युक्ता) योग्य, (श्रवस्यु) यशस्वी इच्छा करनेवाली (मघोनां मरुतां माता) धनाढ्य वीर मरुतोंकी माता (गौ) गाय या पृथ्वी उन्हें (धयति) दूध पिटाती है । ३९६ (यस्याः उप-स्ये) जिसके समीप रहकर (विश्वे देवाः) सभी देवता अपने अपने (व्रता धारयन्ते) कर्तव्य उचित ढंगसे निभाते हैं । (सूर्या-मासा) सूर्य तथा चंद्रमी जनताको (इशे कं) प्रकाश देनेके लिए जिसके समीप रहते हैं ।

भाषार्थ— ३९४ जनतामें वीर भौतिभौतिभे रूप धारण कर निवास करें । जो प्रजापर विभिन्न ढंगोंसे हमले करते हैं, दूट पड़ते हैं और जनता से माह, घन छीन लेते हैं, या लूटमारके कार्यमें लगे रहते हैं, उन्हें पकड़कर कारागृहमें रखे या उनका समूल नाशही कर डालें । ३९५ रथोंकी जोती हुई मरुतोंकी माता गौ उन्हें दूध पिटाती है और वह चाहती है कि मरुतोंका वश प्रतिपल बड़े । ३९६ समूचे देवता तथा सूर्यचन्द्र भी गौ (पृथ्वी) के निकट रहकर अपने अपने कर्तव्य करते हैं । (गौकी रक्षा करते हैं) अर्थात् यहाँपर गौमाताका बढपन बढाया है ।

टिप्पणी— [३९४] (१) विश्व वि तिष्ठध्वं = प्रजाओंमें गुप्त रूपसे विधिवरूपधारी होकर प्रजाका रक्षण करनेके लिए निवास करें । (२) रिपु = (रिप् = बुरा, अशुद्धि, दुर्गन्धी, पाप, हिंसा) अशुद्धि करना, बधय करना, हिंसा करना । (३) इप् = हूँदना, पानेका प्रयत्न करना, चाहना । (४) गृभू = पकड़ना । (५) वय = शरीरसे रड, बल, आरोग्य, आयु, पंथी । [३९५] (१) कौंकि वीर सैनिक मरुत जोदुग्ध का यद्येष्ट पान करके पुष्ट एवं बलिष्ठ होते हैं, इसलिये यहाँपर बतलाया है कि, गौ उनकी मातां माता है । यह सुतरां स्वाभाविक है कि माता अपने पुत्रोंमें यशके सम्बन्धमें सन्तुष्ट रहे । (रथानां वह्निः युक्ता गौः) इस मन्त्रमें कहा है कि, रथसे संयुक्त गौही (धयति) दूध पिटाती है । यह विचार करनेयोग्य बात है, क्योंकि साधारणतया ऐसी धारणा प्रचलित है कि जो गाव योश होने जैसे परिश्रमसाध्य कठिन काम करती हैं, वह धीरे धीरे कम दूध देने लगती हैं । यह असंभवसा दृष्टि पड़ता है कि यंध्या गौ के भतिरिफ अन्य गावों को रथमें जोतते हों । ऐसी यंध्या गौओं को अगर पाहनेमें जोत लें, तो वे प्रजननक्षम हो दुहाय बनती हैं, ऐसी कुछ छोटीगौकी धारणा है, पर शास्त्रज्ञ निर्धारित करें, उसमें वैज्ञानिकता कहाँतक है । (२) युक्त = (युग् योगे संयमने च) जुड़ा हुआ, कुशाळ, योग्य (कर्म में कुशाळ) । (३) वह्निः (वह् प्राणो) = होनेवाला, धारण करने-हारा, भनि । [३९६] (१) उप-स्ये = समीप, मध्य-भाग ।

(३९७) तत् । सु । नः । विश्वं । अर्यः । आ । सदां । गृणन्ति । कारवः ।
मरुतः । सोम-पीतये ॥३॥

(३९८) अस्ति । सोमः । अयम् । सुतः । पिबन्ति । अस्य । मरुतः ।
उत । स्वराजः । अधिना ॥४॥

(३९९) पिबन्ति । मित्रः । अर्यमा । तनां । पूतस्य । चरुणः ।
त्रिस्रयस्थस्य । जास्यतः ॥५॥

(४००) उतो इति । नु । अस्य । जोषम् । आ । इन्द्रः । सुतस्य । गो-मतः ।
प्रातः । होताइव । मत्सति ॥६॥

अन्वयः— ३९७ नः अर्यः विश्वे कारवः सदा सु आ तत् गृणन्ति, (हे) मरुतः ! सोम-पीतये ।

३९८ अयं सोमः सुतः अस्ति, अस्य स्व-राजः मरुतः उत अधिना पियन्ति ।

३९९ मित्रः अर्यमा चरुणः त्रि-स्रय-स्थस्य तना पूतस्य जा-घतः पियन्ति ।

४०० उतो इन्द्रः नु प्रातः होताइव गो-मतः अस्य सुतस्य जोषं मत्सति ।

अर्थ— ३९७ (नः) हमारे (अर्यः) अत्यन्त पूज्य (विश्वे कारवः) सभी कवि, काव्यरचनामें कुशल,
(सदा) हमेशा तुम्हारे (तत्) उस बलकी (सु आ गृणन्ति) भली भाँति स्तुति करते हैं । हे (मरुतः !)
वीर मरुतो ! (सोम-पीतये) सोमपान करनेके लिए तुम इधर आओ ।

३९८ (अयं सोमः) यह सोमरस (सुत-अस्ति) पूर्णतया निचोडा जा चुका है । (अस्य) इसका
(स्व-राजः मरुत) स्वयंतेजस्वी मरुत्-वीर (उत) उसी प्रकार (अधिना) अधिनी-देव भी (पियन्ति)
पान करते हैं ।

३९९ (मित्रः अर्यमा चरुणः) मित्र, अर्यमा एवं चरुण (त्रि-स्रय-स्थस्य) तीन स्थानोंमें रटे
हुए (तना पूतस्य) छलनी से पवित्र किए हुए एवं (जा-घतः) सभी जनोंके सेवनके योग्य सोमरसको
(पियन्ति) पी लेते हैं ।

४०० (उतो) और (इन्द्रः नु) इन्द्र भी (प्रातः होताइव) प्रातःकालके समय होताकी नाई
(गो-मतः) गोदुग्धके मिलावटसे तैयार किये हुए (अस्य) इस (सुतस्य) निचोडे हुए सोमका (जोषं)
सेवन करके (मत्सति) हर्षित हो उठता है ।

भाषार्थ— ३९७ सभी कवि काव्यका रचन करके वीरोंके हस्तबलकी सहायना करते हैं । इसी लिए सोम पीनेके लिए
वे इधर अवश्य आ जायें ।

३९८ यह सोमरस पूर्णरूपेण सिद्ध है । तेजस्वी वीर एवं अधिनी-देव इसका ग्रहण करें ।

३९९ तीन स्थानोंमें विद्यमान तीन छलनियोंसे शुद्ध किए हुए सोमरस का सेवन वे सभी वीर करते
हैं । कारण यही है कि सोमरस सबके पीनेके लिए योग्य है ।

४०० इन्द्र भी सोमरसमें दूध मिलाकर उस पेय का सेवन करता है और प्रसन्नवेला बनता है ।

टिप्पणी— [३९७] (१) अर्यः = (क गवौ-अरिः अर्यः) = गतिशील, पूज्य, श्रेष्ठ । [३९८] (१) स्व-
राजः = (राज् दीप्तौ-प्रकाशना, शासन करना, प्रमुख होना) सब मिलाकर शासन करनेवाले-स्वयंशासक (देखिए
मंत्र ६८, १२२ तथा ३९८) । [३९९] (१) जा = गावा, जाति, देवताली ।

- (४०१) कत् । अत्विषन्त । सूर्यः । तिरः । आपःइव । सिधः ।
अर्पन्ति । पूतदक्षसः ॥७॥
- (४०२) कत् । वः । अद्य । महानाम् । देवानाम् । अयः । वृणे ।
त्मना । च । दुस्मज्वर्चसाम् ॥८॥
- (४०३) आ । ये । विश्वा । पार्थिवानि । पुप्रथन् । रोचना । दिवः ।
मरुतः । सोमऽपीतये ॥९॥
- (४०४) त्वान् । नु । पूतदक्षसः । दिवः । वः । मरुतः । हुवे ।
अस्य । सोमस्य । पीतये ॥१०॥

अन्वयः— ४०१ सूर्यः सिधः तिरः आपःइव अत्विषन्त, पूत-दक्षसः कत् अर्पन्ति ?

४०२ त्मना च दुस्म-वर्चसां देवानां महानां वः अयः अद्य कत् वृणे ?

४०३ ये विश्वा पार्थिवानि दिवः रोचना आ पुप्रथन्, मरुतः सोम-पीतये ।

४०४ (हे) मरुतः ! पूत-दक्षसः दिवः त्वान् वः नु अस्य सोमस्य पीतये हुवे ।

अर्थ- ४०१ ये (सूर्यः) शानी तथा (सिधः) क्षत्रियनाशक वीर (तिरः) टेढ़ी राहसे जानेवाले (आपःइव) जलप्रवाहोंकी नाई (अत्विषन्त) प्रकाशमान होते हैं और ये (पूत-दक्षसः) पवित्र बल धारण करनेवाले वीर (कत्) भला कय हमारी ओर (अर्पन्ति) पधारेंगे ?

४०२ (त्मना च) स्थाभाधिक ढंगसे (दुस्म-वर्चसां) सुन्दर आकारवाले (देवानां) तेजस्वी एवं (महानां) बड़े महनीय (वः) तुम जैसे सैनिकोंसे (अयः) संरक्षणकी (अद्य कत्) आज भला कय मैं (वृणे) पाचना करूँ ?

४०३ (ये) जो (विश्वा पार्थिवानि) सभी भूमंडलस्य वस्तुओं को और (दिवः रोचना) धु-लोकके तेजस्वी पदार्थोंको (आ पुप्रथन्) विस्तृत कर चुके, उन (मरुतः) वीर मरुतों को (सोम पीतये) सोमपान करनेके लिए मैं बुलाता हूँ ।

४०४ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (पूत-दक्षसः) पवित्र बलसे युक्त और (दिवः) तेजस्वी (त्वान् वः) ऐसे तुम्हें (नु) अभी (अस्य सोमस्य पीतये) इस सोमरस के पान के लिए (हुवे) बुलाता हूँ ।

अध्याय- ४०१ जैसे ब्रह्मी जगहसे गिरनेवाला जलप्रवाह फसकने लगता है, वैसीही ये ज्ञात्री वीर अपने प्रारम्भसे जगमगाने लगते हैं । पवित्र कार्य के लिए अपने बलका उपयोग करनेवाले वे वीर सैनिक हमारे यज्ञमें आ जायें ।

४०२ ये तेजस्वी एवं शक्तिशाली वीर हमारी रक्षा करनेका बीडा उठावें ।

४०३ आकाशस्य एवं भूमंडलस्य सभी वस्तुओं को मरुतोंने विस्तृत किया है, हमीलिए मैं उन्हें सोमपान करनेके लिए बुलाता हूँ ।

४०४ बलवान् एवं तेजस्वी वीरोंको आशुपूर्वक बुलाकर अन्नपानके प्रदानसे उनका सत्कार करना चाहिए ।

टिप्पणी— [४००] (१) मत्सति= (मदि स्तुतिमोदमदस्वमन्नाग्निगविषु) हर्षित होता है । [४०१] (१) दक्ष= योग्यता, बल, बौद्धिक शक्ति । (२) सिधू= विनाश करना, दुःख देना । (३) प्रुप् (मत्तौ)= बह जाना, फिमलना, (भाना) । [४०२] (१) दुस्म = (दम् = उपश्रये) विनाशक, सुन्दर, आश्चर्यकारक, याजक, चोर, दृष्ट, भक्ति । (२) वर्चस् = शक्ति, वैज, आकार, सौंदर्य, धीर्य, विद्या । (३) अद्य= आज, आजकल, भय ।

मलर [दि. २०]

(४११) यूयम् । घृऽपु । प्रऽयुजः । न । रश्मिर्भभिः । ज्योतिष्मन्तः । न । भासा । विऽउष्टिषु ।
 श्येनासैः । न । स्वऽयशसः । रिशार्दसः ।
 प्रवासैः । न । प्रऽमितासः । परिऽप्रुषः ॥५॥

(४१२) प्र । यत् । वहध्वे । मरुतः । पराकात् । यूयम् । महः । संऽवरणस्य । वर्यः ।
 विद्वानासैः । चसवः । राध्वस्य ।
 आरात् । चित् । द्वेषः । सनुतः । युयोत् ॥६॥

अन्वय- ४११ यूयं रश्मिभिः धूपं प्र-युज्य न, व्युष्टिषु ज्योतिष्मन्तः न भासा, श्येनास न स्व-यशस, रिशा-भदस परि-प्रुष, प्र-वासः न, प्रसितासः ।

४१२ (हे) वसव. मरुतः । यूयं यत् पराकात् प्र वहध्वे महः संवरणस्य राध्वस्य वर्यः धि दानास. सनुतः द्वेष आरात् चित् युयोत् ।

अर्थ- ४११ (यूयं) तुम (रश्मिभिः) लगामोंके (धूपं) घुरामोंके (प्र-युज्य न) जोते हुए धोड़ोंके समान घेगधान, (व्युष्टिषु) प्रात कालीन (ज्योतिष्मन्तः न) आदित्यों के समान (भासा) तेजसे युक्त, (श्येनास न) पाज पंछिपोंकी नाई (स्व-यशस) स्वयंही अथ पानेहारे, (रिशा भदसः) हिंसकों का वध करनेहारे और (परि-प्रुषः) सभी प्रकारसे पोषण करनेहारे बनकर (प्र-वास न) प्रवासियों या यात्रियोंके समान (प्रसितास) सदा सिद्ध हो ।

४१२ हे (वसव. मरुतः) । वसनेवाले वीर मरुतो । (यूयं) तुम (यत्) जब (पराकात्) सुदूर देशसे (प्र वहध्वे) घेगपूर्वक आते हो, तब (महः) विपुल, (संवरणस्य) स्वीकारनेयोग्य तथा (राध्वस्य) सिद्धियुक्त (वर्य) धनवा (धि दानासः) दान देनेवाले तुम (सनुतः द्वेषः) दूरसे आनेवाले छेष्टाओं-को (आरात् चित्) दूरसेही (युयोत्) दूर करो, हटा दो ।

भाषार्थ- ४११ ये वीर वेगसे क्रम करेवाले, तेजस्वी, अपने प्रयत्नसे अथवा प्राप्ति करके राष्ट्रभोंका वध करनेहारे और अपनी पुष्टि करनेवाले हैं तथा यात्रियोंके समान सदैव सिद्ध हैं ।

४१२ ये वीर जब दूर देशसे अतिवेगपूर्वक आते हैं तब ये विपुल धन साथ ले आते हैं और वधारेही मघ लोंगोदो पाठ प्रचुर धनसहित भेंट देते हैं। हमारी बह दृष्टा है कि आते समय शस्त्र ही ये वीर हमारे राष्ट्रभोंको दूर रहते रहतेही बिगड़ कर डाले ।

सर भिदनेके लिए सैवार ही लटके गले वीर, मयं । [४०९] (१) वहध्वेणा = (वहध्वे-परिभाषणहिंसाप्रदानेषु) प्रमुक्त दगसे, दाससे, प्रमुख स्थान पानेसे । ग्रहण- बलवान, शक्तिमान । (२) रिषु = (विरेपने, विशेषजनसंपर्कनयोः) = सूना करना, भ्रमण करना, छोड़ना, मिलना । प्र+रिच् = विशेष होना, बडा होना, विशेष दगसे सम्बंध बनना । [४१०] (१) सुषु = तल, दासी । (२) प्पु = अन्न (पसा = तागा) विश्व-प्पु = सर्वे अन्नमय । विश्व-प्पु यज्ञः = साते के माते अन्नके प्रदानसे होनेवाला यज्ञ । (३) साराच. = मघ मिलकर एक बिसिष्ट चालसे जानेवाले । [४११] (१) प्रसित = बद्ध, निरत, मांगस्थ, सधद, भंवार । (२) यदात् = वध, सुन्दराता, तेज, दृवा, धन, अथ, जल. स्व-यदास. = अपने पराक्रमसे वध पाने गले । [४१२] (१) पराकात् (पाके = बृह दुर्गर, भारपर) = सुदूर देशसे दूग्मेही । (२) सनुतः = दूग्मे, वृत्त दगसे ।

(४१३) यः । उत्तुःऋचि । यज्ञे । अचरेऽस्थाः ।
 मरुत्ऽभ्यः । न । मानुषः । ददाशत् ।
 रेवत् । सः । वयः । दधते । सुऽवीरम् ।
 सः । देवानाम् । अपि । गोऽपीथे । अस्तु ॥७॥

(४१४) ते । हि । यज्ञेषु । यज्ञियांसः । ऊमाः ।
 आदित्येन । नाम्ना । शम्भविष्ठाः ।
 ते । नः । अवन्तु । रथऽतुः । मनीषाम् ।
 महः । च । यामन् । अचरे । चकानाः ॥८॥

अन्वयः—४१३ अचरे-स्थाः य मानुष. यमे उत्तु ऋचि मरुद्भ्यः न ददाशत्. सः रे-वत् सु-वीरं
 ययः दधते, देवानां अपि गो-पीथे अस्तु ।

४१४ ते हि ऊमाः यज्ञेषु यज्ञियांसः आदित्येन नाम्ना शं-भविष्ठाः, रथ-तुः अचरे यामन्
 महः चकाना. च ते नः मनीषा अयन्तु ।

अर्थ— ४१३ (अचरे-स्थाः) यज्ञमें स्थिर रहनेवाला, यज्ञ करनेवाला (यः मानुषः) जो मनुष्य (यज्ञे
 उत्तु-ऋचि) यज्ञसमाप्ति के उपरान्त (मरुद्भ्यः न) वीर मरुतों को दिया जाता है, उसी भाँति (ददा-
 शत्) दान देता है, (सः) वह (रे-वत्) धनयुक्त एवं (सु-वीरं) अच्छे वीरों से युक्त (ययः) अथ
 (दधते) धारण करता है, अपने समीप रखता है और यह (देवानां अपि) देवों के भी (गो-पीथे)
 गौरसपान के समय उपस्थित (अस्तु) रहता है ।

४१४ (ते हि) वे वीर सचमुचही सबकी (ऊमा) रक्षा करनेवाले हैं, अतः (यज्ञेषु) यज्ञोंमें
 (यज्ञियांसः) पूजनीय हैं; उसी प्रकार वे (आदित्येन नाम्ना) आदित्यके रूपसे सयको (शं-भविष्ठाः)
 सुख देनेवाले हैं । (रथ-तुः) रथमें बैठकर वेगसे जानेवाले वे वीर (अचरे यामन्) यज्ञमें जाकर (महः
 चकानाः च) महत्त्व प्राप्त करने की इच्छा करने हैं । ये (नः मनीषा) हमारी आकांक्षाओं को (अयन्तु)
 सुरक्षित करें ।

भाषार्थ— ४१३ यज्ञसमाप्तिके समय जैसे दान दिया जाता है, वैसेही जो दान देने लगता है, वह पूरा तरह से
 अपने समीप विद्यमान भक्ष को बटाता है और इसी कारणसे उसे पर्याप्त मात्रामें वीर संतान प्राप्त होती है तथा देवोंके
 सोमरस या गौरसपान के मौकेपर वहाँ उपस्थित होनेका गौरव एवं सम्मान भी उसे मिल जाता है ।

४१४ ये वीर सबके सरक्षक हैं, इसलिए यह अत्यन्त उचित है कि, यज्ञमें उनका सम्मान हो । सूर्यवन्
 धन वे सबको सुखी करते हैं । रथमें बैठकर वे यज्ञोंमें उपस्थित होते हैं और वहाँपर हविर्भाग का आदान करना चाहते
 हैं । ऐसे ये वीर हमारी आकांक्षाओंकी भली भाँति रक्षा करें ।

टिप्पणी— [४१३] (१) गो-पीथः= गौरक्षण, पवित्र स्थान, रसा, मोहरस पीनेका स्थान, मोहुर्य सेवन
 करनेकी जगह । (२) उत्तु-ऋचुः= बड़ी आवाजमें कही जानेवाली ऋचा, श्रेष्ठ ऋचा । [४१४] (१) नामन्=
 नाम, कीर्ति, चिन्हा, जल, आकृति, स्वरूप । (२) चकानन्= (कन= सनुष्ट होना, प्रोक्षित करना) सनुष्ट बननेवाले,
 सपुस होनेवाले, प्यार करनेवाले ।

(क्र० १०।१०८।१-८)

- (४१५) विप्रासः । न । मन्मभिः । सुऽआर्घ्यः । देवऽअर्घ्यः । न । युवैः । सुऽअर्पसः ।
 राजानः । न । चित्राः । सुऽसंदेशः ।
 क्षितीनाम् । न । मर्याः । अरेपसः ॥१॥
- (४१६) अग्निः । न । ये । भ्राजसा । रुक्मऽवक्षसः ।
 चातासः । न । स्वऽयुजः । सद्यऽऊतयः ।
 प्रऽज्ञातारः । न । ज्येष्ठाः । सुऽनीतयः ।
 सुऽशर्माणः । न । सोमाः । ऋतम् । युवे ॥२॥

अन्वय - ४१५ विप्रासः न, मन्मभिः सु-आर्घ्यः, देवाय्यः न, यमैः सु-अर्पसः, राजानः न चित्राः सु-संदेशः, क्षितीनां मर्याः न अ-रेपसः ।

४१६ ये, अग्निः न, भ्राजसा रुक्म-वक्षसः, चातासः न स्व-युजः, सद्य-ऊतयः, प्र-ज्ञातारः न ज्येष्ठाः, सोमाः न सु-शर्माणः, ऋतं यत्ते सु-नीतयः ।

अर्थ- ४१५ वे वीर (विप्रास न) क्षात्री पुरुषों के समान (मन्मभिः) मननीय कार्यों से (सु-आ-
 र्घ्यः) उत्कृष्ट विचार प्रकट करनेहारे, (देवाय्यः न) देवोंको संतुष्ट करनेहारे भक्तों के तुल्य (यमैः
 सु-अर्पसः) यज्ञसे यह करके अच्छे कार्य करनेवाले, (राजानः न) नरेशोंके समान (चित्राः) आश्चर्य-
 फारक कर्म करनेवाले वीर (सु-संदेशः) अतिशय सुन्दर स्वरूपवाले हैं तथा (क्षितीनां) अपने गृहमें
 ही संतुष्ट रहनेवाले (मर्याः न) मानवों के समान (अ-रेपसः) पापरहित हैं ।

४१६ (ये) जो (अग्निः न) अग्नि-तुल्य (भ्राजसा) तेजसे युक्त (रुक्म-वक्षसः) स्वर्णतुद्राओंके
 हार वक्षःस्वल्पपर धारण करनेहारे, (चातासः न) वायुप्रवाहके समान (स्व-युजः) स्वयंही काममें
 जुट जानेवाले, (सद्य-ऊतयः) तुरन्त रक्षा करनेहारे, (प्र-ज्ञातारः न) उत्कृष्ट क्षान्तिवोंके तुल्य (ज्येष्ठाः)
 श्रेष्ठ, (सोमाः ॥) सोमों के समान (सु-शर्माणः) अत्यन्त सुखदायक तथा (ऋतं यत्ते) सत्यकी ओर
 जानेवाले के लिए (सु-नीतयः) उत्तम पथप्रदर्शक हैं ।

भाषार्थ— ४१५ वे वीर ज्ञानी लोगोंके समान मननीय कार्योंसे सुविचारों का प्रचार करनेवाले, यज्ञरूपी सशक्तोंसे
 देवताओं को संतुष्ट करनेहारे, नरेशों की नाईं अग्रेष्ट एवं सहायनीय कार्यकराय निभावेवाले और अपरिमह मनोवृत्तिके
 सख्तनरोंके तुल्य विचार हैं ।

४१६ जगमगले मुद्राहार पहननेके कारण घोटमान, श्वेच्छा से कार्यमें निरत, क्षात्री, श्रेष्ठ, शाश्वत,
 सुखदायी, तथा सम्मार्ग से चलनेवाले मानवों के तुल्य दूसरों को अच्छी राह बतलानेवाले वे वीर सैनिक हैं ।

टिप्पणी— ४१५ (१) स्वाय्य = [सु+आ+य्य (ईदं चिन्तायाम्) चिन्तन करना, ध्यान करना, सोचना] भली
 भाँति सोचनेहारा । (२) देवाय्य = (देव+अ+प्रोतिवृष्यो) देवों को संतुष्ट करनेहारा । (३) स्वर्पसः = (सु+
 अर्प = ह्य) अच्छे ह्य करनेहारे, सार्द्धम करनेवाले । (४) क्षितीः = पृथ्वी, मनुष्य, स्वदेश । क्षि-ति = [क्षि निवासे,
 घृष्टे तिष्ठतीति । यथा प्रतिग्रहार्थं अन्यत्र अगत्या स्वगृष्टे एव अनुतिष्ठन्तः निर्दोषाः भवन्ति तादृशाः
 (सां भा०)] जो वृष्ट करने परपर मित्रेण, उषोमें संतुष्ट रहकर प्रतिग्रहके लिए घरघर न घूमनेवाला, अपरिमह
 मनोवृत्ति का ।

(४१७) वातासः । न । ये । धुनयः । जिगत्नवः । अग्नीनाम् । न । जिह्वाः । विदराकिणः ।
 धर्मण्यन्तः । न । योधाः । शिमीन्वन्तः । पितृणाम् । न । शंसाः । सुस्रातयः ॥३॥
 (४१८) रथानाम् । न । ये । अराः । सनाभयः । जिगीवांसः । न । शूराः । अभिद्यवः ।
 चरेद्यवः । न । मर्याः । घृतस्रुपः । अभिस्वर्तारः । अर्कम् । न । सुस्तुभः ॥४॥
 (४१९) अश्वासः । न । ये । ज्येष्ठासः । आशयः । दिधिपवः । न । रथ्यः । सुदानवः ।
 आपः । न । निम्नैः । उदभिः । जिगत्नवः । विश्वरूपाः । अङ्गिरसः । न । सामभिः ॥५॥

अन्वयः— ४१७ ये, वातासः न धुनयः, जिगत्नवः, अग्नीनां जिह्वाः न विरोकिणः, धर्मण्यन्त योधाः न शिमीन्वन्तः, पितृणां शंसाः न सु-रातयः । ४१८ ये, रथानां अराः न स-नाभयः, जिगीवांसः शूराः न अभि-द्यवः, चर-ईयवः मर्याः न घृत-स्रुपः, अर्कं अभि-स्वर्तारः न सु-स्तुभः । ४१९ ये, अश्वासः न, ज्येष्ठासः आशयः, दिधिपवः रथ्यः न, सु-दानवः, निम्नैः उदभिः, आपः न, जिगत्नवः, विश्व-रूपाः सामभिः अङ्गिरसः न ।

अर्थ— ४१७ (ये) जो ये वीर (वातासः न) यायुके समान (धुनयः) शत्रुदलको हिला देनेवाले, (जिगत्नवः) वेगपूर्वक जानेहारि, (अग्नीनां जिह्वाः न) अग्नी की लपटों के तुल्य (विरोकिणः) देदीप्यमान, (धर्मण्यन्तः) कवचधारी (योधा न) योद्धाओं के समान (शिमीन्वन्तः) शूरतापूर्ण कार्य करनेहारि और (पितृणां शंसाः न) पितरोंके आशीर्वादों के समान (सु-रातयः) अच्छे दान देनेवाले हैं ।

४१८ (ये) जो वीर (रथानां अराः न) रथोंके पहियोंमें विद्यमान आरों के तुल्य (स-नाभयः) एकहा केन्द्रमें रहनेवाले, (जिगीवांसः शूराः न) विजयचतु वीरोंके समान (अभि-द्यवः) सभी प्रकारसे तेजस्वी, (चर-ईयवः) अभीष्ट प्राप्त करनेहारि (मर्याः न) मानवोंके समान (घृत-स्रुपः) घृत भादि पीण्डरु वस्तुओंकी समृद्धि करनेवाले, (अर्कं) पूज्य देवताके (अभि-स्वर्तारः न) स्तोत्र पढ़नेवाले के समान (सु-स्तुभः) भली प्रकार काव्यगायन करनेवाले हैं ।

४१९ (ये) जो (अश्वासः न) घोड़ोंके समान (ज्येष्ठासः) श्रेष्ठ हैं, तथा (आशयः) शीघ्र गतिसे जानेवाले हैं, (दिधिपवः) विपुल धन समीप रखनेवाले (रथ्यः न) रथोंसे संपन्न होनेवाले महारथियोंके समान (सु-दानवः) अच्छे दानशूर, (निम्नैः उदभिः) ढलती जगह की ओर जानेवाले जलप्रवाहोंके (आपः न) जलोंकी नाई (जिगत्नवः) बड़े वेगसे जानेवाले, (विश्व-रूपाः) भौतिक भौतिके रूप धारण करनेहारि और (सामभिः) सामगानों से (अङ्गिरसः न) अंगिरसोंके तुल्य ये वीर अच्छे गायक हैं ।

भावार्थ— ४१७ ये वीर शत्रुको जड़ मूलसे उखाड़ फेंक देनेवाले, अभिवत् तेजस्वी, कवचधारी वनकर लड़नेवाले तथा शूरा दशानेवाले हैं और इनके दान पितरोंके आशीर्वादोंके समान बहुवही सहायक है । ४१८ ये वीर एक उद्देश्यसे प्रभावित हो कार्य करनेवाले, विजय पानेकी चाह रखनेवाले, तेजस्वी, शूर, सबको समृद्धि प्रदान करनेहारि तथा पूजनीय वीरोंके काव्यका गायन करनेवाले हैं । ४१९ ये वीर घोड़ोंके समान वेगसे जानेहारि, महारथियोंके समान उदार, उचित मौकेपर विभिन्न स्वरूप धारण कर कार्य करनेमें बड़ेही कुशल, जलोंवाँके समान निम्न स्थान से पहुँचकर शान्ति प्रदान करनेहारि और सामगान करनेमें विश्वकुल अंगिरसोंके समान कुशल हैं ।

टिप्पणी— [४१८] (१) नाभिः = पहियेकी नाभि, केन्द्र, नेता, प्रमुख । (२) अभि-स्वर्तृ = (स्व = शब्दोपतापयोः) भावाज करनेहारा, उच्चार करनेहारा, (स्वति करनेवाला) । (अराः न) जिस भौतिक चक्रके बारे समान होते हैं, वैसेही ये सभी वीर सैनिक समान हैं । (देखिए मंत्र ९५, ३०५, ४५३ ।)

(४२०) प्रावाणः । न । सूर्यः । सिन्धुऽमातरः । आऽद्विंशतः । अद्रयः । न । विश्वहा ।
 शिक्षलाः । न । क्रीळ्यः । सुऽमातरः । महाऽग्रामः । न । यामन् । उत । त्रिषा ॥ ६ ॥
 (४२१) उपसाम् । न । केतवः । अधरऽधियः । शुभऽयः । न । अजिभिः । वि । अश्वितन् ।
 सिन्धवः । न । ययियः । आजत्ऽऋष्यः । पराऽवतः । न । योजनानि । ममिरे ॥७॥
 (४२२) सुऽभागान् । नः । देवाः । कृणुत । सुऽरत्नान् । अस्मान् । स्तोतृन् । मरुतः । ववृधानाः ।
 आधि । स्तोत्रस्य । सख्यस्य । गात । सनात् । हि । वः । रत्नधेयानि । सन्ति ॥८॥

अन्वय — ४२० सूर्य, प्रावाण न सिन्धु-मातर, आ-द्विंशत अद्रय न विश्व हा, सु-मातरः शिक्षला न क्रीळ्य, उत महा ग्राम न यामन् त्रिषा । ४२१ उपसा केतव न, अधर-धिय, शुभ-यश न, अजिभि वि अभिनन्, सिन्धव न ययिय, आजत्-ऋष्य, परावत न योजनानि ममिरे । ४२२ (हि) देवा यवृधाना मरत । अस्मान् न स्तोतृन् सु-भागान् सु-रत्नान् कृणुत, सख्यस्य स्तोत्रस्य अधि गात, हि व रत्न-धेयानि सनात् सन्ति ।

अर्थ— ४२० (सूर्य) ये ज्ञानी घोर (प्रावाण न) मेघोंके समान (सिन्धु मातर) नदियोंके घनाने हारे, (आ-द्विंशत) सभी प्रकारसे शत्रुका विनाश करनेहारे (अद्रय न) यज्ञोंके तुल्य (विश्व-हा) सभी शत्रुओंका संहार करनेहारे, (शु मातर) उत्तम माताओंके (शिक्षला न) निरोगी पुत्र-संतानोंके समान (क्रीळ्य) खिलाड़ी (उत) और (महा-ग्राम न) बड़े सग्राम चतुर योद्धाके समान शत्रुपर (यामन्) हमला करते समय (त्रिषा) तेजस्वी क्षील पड़ते ह ।

४२१ ये घोर उपसा केतव न) उप कालीन किरणोंके समान तेजस्वी, (अधर-धिय) यज्ञके कारण सुधानेवाले (शुभ यश न) कल्याणप्राप्तिके लिए प्रयत्न करनेवाले घोरोंके समान (अजिभि) घोरभूषणों या गणवेशोंसे (वि अश्वितन्) विशेष ढंगसे प्रकाशित हो रहे ह । ये (सिन्धव न) नदियोंके समान (ययिय) वेगपूर्वक जानेहारे, (आजत्-ऋष्य) तेजस्वी हाथियार धारण करनेहारे तथा (परावत न) दूर जानेहारे प्रवासियोंके समान (योजनानि) कई योजन (ममिरे) पार कर चले जाते ह ।

४२२ हे (देवा) प्रकाशमान तथा (यवृधाना) यदनेवाले (मरत !) मरतो ! (अस्मान्) हमें और (न स्तोतृन्) हमारे सभी कवियोंको (सु-भागान्) अच्छे भाग्यवान पद्य (सु-रत्नान्) उत्तम रत्नोंसे युक्त (कृणुत) करो ! (सख्यस्य स्तोत्रस्य) हमारी मित्रताके काव्यका (अधि गात) गायन करो । (हि) क्योंकि (व) तुम्हारे (रत्न धेयानि) रत्नोंके दान (सनात्) विरकालसे (सन्ति) प्रचलित ह ।

भावार्थ— ४२० वे बार पत्रताके सहायक, ज्ञानोंके मुख्य शत्रुनाशक उत्तम माताके आरोधसपन्न यज्ञोंकी नाश खिलाड़ी और युद्धकाल योद्धाके जैसे शत्रुदलपर दूर पड़ते समय प्रसन्नबेता बननेवाले हैं । ४२१ वे घोर तेजस्वी, अपने शत्रुओंकी संहारनेवाले, वेगपूर्वक दौड़नेवाले, आत्मरक्षण हाथियार रखनेवाले, शत्रु पहुँच जानेकी हृष्टा करनेवाले यशियोंके समान कई घोषण धकधक न दबाते हुए जानेवाले हैं । ४२२ हे वीरो ! हमें तथा हमारे सभी कवियोंकी प्रशंसा मात्रासे धन पूव रत्न दे दो, क्योंकि तुम्हारा धनदानकी कार्य लगातार प्रचलित रहता है । मित्ररहित दर स्थानपर पतनने लगे हर्षालिप हृष्ट काव्यका गायन करो और मित्रतापूर्ण रचितके बढ़ाओ ।

टिप्पणी— [४२०] (१) प्रावन् = पथार, मेघ, पर्वत । (२) आ-द्विंश = (आ + द् = फोड़ना, नाश करना) विनाशक । [४२१] (१) पर+अवत् = दूर जानेवाला । [४२२] (१) धेय = बहोरता, लेना, पोषण करना । (२) स्तोता = कवि । (३) सख्यस्य स्तोत्र = मित्रत्व बढ़ानेके लिए किया हुआ काव्य, सभी जगह मित्रभाव बढ़े, इस हेतुसे रचा हुआ काव्य ।

(वा० यजु० ३।८४)

(४२३) प्रघासिनऽइति प्रऽघासिनः । हवामहे । मरुतः । च । रिशार्दसः ।
करम्भेण । सजोर्पसऽइति सऽजोर्पसः ॥४४॥

(वा० यजु० ३।३६)

(४२४) उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः । असि । इन्द्राय । त्वा । मरुत्वते । एषः । ते ।
योनिः । इन्द्राय । त्वा । मरुत्वते । उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः । असि । मरुताम् । त्वा ।
ओजसे ॥३६॥

(वा० यजु० १।७।८०-८१)

(४२४) शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्मान्श्च । शुक्रश्चऽऋतपाश्चात्यंछहाः ॥८०॥

[१] शुक्रज्योतिरिति शुक्रऽज्योतिः । च । चित्रज्योतिरिति चित्रऽज्योतिः । च । सत्यज्यो-
तिरिति सत्यऽज्योतिः । च । ज्योतिष्मान् । च ।

शुक्रः । च । ऋतपाऽइत्यृतऽपाः । च । अत्यंछहा इत्यर्तिऽअंछहाः ॥८०॥

अन्वयः— ४२३ प्र-घासिनः रिश-अर्दसः करम्भेण स-जोर्पसः च मरुतः हवामहे । ४२४ उपयाम-
गृहीतः असि, मरुत्वते इन्द्राय त्वा, एष ते योनि, मरुत्वते इन्द्राय उपयाम-गृहीतः असि, मरुतां ओजसे
त्वा । ४२४ (१) शुक्र-ज्योतिः च चित्र-ज्योतिः च सत्य-ज्योतिः च ज्योतिष्मान् च शुक्रः च
ऋत-पाः च अत्यंछहाः [हे मरुतः ! यूपं असिन् यज्ञे एतन्] ।

अर्थ— ४२३ (प्र-घासिनः) उत्तम अन्नका सेवन करनेहारे, (रिश-अर्दसः) हिंसकोंका घघ करनेहारे
और (करम्भेण स-जोर्पसः च) दहीभाटको सब मिलकर सेवन करनेवाले (मरुतः हवामहे) धीर मरुतों
को हम बुलाते हैं । ४२४ तू (उपयाम-गृहीतः असि) उपयाम वर्तनमें धरा हुआ सोम है, (मरुत्वते
इन्द्राय) धीर मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रके लिए (त्वा) तू है । (एषः ते योनि) यह तेरा उत्पत्तिस्थान
है । (मरुतां ओजसे) धीर मरुतोंके तुल्य बल प्राप्त हो जाय, इसीलिये हम (त्वा) तुझे अर्पित करते हैं या
तेरा ग्रहण करते हैं । ४२४ (१) (शुक्र ज्योति च) अति शुभ्र तेजसे युक्त, (चित्र-ज्योति च)
आश्चर्यजनक तेजसे पूर्ण, (सत्य ज्योतिः च) सत्यके तेजसे भरा हुआ, (ज्योतिष्मान् च) पर्याप्त मात्रामें
प्रकाशमान, (शुक्रः च) पवित्र, (ऋत-पाः च) सत्यका संरक्षण करनेहारा और (अत्यंछहा) पापसे दूर
रहनेवाला [इस भौति नाम धारण करनेहारे धीर मरुतों ! इस हमारे यज्ञमें तुम पधारो]

भावार्थ— ४२३ शत्रुविनाशक तथा सब इच्छे होकर अन्नका सेवन करनेवाले मरुतोंको हम अपने समीप बुलाते हैं ।
४२४ उपयामनामक पात्रमें सोमरस डंडेलकर इन्द्र तथा मरुतोंको दिया जाता है और ऐसा करनेसे मरुतोंके समान बल
प्राप्त हो, ऐसी प्रार्थना उपासक करता है तथा वह उस सोमरसका ग्रहण पत्रं दान करता है । ४२४ (१) १ शुक्रज्योति,
२ चित्रज्योति, ३ सत्यज्योति, ४ ज्योतिष्मान्, ५ शुक्र, ६ ऋतपाः ७ अत्यंछहाः ये सात मरुत हैं । यह मरुतोंकी पहली पत्ति है ।

टिप्पणी— [४२३] (१) प्र-घासिन् = (घम् अदने = खाना, घासः = अन्न) उत्तम अन्नको खानेवाले,
पर्याप्त अन्नका सेवन करनेवाले । (२) करम्भ = सक्का भाटा दहीमें मिलाकर तैयार किया हुआ पाच पदार्थ । दही-
भाट, कोईभी अन्न दहीमें मिला देनेपर सिद्ध होनेवाली खानेकी चीज । [४२४ (१)] (१) अत्यंछस् =
(अति + अंछस्-) पापसे दूर रहनेवाला । [हे मरुतः ! — यद् अन्नाहार अन्न ४२५ में से लिया है ।

- (४२४) ईदृङ् चान्यादृङ् च सदृङ् च प्रतिसदृङ् च । मितश्च सम्मितश्च समराः ॥८१॥
 [२] ईदृङ् । च । अन्यादृङ् । च । सदृङ् । सदृङ्ङित्सदृङ् । च । प्रतिसदृङ्ङित् प्रतिसदृङ् । च ।
 मितः । च । सम्मितऽङ्ङित् समुत्समितः । च । समराऽङ्ङित् ससमराः ॥८१॥
 (४२४) ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च घर्षणश्च । धर्ता च विधर्ता च विधारयः ॥८२॥
 [३] ऋतः । च । सत्यः । च । ध्रुवः । च । घर्षणः । च । धर्ता । च । विधर्तेति विधर्ता । च ।
 विधारयऽङ्ङित् विधारयः ॥ ८२ ॥
 (४२४) ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुपेणश्च । अन्तिमित्रश्च दुरेऽभिमित्रश्च गणः ॥८३॥
 [४] ऋतजिदित्यृत्तुऽजित् । च । सत्यजिदिति सत्यऽजित् । च । सेनजिदिति सेनऽजित् । च ।
 सुपेणः । सुसेनुऽङ्ङित् सुसेनः । च ।
 अन्तिमित्रऽङ्ङित्यान्तिऽमित्रः । च । दुरेऽभिमित्रऽङ्ङित् दुरेऽभिमित्रः । च । गणः ॥ ८३ ॥

धन्यः— ४२४ (०) ई-दृङ् च अन्या-दृङ् च स-दृङ् च प्रति-सदृङ् च मितः च सं-मितः च स-
 मराः [हे मरुतः ! यूयं अस्मिन् यज्ञे पतन ।] ४२४ (३) ऋतः च सत्यः च ध्रुवः च घर्षणः च धर्ता
 च वि-धर्ता च वि-धारयः [हे मरुतः ! यूयं अस्मिन् यज्ञे पतन] । ४२४ (४) ऋत-जित् च सत्य-जित्
 च सेन-जित् च सु-पेणः च अन्ति-मित्रः च दुरेऽभ-मित्रः च गणः [हे मरुतः ! यूयं अस्मिन् यज्ञे पतन] ।
 अर्थ— ४२४ (०) (ई-दृङ् च) समीप की वस्तुपर दृष्टि रखनेवाला, (अन्या-दृङ् च) दूखरी और
 निगाह डालनेवाला, (स-दृङ् च) सयको सम दृष्टिसे देखनेवाला, (प्रति-सदृङ् च) प्रत्येकको एक
 विशिष्ट दृष्टिसे देखनेवाला, (मितः च) संतुलित भावसे यथाय रखनेवाला, (सं-मितः च) सयसे समरस
 होनेवाला, (स-भराः) सभी पार्श्वोंका योद्धा अपने सरपर उठानेवाला— [इन नामोंसे प्रख्यात वीर
 मरुतो ! इस हमारे यज्ञमें आ जाओ । ४२४ (३) (ऋतः च) सरल व्यवहार करनेवाला, (सत्यः च)
 सत्यावरणी, (ध्रुवः च) अटल एवं अडिग भावसे पूर्ण, (घर्षणः च) सयको आश्रय देनेवाला, (धर्ता च)
 धारकशाक्तसे पुक्त, (वि धर्ता च) विविध दंगोंसे धारण करनेमें समर्थ और (वि-धार-यः) विशेष
 रीतिसे धारण कर प्रगतिशील बननेवाला— [इन नामोंसे विख्यात वीर मरुतो ! हमारे यज्ञमें पधारो ।]
 ४२४ (४) (ऋत-जित् च) सरल राहसे चलकर यज्ञस्थी होनेवाला, (सत्य-जित् च) सत्यसे जीतनेवाला,
 (सेन-जित् च) शत्रुसनापर विजय पानेवाला, (सु-पेणः च) अच्छी सेना समीप रखनेवाला, (अन्ति-
 मित्रः च) मित्रोंको समीप करनेवाला, (दुरेऽभ-मित्रः च) शत्रुको दूर हटानेवाला और (गणः) गिनती
 करनेवाला— [इन नामोंसे विभूषित वीरो ! हमारे इस यज्ञमें आओ]

भाष्यार्थ— ४२४ (३) ८ ईदृङ्, ९ अन्यादृङ्, १० सदृङ्, ११ प्रतिसदृङ्, १२ मित, १३ संमित तथा १४ समर हून
 सात मरुतोंका उल्लेख यहाँपर किया है। यह मरुतोंकी दूमरी ककार है। ४२४ (३) १५ ऋत, १६ सत्य, १७ ध्रुव,
 १८ घर्षण, १९ विधर्ता, २० धर्ता, २१ विधारय ऐसे सात मरुतोंका उल्लेख यहाँपर है। यह मरुतोंकी तीसरी पंक्ति है।
 ४२४ (४) २२ ऋतजित्, २३ सत्यजित्, २४ सेनजित्, २५ सुपेण, २६ अन्तिमित्र, २७ दुरेऽभिमित्र, २८ गण इन सात
 मरुतोंका निर्देश यहाँपर किया है। यह मरुतोंकी चतुर्थी ककार है।

टिप्पणी— [४२४ (३)] (१) ऋत = सरल, विद्यामार्ग, पूज्य, प्रदीप्त, सत्य, यज्ञ, सत्कर्म । (२) घर्षण =
 होनेवाला, छे जानेवाला, आश्रय देनेवाला । [४२४ (४)] (१) गणः = (गण् परिसंख्याने) गिनती
 करनेवाला, चण्डादिन् प्रधान देनेवाला, चौक्या ।

(४२५) ईदक्षासः । एतादक्षासः । ऊँस्त्यै । सु । नः । सृदक्षासइति सृदक्षासः । प्रतिसदक्षासइति प्रतिसदक्षासः । आ । इतन । मितार्सः । च । सम्मितासइति सम्मितासः । नः । अद्य । सभरसइति सभरसः । मरुतः । यज्ञे । अस्मिन् ॥८४॥

(४२६) स्वर्तवानिति स्वर्तवान् । च । प्रधासीति प्रधासी । च । सान्तपनइति साम्तपनः । च । गृहमेधीति गृहमेधी । च । क्रीडी । च । शाकी । च । उज्जेपीत्युत्जेपी ॥८५॥

[(४२६) उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च । सासह्याश्चाभियुग्वा च विश्विपः स्वाहा । (पा०य०११७)

[१] उग्रः । च । भीमः । च । ध्वान्तःइति धुर्ध्वान्तः । च । धुनिः । च । सासह्यान् । ससह्यानिर्वि ससह्यान् । च । अभियुग्वेत्यभियुग्वा । च । विश्विपइति विश्विपः । स्वाहा ॥७॥]

(४२७) इन्द्रम् । दैवीः । विशः । मरुतः । अनुवर्तमानइत्यनुवर्तमानः । अभवन् । यथा । इन्द्रम् । दैवीः । विशः । मरुतः । अनुवर्तमान इत्यनुवर्तमानः । अभवन् । एवम् । इमम् ।

यजमानम् । दैवीः । च । विशः । मानुषीः । च । अनुवर्तमानइत्यनुवर्तमानः । भवन्तु ॥८६॥

अन्वयः— ४२५ ई-दक्षासः एता-दक्षासः ऊ-स-दक्षासः प्रति-सदक्षासः सु-मितासः सं-मितान्नः नः स-भरसः (हे) मरुतः ! अद्य नः अस्मिन् यज्ञे एतन् । ४२६ स्व-तवान् च प्र-धासी च साम्तपनः च गृह-मेधी च क्रीडी च शाकी च उत्-जेपी च [हे मरुतः ! ययं अस्मिन् यज्ञे एतन्] । ४२६(१) उग्रः च भीमः च ध्वान्तः च धुनिः च सासह्यान् च अभि-युग्वा च विश्विपः स्वाहा । ४२७ दैवीः विशः मरुतः इन्द्रं अनु-वर्तमानः अभवन् (यथा देवीः०००० अभवन्) एवं दैवीः मानुषीः च विशः इमं यजमानं अनु-वर्तमानः भवन्तु ।

अर्थ— ४२५ (ई-दक्षासः) इन समीपस्थ वस्तुओंपर विशेष दृष्टि रखनेहारे, (एता-दक्षासः) उन सुदूर वर्तों कीजोंपर विशेष ध्यान केन्द्रित करनेवाले, (ऊ-स-दक्षासः) सब मिलकर एक धियारले देनेहारे, (प्रति-सदक्षासः) प्रत्येककी ओर विशेष ध्यान देनेवाले, (सु-मितासः) अच्छे ढंगसे प्रमाणबद्ध, (सं-मितान्नः) मिलजुलकर काम करनेहारे तथा (नः) हमारा (स-भरसः) समान अनुपातमें पोषण करनेवाले हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (अद्य) आज दिन (नः अस्मिन् यज्ञे) हमारे इस यज्ञमें (एतन्) आओ ।

४२६ (स्व-तवान्) अपने निजी बलके सहारे पडा हुआ, (प्र-धासी च) भली भाँति अद्य तैयार करनेवाला, (साम्तपनः च) शत्रुओंको परिताप देनेवाला, (गृह-मेधी च) गृहस्थधर्म का पालन करनेवाला, (क्रीडी च) खिलाडी, (शाकी च) सामर्थ्ययुक्त तथा (उत्-जेपी च) दुश्मनोंपर अच्छी विजय पानेहारा [इस भाँति नाम धारण करनेहारे वीर मरुतो ! इस हमारे यज्ञमें आओ ।]

४२६ (१) (उग्रः च) उग्र, (भीमः च) भीमण, (ध्वान्तः च) शत्रुओं के आँखों में अंधियारी छा जाय ऐसा कार्य करनेहारा, (धुनिः च) शत्रुदलको हिला देनेवाला, (सासह्यान् च) सहनशक्तिये युक्त, (अभि-युग्वा च) शत्रुदलसे सामने जूझनेवाला, (विश्विपः च) धिविध ढंगोंसे शत्रुओंको भगानेवाला-इस भाँति नाम धारण करनेहारे वीर मरुतोंको ये दृष्टिप्यात्र (स्वाहा) अर्पित हों ।

४२७ (दैवीः विशः मरुतः) ये वीर मरुत् दैवी प्रजाजन हैं और वे (इन्द्रं अनु-वर्तमानः) इन्द्र के अनुयायी (अभवन्) हुए हैं । (एवं) इसी भाँति (दैवीः मानुषीः च विशः) देवलोक एवं मनुष्यलोक के प्रजाजन (इमं यजमानं) इम यज्ञ करनेहारे के (अनु-वर्तमानः भवन्तु) अनुयायी हों ।

भाषार्थ— ४०५ २९ ईदशास, ३० पृथादशास, ३१ सटशास, ३२ प्रतिसदशास, ३३ सुमितासः, ३४ संमिता-
सः, ३५ सभरस- इन सात मरतों का बटोल इस मंत्रमें है। यह मरतोंकी पंचम पंक्ति है।

४२६ ३६ स्वतवान्, ३७ प्रघासी, ३८ सान्तपन, ३९ गृहमेधी, ४० ऋषी, ४१ शाकी, ४२ उज्जेयी इन
सात मरतोंका विवेक यहाँ है। यह मरतोंकी छठी पंक्ति है।

४२६ (१) ४३ उग्र, ४४ भीम, ४५ ध्वान्त, ४६ पुनि, ४७ सासद्दान्, ४८ अभियुग्वा, ४९ विक्रिप,
इस भौति सात मरतोंकी संख्या यहाँपर निर्दिष्ट है। यह मरतोंकी सप्तम पंक्ति है।

टिप्पणी— [४२६ (१)] (१) ध्वान्तः = (ध्वन् शब्दे) ध्वन्कारी, अर्थात् । (२) सासद्दान् = (स-भा-
[यह सर्वे] + ध्व) सहनशक्तिसे युक्त । [अ० ८. १६. ८ मंत्रमें " त्रि पट्टिस्त्वा मदतो वावृधाना "]
अर्थात् समूचे मरतोंकी संख्या ६३ है, ऐसा स्पष्ट कहा है। इसी मंत्रपर की हुई सायणाचार्यजी की टीकामें भी लिखा है—
" त्रिः प्रयः । पट्टि-युक्तसंख्याकाः मदतः । त्रि च तैत्तिरीयके ' ईदृश चान्यादृश च ' (तै० सं० ४।६।५।५)
इत्यादिना नयन्तु गणेषु सप्त सप्त प्रतियादिताः । तत्रादितः यद्वा गणाः संदितायामान्नायन्ते । ' स्वतवांश्च
प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च ऋषी च शाकी च उज्जेयी ' (वा० सं० १०।८५) इति खैलिकः पद्यो गणः ।
ततो ' पुनिश्च ध्वान्तश्च ' (तै० आ० ४।१४) इत्याद्यास्तयोऽरण्येऽनुवाक्याः । इत्थं प्रयःपट्टिसंख्या-
याः— "

तैत्तिरीय संदितायाः परिगणन इति भौति है—

	संख्या	
(१) ईदृश च—	३	(वा० यजु० मंत्रसंख्या १०।८१)
(२) उग्रश्च त्रिध-	७	(" " " ८०)
(३) भीमत्रिध-	३	(" " " ८३)
(४) भीमश्च-	३	(" " " ८२)
(५) ईदृशास -	३	(" " " ८४)
	२५	

टीकाके अनुसार देलना हो तो—

(६) स्वतवांश्च-	३	(वा० य० १०।८५)
(७) पुनिश्च ध्वान्तश्च-	७	(तै० आ० ४।१४)
(८) उग्रश्च पुनिश्च-	१२	" "
	१९	

टीकामें ' पुनिश्च इत्याद्यास्तयाः ' भी कहा है, परन्तु ७ × ३ = २१ मरतु स्वतंत्र रीतिसे नहीं पाये गये हैं। केवल
१९ है। गिनतेसे ५ पुनरुक्त हैं। सब मिलाकर तै० य ३५ + वा० य० ७ + तै० आ० १४ = ५६ मरतोंकी गिनती पाई
जाती है। (वा० य० ३।१०) ' उग्रश्च भीमश्च ' गिनतीकीभी इसीसे समुक्त करें और उसमेंसेभी पुनरुक्त ४ नाम हटा
दें तो (५६ के ५६ +) तैय ३ मिलानेपर कुल ५९ संख्याकी दीव्य पड़ती है। तैय ४ नामोंका अनुमन्वान गिना-
शुभोगी करना चाहिए। ' एकोनपञ्चाशत्संख्यायाः मदतः ' ऐसा वर्णन अनेक स्थानोंपर पाया जाता है, उस प्रकार
(वा० य० १०।८० से ८५ और ३।१०) तक ४८ मरतोंकी गणना स्पष्ट है।

अथ (वा० य० १०।८० से ८५ और ३।१०), (तै० सं० ४।६।५।५) और (तै० आ० ४।२४) इन सभी मंत्रोंकी
गणना निम्नरितिग टांकी है—

[वा. य. १७।८० - ८५ व ३९।७]—

१	२	३	४	५	६	७
१ शुक्रज्योति	चित्रज्योति	सत्यज्योति	ज्योतिष्मान्	शुक्र	ऋतप	अत्यंहम्
२ ईहद्	अन्याहद्	सहद्	प्रतिसहद्	मित	संमित	सभरत्
३ ऋत	सत्य	ध्रुव	धरुण	धर्ता	विधर्ता	विधारय
४ ऋतजित्	सत्यजित्	सेनजित्	सुपेण	अन्तिमिन्	दूरेऽमिन्	गण
५ ईहक्षासः	एताहक्षासः	सहक्षामः	प्रतिसहक्षासः	मितासः	संमितासः	सभरसः
६ स्वतवान्	प्रपासी	सान्तापन	गृह्मेधी	मीडी	शाकी	उज्जेयी
७ उग्र	भीम	ध्वान्त	धुनि	सासहान्	अभियुग्वा	विक्षिप

(पंचम पंक्तिमें 'संमितासः' तथा 'सभरसः' का एकपचन किया जाय तो 'संमित' तथा 'सभरस्' दोनों नाम दूसरी पंक्तिमें पाये जाते हैं यह विचार करने योग्य बात है।)

(तै. सं. ४।६।५।५)

१	२	३	४	५	६	७
१ ईहद्	अन्याहद्	एताहद्	प्रतिसहद्	मित	संमित	सभरम्
२ शुक्रज्योति	चित्रज्योति	सत्यज्योति	ज्योतिष्मान्	सत्य	ऋतप	अत्यंहस्
३ ऋतजित्	सत्यजित्	सेनजित्	सुपेण	अन्ति अमिन्	दूरेऽमिन्	गण
४ ऋत	सत्य	ध्रुव	धरुण	धर्ता	विधर्ता	विधारय
५ ईहक्षासः	एताहक्षासः	सहक्षासः	प्रतिसहक्षासः	मितासः	संमितासः	सभरसः

(तै. आ. ४।२४)—

१	२	३	४	५	६	७
१ धुनि	ध्वान्त	ध्वन	ध्वनयन्	विक्लिम्प	विक्लिम्प	विक्षिप
२ उग्र	धुनि	ध्वान्त	ध्वन	ध्वनयन्	साहसहान्	सहमान
३ सहस्वान्	सहीवान्	एव	प्रेत्य	विशिण	×	×

यह समूची गणना १०३ हुई। इसमेंसे ४० पुनरुक्त हटा दें तो ६३ शेष रहते हैं। इस प्रकार (क. ८।९।८) पर की टीका में जो ६३ संख्या मतलबी है, वह सुसंगत प्रतीत होती है।

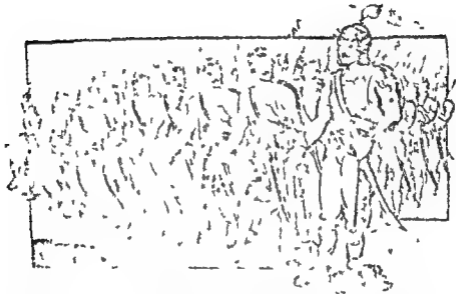
इससे ऐसा जान पड़ता है कि इन ६३ मन्त्रोंकी रचना भी मतलबी आ सकती है—

×	०	०	०	०	०	०	×
×	०	०	०	०	०	०	×
×	०	०	०	०	०	०	×
×	०	०	०	०	०	०	×
×	०	०	०	०	०	०	×
×	०	०	०	०	०	०	×

७ पार्थ-रक्षक ! _____ ४९ मन्त्र _____ ७ पार्थ-रक्षक
= कुल ६३ मन्त्र

ध्यानमें रहे कि इन मन्त्रोंकी सेनाओं छोटेसे छोटा समुदाय (Unit) ६३ सैनिकोंवा माना जाता है। हमना चित्र भागके प्रारंभ पर देखिये।

मरुतोंका एक संघ



पार्श्वरक्षकोंकी
पंक्ति
७ मरुत्

मरुतोदी गाय पंक्तियां
४९ मरुत्

पार्श्वरक्षकोंकी
पंक्ति
७ मरुत्

७ पार्श्वरक्षक + ४९ मरुत् + ७ पार्श्वरक्षक = कुल ६३ मरुतोंका एक संघ.

(वा० वज्र० २५००)

(४२८) पृषदश्वा इति पृषत्-अश्वाः । मरुतः । पृश्निमातर इति पृश्नि-मातरः ।
 शुभंयार्वान इति शुभम्-यार्वानः । त्रिदशेषु । जग्मयः ।
 अग्निजिह्वा इत्याग्नि-जिह्वाः । मनवः । सूरचक्षस इति सूर-चक्षसः ।
 विश्वे । नः । देवाः । अरसा । आ । अगमन् । इह ॥२०॥

अत्रिपुत्र इत्यावाश्व ऋषि (वाम० ३५६)

(४२९) यदि । वहन्ति । आशवः । आजमानाः । रथेषु । आ ।
 पिबन्तः । मदिरम् । मधु । तत्र । श्रयासि । कृण्वते ॥५॥
 प्रथा ऋषि (अर्वा० १।२६।३-४)

(४३०) यूयम् । नः । प्र-नतः । नपात् । मरुतः । सूर्य-त्वचमः ।
 शर्म । यच्छाथ । स-प्रथाः ॥३॥

अन्वय — ४२८ पृषत्-अश्वा पृश्नि-मातर शुभ यारवान्, विदशेषु जग्मय अग्नि जिह्वा मनवः सूर-
 चक्षस, मरुत विश्वे देवा अवसा न इह आगमन् ।

४२९ यदि आशव रथेषु आजमाना, मधु मदिर पिबन्त आ वहन्ति तत्र श्रयासि कृण्वते ।

४३० (हे) सूर्य-त्वचस मरुत 'प्रवत नपात् । यूय न स प्रथा शर्म यच्छाथ ।

अर्थ— ४२८ रथों को (पृषत्-अश्वा) धरनेवाले घोड़े जोतनेवाले, (पृश्नि-मातर) भूमि एवं गौकी
 माता माननेवाले, (शुभ यारवान्) लोककल्याण के लिए हलचल करनेवाले (विदशेषु जग्मय) युद्धोंमें
 जानेवाले, (अग्नि-जिह्वा) अग्नि-की लपटों, की नाई तेजस्वी, (मनव) विचारशील (सूर-चक्षस)
 सूर्यवत् प्रकाशमान (मरुत) वीर मरुत् ओर (विश्वे देवा) सभी देव (अवसा) सरक्षक शक्तियोंके साथ
 (न. इह) हमारे यहाँ (आगमन्) आ जायें ।

४२९ (यदि) जहाँ जहाँ ये (आशव) वेगपूर्वक जानेवाले, (रथेषु आजमाना) रथोंमें चमकने
 वाले तथा (मधु मदिर पिबन्त) मीठा सोमरस पीनेवाले वीर (आ वहन्ति) चले जाते हैं (तत्र)
 यहाँ यहाँपर (श्रयासि कृण्वते) विपुल धन पाते हैं ।

४३० हे (सूर्य-त्वचस, मरुत) ! सूर्यवत् तजस्वी वीर मरुतो ! ओर (प्रवत, नपात्) अग्ने !
 (यूय) तुम सभी मिलकर (न) हमें (स-प्रथा) विपुल (शर्म) सुर (यच्छाथ) दे दो ।

भाषार्थ— ४२८ (भावार्थ स्पष्ट है ।) ४२९ निधर वे वीर सैनिक चले जाते हैं, उधर वे भाँति भाँतिके धन
 कमाते हैं । ४३० हम इन दलों की कृपासे सुख मिले ।

टिप्पणी— [४३०] (१) प्रवत्= सुगम मार्ग, ढाल । (२) नपात्= पोता, पुत्र (न-पात्) जिसका पतन न
 होता हो । प्रवतो नपात्—(Son of the heavenly height । = Agni) सीधी राहसेल जाकर न गिरानेवाला ।
 (३) स प्रथा = (प्रभसु=विस्तार) विस्तारसे युक्त, विशाल, विपुल ।

(४३१) सुसूदत । मृडत । मृडय । नः । तनूभ्यः । मयः । तोकेभ्यः । कृधि ॥४॥

(अथर्व० ५।२।३।५)

(४३२) छन्दांसि । यज्ञे । मरुतः । स्वाहा ।

माताइव । पुत्रम् । पिपृत । इह । युक्ताः ॥५॥

(अथर्व० १३।१।३)

(४३३) यूपम् । उग्राः । मरुतः । पृश्निमातरः । इन्द्रेण । युजा । प्र । मृणीत । शत्रून् ।

आ । वः । रोहितः । शृणवत् । सुद्वानवः ।

मिःसप्तसः । मरुतः । स्वादुःसमुदः ॥३॥

अन्वयः— ४३१ सु-सूदत मृडत मृडय नः तनूभ्यः तोकेभ्यः मयः कृधि ।

४३२ (हे) मरुतः ! युक्ताः इह यज्ञे माताइव पुत्रं छन्दांसि पिपृत, स्वाहा ।

४३३ (हे) पृश्नि मातरः उग्राः मरुत ! यूपं इन्द्रेण युजा शत्रून् प्र मृणीत, (हे) सु-द्वानवः स्वादु-सं-मुदः मि-सप्तसः मरुत ! वः रोहितः आ शृणवत् ।

अर्थ— ४३१ हमारे शत्रुओं को (सु-सूदत) विनष्ट करो । हमें (मृडत) सुखी करो ; हमें (मृडय) सुखी करो । (न तनूभ्यः) हमारे शरीरों को और (तोकेभ्यः) पुत्रपौत्रोंको (मय) सुखी (कृधि) करो । ४३२ हे (मरुत !) धीर मरुतो ! (युक्ता) हमेशा तैयार रहनेवाले तुम (इह यज्ञे) इस यज्ञमें (माताइव पुत्रं) माता जैसे पुत्रका पालनपोषण करती है, उसी प्रकार हमारे (छन्दांसि) मन्त्रों का, इच्छाओं का (पिपृत) संगोपन करो । (स्वाहा) ये हविष्यान्न तुम्हें अर्पित हों ।

४३३ हे (पृश्नि-मातरः) भूमिको माता माननेवाले, (उग्राः) शूर (मरुतः !) धीर मरुतो ! (यूपं) तुम (इन्द्रेण युजा) इन्द्रसे युक्त होकर (शत्रून् प्र मृणीत) शत्रुओंका संहार करो । हे (सु-द्वानव) दानी, (स्वादु-सं मुद) मीठे अन्नसे अच्छा आनन्द पानेहारे तथा (मि-सप्तसः) इफकीस विभागोंमें बँटे हुए (मरुतः !) धीर मरुतो ! (वः रोहितः) तुम्हारा लाल रंगवाला हरिण (आ शृणवत्) तुम्हारी बात सुन ले, तुम्हारी आज्ञामें रहे ।

भाषार्थ— ४३१ हमारे शत्रुओंका विनाश होकर हमें सुख प्राप्त हो ।

४३२ हमारी आकांक्षाओंका भली भाँति संगोपन हो और वह बीरोंके प्रयत्नसे हो, अतः इन बीरोंको हम यह संपर्ण कर रहे हैं ।

४३३ धीर सैनिक अपने प्रमुख सेनापतिकी आज्ञामें रहकर शत्रुदलकी धमियाँ उठा दें । अच्छा अन्न प्राप्त करके आनन्द प्राप्त करें। अपने सभी सेनापतिमार्गोंकी सुस्पष्टता रखकर हरएक धीर, प्रमुखकी आज्ञाके अनुसार, कार्य करता रहे, येना अनुशासनका प्रबंध रहे ।

टिप्पणी— [४३१] (१) सूद (क्षरणे) = विनाश करना, बध करना, दु ख देना, दूर कँक देना, रखना ।

[४३२] (१) छन्दस् = इच्छा, स्तुति, वेद ।

[४३३] (१) स्वादु = मीठा, (मिठासमरी खाद्य वस्तु, सोमरस) । (२) सप्त = (सप्त = सम्मान देना) सात, सम्मानित ।

अथवा ऋषि (अर्थ० ३।१।२, ६)

(४३४) यूयम् । उग्राः । मरुतः । ईदृशे । स्थ । अभि । प्र । इत् । मृणत । सहध्वम् ।
अमीमृणन् । वसवः । नाथिताः । इमे । अग्निः । हि । एवाम् । दूतः । प्रतिऽएतुं । विद्वान् ॥२॥

(४३४) इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो ब्रह्मन्त्वोर्जसा । चक्षुष्यमिरा दत्तां पुनरेतु पराजिता ॥६॥

[१] इन्द्रः । सेनाम् । मोहयतु । मरुतः । मन्तु । ओर्जसा ।

चक्षुषि । अग्निः । आ । दत्ताम् । पुनः । एतु । पराजिता ॥६॥

(अर्थ० ३।१।६)

(४३५) असां । या । सेनां । मरुतः । परेषाम् । अस्मान् । आऽएति । अभि । ओर्जसा । स्पर्धमाना ।
ताम् । विध्यत । तमसा । अपऽप्रतेन । यथा । एवाम् । अन्यः । अन्यम् । न । जानात् ॥६॥

अन्वयः— (हे) उग्राः मरुतः ! यूयं ईदृशे स्थ, अभि प्र इत्, मृणत सहध्वं, इमे नाथिताः वसव-अमी-
मृणन्, एपां विद्वान् दूतः अग्निः हि प्रयेतु । ४३४ (१) इन्द्रः सेनां मोहयतु, मरुतः भोजना मन्तु,
अग्निः चक्षुः आ दत्तां, पगजिता पुनः एतु । ४३५ (हे) मरुतः ! जसौ परेषां या सेना भोजसा
स्पर्धमाना अस्मान् अभि आ-एति तां अप-प्रतेन तमसा विध्यत यथा एपां अन्यः अन्यं न जानात् ।

अर्थ— ४३४ हे (उग्रा मरुतः !) उग्र स्वरूपवाले वीर मरुतो ! (यूयं) तुम (ईदृशे) ऐसे समाने (स्थ)
स्थिर रहो और शत्रुओंपर (अभि प्र इत्) आक्रमण करो । शत्रुओंके वीरोंको (मृणत) मारकर (सहध्वं)
उनका पराभव करो । उसी प्रकार (इमे) ये (नाथिताः) प्रशंसित वीर (वसव-) वसानेवाले वीर हमारे
शत्रुओंको (अमीमृणन्) बिनष्ट कर डालें । (एपां विद्वान् दूत-) इनका ज्ञानी दूत (अग्निः हि) अग्निमी
(प्रयेतु) हर शत्रुपर चढाई करे । ४३४ (१) (इन्द्रः) इन्द्र (सेनां) शत्रुसेनाको (मोहयतु) मोहित कर
डाले, (मरुतः) वीर मरुत (भोजसा) अपने बलसे विरोधी पक्षके लोगोंको (मन्तु) मार डाले, (अग्निः) अग्नि
उनकी (चक्षुः) दृष्टिको (आ दत्तां) निकाल ले और इस ढंगसे (पराजिता) परास्त हुई शत्रुसेना (पुनः एतु)
फिर एक बार पीछे हटकर लौट जाय । ४३५ हे (मरुत !) वीर मरुतो ! (असां) यह (परेषां या सेना)
शत्रुओंकी जो सेना (भोजसा) अपने बलके जाभारसे (स्पर्धमाना) स्पर्धा करती हुई, हो उ लगती हुईसी
(अस्मान् अभि आ-एति) हमपर चढाई करती हुई आती है, (तां) उसे (अप-प्रतेन) जिसमें कुछ
भी नहीं किया जा सकता है, ऐसा (तमसा) जबर फेलाकर, उससे उस सेनाको (विध्यत) विध डालो,
इस भाँति (यथा) कि (एपां) इनमें से (अन्य अन्यं न जानात्) एक दूसरे को जान नहीं सके ।

भाषार्थ— ४३४ युद्ध छिड़ जानेपर वीर सैनिक अपनी जगह हटकर खड़े रहें और दुश्मनोपर दृष्ट पड़े । शत्रुओंको
गाजरमूलीकी तरह काट देना चाहिए और दुश्मनोंकी चढाईके बलस्वरूप अपना स्थान छोड़कर भागना नहीं चाहिए,
यथाकिं ऐसा करनेसे स्वयं अपनेकी परास्त होना पडेगा । ४३४ (१) शत्रुदल परास्त हो जाय, उसे शिकस्त यार्ज
पडे । ४३५ शत्रुदलपर इस भाँति आक्रमण कर देना चाहिए कि, सभी शत्रुसैनिक पूर्ण रूपसे भ्रातचेता हो
उठें । अंधेरा उत्पन्न करनेवाले (तमसा)—अज्ञ दा प्रयोग करके दुश्मनोंकी सेनाको अकिंचित्तर बनाया जाय ।

टिप्पणी— [४३४] (१) मृण = (हिसायाम्) बध करना, नाश करना । (२) वसु = उपनिवेश बनानेमें सहायता
करनेद्वारा, (वागपरीति) । [४३५] (१) अप प्रते (प्रव-रम, वर्तन्व्य) जिसमें वर्तन्व्यका विनाश हुआ हो । अप प्रते तम-
= यह एक भय है । शत्रुसेनामें वीर नैथियारी फैलती है, युद्ध के मारे सैनिकों को खास लेना दूभर प्रतीत होता है, दम
बुदने लगता है । उन्हें ज्ञात नहीं होता कि, क्या किया जाय । जो करना सो नहीं करते और अनिष्ट से बन जाने के
कारण नहीं करना है, यही कर बैठने हैं । ' अपप्रततम ' नामक अस्त्रका प्रभाव इसी भाँति मडा अन्ता है ।

(अथर्व- ५१२५६)

(४३६) मरुतः । पर्यंतानाम् । अधिपतयः । ते । मा । अनुन्तु ।

अस्मिन् । ब्रह्मणि । अस्मिन् । कर्मणि । अस्याम् । पुरोऽधायाम् । अस्याम् । प्रतिस्थायाम् ।
अस्याम् । चित्याम् । अस्याम् । आऽकृत्याम् । अस्याम् । आऽशिपि । अस्याम् । देव-
हृत्याम् । स्वाहा ॥६॥

शन्ताति ऋषि । (अथर्व- ५१३१८)

(४३७) त्रायन्ताम् । इमम् । देवाः । त्रायन्ताम् । मरुताम् । गणाः ।

त्रायन्ताम् । विश्वा । भूतानि । यथा । अयम् । अरपाः । असत् ॥७॥

(अथर्व- ६१२०१२-३)

(४३८) पर्यस्वतीः । कृणुथ । अपः । ओपधीः । शिवाः । यत् । एजथ । मरुतः । रुक्मवृक्षसः ।
ऊर्जम् । च । तत्र । सुऽमुतिम् । च । पिन्वत । यत्र । नरः । मरुतः । सिञ्चथ । मधु ॥८॥अन्वय — ४३६ पर्यंताना अधिपतय ते मरुत अस्मिन् ब्रह्मणि अस्मिन् कर्मणि अस्यां पुरो-धायाम्
अस्या प्र-तिष्ठाया अस्या चित्या अस्या आकृत्या अस्या आशिपि अस्यां देव हृत्यां मा अयन्तु स्वाहा ।४३७ देवा इम त्रायन्ता, मरुता गणा, त्रायन्ता, विश्वा भूतानि यथा अयं अ-रपाः असत्
त्रायन्ता ।४३८ (हे) रुक्म-वृक्षस मरुत ! यत् एजथ पयस्वती. अपः शिवा. ओपधी. कृणुथ, (हे)
नर मरुत ! यत्र मधु सिञ्चय तत्र ऊर्जं च सु-मतिं च पिन्वत ।अर्थ— ४३६ (पर्यंताना अधिपतय.) पहाड़ों के स्वामी (ते मरुत.) ये घोर मरुत (अस्मिन् ब्रह्मणि)
इस ज्ञानमें, (अस्मिन् कर्मणि) इस कर्म में, (अस्या पुरो-धायाम्) इस नेतृत्व में, (अस्यां प्र-तिष्ठाया)
इस अच्छी प्रकारकी स्थिरतामें (अस्या चित्या) इस विचारमें, (अस्या आकृत्या) इस अभिप्रायमें, (अस्यां
आशिपि) इस आशीर्वादमें (अस्या देव-हृत्या) और इस देवोंकी प्रार्थनामें (मां अयन्तु) मेरी रक्षा करें ।
(स्वाहा) ये हमिन्धातु उनके लिए अर्पित ह ।४३७ (दयाः) देवतागण (इमं त्रायन्तां) इसका संरक्षण करें, (मरुतां गणा.) घोर मरुतों के
सङ्घ इसकी (त्रायन्ता) रक्षा करें । (विश्वा भूतानि) समूचे जीवजन्तु भी (यथा) जिस भाँति (अथ अ-रपाः
असत्) यह निर्दोष निष्पाप, निरोगी हो, उसी ढंगसे इसे (त्रायन्ता) बचायें ।४३८ हे (रुक्म-वृक्षस मरुत !) वृक्ष स्थलपर स्वर्णमुद्रके हार धारण करनेवाले घोर मरुतो !
(यत् एजथ) जब तुम चलने लगते हो तब (पयस्वती अप) बलवर्धक जल तथा (शिवाः ओपधी.)
पल्याण-कारक वनस्पतिया (कृणुथ) उत्पन्न करते हो और हे (नर मरुत !) नेतापदपर अधिष्ठित वीरो-
सैनिकों ! (यत्र मधु सिञ्चत) जहाँपर तुम मीठासभरे अधारी समृद्धि करते हो, (तत्र) वहाँपर (ऊर्जं
च सुमतिं च) बल एवं उत्तम बुद्धि को (पिन्वत) निर्मित करते हो ।भावार्थ— ४३८ पवन वहमी है, मधु यहाँ कले लगे है, वनस्पतियाँ बढ़ती हैं और मिठासभरे फल सानेके
लिए मिलते हैं । इस सबसे बुद्धि की बुद्धि होनेमें बड़ी भारी सहायता मिलती है ।

टिप्पणी— [४३६] (१) चित्ति = विचार, मनन, ज्ञान, भक्ति, कीर्ति ।

• (४३९) उदुःप्रुतः । मरुतः । तान् । इयर्त । वृष्टिः । या । विश्वाः । निऽवतः । पृणाति ।
एजाति । ग्लहा । कन्याऽइव । तुन्ना । एरुम् । तुन्दाना । पत्याऽइव । जाया ॥३॥
मृगार ऋषि । (अयं २१७१-७)

(४४०) मरुताम् । मन्वे । अधि । मे । वृवन्तु । प्र । इमम् । वाजम् । वाजऽसाते । अवन्तु ।
आशूनऽइव । सुऽयमान् । अहे । ऊतये । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥१॥
(४४१) उत्सम् । अक्षितम् । विऽअञ्चन्ति । ये । सदा । ये । आऽसिञ्चन्ति । रसम् । ओपधीपु ।
पुरः । दधे । मरुतः । पृश्निऽमातृन् । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥२॥

अन्वय- ४३९ (हे) मरुतः । उद प्रुतः तान् इयर्त, या वृष्टिः विश्वाः नियत- पृणाति, तुन्दाना ग्लहा,
तुन्ना कन्याइव, एरुं पत्याइव जाया एजाति । ४४० मरुतां मन्वे, मे अधि वृवन्तु, वाज साते इमं
वाजं भवन्तु, आशूनइव सु-यमान् ऊतये अहे, ते नः अंहस मुञ्चन्तु । ४४१ ये सदा अ-क्षितं उत्सं
वि-अञ्चन्ति, ये ओपधीपु रसं आसिञ्चन्ति, पृश्नि मातृन् मरुतः पुरः दधे, ते नः अंहसः मुञ्चन्तु ।

अर्थ- ४३९ हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (उद-प्रुत- तान्) जलको गति देनेवाले उन मेघोंको (इयर्त)
प्रेरित करो । उनसे हुई (या वृष्टिः) जो वारिदा (विश्वाः नियतः) सभी दरीकंदराओंको (पृणाति) परि-
पूर्ण कर देती है, उस समय । तुन्दाना ग्लहा) दहाउनेवाली विजली (तुन्ना कन्याइव) उपवर कन्या
(एरुं) नवयुवक को प्राप्त करती है, उस समयकी तरह तथा (पत्याइव जाया) पतिके आलिं-
गनमें रही नारीकी नाई (एजाति) विकम्पित हो उठती है । ४४० (मरुतां) वीर मरुतोंको मैं (मन्वे)
सम्मान देता हूँ, ये (मे) मुझे (अधि वृवन्तु) उपदेश दें, पथप्रदर्शन करें और (वाज-साते) युद्धके
जयसुरपर (इमं) इस मेरे (वाजं) यलकी (अवन्तु) रक्षा करें । (आशूनइव) वेगवान घोड़ोंके तुल्य
वपना (सु-यमान्) अच्छा नियमन भली प्रकार करनेवाले उन वीरोंको हमारे (ऊतये) संरक्षणार्थ
(अहे) मैं बुलाता हूँ । (ते) ये (नः) हमें (अंहसः) पापसे (मुञ्चन्तु) छुड़ा दें । ४४१ (ये) जो
(सदा) हमेशा (अ क्षितं) कभी न न्यून होनेवाले (उत्सं) जलप्रवाहों (वि-अञ्चन्ति) विशेष
हंगसे प्रवर्तित करते ह, (ये) जो (ओपधीपु) औपधियोंपर (रसं आसिञ्चन्ति) जलका छिटाकाव करते
हैं, उन (पृश्नि मातृन् मरुतः) भूमिको माता समझनेवाले वीर मरुतोंको मैं (पुर दधे) अगभागमें
रख देता हूँ । (ते) ये वीर (नः) अंहस मुञ्चन्तु) हमें पापांसे बचावें ।

भावार्थ- ४३९ वायुप्रवाह मेघोंको प्रेरित कर तथा वर्षाका प्रारंभ करके समूची दरीकंदराओंको जलसे परिपूर्ण कर
दालते हैं । उस समय विलुप्त मेघोंसे इस भाँति सन्निहित हो जाती हैं, जैसे बुधत्वियों अथवा नक्षत्रवत् पतिवृद्धको गले
छगायी है । ४४० वीर हमें योग्य मार्ग दर्शाएँ, लोगोंके बचका संरक्षण करें तथा उसका दुरप्रयोग होने न दें ।
सिपायें हुए घोड़े जिस भाँति आशुनुवर्ती रहते हैं उसी प्रकार ये वीर हैं और ये हमें पापसे बचाकर सुरक्षित करें ।
४४१ वायुप्रवाहोंके कारण वर्षा हुआ करती है, भूमिपर जलके खेत पृथ क्षरने पड़ते हैं, वनस्पतियोंमें रसकी वृद्ध होती
है । पापसे बचनेमें वीर हमें सहायता दें ।

टिप्पणी- [४३९] (१) नियत- भूमिशा निम्न विभाग, दरी । (२) ग्लहा = धृत्क्रोडा कितव । (३) तुन्ना =
क्षतविधत, निकल, (कामवाचासे पीडित), (तुद्-व्यथने = बध देना, मारना, दुःख देना) । (४) एरु = जानेवाला,
(प्रास करकेहारा) । [४४१] (१) पुरः दधे = हमेशा आँतोंके सामने धर देगा ह, अगभागमें रक्षना ह
मार्गदर्शन समझता ह ।

- (४४२) पयः । धेनुनाम् । रसम् । ओषधीनाम् । ज्वम् । ज्वताम् । कृत्वायः । ये । इन्वयः ।
 शम्माः । भ्रन्तु । मरुतः । नः । स्वोनाः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अहंसः ॥३॥
- (४४३) अपः । समुद्रात् । दिवम् । उत् । वहन्ति । दिवः । पृथिवीम् । अभि । ये । सृजन्ति ।
 ये । अत्सृग्भिः । ईशानाः । मरुतः । चरन्ति । ते । नः । मुञ्चन्तु । अहंसः ॥४॥
- (४४४) ये । कीललेन । तर्पयन्ति । ये । घृतेन । ये । वा । वयः । मेदसा । समुद्रसृजन्ति ।
 ये । अत्सृग्भिः । ईशानाः । मरुतः । वर्पयन्ति । ते । नः । मुञ्चन्तु । अहंसः ॥५॥

अन्वय — ४४२ ये कचय धेनुना पय आपधीना रस अवेना जय इन्वय (ते) शम्मा मरुत न स्वोनाः भ्रन्तु, ते न अहस मुञ्चन्तु । ४४३ ये समुद्रात् अप दिव उत् वहन्ति दिव पृथिवीं अभि सृजन्ति, ये अत्सृग्भिः ईशाना मरुत चरन्ति तेन अहस मुञ्चन्तु । ४४४ ये कीललेन ये घृतेन तर्पयन्ति, ये वापय मेदसा ससृजन्ति, ये अत्सृग्भिः ईशाना मरुत वर्पयन्ति, ते न अहस मुञ्चन्तु ।

अर्थ— ४४२ (ये कचय) जो पानी पीर (धेनुना पय) गोआँने दुग्धना तथा (ओषधीना रसं) पास्पतियोके रसका सेवन करके (तयना जय) घोडाँने वेगको (इन्वय) प्राप्त करते ह, ये (शम्मा) तमर्थ (मरुत) पीर मरुत (न) हमारे लिए (स्वोना भ्रन्तु) सुपगारक हों। (ते) ये (न) हमें (आहस मुञ्चन्तु) पापाँसे बचाय। ४४३ (ये) जो (समुद्रात्) समुन्द्रमें से (अप) जलानी (दिव उत् वहन्ति) उत्तरिक्षमें ऊपर ले चले ह पीर (दिव) उत्तरिक्षसे (पृथिवीं अभि) भ्रमणकरकर धरणीं रूपमें (सृजन्ति) छोट देते ह जोर (ये) जो ये (अभि) जलानी पजहसे (ईशाना) सत्कारपर प्रभु प्रस्थापित करनेवाले (मरुत) पीर मरुत (चरन्ति) सचार करते ह, (ते) ये (न) अहसा मुञ्चन्तु) हमें पापाँसे रिहा कर दे। ४४४ (ये) जो (कीललेन) जलसे तथा (ये) जा (घृतेन) घृतादि पोष्टिक पदार्थों से सपका (तर्पयन्ति) वृत्त करते ह, (ये वा) अथवा जो (वय) गच्छिया नो भी मेदसा ससृजन्ति) अहस ससृज करके ह, (आर (ये) जो (अभि ईशाना) जलकी जलसे ये वि वपर प्रभु प्रस्थापित करनेवाले (मरुत वर्पयन्ति) वीर मरुत चर्पा करते ह (ते) ये (न) हमें (अहस मुञ्चन्तु) पापाँसे छुड़ाये।

भावार्थ— ४४२ बी। गि। क गोतुथ तथा भोमरुटा वारुथयोरे रसे सेवनसे अपनी प्राप्ति बढ़ाते है। मेले पीर हम पुत्र दे और शाश्वत हम सुखित मत। ४४३ वानुवाही मद्राध्यागमे समुद्रागे विनामरा अगार आशुभि भाग्ये दानम उरर उर भागी है और भवमरुत क रुत न वरिया। उ ही सुवनेवर बवाके रूपमें विर पृथिवीर भा जागी है। इस भागे ये वापुवगाद विमुद्र तल मदेतल रार सल बी पीरन देनेवाक है अत येंही छट्टि सत्त्व अधिपति हैं। ये हीं पापाँसे आँसे मुखाँ। ४४४ वापुआँ मच्छर से मय से पर्यां हीगी है और मभी घृतचतसृगिवाँमं भोविभोपिरे रमोही छुट्टि हीगी है तथा मी लादि पपुभोम कृष चादि पुष्टिगारक रमोभी कृच्छिदो हीगी है। इस भागे ये मरुत वनगादि निराल कर समुजी छट्टिपर प्रभु व प्रस्थापित करत है। हम बाहर हैं दि व हम पापाँसे मुक्तिव रस।

टिप्पणी— [४४२] (१) इन्व (स्वाहा) = ताना +वाह होना, परठना कना करना आह्वा देना मर दना, प्रनु होना। (२) शम्मा (शामा मरु शका) = समथे। (३) स्वोना = सुपदायक, सुगर। [४४४] (१) वयसु = पत्नी, पीर। अथ शक्ति, आरोग्य। वय मेदसा समृजन्ति = योयानी मेद या मगासे बुक कर देते है। प्राक्को मेद वय गज स जोर दे है, अ अत्सृग्भिः गतीमं मेद की कचने है, बलेही अतुक क्षात्रिणी पयात गाम ग निभा रार है।

- (४४५) यदि । इत् । इदम् । मरुतः । मरुतेन । यदि । देवाः । देव्येन । ईदक् । आर ।
युयम् । ईशिध्वे । वसवः । तस्य । निःस्कृतेः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥६॥
(४४६) तिग्मम् । अनीकम् । विदितम् । सहस्वत् । मरुतम् । शर्धः । पृतनासु । उग्रम् ।
स्तौमि । मरुतः । नाथितः । जोहवीमि । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥७॥

अद्विरा ऋषि (अर्धं ० ७८२३)

- (४४७) समुत्सरीणाः । मरुतः । सुअर्काः । उरुश्रयाः । सगणाः । मानुषामः ।
ते । असत् । पाशान् । प्र । मुञ्चन्तु । एनसः । सामुत्पनाः । मत्सराः । मादयिष्णवः ॥३॥

अन्वयः— ४४५ (हे) वसवः देवाः मरुतः । यदि इदं मरुतेन इत्, यदि देव्येन ईदक् आर, यूयं तस्य निःस्कृतेः ईशिध्वे, ते न अंहसः मुञ्चन्तु । ४४६ तिग्मं अनीकं विदितं सहस्-वत् मरुतं शर्धः पृतनासु उग्रं, मरुतः स्तोमि, नाथितः जोहवीमि, तेन अंहसः मुञ्चन्तु । ४४७ संयत्सरीणाः सु-अर्काः स-गणाः उरु-श्रयाः मानुषाम् सान्तपनाः मत्सराः मादयिष्णव ते मरुतः असत् एनसः पाशान् प्र मुञ्चन्तु ।

अर्थ— ४४५ हे (वसवः) जनताको वसानेवाले (देवा) द्योतमान (मरुतः !) वीर-मरुतो ! (यदि) अगर (इदं) यह पाप (मरुतेन इत्) मरुट्टणों के सम्बन्धमें या (यदि) अगर (देव्येन) देवों के संबंधमें (ईदक्) पेले (आर) उत्पन्न हुआ हो, तो (यूयं) तुम (तस्य निःस्कृतेः) उस पापका निनाश करनेके लिए (ईशिध्वे) समर्थ हो । (ते) वे (नः) हमें (अंहसः मुञ्चन्तु) पापसे बचा दें ।

४४६ (तिग्मं) प्रखर, अति तीव्र (अनीकं) सेन्यमें प्रकट होनेवाला, (विदितं) विख्यात तथा शत्रुओंका (सहस्-वत्) पराभव करनेमें समर्थ (मरुतं शर्धं) वीर मरुतोंका बल (पृतनासु) संग्रामोंमें, लडाइयोंमें (उग्र) भीषण है, उन (मरुतः स्तोमि) वीर मरुतोंकी मैं सराहना करता हूँ । (नाथित) ऋषिसे पीड़ित होता हुआ मैं (जोहवीमि) उनसे प्रार्थना करता हूँ, उन्हें पुकारता हूँ । (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) पापसे (मुञ्चन्तु) छुड़ायें ।

४४७ (संयत्सरीणा) हर साल चारंवार आनेवाले, (सु-अर्का) अत्यंत फुन्य, (स गणाः) संघ बनाकर रहनेवाले, (उरु श्रयाः) विस्तृत धरम रहनेवाले, (मानुषाम्) मानवोंके हित करनेवाले, (सान्तपनाः) शत्रुओंको परिताप देनेवाले, (मत्सरा) खोम पानेवाले या आनन्दित होनेवाले तथा (मादयिष्णवः) दूसरोंको आनन्द देनेवाले (ते मरुतः) ये वीर मरुत (शस्त्रम्) हथियार (एनसः) पापोंके (पाशान्) फंदोंको (प्र मुञ्चन्तु) तोड़ डालें ।

भावार्थ— ४४५ देवोंकी कृपासे हम पापोंसे दूर रहें ।

४४६ वीरोंका युद्धमें प्रकट होनेवाला प्रकट एवं विख्यात वत् सबको विदित है । शत्रुसे पीडा पहुँचनेके कारण मैं इन वीरोंकी सराहना करता हूँ । ये वीर मुझे पापसे छुड़ायें । ४४७ बड़े धरम संघ बनाकर रहनेवाले, पृथ्वीय, तथा जनताका कल्याण करनेवाले वीर हमें पापोंसे बचा दें ।

टिप्पणी— [४४६] (१) नाथित = जिसे सहायताकी आवश्यकता है, पीड़ित, (नाथ = नाथ = याज्ञो-पतापैधर्मातीःसु) समर्थ होना, आशीर्वाद देना, प्रार्थना करना, भोगना, वक्ष देना । (२) अनीकं = सेन्य, समूह, युद्ध, प्रमुख, तेज, अग्र । [४४७] (१) उरु-श्रयः = बड़ा चौड़ा धर, बैस्क, सेनिकोंके रहनेका स्थान । (मत् ११७, ३२१ तथा ३४५, देविपृ ।) (२) मत्सराः (मद् + मरः) = जो मरव वीर हर्षित हो भागे पड़नेवाला- पापारिधीक ।

अत्रिपुत्र त्रमुद्यत ऋषि (ऋ० ५।३।२)

(४४८) तवं । श्रिये । मरुतः । मर्जयन्त । रुद्र । यत् । ते । जनिम । चारु । चित्रम् ।
पदम् । यत् । विष्णोः । उपमम् । निऽधायि ।
तेन । पासि । गुह्यम् । नाम । गोनाम् ॥३॥

अत्रिपुत्र त्रयावाग्य ऋषि (ऋ० ५।६०।१-८)

(४४९) ईळे । अग्निम् । मुऽअवसम् । नमःऽभिः । इह । प्रऽसत्तः । वि । चयत् । कृतम् । नः ।
रथैःऽइव । प्र । भरे । वाजयत्ऽभिः ।
प्रऽदक्षिणित् । मरुताम् । स्तोमम् । ऋध्याम् ॥१॥

अन्वयः— ४४८ (हे) रुद्र ! तव श्रिये मरुतः मर्जयन्त, ते यत् जनिम चारु चित्रं, यत् उपमं विष्णोः पदं निधायि तेन गोनां गुह्यं नाम पासि ।

४४९ तु-अवसं अग्निं नमोभिः ईळे, इह प्र-सत्तः नः कृतं वि चयत्, वाजयद्भिः रथैःइव प्र भरे, प्र-दक्षिणित् मरुतां स्तोमं ऋध्यां ।

अर्थ— ४४८ हे (रुद्र !) भीषण वीर ! (तव श्रिये) तुम्हारी शोभा पानेके लिये (मरुतः) वीर मरुत (मर्जयन्त) अपने आपको अत्यन्त पवित्र करते हैं । (ते यत् जनिम) तेरा जो जन्म है, यह सचमुच ही (चारु) सुन्दर तथा (चित्रं) आश्चर्यपूर्ण है । (यत्) क्योंकि (उपमं) स्वयं शत्रुघ्न (विष्णोः पदं) विष्णुके स्थानमें-आराधनें तेरा स्थान (निधायि) स्थिर हो चुका है । (तेन) उसी कारणसे तू, (गोनां) गौंसे, पाणिपोंके (गुह्यं नाम) रहस्यपूर्ण यज्ञके (पासि) सुरक्षित रहता है ।

४४९ (तु-अवसं) भली भाँति रक्षा करनेहारे (अग्निं) जगिनी मैं (नमोभिः) नमनपूर्वक (ईळे) स्तुति करता हूँ । (इह) यहाँपर (प्र-सत्तः) प्रसन्नतापूर्वक बैठे हुआ वह अग्नि (नः कृतं) हमारा यह कृत्य (वि चयत्) निष्पन्न करे, सिद्ध करे । (वाजयद्भिः) अश्वमय यज्ञसे, (रथैःइव) जैसे रथोंसे अभीष्ट जगह पहुँच जाने हैं, उसी प्रकार मैं अपने अभीष्टको (प्र भरे) पाता हूँ और (प्र-दक्षिणित्) प्रदक्षिणा करनेवाला मैं (मरुतां स्तोमं) वीर मरुतों के काव्यका गायन करके (ऋध्यां) त्रमुद्यि पाता हूँ ।

भाषार्थ— ४४८ शोभा पानेके लिए वे वीर मरुत अपनी तथा समीपव्य वस्तुओंकी सफाई करते हैं । सभी इषियाओंकी चमकीले बनाते हैं । इन वीरोंका जन्म सममुच लोककल्याण के लिए है, अतः वह एक रहस्यमय बात है । विष्णुपद इन वीरोंका अटल एवं अद्विग स्थान है ।

४४९ संरक्षणकृतक इस अग्निकी सत्ताहता मैं बताता हूँ । यह जगिनी हमारा यह यज्ञ पूर्ण करे । जिनमें अज्ञान करना पड़ता है, वेसे यज्ञ प्रारंभ कर मैं अपनी इच्छा की पूर्ति करता हूँ । इस अग्निकी प्रदक्षिणा करते हुए मैं इन वीरोंके स्तोत्र का गायन करता हूँ ।

टिप्पणी— [४४८] (१) मृज् (सुदौ शौचाहंसारयोऽत्र) = घोना, नौजना, मुद्द करना, कष्टकृत करना । (२) विष्णोः पदं = आसन, सवकाय । (३) उपमं = उपासि, मर्वापि, उत्पृष्ट । (४) गुह्यं = गुह्य, आश्चर्यजनक, रहस्यमय ।

[४४९] (१) वि-चि (चयने) = विशेष सूक्ष्म निगाहसे देखना-जानना, इकट्ठा करना, जाँच करना, अलग करना, पकड़ करना, नाश करना, साफ करना, बनाना, जोड़ देना । (२) ऋध् (वृद्धे) = वैभवं वचना, विजयी होना, बढ़ना । (३) प्र-दक्षिणित् = प्रदक्षिणा करनेवाला, मार्गापूर्वक मार्ग बरोदाला ।

(४५०) आ । ये । तस्थुः । पृथ्वीषु । श्रुतासु । सुखेषु । रुद्राः । गुरुतः । रथेषु ।
 वना । चित् । उग्राः । जिह्वते । नि । वः । भिया । पृथिवी । चित् । रेजते । पर्वतः ।
 चित् ॥ २ ॥

(४५१) पर्वतः । चित् । महि । वृद्धः । विभाय । दिवः । चित् । सानु । रेजत । स्त्रने । वः ।
 यत् । क्रीलथ । मरुतः । ऋष्टिमन्तः । आर्षः । इव । सध्वञ्चः । ध्वञ्चे ॥३॥

(४५२) घराः । इव । इत् । रैवतासः । हिरण्यैः । अभि । स्वधामिः । तन्वः । पिपिथे ।
 थिये । श्रेयांसः । तवसः । रथेषु । सत्रा । महांसि । चक्रिरे । तनूपृ ॥४॥

अन्वयः— ४५० ये रुद्राः मरुतः श्रुतासु पृथ्वीषु सुखेषु रथेषु आ तस्थुः, (हे) उग्रा ! वः भिया वना चित् नि जिह्वते पृथिवी चित्, पर्वतः चित् रेजते । ४५१ (हे) मरुतः ! वः स्त्रने महि वृद्धः पर्वतः चित् विभाय, दिव सानु चित् रेजते, ऋष्टिमन्त यत् सध्वञ्चः क्रीलथ आपः इव ध्वञ्चे । ४५२ रैवतासः घराः इव इत् हिरण्यैः स्व-धामिः तन्वः अभि पिपिथे, श्रेयांसः तवसः थिये रथेषु सत्रा तनूपृ महांसि चक्रिरे ।

अर्थ— ४५० (ये रुद्राः मरुतः) जो शत्रुबलको रूढनेजाले घोर मरुत् (श्रुतासु पृथ्वीषु) विख्यात धर्म्येवाली हरिणियाँ जोते हुए (सुखेषु रथेषु) सुखकारक रथोंमें जब (आ तस्थुः) बैठते हैं, तब हे (उग्राः !) उग्र घरीरो ! (वः भिया) तुम्हारे उरसे (वना चित्) वनतक (नि जिह्वते) विकंपित होते हैं; (पृथिवी चित्) भूमितक ओर (पर्वतः चित्) पहाड़तक (रेजते) थरथर काँप उठते हैं ।

४५१ हे (मरुतः !) घोर मरुतो ! (वः स्त्रने) तुम्हारी गर्जनाके उपरान्त (महि) बड़ा (वृद्धः) पढ़ा हुआ (पर्वतः चित्) पर्वत भी (विभाय) घबरा उठता है, (दिवः) सुलोक का (सानु चित्) विभाग भी (रेजते) विकम्पित हो उठता है । (ऋष्टि-मन्तः) भाले लेकर तुम (यत्) जब (सध्वञ्चः) इकट्ठे होकर (क्रीलथ) खेलते हो, तब (आप इव) जलप्रवाह के समान (ध्वञ्चे) दौड़ते हो ।

४५२ (रैवतासः घरा इव इत्) धनिक दूहणोंकी नाई (हिरण्यैः) सुवर्णालंकारों से विभूषित होते हुए ये घोर (स्व-धामिः) पौष्टिक अन्नोसं या, धारक शक्तियोंसे अपने (तन्वः) शरीरोंको (अभि पिपिथे) सभी प्रकारोंसे सुन्दर सजाते हैं । (श्रेयांसः) श्रेष्ठ तथा (तवसः) बलवान घोर (थिये) यश-प्राप्तिके लिए जब (रथेषु) रथोंमें बैठते हैं, तब उन शरीरोंके (सत्रा) बलविल होकर (तनूपृ) अपने शरीरोंपर (महांसि चक्रिरे) यहूतहि तेज धारण किया ।

भाषार्थ— ४५० रथोंपर चढ़े हुए घोर जब शत्रुसेनापर हमला करनेके लिए निकल पड़ते हैं, तब पृथ्वी, पर्वत, पर्व वन सभी दहक उठते हैं । क्योंकि इनका वेगही इतना प्रचंड है कि, उसके प्रभावसे बौद्धे वस्तु पृथ्वीया भ्रमभावित नहीं रह सकती हैं । ४५१ इन वीरोंको गर्जना होनेपर पहाड़ तथा क्षिपर काँपने लगते हैं । अपने हवियार लेकर जब ये एक जगह मिलकर रणभूमिमें युद्धकोश करते हैं, तब हाका वेग इतना प्रचंड रहता है कि, मानों ये दौड़तेही हैं, पैसा प्रतीत होता है । ४५२ दूहते जब वधूने निकट जानेकी तैयारी करते हैं, तब जिस प्रकार सजावट करते हैं, उसी प्रकार ये घोर वनाव-सिंगार करते हैं, अतः दीपनेमें चढ़ेही सुन्दर प्रतीत होते हैं । जब विजय पानेके लिए ये घोर रथपर बैठकर निकलते हैं, उस समय इनका तेज आँसोंको चाँधिया देता है ।

टिप्पणी— [४५१] (१) ध्वञ्चे = दौड़ते हो । (सा० भा०)

(४५३) अज्येष्टासः । अर्हनिष्ठासः । एते । सम् । आर्तरः । वृधुः । सौभगाय ।
 युवा । पिता । सुऽअपाः । रुद्रः । एषाम् । सुऽदुघा । पृथिः । सुऽदिना । मरुत्ऽभ्यः ॥५॥
 (४५४) यत् । उत्ऽतमे । मरुतः । मध्यमे । वा । यत् । वा । अग्ने । सुऽभगासः । द्विभि । स्व ।
 अतः । नः । रुद्राः । उत । वा । नु । अस्य । अग्ने । विचात् । हविषः । यत् । यजाम ॥६॥
 (४५५) अग्निः । च । यत् । मरुतः । विश्वऽदेसः । दिवः । वहध्ने । उत्तरात् । अधि । स्नुऽभिः ।
 ते । मन्दसानाः । धुनेयः । रिशदसः । वामम् । धत्त । यजमानाय । सुन्ते ॥७॥

जन्म्य — ४५३ अ-ज्येष्टास अ कनिष्ठास एते आर्तर सौभगाय स वृधु, एषा सु-अपा. युवा पिता रुद्र सु दुघा पृथि मरुत्भ्य सु दिना । ४५४ (हे) सु-भगास रुद्रा मरुत ! यत् उत्तमे मध्यमे वा यत् वा अग्ने दिवि स्थ अत न, उत वा (हे) अग्ने ! यत् नु यजाम अस्य हविष विचात् । ४५५ (हे) विश्व-वेदस मरुत ! अग्नि च यत् उत्तरात् दिव अधि स्नुभि वहध्ने ते मन्दसाना धुनय रिश-अदस सुन्ते यजमानाय वाम धत्त ।

अर्थ— ४५३ ये घोर (अ-ज्येष्टास) श्रेष्ठ भी नहीं ह और (अ-कनिष्ठास , कनिष्ठ भी नहीं ह, तो (एते) ये परस्पर (आर्तर) भाईपनसे यतीव रखते हुए (सौभगाय) उत्तम ऐश्वर्य पानेके लिए (स वृधुः) एकतापूर्वक अपनी वृद्धि करते ह । (एषा) इनका (सु-अपा) अच्छे कर्म करनेहारा (युवा) युवन् (पिता) पिता (रुद्र) महावीर हे और (सु-दुघा) उत्तम वृध वेनेहारी-अच्छे पेय देनेवाली (पृथि) गौ या भूमि इन (मरुत्भ्य) घोर मरुतोंको (सु-दिना) अच्छे शुभ दिन दर्शाती हे ।

४५४ हे (सु भगास) उत्तम ऐश्वर्यसंपन्न (रुद्रा) शत्रुभाषो दलानेवाले (मरुत !) घोर मरुतो ! (यत्) जिस (उत्तमे) ऊपरके, (मध्यमे वा) मँडाले (यत् वा अग्ने) या नौचके (दिवि) प्रनाश स्थानम तुम (स्व) हो (अत) वहाँसे (न) हमारो ओर आओ, (उत वा) ओर हे (अग्ने !) अग्ने ! (यत् नु यजाम) जिसका आज हम यजन कर रहे ह (अस्य हविष) वह हविष्यात् (विचात्) तुम जान लो, अर्थात् उधर ध्यान दे दो ।

४५५ हे (विश्व-वेदस) सब धनोंसे युक्त (मरुत !) घोर मरुतो ! तुम (अग्नि. च) तथा अग्नि (यत्) ऊँकि (उत्तरात् दिव) ऊपर विद्यमान बुलोकने (स्नुभि) ऊँच स्थानके मार्गोंसेही (अधि वहध्ने) सदैव जाते हो अत (ते) ये (मन्दसाना) प्रसन्न वृत्तिके, (धुनय) शत्रुदलको हिला नेवाले तथा (रिश-अदस) हिंसकोंका वध करनेवाले तुम (सुन्ते यजमानाय) सोमरस तैयार करने वाले याजनको (वाम) श्रेष्ठ धन (धत्त) दे दो ।

भाषार्थ— ४५३ य घोर परस्पर समभावसे शत्रुत्व रखते हैं, इसीलिए इनमें कोईभी न कनिष्ठ वा श्रेष्ठ पाया जाता है । भाईचारा इतम विद्यमान है और ये एकतासे श्रेष्ठ पुरुराय करके अपनी समृद्धि करते हैं । महावीर इनका पिता है और गाय वा पृथ्वी इतसी माता है जो इन्हें अच्छे दिन दर्शाता है । ४५४ घोर निधरभी हों उधरसे हमारे निकट चल आये और जो हविर्भाग हम दे रहे हैं उसे यकी मौलि वृत्तकर स्वीकार कर लें । ४५५ य घोर उच्च स्थानम रखते हैं । उलसित मनोवृत्ति और शत्रुदलको परास्त करनेवाले ये घोर याजनोंसे धन देते हैं ।

टिप्पणी— ४५३ (१) स्वपा (सु+अपम= हृत्)- अच्छे कर्म निष्पन्न करनेद्वारा । (२) अ-ज्येष्टास ०००० (मन् ३०५ दक्षिण) । [४५४] (१) [यहाँपर बुलोकके तीरा आग माने गये हैं उपागे, मध्यम अवमे दिवि ।] [४५५] (१) वाम = सुन्दर, दया, चापों, धन, संपत्ति । (२) मन्दसान (मन्. ह्यो) = हर्षयुक्त ।

(४५६) अग्ने । मरुत्सभिः । शुभयत्सभिः । ऋक्व्यभिः । सोमम् । पितृ । मन्दसानः ।
गणश्रिसभिः ।

पावकेभिः । विश्वमसन्वेभिः । आयुभिः । वैश्वानर । प्रदिवी । केतुना । ससृजः ॥८॥

अथर्व ऋषि (अ०- ११-०११)

(४५७) अदारसृत् । भवतु । देव । सोम । अस्मिन् । यज्ञे । मरुतः । मूर्तः । नः ।

मा । नः । विदत् । अभिः । मो इति । अशक्तिः । मा । नः । विदत् । वृजिना ।
द्वेष्या । या ॥ १ ॥

(अ०- ११-११८)

(४५८) गणाः । त्वा । उप । गायन्तु । मारुताः । पर्जन्य । घोषिणः । पृथक् ।

सर्गाः । वर्षस्य । वर्षतः । वर्षन्तु । पृथिवीम् । अर्नु ॥ ४ ॥

अन्वयः- ४५६ (हे) वैश्वानर अग्ने! प्र-दिवी केतुना सृजः शुभयत्सिः ऋक्व्यभिः गण श्रिभिः पावकेभिः विश्व-इन्वेभिः आयुभिः मरुद्भिः मन्दसानः सोमं पितृ । ४५७ (हे) देव सोम! अ-दार-सृत् भवतु, (हे) मरुतः! अस्मिन् यज्ञे नः सृजत, अभि-भा न मा विदत्, अ-शक्तिः मो, या द्वेष्या वृजिना न मा विदत् । ४५८ (हे) पर्जन्य! घोषिणः मारुताः गणाः पृथक् त्वा उप गायन्तु, वर्षत वर्षस्य सर्गाः पृथिवीं अर्नु वर्षन्तु ।

अर्थ- ४५६ हे (वैश्वानर) विश्वंके नेता (जग्ने!) अग्ने! (प्र-दिवी) प्रदर तेजसे त्वा (केतुना) ज्वालाओं से (सृजः) युक्त होकर नू (शुभयत्सिः) शोभायमान, (ऋक्व्यभिः) सराहनीय, (गण-श्रिभिः) संघजन्य शोभासे युक्त, (पावकेभिः) पवित्र, (विश्व-इन्वेभिः) सारको उत्साह देनेहार त्वा (आयुभिः) दीर्घ जीवन का उपभोग लेनेवाले (मरुद्भिः) वीर मरुतों के साथ (मन्दसानः) आनन्दित होकर (सोमं पितृ) सोमरसका सेवन कर ।

४५७ हे (देव सोम!) तेजस्वी सोम हमारा शत्रु अपनी (अ-दार-सृत्) खाँसे भी न मिलानेवाला (भवतु) हो जाय, अर्थात् मर जाए। हे (मरुत!) वीर मरुतो! (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (न मूर्तः) हमें सुखी करो। हमारा (अभि-भा) तेजस्वी बुद्धमन (न मा विदत्) हमें न मिले, हमारी आँठ न आ जाए। हमें (अ-शक्तिः मो) अपयश न मिले। (या द्वेष्या) जो निन्दनीय (वृजिना) पाप है, ये (न मा विदत्) हमें न लगे।

४५८ हे (पर्जन्य!) पर्जन्य! (घोषिण) गर्जना करनेहार (मारुताः गणा) मरुतों के संघ (पृथक्) विभिन्न ढंगसे (त्वा उप गायन्तु) तुम्हारी स्तुति का गायन करें। (वर्षत वर्षस्य) यज्ञे वेगसे होनेवाली धुँवाँधार वर्षा की (सर्गा) धाराएँ (पृथिवीं अर्नु वर्षन्तु) भूमिपर लगातार गिरती रहें।

भावार्थ- ४५७ हमारा शत्रु विनष्ट होवे। (यह अपनी छाँसे मिलकर सत्तान उत्पन्न करनेमें समर्थ न होवे।) हमारे शत्रु हमसे दूर हों वीर उनका आक्रमण हमपर न होने पाय। हम अपनी कीर्ति तथा पापसे कोसे दूर होकर सुखसे रहें।

टिप्पणी- [४५६] (१) विद्व-मिन्व=(मिन्व-स्नेहने सेचने व) सबपर प्रेम करनेवाला, सभी जगह वर्षा करनेवाला। (२) ससृज=युक्त। [४५७] (१) अ-दार-सृत्=रुकोके समीप न जानेवाला, घर न लँट जानेवाला (रगभूमिमें धराशायी होनेवाला)।

मरु [हिं. २३]

(अवध० ४११५५-१०)

- (४५९) उत् । ईर्यत् । मरुतः । समुद्रतः । त्वेषः । अर्कः । नभः । उत् । पातयाथ ।
 महाऋषभस्य । नदतः । नभस्वतः । वाश्राः । आपः । पृथिवीम् । तर्पयन्तु ॥ ५ ॥
- (४६०) अभि । क्रन्द । स्तनयं । अर्दयं । उदग्धिम् । भूमिम् । पर्जन्य । पयसा । सम् । अहि ।
 त्रया । सृष्टम् । बृहलम् । आ । एतु । वर्षम् । आशार-एषी । कृदागुः । एतु ।
 अस्तम् ॥ ६ ॥
- (४६१) सम् । वः । अवन्तु । सुदानवः । उस्ताः । अजगराः । उत ।
 मरुत्सर्भिः । प्रच्युताः । मेघाः । वर्षन्तु । पृथिवीम् । अर्नु ॥७॥

अन्वय.— (६) मरुत । समुद्रतः उत् ईर्यथ, त्वेष अर्कः नभः उत् पातयाथ, नदत. महा-ऋषभस्य नभस्वत. याशा. आपः पृथिवी तर्पयन्तु ।

४६० (हे) पर्जन्य ! अभि क्रन्द स्तनय उदधि अर्दय भूमि पयसा सं आदिष, त्वया सृष्टं पृथुलं वर्ष आ एतु, आशार-एषी वृश-गु. अस्त एतु ।

४६१ (हे) सु-दानव ! वः अजगराः उत उस्ता. सं अवन्तु, मरुद्भिः प्र-च्युता मेघाः पृथिवीं अनु वर्षन्तु ।

अर्थ— ४५९ हे (मरुत. !) मरुतो ! तुम (समुद्रत) समुद्रके जलको (उत् ईर्यथ) ऊपर ले चलो । (त्वेष) तेजस्वी तथा (अर्क.) पृथ्वी (नभ) मेघको आकाशमें (उत् पातयाथ) इधरसे उधर घुमाओ । (नदत. महा ऋषभस्य) वहाइते हुए घड़े भारी वैल के समान प्रतीत होनेवाले (नभस्वत.) मेघों के (याशा आपः) गरजते हुए जलसमूह (पृथिवी तर्पयन्तु) भूमिको संतृप्त करें ।

४६० हे (पर्जन्य !) पर्जन्य ! (अभि क्रन्द) गरजते रहो, (स्तनय) दहाडना शुरु करो, (उदधि) समुद्रमें (अर्दय) खलपली मचा दो, (भूमि) पृथ्वी को (पयसा) जलसे (सं आदिष) भली प्रकार गीली करो । (त्वया सृष्टं) तुमसे निर्मित (बृहलं वर्षं) प्रचुर वर्षा (आ एतु) इधर आये तथा (आशार-एषी) यही वर्षा की कामना करनेवाला (वृश-गुः) दुर्बल गौरव साथ रखनेवाला रूपक (अस्तं एतु) घर चले जाकर आनन्दसे रहे ।

४६१ हे (सु-दानव !) दानशूर वीरो ! (वः) भुम्हारे (अजगराः उत) अजगरके समान दीप पड़नेवाले (उस्ता) जलप्रवाह (सं अवन्तु) हमारी भली भाँति रक्षा करें । (मरुद्भिः) मरुतों की ओर से वर्षाके रूपमें (प्र-च्युताः) नीचे टपके हुए (मेघाः) बादल (पृथिवीं अनु वर्षन्तु) भूमिजलपर लगा-तार वर्षा करें ।

टिप्पणी— [४६०] (१) आशार-एषी वृश-गु अस्तं एतु = वर्षा कब होगी, इस आशसे आकाशकी ओर टरती धीपकर देखनेवाला अर्थात् वृश गायों को भी प्यार से सम्राज रखनेवाला किसान वर्षा होनेके पश्चात् सहर्ष अपने घर लौटकर धानभद से दिन बिताते छगे । (यदि वर्षा न हो, घासदिनका न मिले, तो रूपक अपने गोपनको साथ ले लदा जल पर्याप्त मात्रामें उपलब्ध होता है ऐसे स्थानपर जा बसते हैं. और वृष्टि की राह देतते रहते हैं । वर्षा होनेके उपरान्त वृणकी वधष्ट सन्धि होतेही वे अपने पूर्व निवासस्थानमें लौट आते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि, इस मन्त्रमें इस प्रणाली का उल्लेख किया हो ।)

(४६२) आशांस्आशाम् । वि । द्योतताम् । वाताः । वान्तु । दिशःर्दिशः ।

मरुत्सभिः । प्रञ्च्युताः । मेघाः । सम् । वन्तु । पृथिवीम् । अन्तु ॥ ८ ॥

(४६३) आपः । विद्युत् । अभ्रम् । वर्षम् । सम् । वः । अवन्तु । सूदानवः । उस्ताः ।
अजगराः । उत ।

मरुत्सभिः । प्रञ्च्युताः । मेघाः । प्र । अवन्तु । पृथिवीम् । अन्तु ॥ ९ ॥

(४६४) अपाम् । अग्निः । तनूभिः । सम्सविदानः । यः । ओषधीनाम् । अधिष्पाः । गृभृयः ।
सः । नः । वर्षम् । वन्तुताम् । जातवेदाः । प्राणम् । प्रज्जाभ्यः । अमृतम् । दिवः । परि ॥ १० ॥

अग्निमरुतश्च । (अग्निदेवता मन्त्र २४३८ ते २४४६)

कण्वपुत्र मेघातिथि ऋषि (ऋ० ११९११-९)

४६५ प्रति त्वं चारुमधुरं गोपीधाय प्र ह्यसे । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥१॥ [२४३८]

(४६५) प्रति । त्वम् । चारुम् । अध्रम् । गोऽपीधाय । प्र । ह्यसे । मरुत्सभिः । अग्ने ।
आ । गहि ॥१॥

अन्वय — ४६२ आशां-आशां वि द्योततां, दिशः-दिशः वाताः वान्तु, मरुद्भिः प्र-ञ्च्युताः मेघाः पृथिवीं
अनु घर्षन्तु । ४६३ (हे) सु-दानव ! यः आप विद्युत् अभ्र वर्ष अजगरा उत उस्ता. सं अयन्तु,
मरुद्भिः प्र-ञ्च्युता मेघा. पृथिवीं अनु प्र अवन्तु । ४६४ अर्षां तनूभिः संविदानः यः जात-वेदाः अग्निः
ओषधीनां अधि-पाः गृभृय सः नः प्रजाभ्यः दिव परि अमृतं वर्षं प्राणं वन्तुतां । ४६५ त्वं चारुं अधरं
प्रति गो-पीधाय प्र ह्यसे, (हे) अग्ने । मरुद्भिः आ गहि ।

अर्थ— ४६२ (आशां-आशां) हर दिशामें विजली (वि द्योततां) चमक जाए। (दिशः-दिशः) सभी
दिशाओंमें (घाता. वान्तु) वायु घटने लगे। (मरुद्भिः) मरुतों से (प्र-ञ्च्युता.) नीचे गिरे हुए मेघाः)
बादल वर्षा के रूपमें (पृथिवीं अनु सं वन्तु) भूमिसे मिल जायें ।

४६३ हे (सु-दानव !) दानी वीरों ! (यः) तुम्हारा (आप.) जल, (विद्युत्) विजली, (अभ्रं) मेघ,
(वर्षं) बारिश तथा (अजगराः उत उस्ता.) अजगर की नाईं प्रतीत होनेवाले शरत्के, जलप्रवाह सभी
प्राणियोंको (सं अयन्तु) बराबर बचा दें । (मरुद्भिः प्र-ञ्च्युता. मेघा) मरुतों से नीचे गिराये हुए मेघ
(पृथिवीं अनु) भूमिमें अनुकूल ढगसे (प्र अयन्तु) ठीकठीक सुरक्षित रये ।

४६४ (अर्षां तनूभिः) जलों के शरीरों से (सं-विदानः) तादात्म्य पाया हुआ (यः जात-वेदाः
अग्निः) जो वस्तुभात्रमें विद्यमान अग्नि (ओषधीनां अधि-पाः) औषधियोंका संरक्षण करनेवाला है, (स)
वह (न प्रजाभ्य) हमारी प्रजाके लिए (दिवः परि) शूलोकवा (अमृतं) मानों अमृतही गेसा (वर्षं)
बारिशका पानी (प्राणं वन्तुता) प्राणशक्तिके साथ दे दे ।

४६५ (त्वं चारुं अध्रं प्रति) उस सुन्दर हिसारहित यज्ञमें (गो-पीधाय) गोरस पीनेके
लिएतुझे (प्र ह्यसे) बुलाते हैं, अतः हे (अग्ने) अग्ने ! (मरुद्भिः) वीर मरुतोंके साथ इधर (आ गहि) जा जाओ ।

भावार्थ— ४६४ आकाशमेंसे जो वर्षा होती है, उसीके साथ एक प्रहार का प्राणवायु भी पृथ्वीपर उतरता है । यह
सभी प्राणियों को तथा वनस्पतियोंको सुख देता है ।

टिप्पणी— [४६५] (१) गो-पीध (या पाने रक्षणे च) = गोरसवा पान, गौहा संरक्षण ।

- ४६६ नहि देवो न मर्त्या महस्तत्र नतु परः । मरुद्भिर्ग्र आ गहि ॥२॥ [२४३९]
- (४६६) नहि । देवः । न । मर्त्यः । महः । तर्ष । कर्तुम् । परः । मरुत्सर्भिः । अग्र ।
आ । गहि । ॥२॥
- ४६७ ये महो रजमो विदुर्विधे देवामो अद्रुहः । मरुद्भिर्ग्र आ गहि ॥३॥ [२४४०]
- (४६७) ये । महः । रजमः । विदुः । विधे । देवामः । अद्रुहः । मरुत्सर्भिः । अग्र । आ ।
गहि ॥३॥
- ४६८ य उग्रा अर्कमान्चु रनावृषस ओजसा । मरुद्भिर्ग्र आ गहि ॥४॥ [२४४१]
- (४६८) ये । उग्राः । अर्कम् । आन्चुः । जनावृषसः । ओजसा । मरुत्सर्भिः । अग्र । आ ।
गहि ॥४॥
-

४६९ ये शुभ्रा घोरवर्षसः सुध्वजासो रिशादसः । मरुद्धिरग्न आ गहि ॥५॥ [२४४२]
 (४६९) ये । शुभ्राः । घोरवर्षसः । सुध्वजासः । रिशादसः । मरुत्सभिः । अग्ने । आ ।
 गहि ॥५॥

४७० ये नाकस्यार्थि रोचने दिवि देवास आसते । मरुद्धिरग्न आ गहि ॥६॥ [२४४३]
 (४७०) ये । नाकस्य । अर्थि । रोचने । दिवि । देवासः । आसते । मरुत्सभिः । अग्ने । आ ।
 गहि ॥६॥

४७१ य ईह्वयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम् । मरुद्धिरग्न आ गहि ॥७॥ [२४४४]
 (४७१) ये । ईह्वयन्ति । पर्वतान् । तिरः । समुद्रम् । अर्णवम् । मरुत्सभिः । अग्ने । आ ।
 गहि ॥७॥

४७२ आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा । मरुद्धिरग्न आ गहि ॥८॥ [२४४५]
 (४७२) आ । ये । तन्वन्ति । रश्मिभिः । तिरः । समुद्रम् । ओजसा । मरुत्सभिः । अग्ने ।
 आ । गहि ॥८॥

भाव्यः— ४६९ ये शुभ्रा. घोर-वर्षसः सु-ध्वजास रिश-वदस मरुद्धि (हे) अग्ने । आ गहि ।

४७० ये देवासः नाकस्य अर्थि रोचने दिवि आसते, मरुद्धि. (हे) अग्ने । आ गहि ।

४७१ ये पर्वतान् ईह्वयन्ति, अर्णवं समुद्रं तिरः, मरुद्धि (हे) अग्ने । आ गहि ।

४७२ ये रश्मिभि ओजसा समुद्रं तिरः तन्वन्ति, मरुद्धिः (हे) अग्ने । आ गहि ।

अर्थ- ४६९ (ये शुभ्रा) जो गोरवर्षवाले, (घोर-वर्षस) देखनेवाले के दिलको तनिक स्तिमित कर सके, ऐसे बृहदाकार शरीरसे युक्त, (सु-ध्वजास) उच्च कोटिके क्षत्रिय हं, अत (रिश-वदस.) रिशमों का वध करनेवाले हं, उन (मरुद्धि) वीर मरुतोंके झुंडके साथ हे (अग्ने) अग्ने! इधर पधारो ।

४७० (ये देवासः) जो तेजस्वी होते हुए (नाकस्य अर्थि) सुखदायक स्थान में या (रोचने दिवि) प्रकाशयुक्त चुलोकमें (आसते) रहते हं, उन (मरुद्धि) वीर मरुतों के साथ हे (अग्ने) अग्ने! (आ गहि) इधर आ-जो ।

४७१ (ये) जो (पर्वतान्) पहाटों को (ईह्वयन्ति) हिला देते हं और जो (अर्णवं समुद्रं) प्रमुग्ध समुन्द्रको भी (तिरः) तरकर पर चले जाते हं, उन (मरुद्धि.) वीर मरुतों के साथ हे (अग्ने!) अग्ने! (आ गहि) इधर आ जाओ ।

४७२ (ये) जो (रश्मिभि) अपने तेजसे तथा (ओजसा) बलसे (समुद्रं) समुन्द्रको (तिरः) तन्वन्ति) लॉचकर परे जा पहुँचते हं, उन (मरुद्धि.) वीर मरुतों के साथ हे (अग्ने) अग्ने! (आ गहि) इधर आ जाओ ।

भावार्थ- ४६९ वीर सैनिक अपनी सामर्थ्य बढाने, शरीरको बलिष्ठ बना दे और शत्रुओंका हर दगसे पराभव करें ।

दिग्दर्शनी—[४६९] (१) वर्षस=शक्ति, आकृति, शरीर । (२) सु-ध्वजास.= अच्छे, उत्कृष्ट क्षत्रिय । [इस पदसे साप साफ जाहिर होता है कि, मरुत्सभि वीर हैं । ऋ० १११६५५ देखिए। वहाँ 'स्वक्षत्रेभिः' पद पाया जाता है।]

[४७०] (१) नाक= (न-अ-क) क= सुख, अन् = दुःख, नाक= सुखमय लोक ।

[४७१] (१) पर्वतान् ईह्वयन्ति = (देगिए मरुदेवता मन १७,१०,१९ ।)

४७३ अमि त्वां पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु । मरुद्भिरम् आ गहि ॥९॥ [२४४६]
 (४७३) अमि। त्वा। पूर्वपीतये। सृजामि। सोम्यम्। मधु। मरुत्सभिः। अग्ने। आ। गहि ॥९॥

ऋग्वेदपुर सोमरि ऋषि (ऋ० ८।१०-३।१४) (अग्निदेवता मन् २४४७)

४७४ आग्रे याहि मरुत्संसा रुद्रेभिः सोमपीतये। सोमर्ष्या उप सुष्टुतिं मादयस्व स्वर्णरे ॥१४॥
 (४७४) आ। अग्ने। याहि। मरुत्संसा। रुद्रेभिः। सोमपीतये। सोमर्ष्याः। उप। सुष्टुत्-
 तिम्। मादयस्व। स्वः। स्वर्णरे ॥१४॥ [२४४७]

इन्द्र-मरुत्सम् । (इ देवता मन् ३२४५-३२४६)

विश्वामित्रपुत्र मधुच्छन्दा ऋषि (ऋ० १।६।५७)

४७५ वीळु चिदांरुजन्तुभिर्गुहां चिदिन्द्रं वहिभिः । अविन्द उस्त्रिया अनु ॥५॥ [३२४५]
 (४७५) वीळु। चित्। आरुजन्तुभिः। गुहां। चित्। इन्द्र। वहिभिः। अविन्दः।
 उस्त्रियाः। अनु ॥५॥

अन्वय — ४७३ त्वा पूर्व पीतये मधु साम्य अमि सृजामि, (हि) अग्ने ! मरुद्भिः आ गहि । ४७४ (हे) अग्ने ! मरुत्-संसा रुद्रेभिः सोम पीतये स्वर्-णरे आ याहि, सोमर्ष्याः सु-स्तुतिं उप मादयस्व । ४७५ (हे) इन्द्र ! वीळु चित् आ-रुजन्तुभिः वहिभिः (मरुद्भिः) गुहा चित् उस्त्रिया अनु अविन्दः ।
 अर्थ- ४७३ (स्त्री) तुम्ह (पूर्व पीतये) प्रारम्भमें ही पीने के लिए यह (मधु सोम्य) मीठा सोमरस (अमि सृजामि) मैं निर्माण कर दे रहा हूँ हे (अग्ने) ! अग्ने ! (मरुद्भिः आ गहि) वीर मरुत्सोंके साथ दूधर आओ।

४७४ हे (अग्ने) ! अग्ने ! तु (मरुत् संसा) वीर मरुत्सोंका मिर है, जल तु (रुद्रेभिः) शत्रुओंको रलानेवाले इन वीरों के संग (सोम-पीतये) सोम पीनेके लिए (स्व र्-णरे) जपने प्रकाश का जिससे विस्तार होता है, जेने इस यज्ञमें । आ याहि) पधारो आर (सोमर्ष्या सु-स्तुतिं) इस सोमरि ऋषिकी अच्छी स्तुतियों सुनकर (मादयस्व) मनुष्य बनो ।

४७५ हे (इन्द्र) ! इन्द्र ! (वीळु चित्) अत्यन्त सामर्थ्यवान् शत्रु गोंका भी (आ-रुजन्तुभिः) विनाश करनेहारि ओर (वहिभिः) धन देनेवाले इन वीरोंकी सहायतासे शत्रुओंने (गुहा चित्) गुफामें या गुप्त जगह रखी हुई (उस्त्रिया) गोत्रोंको तु (अनु अविन्द) पा सना, वापिस लेनेमें समर्थ हो गया ।

भाषार्थ— ४७५ वे वीर तुम्हमें कि बड़े बड़े महान् विधात करके अपने अधीन करनेमें, बड़ेही सफल होते हैं । इन्हीं वीरोंकी मदद पाकर यह, शत्रुओंने बड़ी सतर्कतापूर्वक किसी गुप्त स्थानमें रखी हुई गोत्रों या घनसंपदाका पता लगानेमें, सफलता पावा है । यदि वे वीर सहायता न पहुँचाते, तो किसी अज्ञात, दुर्गम तथा बौद्ध भूभागमें स्थित हुई गोसंपदाको पाना उसके लिये दुम्भर होता, हममें क्या सतय ?

टिप्पणी— [४७३] (१) सोमर्ष्या (सोम) [सोमरि-सुमभिः] = सोमरिनामक ऋषिकी, उत्तम ऋषि पाठनपोषण करनेहारि की (प्रजासा) । (२) स्वर्णरे (स्व-र्-णरे) = (स्व) अपने (रा) प्रकाशका विस्तार करनेके कार्यमें-पशुमें । (स्व) अपना प्रकाश हो तथा (न-रम्) वैयक्तिक भोगलिप्सा न हो, देना बन ।

[४७५] (१) आ-रुजन्तु- (आ-रु अग्ने हिंसायां च)- सोरनेवाला, क्षति पैदा करनेवाला, विनाशक, दुष्टके दुष्टके करनेवाला, रोषपांडित । (२) उस्त्रिय (यम् विनामे) = रहनेवाला, बैर, गाय, बछरा, दूध, घेन, मकाश । (३) चित् (यद् गायते) लीनेवाला, ले चनेवाला अग्नि ।

४७६ इन्द्रेण सं हि दक्षसे राजग्मानो अविभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥७॥ [३२४६]
 (४७६) इन्द्रेण । सम् । हि । दक्षसे । समुज्जग्मानः । अविभ्युषा । मन्दू इति । समानवर्चसा
 ॥७॥

मरुत्वानिन्द्रः । (इन्द्रदेवता मन् ३२४०-३२६९)
 कण्वपुत्र मेधातिथि ऋषि (ऋ- ११-३१७-९)

४७७ मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये । सजुर्गणेन तृम्पतु ॥७॥ [३२४७]
 (४७७) मरुत्वन्तम् । हवामहे । इन्द्रम् । आ । सोमऽपीतये । सजुः । गणेन । तृम्पतु ॥७॥
 ४७८ इन्द्रज्येष्ठा मरुद्रणा देवासः पूर्परातयः । विश्वे मम ध्रुता हर्वम् ॥८॥ [३२४८]
 (४७८) इन्द्रज्येष्ठाः । मरुत्सगणाः । देवासः । पूर्परातयः । विश्वे । मम । ध्रुत । हर्वम्
 ॥८॥

अन्वय.— ४७६ (हे मरुत्-गण !) अ-विभ्युषा इन्द्रेण सं-जग्मानः सं दक्षसे हि, समान-वर्चसा मन्दू (स्थः) ।

४७७ मरुत्वन्तं इन्द्रं सोम-पीतये आ हवामहे, गणेन सजुः तृम्पतु ।

४७८ (हे) देवासः पूष-रातयः इन्द्र-ज्येष्ठाः मरुत्-गणा ! विश्वे मम हवं ध्रुत ।

अर्थ— ४७६ हे वीरो ! तुम सदैव (अ-विभ्युषा इन्द्रेण) न डरनेवाले इन्द्रसे (सं-जग्मानः) मिलकर आक्रमण करनेवाले (सं दक्षसे हि) सचमुच दीप्त पड़ते हो । तुम दोनों (समान-वर्चसा) सदृश तेज या उत्साहसे युक्त हो और (मन्दू) हमेशा प्रसन्न एवं उत्तसित बने रहते हो ।

४७७ (मरुत्वन्तं) वीर मरुतों से युक्त । इन्द्रं इन्द्रको (सोम-पीतये) सोमपान के लिए हम (आ हवामहे) बुलाते हैं । एत इन्द्र (गणेन सजुः) इन वीरोंके गणके साथ (तृम्पतु) वृत्त होये ।

४७८ हे (देवासः) तेजस्वी, (पूष-रातयः) सबके पोषणके लिए पर्याप्त हो इस ढंगसे दान देनेवाले, तथा (इन्द्र-ज्येष्ठाः) इन्द्रको सर्वोपरि प्रमुख समझनेवाले (मरुत्-गणाः) वीर मरुतों ! (विश्वे) तुम सभी (मम हवं ध्रुत) मेरी प्रार्थना सुनो ।

भाष्यार्थ— ४७६ हे वीरो ! तुम निरंतर इन्द्रके महिवात से सदैव रहते हो । इन्द्र को छोड़कर तुम कभी छत्र भरनी नहीं रहते हो । तुमसे पूज इन्द्रसे समान कीटिया तेज पूज प्रभाव विद्यमान है । तुम्हारा उत्साह कभी घटता नहीं है ।

४७८ इन वीरोसे सभी समान रूपसे तेजस्वी हैं और सबके लिए पर्याप्त अन्न एवं धन पारकर सब लोगोंमें बाँट देते हैं । ऐसे इन वीरोका प्रभु एवं नेता इन्द्र है । वे सभी मेरी प्रार्थना सुन लेनेकी कृपा करें ।

टिप्पणी— [४७६] (१) वर्चस्= शक्ति, बल, उत्साह, तेज, आकार । (२) मन्दुः= (मन्दू स्तुतितोदमदस्वम-कान्तिगतिषु) आनन्दित, स्तुति करनेवाला, निद्रासुप्त भोगनेवाला ।

[४७७] (१) तृम्पू= (मीजने) वृत्त होना, समाधान पाना । (२) सजुस्= युक्त ।

[४७८] (१) पूष-रातिः (पूष रुद्धी)= सनकी पुष्टि के द्विधे योग्य एवं पर्याप्त अन्न धन आदि का दान देनेवाला ।

४७९ हत वृत्रं सुदानय इन्द्रेण सहसा युजा । मा नो दुःशंसं ईशत ॥९॥ [३२४९]
 (४७९) हत। वृत्रम्। सुदानयः। इन्द्रेण। सहसा। युजा। मा। नः। दुःशंसः। ईशत॥९॥

मिनावरणपुत्र जगस्य ऋषि (३० ११६-११-१४) (इन्द्रेणता मत्र ३०५०-३०६३)

४८० कया शुभा सर्वयसः मनीळाः समान्या मरुतः सं मिमिक्षुः ।

कया मती कुत एतास एते अर्चन्ति शुभं वृषणो वसूया ॥१॥ [३२५०]

(४८०) कया। शुभा। सऽव्यसः। सऽनीळाः। समान्या। मरुतः। सम्। मिमिक्षुः।

कया। मती। कुतः। आऽइतासः। एते। अर्चन्ति। शुभम्। वृषणः। वसुऽया॥१॥

अन्वयः— ४७९ (ह) सु-दानय ! सहसा इन्द्रेण युजा वृत्रं हत, दुस्-शंसः नः मा ईशत ।

४८० स-व्यस स-नीळाः स-मान्या मरुतः कया शुभा सं मिमिक्षु ? एते कुतः एतासः ?
 वृषणः वसु-या कया मती शुभं अर्चन्ति ?

अर्थ— ४७९ हे (सु-दानय !) दानद्वार वीरो ! तुम (सहसा) शत्रुको परास्त करनेकी सामर्थ्यसे युक्त (इन्द्रेण युजा) इन्द्रके साथ रहकर (वृत्रं हत) निरोधक दुश्मनका वध कर डालो। (दुस्-शंसः) दुष्कीर्तितसे युक्त यह शत्रु (नः मा ईशत) हमपर प्रभुत्व प्रस्थापित न करे।

४८० (स-व्यस.) समान उग्रवाले, (स-नीळा.) एकही घरमें नियास करनेवाले, (स-मान्या) समान रूपसे सम्माननीय (मरुतः) ये धीरे मनु (कया शुभा) किस शुभ इच्छासे भला सभी (स मिमिक्षुः) मिलजुलकर कार्य करते ह ? (एते) ये (कुत एतासः) किधरसे यहाँ जा गये और (वृषण) पटवान होते हुए भी (वसु-या) धन पानेके लिए (कया मती) किस विचारसे ये (शुभं अर्चन्ति) बलकी पूजा करते ह- अपनी सामर्थ्य बढ़ाते ही रहते ह ।

भाषार्थ— ४७९ ये धीरे बड़े अच्छे दानी हैं और इन्द्रसहस्य सेनापतिवे नेत्र बने रहकर दुरा मा दुश्मनका वध तथा विजय करते हैं। ऐसे शत्रुओंका प्रनाश इन वीरोंके अधिक परिश्रमसे कहींभी नहीं टिकने पाता। जो शत्रु हमपर अपना प्रभुत्व प्रस्थापित करनेकी इच्छासे प्रेरित हों, उन्हें ये धीरे धरासाथी कर डालें और वेमा प्रबंध करे कि, ये दुष्ट शत्रु अपना सर ऊँचा न उठा सकें तथा हम शत्रुसेनाके कैप्टनके न केंसे।

४८० ये सभी धीरे समान उग्रवाले हैं और वे एकही घरमें रहते हैं [सेनिक Barracks पैरकमें रहते हैं, सो प्रसिद्ध है।] सभी उन्हें सम्माननीय समजते हैं और ओगोंका हित हो, इसलिए ये शत्रुओपर एकजिह्व रूप से आक्रमण कर बैठते हैं। सुदूरवर्षी दुश्मनओपर भी वे विजय पाते हैं और समूची उग्रवाला शक्ति हों, इस हेतु धन कमानेके लिए अपना बल बढ़ाते रहते हैं।

टिप्पणी— [४७९] (१) दोसः (दाम् स्तुतां दुर्वतां च) = स्तुति, बुलाना, दुर्गति, सद्विज्ञा, दर्शनेहारा, भागी-प्राप्त, शाप । दुस्-शंस = दुष्ट इच्छा रखनेवाला, उरी लालसासे प्रेरित, अपकीर्तितसे युक्त । (२) सहस् = बल, सामर्थ्य, शत्रुका पराभव करनेकी शक्ति, शत्रुदलका आक्रमण बरदायन करते हुए अपनी जगह स्थायी रूप से टिकनेकी शक्ति । [४८०] (१) स-व्यस = (व्यस = वय, जीवन, अन्न, बल, बंजी, आरोग्य ।) अन्नवृत्त, बलवान, नवयुवक, आरोग्यसंपन्न, समान उग्रका । (२) वसु-या = धन पानेके लिए जानेवाले, चेष्टा फारंगेन निरत । (३) शुभं-मतीमा, सेज, मुक्त, विजय, अलंकार, उद्य, वेजस्वी रूप । (४) मिक्षु = मिलाना (Mix), तैयार करना, एकट्ठा करना । (५) स-नीळा = एक घरमें रहनेवाले, (देखो मरदेवताके मत्र ३२१, ३४५, ४७७) ।

४८१ कस्य ब्रह्माणि जुजुपुर्वानः को अध्वरे मरुत आ वर्तत ।

श्येनाइव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम ॥२॥ [३२५१]

(४८१) कस्य । ब्रह्माणि । जुजुपुः । युवानः । कः । अध्वरे । मरुतः । आ । वर्तत ।

श्येनान्इव । ध्रजतः । अन्तरिक्षे । केन । महा । मनसा । रीरमाम ॥२॥

४८२ कुतस्त्वभिन्द्र माहिनः सन्नेत्रो यासि सत्पते किं त इत्या ।

सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्विचेस्तत्रो हरिणो यत् तं असे ॥३॥ [३२५२]

(४८२) कुतः । त्वम् । इन्द्र । माहिनः । सन् । एकः । यासि । सत्पते । किम् । ते । इत्या ।

सम् । पृच्छसे । समराणः । शुभानैः । विचेः । तत् । नः । हरिणः । यत् । ते ।

असे इति ॥३॥

अन्वय — ४८१ युवानः कस्य ब्रह्माणि जुजुपु ? क मरुत अ ध्वरे आ वर्तत ? अन्तरिक्षे श्येनान्इव ध्रजत (तान्) केन महा मनसा रीरमाम ? ४८२ (हे) सत् पते इन्द्र ! त्व माहिन एक सन् कुत यासि ? ते इत्या किं ? शुभानै स-अराण स पृच्छसे (हे) हरि-न ! यत् ते असे तत् वाच ।

अर्थ-४८१ ये (युवान) धीर युवक इस समय (कस्य ब्रह्माणि जुजुपु) भला जिसके स्तोत्र सुनते होंगे ? (क) कौन इस समय (मरुत) इन धीर मरुतोंको अपने (अध्वरे) हिसारहित यज्ञमें (आ वर्तत) आनेके लिए प्रवृत्त करता होगा ? (अन्तरिक्षे) आकाशपथमेंसे (श्येनान्इव) राज पछी की नाई (ध्रजत) योगपूर्वक जानकारे इन धीरोंको (केन महा मनसा) किस उदार मनोभावसे हम (रीरमाम) भला रममाण कर लें ?

४८२ हे सत्-पते इन्द्र ! सज्जनोंका पालन करनेहारे इन्द्र ! (त्व माहिन) तू महान् हाते हुए भी इस भौति (एक सन्) अकेलाही (कुत यासि) मिथर भला चला जा रहा है ? (तं) तेरा (इत्या) इसी तरह यतोंच (किं) भला किस लिए है ? (शुभानै) अच्छे कर्म करनेहार धीरोंके साथ (स-अराण) दाम्बुदलपर धावा करनेहारा तू (स पृच्छसे) हमसे कुशल प्रश्न पूछता है । ॥ (इति च) उत्तम अर्थोंसे युक्त इन्द्र ! (यत् त असे) जो कुछ तुझ हमें यतलाना हो (तत् वाचे) वह कह दे ।

भावार्थ— ४८१ ये धीर युवकदत्त में हैं और व यज्ञमें जाकर का-यगायनका धरण करत हैं, धीरगाथाओंका गायन सुनते हैं । वे (अपने वायुवातोंमें बैठे) अन्तरिक्षकी राहसे वगपूर्वक चल जात हैं । हमारी चाह है कि व हमारे इस हिसारहित कर्ममें प्रथम और शुभ कर्मका अवलोकन करके इच्छाही रममाण हों ।

४८२ सज्जनोंका पालनकर्ता इन्द्र अकेला होने परभी कभी एकाध मौकेपर शत्रुसेनापर आक्रमण करने जाता है । प्राय वह तजस्वी धीरोंको साथ ल विरोधियोंसे जूझने प्रयास करता है । प्रथम अपनी आयोजना उनसे कहकर और सयका एकत्रिन कर्तव्य निर्धारित करके पश्चात्ही वह विद्युत्पुद्गमगालीना अवलम्ब करता है निश्चय फलस्वरूप शत्रुसेना तितरपितर हुमा करती है ।

टिप्पणी— [४८१] (१) ब्रह्मान् = ज्ञान, स्तोत्र का-य, बुद्धि धन, सूर्य, अन्न । (२) मनसः = मन, विचार, कल्पना, युक्ति नेत्र, दृष्टा । (३) ध्रज् (यतं) = जाना, हिलना हिलाना । (४) अन्तरिक्षे श्येनान् इव = (देखो महद्बलके अत्र १६, १५१, ३८९) । [४८२] (१) माहिन = बड़ा, प्रसन्नवृत्ता, प्रसन्ननीव । (२) शुभान = शोभायमान, सुशोभित ।

४८३ ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासः शुष्मं इयति प्रभृतो मे अद्रिः ।

आ शासते प्रति ह्यन्त्युक्थे मा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥४॥ [३२५३]

(४८३) ब्रह्माणि । मे । मतयः । शम् । सुतासः । शुष्मः । इयति । प्रभृतः । मे । अद्रिः ।

आ । शासते । प्रति । ह्यन्ति । उक्था । इमा । हरी इति । वहतः । ता । नः ।

अच्छ ॥४॥

४८४ अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः स्वक्षेत्रेभिस्तन्वः शुष्ममानाः ।

महोभिरतो उप युज्महे न्विन्द्रं स्वधामनु हि नो वभूय ॥५॥ [३२५४]

(४८४) अतः । वयम् । अन्तमेभिः । युजानाः । स्वक्षेत्रेभिः । तन्वः । शुष्ममानाः ।

महोऽभिः । एतान् । उप । युज्महे । नु । इन्द्रं । स्वधाम् । अनु । हि । नः । वभूय ।

॥५॥

अन्वयः - ४८३ मे ब्रह्माणि मतयः सुतासः शं, प्र-भृतः मे शुष्मः अद्रिः इयति, आ शासते, उपथ प्रति ह्यन्ति, इमा हरी नः ता अच्छ वहत ।

४८४ अतः वयं अन्तमेभिः स्व-क्षेत्रेभिः युजानाः तन्वः शुष्ममानाः महोभिः एतान् नु उप युज्महे, हि (हे) इन्द्र । नः स्व धां अनु वभूय ।

अर्थ - ४८३ (मे) मेरे (ब्रह्माणि) स्तोत्र. मेरे (मतयः) विचार तथा (सुतासः) निचोडे हुए सोम-रस सभी (शं) सुखकारक हो हाथमें (प्र-भृतः) मूढ दंगसे पकडा हुआ (मे) यह मेरा (शुष्मः) शत्रुता शोषण करनेवाला प्रमादी (अद्रिः) वज्र 'इयति' शत्रुपर जा गिरता है और इसीलिए सभी लोक (आ शासते) मेरी प्रशंसा करते हैं तथा मेरे (उक्था) काव्योंकाभी (प्रति ह्यन्ति) गायन करते हैं । (इमा हरी) ये दो गोडे (नः) हमें (ता अच्छ) उन यशस्वलोक्तक (वहतः) ले चलते हैं ।

४८४ (अतः) इसीलिए (वयं) हम (अन्तमेभिः) अपने समीपकी (स्व-क्षेत्रेभिः) स्पर्धीय शूरताओं से (युजानाः) युक्त होकर । तन्वः शुष्ममानाः । शरीर सुशोभित करके इस (महोभिः) सामर्थ्य के पूर्ण (एतान्) कृष्णसर्पोंको अपने रथोंमें (नु उप युज्महे) जोतते हैं । (हि) क्योंकि हे (इन्द्र !) इन्द्र ! (नः स्व धां) हमारी शक्ति का तुझे (अनु वभूय) अनुभव ही है ।

भाषार्थ - ४८३ वीगेरे काव्य सुविचारको प्रोत्साहन देते हैं । वीर वैजिक भीड़े एवं उत्साहवर्धक सोमरसका पान कर । विषर वीररथोंका गायन होता हो उषर जनता चली जाय, और उसे सुन ले । वीर अपने समीप ऐसे इधियार रथों कि, जो शत्रुके यत्नको शुष्क कर डालें तथा उनका विनाशभी कर दें ।

४८४ वीर क्षत्रिय अपनी शूरतासे सुहाते हैं । मौका आतेही वे सज्ज होकर शत्रुधोषर भाषा करनेके लिए रथोंसे सैनाप्य रहते हैं । उनका सैनाप्य भी उनकी शक्ति के अनुपात उन्हें कार्य दशा है ।

टिप्पणी - [४८४] (१) स्व-क्षेत्रेभिः = अपने क्षत्रिय वीगेके साथ, अपने क्षत्रियोचित साधनोंके साथ । (कृ ० १ १ १ ५ ६ शो ।) इस पदसे रथ सूचना मिलती है कि, मरुत् क्षत्रियवीरो ही है ।

४८५ कः स्या चो मरुतः स्रुधासीद् चन्मामेकं समघत्ताहृहृत्ये ।

अहं ह्युग्रस्तविपस्तुविष्मान् विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ॥६॥ [३२५५]

(४८५) कः । स्या । चः । मरुतः । स्रुधा । आसीत् । यत् । माम् । एकम् । समऽअघत्त ।
अहिसहृत्ये ।

अहम् । हि । उग्रः । तविपः । तुविष्मान् । विश्वस्य । शत्रोः । अनमम् । वधऽस्नैः ॥६॥

४८६ भूरिं चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पाँस्वैभिः ।

भूरीणि हि कृणवामा शत्रिष्ठेन्द्र क्रत्वा मरुतो यद् वशाम् ॥ ७॥ [३२५६]

(४८६) भूरिं । चकर्थ । युज्येभिः । अस्मे इति । समानेभिः । वृषभ । पाँस्वैभिः ।

भूरीणि । हि । कृणवाम । शत्रिष्ठ । इन्द्र । क्रत्वा । मरुतः । यत् । वशाम् ॥७॥

अन्वयः—४८५ (हि) मरुतः । अहि-हृत्ये यत् मां एकं समघत्त स्या च स्व-धा क आसीत् ? अहं हि उग्र-
तविपः तुविष्मान् माम् विश्वस्य शत्रोः वध स्नैः अनमम् ।

४८६ (हे) वृषभ ! अस्ते युज्येभिः समानेभिः पाँस्वैभिः भूरि चकर्थ, (हे) शत्रिष्ठ इन्द्र !

(घयं) मरुतः यत् वशाम्, क्रत्वा भूरीणि वृणवाम हि ।

अर्थ—४८५ हे (मरुतः) धीर मरुतो ! (अहि-हृत्ये) शत्रुको मारते समय (यत्) जो शक्ति (मां एकं) मेरे अकेले के निरूढ तुम (समघत्त) सब मिलकर पराजित कर चुके हो, (स्या) वह (य) तुम्हारी (स्व-धा) शक्ति जय (य आसीत्) भला निघर है ? (अहं हि) मैं भी (उग्र-शत्रु, तविप-यलवान् तथा) तुविष्-मान्) वेगपूर्वक हमले करनेवाला हूँ, अतः (विश्वस्य शत्रोः) सभी शत्रुओंको (वध-स्नैः) वज्रके आघातों से (अनमं) झुका चुका हूँ, उनपर मैं विजयी बन चुका हूँ ।

४८६ हे (वृषभ) यलगान् इन्द्र ! (अस्ते) हमारे लिए (युज्येभिः) योग्य एवं (समानेभिः) सहाय (पाँस्वैभिः) प्रभावोत्पादक सामर्थ्यों से तू (भूरि चकर्थ) बहुत पराक्रम कर चुका है। हे (शत्रिष्ठ इन्द्र) बलिष्ठ इन्द्र ! (मदतः) हम धीर मरुत् (यत् वशाम्) जिसे चाहते हैं उसे अपने निजों (मत्वा) फार्यक्षमता तथा पुरुषार्थ से हम अवश्यही (भूरीणि) अधिक गुण तथा विपुल (वृणवाम हि) करके
दिपाते हैं ।

भाषार्थ—४८५ वृद्धिगत होनेवाले शत्रुपर जादा करने समय अपनी सारी शक्ति एकही स्थानमें केन्द्रित करती
वाहिए । सपुत्र शक्ति पराजित वर शत्रुदलपर आक्रमण का सूत्रपात करना ठीक है । अपना बल, धैर्य, तथा शूरता
बढाकर समस्त शत्रुओं को परास्त करना चाहिए ।

४८६ सेनापति अपनी सामर्थ्य बढाकर अत्यधिक पराक्रम करे और सैनिक भी जो करना हो, उसे अपनी
शक्तिसे करके बसलायें । [यदि सैनिक तथा सेनापति दोनों हम भोजि उरसाटी, पुरपायी तथा पराक्रमी हों और यदि
वे एक विचारसे प्रेरित हो कर्तव्यकर्म निभाने लगे, तो उनके विजयी होनेमें क्या संशय रहे ?]

टिप्पणी— [४८५] (१) अ-हि= जिसका बल घटना नहीं हो ऐसा बलिष्ठ शत्रु, वृष विशेषतः वृषेणाला
शत्रु । (२) वध-स्नैः (अनमैः) (अम् वेषण)= वज्रके आघात, शत्रुके निमित्त प्रयोग, अस्त्रप्रयोग ।

[४८६] (१) मरु = बल, सुदृढ, क्षति, सामर्थ्य, पुङ्गव, दृढता, स्वप्रेरणा, योग्यता । (२) युज्यन्व
योग्य, जो ठीक हो ।

४८७ वर्षीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो वभूवान् ।

अहमेता मनवे विश्वचन्द्राः सुगा अपथंकर वज्रवाहुः ॥८॥ [३२५७]

(४८७) वर्षीम् । वृत्रम् । मरुतः । इन्द्रियेण । स्वेन । भामेन । तविषः । वभूवान् ।

अहम् । एताः । मनवे । विश्वचन्द्राः । सुगाः । अपः । चकर । वज्रवाहुः ॥८॥

४८८ अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः ।

न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥९॥ [३२५८]

(४८८) अनुत्तम् । आ । ते । मघवन् । नकिः । नु । न । त्वावान् । अस्ति । देवता ।

विदानः ।

१ । न । जायमानः । नशते । न । जातः । यानि । करिष्या । कृणुहि । प्रवृद्ध ॥९॥

अन्वयः— ४८७ (हे) मरुतः ! स्वेन भामेन इन्द्रियेण तविषः वभूवान्, वज्र-वाहुः अहं वृत्रं वर्षीं, मनवे एताः विश्व-चन्द्राः अपः सु-गाः चकर ।

४८८ (हे) मघवन् ! ते अन्-उत्तं नकिः नु आ, त्वावान् विदानः देवता न अस्ति, (हे) प्र-वृद्ध ! यानि करिष्या कृणुहि न जायमानः न जातः नशते ।

अर्थ—४८७ हे (मरुत !) धीर मरुतों ! (स्वेन भामेन इन्द्रियेण) अरुन निजी तेजस्वी इन्द्रियों से (तविषः) चलवान् (वभूवान्) हुआ और (वज्र-वाहुः) हाथमें वज्र धारण करनेवाला (अहं) मैं (वृत्रं वर्षीं) घेरनेवाले शत्रुका वध करके (मनवे) मानवमात्रके लिए एताः ये (विश्व-चन्द्राः) सयको आल्हाद देनेवाले (अप) जलौघ सबको (सु-गाः चकर) सुगमतापूर्वक मिलते आये, ऐसा प्रबंध कर चुका ।

४८८ हे (मघवन् !) इन्द्र ! (ते) तुम्हारी (अन्-उत्तं) प्रेरणा के यिन (नकिः नु आ) कुछ भी नहीं होने पाता । (त्वावान्) तुम्हारे समकक्ष (विदानः देवता) ज्ञाता देव (न अस्ति) दूसरा कोई विद्यमान नहीं है । हे (प्र-वृद्ध !) अत्यन्त महान् इन्द्र ! (यानि करिष्या) जो कर्तव्यकर्म तू (कृणुहि) निभाता है, उन्हें दूसरा कोई भी न जायमानः [नशते] जन्म लेनेवाला नहीं कर सकता, अध्या (न जातः नशते) उत्पन्न हुआ पुरुष भी नहीं कर सकता ।

भाषार्थ— ४८७ अपना इन्द्रियमार्थ वज्रकर धीर पुरुष हाथमें हाथियार लेकर जबप्रवाहरी स्वच्छन्द गतिमें बाधा डालनेवाले शत्रु का वध करके सभी मानवोंके हितके लिये अत्यावश्यक जीवनोपयोगी वज्र हारण की बड़ी आशासे मिल सके, ऐसी व्यवस्था कर दे । [इन भौतिक लोकहितकारक कार्य करना बलिष्ठ वीरोंका कर्तव्यही है ।]

४८८ वीर के लिये अजय कुछ भी नहीं है । वीर जानकारी प्राप्त करते इतनी बने और वह ऐसे कार्य श्रुत कर दे कि, जिन्हें निष्पन्न करना अभी तक असम्भव हुआ हो या भागे चलकर कोई दूसरा कर लेगा, ऐसी संभावना न हीन पड़ती हो ।

टिप्पणी— [४८७] (१) सुगाः अपः = (सु-गाः) सुगमतापूर्वक मिल सके ऐसे अवसरवाह, जिसमें सलक्ष्मी भवती हो, ऐसा प्रवाह ।

(४८८) (१) ॥ नुत्त(नुद् मने) = अनेक, अजय अन्-उत्त = (उद्-उन्द् क्लेशने) जो न भिद्योया नया हो, जिनपर आक्रमण न हुआ हो । (२) विदानः (विद्-ज्ञाने) = ज्ञानी । (३) प्र-वृद्ध = महान्, बलिष्ठ, अनुभवी ।

४८९ एकस्य चिन्मे विम्बुस्त्वोजो या नु दधृष्वान् कृण्वै मनीषा ।

अहं ह्युग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम् ॥१०॥ [३२५९]

(४८९) एकस्य । चित् । मे । विऽश्रु । अस्तु । ओजः । या । नु । दधृष्वान् । कृण्वै । मनीषा ।

अहम् । हि । उग्रः । मरुतः । विदानः । यानि । च्यवम् । इन्द्रः । इत् । ईशे । एषाम् ॥१०॥

४९० अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मै नरः श्रुत्यं ब्रह्मं चक्र ।

इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वै तनूभिः ॥११॥ [३२६०]

(४९०) अमन्दत् । मा । मरुतः । स्तोमः । अत्र । यत् । मे । नरः । श्रुत्यम् । ब्रह्मं । चक्र ।

इन्द्राय । वृष्णे । सुऽमखाय । मह्यम् । सख्ये । सखायः । तन्वै । तनूभिः ॥११॥

अन्वयः— ४८९ मे एकस्य चित् ओजः विभु अस्तु, या मनीषा दधृष्वान् कृण्वै नु, (हे) मरुतः । अहं हि उग्रः विदानः यानि च्यवं एषां इन्द्रः चित् ईशे ।

४९० (हे) नरः मरुतः ! अत्र स्तामः मा अमन्दत्, यत् मे श्रुत्यं ब्रह्मं चक्र, वृष्णे सु-मखाय मह्यं इन्द्राय, (हे) सखायः ! सख्ये तनूभिः तन्वै ।

अर्थ— ४८९ (मे एकस्य चित्) मेरे अकेलेकाही (ओजः) सामर्थ्य (विभु अस्तु) प्रभावशाली बनता रहे। (या मनीषा) जो इच्छा मैं (दधृष्वान्) अन्तःकरणमें धारण कर लूँगा, वह (कृण्वै नु) सच-सुचही पूर्ण करूँगा। हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (अहं हि) मैं तो (उग्रः) शूर तथा (विदानः) ज्ञानी मैं वीर (यानि च्यवं) जिनके समीप मैं जाऊँगा, (एषां) उनपर (इन्द्रः इत्) इन्द्रकी हैसियतमेंही (ईशे) प्रभुत्व प्रस्थापित कर लूँगा।

४९० हे (नरः मरुतः !) नेता वीर मरुत् ! (अत्र) यहाँ तुम्हारा (स्तोमः) यह स्तोत्र (मा अमन्दत्) मुझे हार्पित कर रहा है। (यत्) जो यह तुम (मे) मेरा (श्रुत्यं ब्रह्मं) यज्ञस्वी स्तोत्र (चक्र) बना चुके हो, यह (वृष्णे) बलवान तथा (सु-मखाय) उत्तम स्तकर्म करनेहारे (मह्यं इन्द्राय) मुझ इन्द्रके लिएही किया है। हे (सखायः !) मित्रो ! तुम सचमुच (सख्ये) मेरी मित्रता के लिए अपने (तनूभिः) शरीरों से मेरे (तन्वै) शरीरका संरक्षण करते हो।

भावार्थ— ४८९ वीरके अन्तरालमें यह महत्वाकांक्षा सदैव जगुत एवं उरलभ रहे कि उसका बल परिणामकारक हो। वह जिस आयोजनाकी रूपरेखा निर्धारित करे, उसे लगनके साथ पूर्ण कर ले। अपना ज्ञान तथा शौर्य बुद्धिगत कारके निधारी चला जाय, उधरही प्रमुख तथा अग्रगन्ता बनकर अत्यन्त कर्मण्य बने।

४९० वीरोंके काव्यमें पाये जानेवाले यशोवर्णन को सुनकर वीर धैरिक अवीच प्रसन्न हो उठते हैं। वीरों को वीरोंकी सहायता अवश्य मिलनी है।

४९१ एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनैद्यः श्रव एषो दधानाः ।

संचक्षया मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छुदयाथा च नूनम् ॥१२॥ [३२६१]

(४९१) एव । इत् । एते । प्रति । मा । रोचमानाः । अनैद्यः । श्रवः । आ । इयः । दधानाः ।

सुप्तचक्षयं । मरुतः । चन्द्रवर्णाः । अच्छान्त । मे । छुदयाथा । च । नूनम् ॥१२॥

४९२ को न्वत्रं मरुतो मामहे वः प्र यातनु सखीरच्छा सखायः ।

मन्मानि चित्रा अपिघातयन्त एषां भूत नवेदा म क्रतानाम् ॥१३॥ [३२६२]

(४९२) कः । नु । अत्रं । मरुतः । ममहे । वः । प्र । यातनु । सखीन् । अच्छ । सखायः ।

मन्मानि । चित्राः । अपिघातयन्तः । एषाम् । भूत । नवेदाः । मे । क्रतानाम् ॥१३॥

अन्वयः— ४९१ (हे) चन्द्र-वर्णाः मरुतः । एव इत् रोचमानाः अ-नैद्यः श्रवः इयः आ दधानाः एते मा प्रति सं-चक्षय मे नूनं अच्छान्त छुदयाथा च ।

४९२ (हे) सखायः मरुतः ! अत्र कः नु वः ममहे ? सखीन् अच्छ प्र यातनु, (हे) चित्राः ! मन्मानि अपि-घातयन्तः एषां मे क्रतानां नवेदाः भूत ।

अर्थ— ४९१ हे (चन्द्र-वर्णाः मरुतः !) चन्द्रमाके सुप्त वर्णवाले घोर मरुतो ! (एव इत्) सचमुचही (रोचमानाः) तेजस्वी, (अ-नैद्यः) अनिन्दनीय तथा (श्रवः इयः आ दधानाः) कीर्ति एवं अन्न धारण करने-हारे (एतं) ये विषयात घोर (मा प्रति) मेरी ओर (सं-चक्षय । भली भाँति निहारकर अपने यशोद्वारा (मे नूनं) मुझे सचमुच (अच्छान्त) हर्षित कर चुके, उसी भाँति अब भी (छुदयाथा च) प्रसन्न करो ।

४९२ हे (सख यः मरुतः !) प्यारे मित्र मरुत-वीरो ! (अत्र) यहाँ (कः नु) भला कौन (वः) तुम्हारा (ममहे) सम्मान कर रहा है ? तुम । सखीन् अच्छ) अपने मित्रोंकी ओर (प्र यातनु) चले जाओ । हे (चित्राः !) आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले वीरो ! तुम (मन्मानि) मननीय धर्मों के समीप (अपि-घातयन्तः) योगपूर्वक जाकर पहुँच जानेवाले-श्रेष्ठ धन प्राप्त करनेवाले और (एषां मे क्रतानां) इन मेरे सत्कर्मों के, नवेदाः भूत) जाननेहारि गनो ।

भाषार्थ— ४९१ वीर मरुतों का वर्ण चन्द्रवर्ण भासादिदायक है । वे तेजस्वी हैं और निर्दोष मसकी समृद्धि करते हुए निष्कलंक वश पाते हैं । कभी कभी उनका पगाकव इतना बड़ाबल रहता है कि उनकी कलस्वरूप वे अपने सखापति का वश भी अपने यशोसे ढकसे देते हैं और दूसरोंसे उसे धानदित भी करते हैं ।

४९२ वीरोंका गौरव एवं सम्मान चतुर्दिक् होता रहे । वे अपने मित्रोंके निकट जाकर उनको रक्षा करें । वे ऐसा वशकव कर दिखलाए कि उनका अक्षयमेव भा जाय घोर निर्दोष दगने धन कमाकर मरुत मायोसेही यशस्विता कित मकार पाई जा सकती है, सो भली प्रज्ञा जान लें ।

टिप्पणी— [४९१ (१) चन्द्र वर्णाः= चन्द्रमाके सुप्त वर्णवाले, (चन्द्र=सुप्तः; सुप्तके रंगसे युक्तः) [मरुदेवता मंत्र २०९ देखिए] यहाँ ' हिरण्य-वर्णांश्च ' पद उपलब्ध है । क० १।१००।८ में ' श्विरतोभिः ' पदसे मरुतोंके शुभ्र-वीर वर्ण की सूचना मिलती है । साधारणतया ऐसा जान पड़ता है कि वीर-मरुत गौरवीय वीर पदसे थे ।] (२) अच्छान्त (छद् भाषादाने) = ढक दिया, आनन्द दिया । (३) चन्द्र (स्वकाशी वाचि) = देवता, बोलना ।

[४९२ (१) म्रत = सरल बर्तव्य, मध्य, यज्ञ, पवित्र कार्य, प्रिय भाषण, सत्कर्म । (२) नवेदस्= जाननेद्वारा (मायगमायव) [मरुदेवता मंत्र ५ ५५।८; २०२ तथा क० १०।३।१३ देखिए]]

४९३ आ यद् दुवस्याद् दुवसे न कारु—रसाञ्चके मान्यस्य मेधा ।

ओ पु वर्त्त मरुतो विप्रमच्छे—या ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥१४॥ [३२६३]

(४९३) आ । यत् । दुवस्यात् । दुवसे । न । कारुः । अस्मान् । चके । मान्यस्य । मेधा ।

ओ इति । सु । वर्त्त । मरुतः । विप्रम् । अच्छ । इमा । ब्रह्माणि । जरिता । वः ।
अर्चत् ॥१४॥

(न० १११०१३-६) [इन्द्रदेवता मंत्र ३२६५-६८]

४९४ स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तु—त स्तुतो मघवा शंभविष्टः ।

ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥३॥ [३२६५]

(४९४) स्तुतासः । नः । मरुतः । मृळयन्तु । उत । स्तुतः । मघवा । शम्भविष्टः ।

ऊर्ध्वा । नः । सन्तु । कोम्या । वनानि । अहानि । विश्वा । मरुतः । जिगीषा
॥३॥

अन्वयः— ४९३ (हे) मरुतः ! दुवस्यात् मान्यस्य कारुः मेधा न दुवसे अस्मान् भा चके, विप्रं अच्छ
ओ सु वर्त्त, जरिता वः इमा ब्रह्माणि अर्चत् ।

४९४ स्तुतासः मरुतः नः मृळयन्तु, उत स्तुतः शंभविष्टः मघवा, (हे) मरुतः ! नः अहानि
कोम्या वनानि सन्तु जिगीषा ऊर्ध्वा ।

अर्थ— ४९३ हे (मरुतः !) वीर मरुतां ! तुम (दुवस्यात्) पूजनीय या संमाननीय हो, अतः (मान्यस्य)
मान्य कथि की (कारुः मेधा) कुशल बुद्धि (न) अथ तुम्हारा (दुवसे) सत्कार करने के लिए (अस्मान्)
हमें (आ चके) सभी प्रकारसे प्रेरणा करती है, इसलिए तुम इस (विप्रं अच्छ) ज्ञानी की ओर (ओ
सु वर्त्त) प्रवृत्त हो जाओ-आओ । (जरिता) यह स्तोता-उपासक (वः इमा ब्रह्माणि) तुम्हारे इन स्तोत्रों-
काव्योंका (अर्चत्) गायन करता आ रहा है ।

४९४ (स्तुतासः मरुतः) सराहना करनेपर ये वीर मरुत (नः मृळयन्तु) हमें सुख दें (उत)
और (स्तुतः) प्रशंसा करनेपर (शंभविष्टः) आनन्द देनेद्वारा (मघवा) इन्द्र भी हमें सुख दें । हे
(मरुतः !) वीर मरुतां ! (नः विश्वा अहानि) हमारे सभी दिन (कोम्या) काम्य, (वनानि) वनराजि
के सुख आनन्ददायक (सन्तु) हों और हमारी (जिगीषा) विजयकी लालसा (ऊर्ध्वा) अच्छ कोटिकी
पनी रहे ।

भावार्थ— ४९३ ये वीर सम्माननीय हैं, इसलिए कवियोंकी बुद्धि उनके उमुचित धर्मेण के लिए सचेष्ट रहा करवी
है । वीरभी ऐसे कवियोंका आदर करें और उनके काव्योंका श्रवण करें ।

४९४ वीर मरुत और इन्द्र हमें सुखी बना दें । हमारा प्रत्येक दिन उज्ज्वल, रमणीय तथा सकार्य में लगा
दुभा होनेके कारण आनन्ददायक हो और हमारी विजयच्छा अत्यन्त उच्च दर्जेकी हो जाय ।

टिप्पणी— [४९३] (१) [दुवस्यात् (हवोः) = हेस्वर्थे पञ्चमी ।] दुवस्यः = माननीय, पूजनीय । (२) जरिता
(जृ जरते = सुखाना, स्तुति करना) = स्तुति करनेद्वारा, स्तोता, उपासक ।

[४९४] (१) कोम्य = कमनीय, स्पृहणीय, रमणीय, उज्ज्वल (Polished, lovely) । (२) वन् =
समान देना, इच्छा करना, चाहना । वन = इष्ट, इच्छा करनेके योग्य, वन ।

४९५ अस्माद्दहं तद्विपादीर्षमाण इन्द्राद् भिया मरुतो रेजमानः ।

युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन् तान्यारे चक्रुमा मृळतां नः ॥४॥ [३२६६]

(४९५) अस्मात् । अहम् । तद्विपात् । ईर्षमाणः । इन्द्रात् । भिया । मरुतः । रेजमानः ।
युष्मभ्यम् । हव्या । निशितानि । आसन् । तानि । आरे । चक्रुम् । मृळत । नः ।
॥४॥

४९६ येन मानांसश्चितयन्त उस्त्रा व्युष्टिषु शर्वसा शश्वतीनाम् ।

स नो मरुद्भिर्वृषभु श्रवां घा उग्र उग्रेभिः स्वविरः सहोदाः ॥५॥ [३२६७]

(४९६) येन । मानांसः । चितयन्ते । उस्त्राः । विऽउष्टिषु । शर्वसा । शश्वतीनाम् ।
सः । नः । मरुत्ऽभिः । वृषभु । श्रवः । घाः । उग्रः । उग्रेभिः । स्वविरः । सहऽऽ
दाः ॥५॥

अन्वयः— ४९५ (हे) मरुतः ! अस्मात् तद्विपात् इन्द्रात् भिया अहं ईर्षमाणः रेजमानः, युष्मभ्यं हव्या नि-शितानि आसन्, तानि आरे चक्रुम, नः मृळत ।

४९६ मानांसः उस्त्राः येन शश्वसा शश्वतीनां व्युष्टिषु चितयन्ते, उग्रेभिः मरुद्भिः (हे) वृषभ उग्र ! स्वविरः सहो-दाः सः नः श्रवः घाः ।

अर्थ— ४९५ हे (मरुतः !) घोर मरुतो ! (अस्मात् तद्विपात् इन्द्रात्) इस बलिष्ठ इन्द्रके (भिया) भयसे (अहं) मैं भयभीत होकर (ईर्षमाणः) दौडने तथा (रेजमानः) कांपने लगा हूँ । (युष्मभ्यं) तुम्हारे लिए (हव्या) हथिप्याघ (नि-शितानि आसन्) मली भोंति तैयार कर रखे थे, पर (तानि) वे उसके भयसे (आरे) दूर (चक्रुम) कर दिये, वे उसे दिये जा चुके हैं, इसलिए अब (नः मृळत) हमें क्षमा करते हुए सुखी बनाओ ।

४९६ (मानांसः) माननीय (उस्त्राः) सूर्यकिरण (येन शश्वसा) जिन सामर्थ्य से (शश्वतीनां व्युष्टिषु) शाश्वतिक उप कालों में जनताको (चितयन्ते) जागृत करते हैं, उसी सामर्थ्य से युक्त और (उग्रेभिः) शूर (मरुद्भिः) घोर मरुतों के साथ विद्यमान हे (वृषभ उग्र !) बलवान तथा शूर घोरश्रेष्ठ इन्द्र ! (स्वविरः) ययोवृद्ध तथा (सहो-दाः) बल देनेवाला (सः) यह तू (नः) हमें (श्रवः घाः) कीर्ति तथा भद्र प्रदान कर ।

भावार्थ— ४९५ वीरोंका पराक्रम तथा प्रभाव इस भोंति हो कि, परिचित लोगभी उसे निहारकर सहम जायें; फिर शत्रु यदि दर जायें तो उसमें क्या आश्रय ?

४९६ इन वीरोंकी सहायता से हमें भद्र तथा यश मिले ।

टिप्पणी— [४९५] (१) नि-शित (नो तनूकरणे) = तोहम किया हुआ, वेग (हथियार) । (२) ईप् (गति-हिसादंशेषु) = जाना, वष करना, देखना ।

[४९६] (१) मानः= भाद्र, भद्रमान, परिमाण । (२) जिन्= चेतना देना, जागृत करना, देखना, निहारना, जानना । (३) उच्छ (वसु विधासे) = बल, गौ, किरण । (४) व्युष्टि=प्रभाव, वैभवशालिता, स्तुति, पेश्वर्ष ।

४९७ त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नूनं भवा मरुद्भिरवयातहेळाः ।

सुप्रकृतेभिः सासहिर्दधानो विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥ [३२६८]

(४९७) त्वम् । पाहि । इन्द्र । सहीयसः । नूनं । भवं । मरुत्सभिः । अवयातहेळाः ।

सुप्रकृतेभिः । ससहिः । दधानः । विद्याम् । इपम् । वृजनम् । जीरदानुम् ॥६॥

इन्द्रामस्तौ (इन्द्रदेवता मंत्र ३२६९) ।

अंगिरसपुत्र तिरश्ची या मरुपुत्र द्युतान ऋषि । (ऋ० ८।१६।१८)

४९८ द्रप्समपश्यं विपुणे चरन्त—मुपहरे नद्यो अंशुमत्याः ।

नभो न कृष्णमेवतस्थिवांसु—मिप्यामि वो वृपणो युध्यताजौ ॥१४॥ [३२६९]

(४९८) द्रप्सम् । अपश्यम् । विपुणे । चरन्तम् । उपहरे । नद्यः । अंशुमत्याः ।

नभः । न । कृष्णम् । अवतस्थिवांसम् । इप्यामि वः । वृपणः । युध्यता आजौ ॥१४॥

अवयवः— ४९७ (हे) इन्द्र ! त्वं सहीयसः नूनं पाहि, मरुद्भिः अवयात-हेळाः भय, सु-प्रकृतेभिः ससहिः दधानः, (ययं) इपं वृजनं जीर-दानुं विद्याम् ।

४९८ अंशुमत्याः नद्यः उपहरे विपुणे द्रप्सं चरन्तं, नभः न कृष्णं, अपश्यम्, अवतस्थिवांसं इप्यामि, (हे) वृपणः ! वः आजौ युध्यत ।

अर्थ— ४९७ हे (इन्द्र !) इन्द्र ! (त्वयं) तू (सहीयसः नूनं) शत्रुओंका पराभव करने का बल प्राप्त करने वाले हमारे सदृश लोगों की (पाहि) रक्षा कर; (मरुद्भिः) धीर मरुतों के साथ हमपर (अवयात-हेळाः) क्रोध न करनेवाला धन और (सु-प्रकृतेभिः) अत्यन्त शानी धीरों के साथ (ससहिः) शत्रुदलके परास्त करनेकी सामर्थ्य (दधानः) धारण करके हमें (इपं) अन्न, (वृजनं) बल तथा (जीर-दानुं) शीघ्र विजयप्राप्ति (विद्याम्) प्राप्त हो, ऐसा कर ।

४९८ (अंशुमत्याः नद्यः) अंशुमती नामक नदीके समीप उपहरे (विपुणे) एकान्त में विद्यमान यहिड स्थानमें (द्रप्सं चरन्तं) शीघ्र गति से घूमनेवाले (नभः न कृष्णं) अंधेरे की नाई बहुतर्हा काले-कालूटे शत्रुको (अपश्यं) मैं देख चुका। ऐसी उस सुगुप्त जगह (अवतस्थिवांसं) रहनेवाले उस दुश्मन को (इप्यामि) मैं दृढ़ निकालता हूँ। हे (वृपणः !) बलवान धीरो ! (वः) तुम उस शत्रुके साथ (आजौ) युद्धभूमि में (युध्यत) लड़ते रहो ।

भावार्थ— ४९७ परमपिता परमात्मा इन लोगोंका परिवालन करना है जो अपनेमें शत्रुदलको परास्त करनेवाले बल का संवर्धन करते हैं । इस कार्यमें शानी धीरोंकी सहायता उसे बार बारा होती है। उनके प्रचण्ड बलके सहारे समूची प्रजा अन्नपशुदि तथा बल एवं विजयका लाभ प्राप्त करती है ।

४९८ प्रथम शत्रुके निवासस्थान तथा आश्रय आदिकी गली भौंति जानकारी उपलब्ध करनी चाहिए और पश्चात्ही उसपर धावा करना चाहिए ।

टिप्पणी— [४९७] (१) प्रकृत (किं ज्ञाने योगापनयने च)=ज्ञान, बुद्धि, शोभा । सु-प्रकृत=दर्शनीय, शानी, रोग हूट्ट हटानेवाला । (२) जीर-दानुं= मरुदेवता मन्त्र १७२ देखिए ।)

[४९८] (१) द्रप्स (द्रु गतौ=शौडना, आक्रमण करना)=दांडनेवाला, आक्रमणकर्ता, सोमविंदु, सोमरस । (२) विपुणं= विभिन्न, परिवर्तनशील, तरह तरह का (३) उपहरे= एकान्त स्थान, ऊपउलाबड जगह ।

मरुतोंके मंत्रोंके ऋषि

और उनकी मंत्रसंख्या ।

	मन्त्र-संख्या	कुल मंत्र		मन्त्र क्रमांक	कुल मंत्र
१ द्य वायु वायवे	७१७-३१७-१०१	१४	अथवा	४३४ ४३६-	३
	४२९-१			४५७-४६४-	८= ११
२ अगस्त्यो मैत्रावरुणि	४२९-४५६-	८= ११०	१५ एषामरुतवायवे	३१८-३१६-	९
	१५८-१९७-४०		१६ मृगारः	४४०-४४६-	७
	४८०-४९७-१८=	५८	१७ अयुर्वहस्पत्यः	३२७-३३३-	७
३ मैत्रावरुणिरिषिः	३४५-३९४-	५०	१८ अयुर्वहस्पत्या वैश्वमित्र	१-४-	४
४ ऋषे र्षरः	६-४५-	४०		४७५ ४७६-	२= ६
५ पुनवत्स वाज्य	४६ ८१-	३६	१९ प्रजा	४३०-४३३-	४
६ गौतमी रुद्रः	१०३-५६-३४		२० या धेनो विद्व मित्रः	२१४ २१६-	३
	४२८-१=	३५		४२४-१=	४
७ सोमरिः ऋषेः	८०-१०७-२६		२१ सप्तर्षयः (ऋषयः)	४२५-४२७-	३
	४७४-	१= २७	{ (१) भरद्वाज, (२) वसिष्ठ, (३) गौतम, (४) अत्रि,		
८ तुत्सामद शोमथ	१९८ २१३-	१६	(५) विश्वामित्र, (६) जमदग्नि, (७) वसिष्ठ ।		
९ स्युमर ईशर्मांग्र	४०७ ४२२-	१६	२२ शान्तातिः	४३३ ४३९-	६
१० नीषा गतमः	१०८-१००-	१५	२३ परुच्छेपो देवोदासि	१५७-	१
११ मेध तिथि कावः	५-१		२४ प्रजापतिः	४२३-	१
	४६५ ४७३-	९	२५ अत्रिः	४४७-	१
	४७७-४७९-	३= १३	२६ वसुधत वायवेः	४४८-	१
१२ विट्ट वृत्तक्षी वा आदिरस	३९५-४०६-	१२	२७ अद्विगतर सिरक्षी,		
१३ वाट्टवपचो भरद्वाज	३३४-३४४-	११	युत नो वा मारतः	४२८-	१

४९८

मरुतोंका संदर्भ ।

(ऋग्वेद के वैश्व-देवता, प्राग्जा, अरुण्य और उगनियदादि ग्रंथोंमें अथे हुए, परंतु मरुदेवताके मंत्रसंग्रहमें संगृहीत न किये गये मंत्रोंमें और वाक्योंमें मरुतोंका संदर्भ बनानेवाला वाक्यांश इस तरह है—

ऋग्वेदसंहिता ।

मरुत सू० म०

मरुत सू० म०

- १००। ५ मरुत्वना इन्द्रेण सं अममत् । (ऋग्वेद)
 २३।१० मरुतः सोमर्ष तपे हवामहे । (विद्वे देवा)
 ११ मरुताँ एनि धृष्युया । ”
 १२ मरुताँ गृह्यन्तु न । ”
 ३१। १ मरुताँ अज्य-अग्र्य चनामन्त । (अग्नि)
 ४०। १ उप प्र वन्दु मरुतः । (अश्विन्यरपनि)
 २ मरुतः सुर्वेष आ दर्षत । ”
 ४४।१४ मरुतः शोभ शृण्वन्तु । (अग्नि)

- ५२। ९ मरुतः अनु अमदन । (इन्द्र)
 १५ मरुतः आजी अर्चन्व । ”
 ८०। ४ यत्ना मरुत्वतीरव । ”
 ११ मरुतयो वृन् अवधीत । ”
 ८९। ७ मरुतः पुत्रिमातरः । (विद्वे देवाः)
 ९०। ४ मरुतः विवन्तु । ”
 ९३।१२ मरुताँ हेको अद्भुतः । (अग्नि)
 १००।१-१५ मरुत्वान् नो भवतिन्द्र ऊती । (इन्द्रः)

१०१।१-७ मरुतयन्तं सख्याय हवामहे । (इन्द्र)

- ८ मरुतयः परमे सख्ये । ”
 ९ मरुद्भिः मादयस्व । ”
 ११ मरुतस्ते त्रयस्य वृत्तस्य गोपाः । ”
 १०७। २ मरुतो मरुद्भिः शर्म यथा । (विश्वे देवा)
 १११। ४ मरुतः से मपातेषु हुवे । (ऋभव)
 ११४। ६ मरुतां उच्यते वच । (रुद्र)
 ९ मरुतां सुप्र राव । ”
 ११ मरुन्वान् रुद्रः नः हव ऋणोतु ”
 १२२। १ रोदसी मरुतोऽस्तोषि । (विश्व देवा)
 १२८। ५ मरुतां न भजाम । (अग्नि)
 १३३। ४ मरुतः वक्षणाभ्य अननय । (वायु)
 १३६। ७ मरुद्भि स्वयदास मसीमाहि । (सिंघे वा)
 १४१। ९ मरुतसु भ रती । (तिघे देव)
 १२ मरुच्यते इन्द्राय हव्य कर्मन । (समाहाकृतय)
 १४३। ५ मरुतामिव स्वय । (अग्नि)
 १६१।१४ मरुत दिवा यन्ति । (ऋभव)
 १६०। १ मरुत परिदयन् । (अथ)
 १६५।१५ मरुत एष व म्गोम , (मरुतन् इन्द्र)
 १६९। १ मरुतां चिकित्वान् इन्द्र । (इन्द्र)
 २ मरुतां पृततिर्हासम ना । ”
 ३ भव मरुतो जुगन्ति । ”
 ५ मरुतो नः दृळश्नुतु । ”
 ७ मरुतां आयतां उपन्दिः पृषे । ”
 ८ रवा मरुद्भि शुप्रथ । ”
 १७०। २ मरुतो भ्रातर तव । ”
 ५ इन्द्र । त्व मरुद्भि मयदस्व । ”
 १७३।१० मरुतः । गी वन्दते । ”
 १८०। २ धिग्या मरुत्तमा । (अधिर्ना)
 १८६। ८ मरुतो वृद्धसना । (विश्व देवा)
 ३। ३। ३ मरुतां शर्षे आ वह । (इळ)
 ३०। ८ मरुत्वतीं शत्रुन् जेषि । (सरस्वती)
 ३३। १ मरुतां सुप्र एतु । (रुद्र)
 ६ मरुत्वान् रुद्र मा उन्मा ममन्द । ”
 १३ मरुत । वा व भेषत्रा । ”
 ४१।१५ मरुद्गणा । मम हव श्रुत । (विश्वे देवा)
 ३। ४। ६ मरुत्वां इन्द्र । (उपरानन्ता)
 १३। १ मरुद्बध अगे न ग शोत्र । (अग्नि)
 १४। ४ मरुत सुप्रमर्वन् । ”
 १६। १ मरुतः ग्य सखत । (अग्नि)

- २९।१५ मरुतामिन् प्रया । (अग्नि)
 ३२। ३ इन्द्र । मरुत ते शोत्र अर्चन्ते । ”
 ४ शर्षे मरुत य आसन् । ”
 ३५। ७ मरुन्वते तुभ्य हवीं ये रात । (इन्द्र)
 ९ इन्द्र । मरुतः आ भव । ”
 ४७। १ मरुचान् इन्द्र । ”
 १ इन्द्र । मरुद्भि मोग पिव । ”
 ३ इन्द्र । मरुत आ भव । ”
 ४ इन्द्र । मरुद्भि सोम पिव । ”
 ५ मरुत्तन् इन्द्र हुवेम । ”
 ५०। १ मरुत्वान् इन्द्र । ”
 ५१। ७ मरुत्य इन्द्र सेम पाहि । ”
 ८ मरुद्भि सेम पाहि । ”
 ९ मरुत अभग्वन् । ”
 ५० ७ मरुद्भि सोम पिव । ”
 ५४।१३ मरुत ऋषिमन्त । (विश्वे देव)
 २० मरुतः शर्म यच्छ तु । ”
 ६२। २ मरुद्भि मे हव शृणु । (इन्द्रपरणौ)
 ३ असे रधि मरुत । ”
 ४। १। ३ विश्वभानुषु मरुतसु वेद । (अग्निवहणी)
 २। ४ मरुत भमे वह । (अग्नि)
 ३। ८ यथा मरुतां शर्षाव । ”
 २१। ३ मरुत्वान् इन्द्र आ यातु । (इन्द्र)
 २६। ४ मरुतो विरस्तु । (इधेन्)
 ३४। ७ मरुद्भि पाहि । (ऋभव)
 ११ मरुद्भि म सवथ । ”
 ३९। ४ मरुता भद्र नाम अभग्वन्हि । (यधिना)
 ५५। ५ मरुता अवासि । (विश्वे देवा)
 ५। ५।११ मरुद्गव स्वाहा । (समाहाकृतय)
 २६। ९ मरुत सीदतु । (विश्वे देवा)
 २९। १ मरुत त्वा अ ग्निः । (इन्द्र)
 २ मरुत इन्द्र अर्चन् । ”
 ३ मरुतो म सुपुतस्य पया । ”
 ६ मरुत इन्द्र अर्चन्ति । ”
 ३०। ६ मरुत अर्के अर्चन्ति ”
 ८ मरुद्बध रोदसी चरित्रा हव । ”
 ३१।१० मरुत ते तविषं अर्चन् । ”
 ३६। ६ युनयथ मरुता दशोषा । ”
 ४१। ५ मरुत राय दर्वन् । (विश्वे देवा)
 १६ मरुतो अ उक्ती ” ”
 ४३।१० मरुतो वक्ष जातयेर । ” ”

- ४५। ४ मरतो वयन्ति । (विदे देवा)
 ४६। ३ मरतः हुवे । " "
 ६०। १ मरुतां नाम ऋषाम् । (मरतः, अमामरतो वा)
 २ मरतो रथेषु तस्यु । " "
 ३ मरतः यत् फाल्य । " "
 ५ मरुद्भ्यः सुदुष्य पक्षि । " "
 ६ मरतः दिवि ष्ट । " "
 ७ मरतो दिवो बह्व्ये । " "
 ८ अत्र । मरुद्भिः ताम पित्र । "
- ६३। ५ मरुतः रथ युपते । (मित्रावरणौ)
 ६ मरुतः सुमायवा वनत । " "
- ८३। ६ मरुतः । कृति रारात्र । (पर्यन्त)
- ६। ३। ८ रावें वा वो मरुतां तताप । (आभि)
 ११। १ अम । व वो मरुतां न प्रयुक्ते । "
 १७। ११ मरत व वधर् । (इन्द्र)
 २१। ९ मरुतः तृष्णात्र नो अत्र । (विधे देवा)
 ४०। ५ मरुद्भिः पाहि । (इन्द्र)
 ४४। ५ वामन्वः तद् वृषभो मरुत्वात् । (शोम)
 ४७। ९८ मरुतां अनाश । (रथ)
 ४९। ११ मरुत आ गन्त । (विधे देवा)
 ५०। ४ मरतो अशम देवान् । " "
 ५ ध्रुवा हव मरुतो वद यथा । " "
 ५२। २ मरुतः । व न अतिमन्वते । " "
 ११ मरुद्भ्यः सौम्र जुपन्त । " "
- ७। ०। ५ मरत यक्षि । (आभि)
 १८। ५ मरुतः दम सश्चत । (इन्द्र)
 ३१। ८ त्वा मरुत्पती परितुवद् । " "
 ६०। १० यम मरुतः अविना (र) । "
 ३४। २४ तातु विधे मरुतो षिष्टि । (विधे देवा)
 २५ दमत्स्य म मरुतां उपये । " "
 ३५। ९ ता नो भवन्तु मरुतः । " "
 ३६। ७ मरुत नो अशन्तु । " "
 ९ मरुतः । अथ व ऋषे । " "
 ३९। ५ मरुता माश्चरतां । " "
 ४०। ३ नः प्र अरतु मरत । " "
 ४०। ५ मरुत्सु यदास तृषीन । " "
 ५६। ३ मरुतस्य विध नः पात । (आदिष्या)
 ८२। ५ मरुद्भिः प्र गुममय उंते । (दन्वावरणौ)
 ९३। ८ मरुतः परे चरन्व । (इन्द्राभि)
 ९६। ० ता नो अश्विनी मरुत्सखा । (चरन्ती)

- ८। ३। २१ य मे इन्द्रो मरुतः । (कौरवाणः पाकम्यामा)
 ६२। १६ मरुत्सु मन्दसे । (इन्द्रः)
 १३। २८ मरुत्पतीर्विधो अभि प्रयः । "
 १८। २० मरुद्भ्यः मरुतां । (आदिष्या)
 २१ मरुतो वत न छिदः । "
 २५। १० मरुतः उरप्यतु । (विधे देवा)
 १४ तन्मरुतः (वृणामहे) । (मित्रावरणौ)
 २७। १ कचा य मि मरुतः । (विधे देवा) [काठ०१०।४६]
 ३ मरुत्सु विश्वमानुषु । " "
 ५ कचा गिरा मरुतः । " "
 ६ अभि विधा मरुतः । " "
 ८ आ प्र यात मरुतः । " "
- ३५। ३ मरुद्भिः सचा भुवा । (अधिनी)
 ३३ मरुत्वन्ता चारितुर्गच्छता हव । "
 ३६। १२-६ मरुतां इन्द्र सपते । (इन्द्र)
 ४१। १ मरुद्भ्यो अर्च । (वरुण)
 ४६। ४ यं मरुतः पान्ति । (इन्द्र)
 १७ मरुतां इयक्षति । "
 ५४। ३ मरुत्सु मरुतो हव । (विधे देवा)
 ६२। १० स्वाम मरुतो बुधे । (इन्द्र)
 ७६। १ मरुत्वन्तं न वृजसे । (इन्द्र)
 २-३ इन्द्रो मरुत्सखा । "
 ४ मरुत्सया इन्द्रेण जितं । "
 ५-६ मरुत्वन्तं इन्द्र हवामहे । "
 ७ मरुत्सो इन्द्र । "
 ८ मरुत्सते हवन्ते । "
 ९ मरुत्सखा इन्द्र विव । "
 ८३। ७ इता मरुतो अधिना । (विधे देवा)
 ८९। १ मरुतः । इन्द्राय गायत । (इन्द्र)
 २ मरुद्भ्यः । देवभ्यः सख्याय येभिरे । "
 ३ मरुतो मरुत्पते । "
 ९६। ७ मरुद्भिः इन्द्र सपत्य ते अस्तु । "
 ८ मरुतो व नृपाना । "
 ९ तिम्यावुधं मरुतामनीक । "
- ९। २५। १ मरुद्भ्यो वायो मरुतः । (पवमानः शोम)
 ३३। ३ मरुद्भ्यः शोमा अर्पन्ति । " "
 ३४। २ मरुद्भ्यः शोमो अर्पति । " "
 ५६। ३ मरुतः मरुत्सु अर्पते । " "
 ६१। ११ मरुद्भ्यः परे हव । " "
 ६४। २९ मरुत्सते इन्द्राय पवसु । " "

२४ मरुतः पवमानस्य विवन्ति । (पवमानः सेमः)
 २५।१० मरुन्वते पवम् । " "
 २० मरुद्भ्यः सोमो अर्पति । " "
 २६।२६ हरिण्यो मरुद्गणः । " "
 ७०। ६ मरुताभिर मन्त्रः नानुदेवैः । " "
 ८१। ॥ मरुतः नः आ गच्छन्तु । " "
 ९६।१७ मरुतः पत्रि सुम्भन्ति । " "
 १०७।१७ मरुन्वते सोमः सुतः । " "
 २५ मरुन्वन्तो म मराः । " "
 १०८।१४ वस्य मरुतः विषात् । " "
 १०। १३। ५ मरुन्वते गप क्षरन्ति । (हरिण्ये)
 ३३। १ मरुतः हुवे । (विधे देवः)
 ॥ मरुतां गर्भं अर्चामसि । " "
 ३७। ६ मरुतां हवं वृष्यन्तु । (सुतः)
 ५२। २ मरुतो मा जुनन्ति । (विधे देवाः)
 ६३। ९ मरुतः न्यनये हवामहे । " "
 १४ मरुतां वं अरु । " "
 १५ मरुतो राये दधातम् । " "
 ६४।११ मरुतां गता उपस्तुतिः । " "
 १२ मरुतः मेरिणं अददात् । " "
 १३ मरुतो युवीषाय । " "
 ६५। १ मरुतः मरिमानमीरवान् । " "
 ६६। २ मरुद्गणे मन्म पीमसि । " "
 ॥ मरुतः अवगे हवामहे । " "
 ७०।११ ओ ! अन्तरिक्षात् मरुतः आ पठ ।
 (स्वाहाऽन्यः)
 ७३। १ मरुतः इन्द्रं आर्षन् । (इन्द्रः)
 ७५। ५ अतिसन्धा मरुद्भ्ये । (नयः)
 ७६। १ मरुतो रोदनी अनघन । (प्राणाः)
 ८४। १ युविता मरुद्वयः । (मनुः)
 ८६। ९ मरुन्वसा इन्द्रः । (इन्द्रः)
 ९२। ६ मरुतो विधुष्टयः । (विधे देवाः)
 ११ मरुतो विष्णुरदिरि । " "
 ९३। ४ मरुतः । (विधे देवः)
 १०३। ८ मरुतो यन्तु अर्षं । (इन्द्रः)
 ९ मरुतां शर्षः उदम्यात् । " "
 ११३। ३ मरुतः इन्द्र्यं अवर्षन् । " "
 १२२। ५ मरुतः त्वां मर्जयन् । (अग्निः)
 १२६। ५ मरुद्गी म्त्रं हुवेम । (विधे देवाः)
 १२८। २ मरुत विह्वे सन्तु । " "
 १३७। ५ शार्ङ्गं मरुतां गणः " "

१५७। ३ मरुद्भिः इन्द्रः थम्मकं स विना भुक्तु (विधे देवाः)
(२) सामवेदसंहिता ।
 ४४५ अर्चन्वर्क मरुतः स्वर्गाः । (इन्द्रः)
(३) अथर्ववेदसंहिता ।
 वं० सू० मन्त्र.
 २। १२। ६ अतोव यो मरुतो मन्वते नो मम । (मरुतः)
 २९। ४ मरुद्भिः अशितो न आगन् । (याव पृथिवी,
 विधे देवाः मरुतः, अ पः ।)
 ५ विधे देवा मरुत ऊर्जमापः [धत] "
 ३। ३। १ सुन्वन्तु त्वा मरुतो विधवेदतः (अग्निः)
 ४। ४ विधे देवा मरुतस्त्वा हवन्तु । (अग्निः)
 १२। ४ उन्वन्तु मरुतो पूनेन । (शान्ते पतः)
 १७। ९ विधेदेवैस्तुमगा मरुद्भिः । (सीता)
 १९। ६ देवा इन्द्रयेष्टा मरुतां यन्तु सेवया । (विधे-
 देवाः, चन्द्रमाः, इन्द्रः ।)
 ४। १६। ॥ पञ्चगो धारा मरुत ऊधो अस्य (अनन्वान्)
 १५।१५ वयं वज्रं चित्तरो मरुता मन द्रुचन । (पितरः)
 ५। ३। ३ इन्द्रन्तो मरुतो गम विह्वे सन्तु । (देवाः)
 २४।२० मरुतां पिता पञ्चानामिषतिः । (मरुतां पिता)
 ६। ३। १ पातं न इन्द्रासुपगादितिः पान्तु मरुतः । (इन्द्रा-
 पूरणां, अदितिः, मरुताः इत्यादयः ।)
 ४। २ अग्निः पान्तु मरुतः । (अग्निः, मरुतः
 दत्तादयः ।)
 ३०। १ रीनाशा आगन् मरुतः मुदानवः । (घमी)
 ४७। २ विधे देवा मरुत इन्द्रो अग्नान् न जग्मुः ।
 (विधे देवाः)
 ७४। ३ मरुद्भिः अर्चुणमनाः । (तामनस्वम्)
 ९२। १ सुन्वन्तु रा मरुतो विधवेदतः । (इन्द्रः)
 ९३। ३ विधे देवा मरुतो विधवेदतः पपत् नो
 शार्ङ्गम् । (विधे देवाः, मरुतः ।)
 १०४। ३ इन्द्रो मरुन्वानादानमग्निरे-वः इण्णो नः ।
 (इन्द्रागो, सोम इन्द्रश्च ।)
 १०७। ५ इन्द्रो मरुन्वान् स ददातु सन्मै । (विधुर्कमां)
 १२५। ३ इन्द्रस्योतो मरुतामनीधम् । (पनद्वरिः)
 १३०। ४ उन्माद्वन मरुत उन्तरिक्ष माद्व । (मरुतः)
 ७। २५। १ विधे देवा मरुतो वर मर्षाः [अग्नान्] ।
 (स विना)
 ३४। २ वं मा भिन्वन्तु मरुतः [प्रजया पनेन] । (शार्ङ्गः)
 ५२। ३ पदक्षिणं मरुतां सोममृषाम् । (इन्द्रः)

- २०।३० बृहदिन्द्राय वायस मरतो बृहन्तमम् । (इन्द्रः)
- २१।१९ सररवनी मारतो विसः वयः दधु ।
(तिस्रो देव्यः)
- २७ मरतः स्तुताः इन्द्रे वयः दधुः । (इन्द्र, मरतः)
- २२।२८ मरद्भ्यः स्वाहा । (मरतः)
- २३।४१ अहोरात्रिणि मरतो बिलिष्टं सूदयन्तु ते ।
(अधः)
- २४। ४ पृथिः तिरधीनपृथिः ऊर्ध्वपृथिः ते मारताः ।
(प्रजापत्यादयः)
- १६ साम्नपनेभ्यः मरद्भ्यः, गृहमेधिभ्यः, मरद्भ्यः,
क्रीडिभ्यः मरद्भ्यः, रवतवद्भ्यः मरद्भ्यः
प्रथमज नालभते । (प्रजापत्यादयः)
- २५। ४ मरतां सतमी । (शादादयः)
६ मरतां स्वम्भा विधेया देवाना प्रथमा कांक्षा ।
(शादादयः)
- २४ इन्द्रः ऋमुक्ष मरतः परिरवन् । (अधः)
- ४६ अदि र्इन्द्रः सगणो मरद्भिरस्यभ्यं भेषजा
करत् । (विधे देवाः)
- २६।१७ स नः इन्द्राय मरद्भ्यः परि स्रज् । (संभः)
- २९।५४ इन्द्रस्य यज्ञो मरतामनीकम् । (रथः)
५८ मरतः कन्मायः । (पशवः)
- ३०। ५ क्षत्राय राजन् मरद्भ्यो धरवम् । (सविता)
- ३३।४५ आदित्यान्मारुते गग्म् । (आद्युषामिः) ।
(विधे देवाः)
- ४७ इवा मरतो अश्विना ।
४८ सार्धः प्रयन्त मारुतोत विष्णो ।
४९ मरत ऊनये ह्वे ।
६३ विभेन्द्र सोगं सगणो मरद्भिः । (इन्द्रः)
त. आ ३।९७।१
- ६४ अवर्धन्ति मरतादिवदत्र । (इन्द्रः)
[कठ ४।३४]
- ९५ देवास्त इन्द्र सत्त्याय वेमिरे बृहद्भानो मर-
द्भ्यः । (इन्द्रः)
- ९६ प्र य इन्द्राय वृद्धे मरतो प्रधाचत । (इन्द्रः)
- ३४।१२ तव मते नवगो विप्रनापसोऽजायन्त मरुतो
भ्राजदृष्टयः । (अग्निः)
- ५६ उप प्र वन्तु मरतः शुदानवः । (प्रदाग्नयतिः)
[काठ. १०।४७]
- ३७।१३ म्हाहा मरुद्भिः परि भीवरण । (धर्मः)

त. आ. ४।५।५, ५।४।९

३९। ५ मारतः ऋधन् । (प्रावशिवदेवताः)

६ मरतः सगमे अहन् । (सवित्रादयः)

९ वलेन मरतः । (प्रजापतेः)

(५) काठक संहिता ।

धं नः सोन्वा मरुद्घोऽन्ते । वाठ २।९७

मरुतः स्तनयितुना हृदयमाच्छिन्दन् । वाठ ८।५

इन्द्रस्य स्वा मरुत्वतो प्रतेन दधे । वाठ ८।८

मारत्यामिक्षा बारण्यामिक्षा काय एकपालः । काठ. ९।८

मरुद्भ्यः रीडिभ्यः प्रातस्पातनपालः । काठ. ९।१६;

श. २।५।३।२०

अग्निभिर्मरतः । कठ. ९।३८

मरुतो यद्द वो दिवो बृहमस्मानिन्द्रं यः । वाठ ९।६८

सवेभिः राय मारुतं प्रियज्ञं चर्षं निर्वपेत् । वाठ. १०।१८

पृथ्या धं मरुतो जातः वाचो याव्या वा

पृथेभ्या मारुतास्सजाता एतन्मरतो एवं पयः ।

क्षयं वा इन्द्रं कि मरतः क्षत्रायैव यिसमनु नियुनक्ति १०।१९

मारुतस्य मारुतीमनुर्ध्वद्रया वजेत् ।

विद्वं मरतो भावधेधेनैवेनाच्छमयते ।

अगह्यो वै मरुद्भ्यदसातमुदणः वृधेन् प्रीक्षत् ।

तानिन्द्रायालभन तं मरुतः वृद्धा वज्रमुद्यत भ्यपतन् ।

इन्द्रो मरुद्भिस्तुषा वृणोतु । वाठ. १०।३६

मारुतं चर्ष निर्वपेत् । काठ. ११।१

इन्द्रो मरुद्भिः (उक्तामत्) । कठ ११।५, ४४।२३

इन्द्राय मरुत्वतो एक दमनप रम् । काठ. ,,

तस्य मारुती वाज्य जुवाक्ये रवातम् । कठ. ११।६

उप प्रेत मरतः स्वतयताः । कठ ११।१२; २०।४७

मारुतां प्राणस्त ते प्राणं ददतु । काठ. ११।१३

इन्द्रेण दत्तं प्रयत्तं मरुद्भिः । वाठ. ११।१४

मारुतं चर्षं सौर्धमेकपालम् । वाठ. ११।३१

रमयता मरुतदेनमाविनम् । वाठ. ११।५७

वैराजं मरुतां एकवरी । वाठ. १२।१४

एन्द्रामारुतं पृथिराकथमलभेत । वाठ. १३।७

मरुतां पितृषु तद् गृणीमः । वाठ १३।२८

मरुतः सताक्षरया शरवरीमुदजयन् । वाठ. १४।२४

, , उष्णिहसुदजयन् । १४।२५

ये देवा मरुत्क्षेत्राः । कठ. १५।३
 मरुद्गुह्यः पश्चात्सङ्घो रक्षोऽन्वः स्वाहा । ॥
 मरुतामोजरस्थ । कठ. १५।८
 मरुतो देवता विद् । कठ. १५।६
 मरुतो देवताः । कठ. १७।१२; २१।४५,
 मरुन्वतीयमुक्थमव्यथाय म्त्तभक्तु । कठ. १७।२१
 मरुतस्ते देवा अपिपतयः । वाठ. , , ८।६।१।८
 अग्निमारुते ऽन्वेषे अव्यथाय । कठ. , ,
 आदित्वा अन्नं मरुतोऽन्नम् । कठ. २१।२, स. ४।३।३
 ११२
 यद्विधानं मारुता अनुहन्ते । कठ. २१।३३
 उपाशु मारुताऽनुहोषि । " "
 गणघ एव मरुत्क्षेत्रपति । " "
 क्षनं वा एव मरुतां विद् । २१।३४
 यत्किंनि दीपयति मरुत्क्षेत्राः " "
 श्रुत्वि नु स्तोमं मरुतो वद वो विषः । कठ २१।४४,
 क. ८।७।११
 मरुतुमेरुतां ते तेऽपिपतयः । कठ २१।१६
 यन् प्रायणीयं मरुतां देवविद्या देवविद्याम् । कठ २३।१०
 यन्मरुत्क्षेत्राऽप्यथः पद भवति । " "
 रवस्ति रथे मरुतो वधातन । " "
 मरुस्तु विधमानुपु । कठ २६।३७
 इन्द्रो वृत्रमहन् मरुत्क्षेत्रं देव मरुत्क्षेत्रीयै स्तोत्रं भवति
 मरुत्क्षेत्रीयमुक्थं मरुत्क्षेत्रीया प्राः । कठ. २८।६
 प्रविहितैरिव प्रथमो मरुत्क्षेत्रीयोऽप्यवतिः । " "
 वज्रमेव प्रथमेन मरुत्क्षेत्रीयैर्ऽप्युपेत " "
 तृतीयेन यं द्विषादमरुत्क्षेत्रीयोऽस्तस्य गृणीयन् । " "
 वीर्यं वै मरुतो वीर्यैर्देवैर्न वर्षयन्ति । " "
 स मरुत्क्षेत्रीयैरेव वृत्रमहन्तस्य मरुत्क्षेत्रेऽनूक्तं न देवम् ।
 वाठ. २८।६
 यत्वं मरुतः । कठ. २९।२४
 मरुतः सुधा वृष्टिं नयन्ति । कठ. १६।३१
 मरुतः द्वितीये सवने न जङ्गुः । कठ. ३०।२७
 ये निर्वो एव प्रजाना तं मरुतोऽन्यत्रामयन्ताः । कठ. ३६।२
 यत् हि मरुतो निरयत्वा एव मरुतोऽथो
 प्राग्भवेदेनैकादमवत्स्ये । कठ ३६।२; ३७।४-६
 तरप मरुतो हव्यं व्यवस्रत । कठ. ३६।९

मरुत्क्षेत्रीयान्भवेन स वृत्रमहन्त्वातिष्ठत् । वाठ. ३६।१५
 तं मरुत एयंक्ववांतरथैरव्ययन्त । कठ. ३६।१५
 स एतं मरुत्क्षेत्रो भागं निरवपत् तं मरुतो वीर्यं
 समतपन् । (कठ. ३६।१५)
 ते मरुत्क्षेत्रो गृहमेधिभ्योऽनुहवुः । कठ. ३६।६;
 स. २.५।२।४,९
 तं मरुतः पथिकं टन्त । कठ. ३६।२८
 ते मरुतः क्विंजीन कीटतोऽप्यवपन् । " "
 तं मरुतोऽप्यकीडन् । ३६।१९
 मारुतो वृद्धिर्गणा । कठ. ३७।४
 अथैव मारुत एकविंशतिक्पालः । कठ ३७।६,८
 त्रिणवे मरुतस्तुन्म् । कठ. ३८।१२६
 अनुपन्त मरुतो यत्पतेतम् । कठ ४०।९८
 (६) ब्राह्मण-ग्रन्थ ।
 मरुतो रमयः । साण्ड्य. १४।२।२९
 ये ते मारुताः (पुरोडाशाः) रमयन्ते । शं० ९।३।१।२५
 युञ्जन्तु स्वा मरुतो रिध्रवेदव दन्ते युञ्जन्तु स्वा देवा इत्ये-
 वनदाह (मरुतः = देवाः— अमरकोषे ३।३.५८)
 शं० ५।१।४।९
 गणघो हि मरुतः । तां. १९।१।४।२
 मरुतो गणाना पतयः । तै. ३।१।१।४।२
 सप्त हि मरुतो गणः । शं० ५।४।३।६७
 सप्त गणा वै मरुतः । तै. १।६।२।३; २।७।२।२
 सप्तसप्त हि मरुता गणाः शं० ९।३।१।२।२५ [कठ० २१।१०]
 मरुतः सप्तक्पालः (पुरोडाशाः) । ता. २१।१०।२३
 [कठ. ९।४, २१।१०; ३७।३]
 मारुतस्तु सप्तक्पालः (") । शं० २।५।१।१२
 मारुतस्य सप्तक्पालं पुरोडाशं निर्वपति । शं० ५।३।१।६
 मरुतो वै देवाना भूयिष्ठः । ता. १४।२।२।९; २१।१।४।३
 मरुतो हि देवाना भूयिष्ठः । तं० २।७।१०।१
 मरुतो वै देवविशोऽन्तरिक्षम जना इधराः । कौ. ७।८
 विद्यो वै मरुतो देवविशः । शं० २।५।१।२।२; ३।९।१
 १।७-२८. ए. १।१०
 मरुतो वै देवाना विद्यः । ऐ. १।९; तां. ६।१०।१०;
 १८।१।१।४। कठ. ८।८]
 अनुत्तादो वै देवना मरुतो विद् । शं० ४।५।१।१६
 विद् वै म तः , तै० १।४।३।३; २।७।२।२ [कठ० २९।
 ९; ३७।३]
 विद्यो मरुतः । शं० २।५।१।६, २७, ४।३।३।६
 [कठ० ३८।१।६८]

विद्यो वै मरुतः । श० ३।२।१।१७
 मरुतो हि वरुयः । तं० २।७।७।२ [काठ० ३।७।४]
 पशवा वै मरुतः । ऐ० ३।६२ [काठ० २।६।३६ ;
 ३६।२.१६]
 अर्ज वै मरुतः । तं० १।४।३।५ ; १।७।५।२ ; १।७।७।३
 प्राणा वै मरुताः । श० ९।३।१।७
 मरुता वै प्रावाणः । तां ९।९।१४
 मरुतो वै देवानामपराजितमायतनम् । तं० १।४।६।२
 क्षरुषु वै मरुतः शिनाः (शिनाः) । कौ० ५।४
 क्षरुषु वै मरुतः श्रितः (श्रिताः) । गो० उ० १।२२
 आपो वै मरुतः । ऐ० ६।३० ; कौ० १।२।८
 मरुतोऽङ्घ्रिमिमतमयन् । तस्य नाम्तस्य दृढवम रिठन्दन्
 साऽसानिरभवत् । तं० १।१।३।२२
 मरुतो वै वर्षरथघते । श० ९।१।२।५ [काठ १।१।३२]
 पद्भ्यः पार्श्वीर्षी मारुतेर्षी वर्षासु । श० १३.५।४।१८
 इन्द्रस्य वै मरुतः कौ० ५।४.५
 अथेनं (इन्द्रं) ऊर्ध्वाया दिशि मरुतश्चाङ्घ्रिरसश्च देवा ..
 ...अन्वयिषन् .. पारमेष्ठ्याय म हाराज्याया धियत्वाय स्वाव-
 द्यायाऽऽतिष्ठाय । ऐ० ८।१४
 हेमन्तेनगुना देवा मरुतस्त्रिणश (स्तोमे) स्तुतं बलेन शकरीः
 सः । हविरिन्द्रे वयो ह्युः । तं० २।६।१९।२
 मरुतो यः सतयः । ता० २।१।१४।१२
 पङ्क्तिरज्यो मरुतो देवता ष्टावन्तौ । श० १०।३।२।१०
 मरुत्सोमो वा एषः । ता० १७।१।३
 मरुनो ह वै भ्रीडिनो वृन्-हनिप्यन्तमिन्द्रम गर्तं तमभितः
 परि चिकीर्तुर्महयन्तः । श० २।५।३।२०
 ते (मरुतः) एवं (इन्द्रं) अयत्कीडन् । तं० १।६।७।५
 इन्द्रस्य वै मरुतः क्रीडिनः । कौ० ५।५
 ऽन्द्रो वै मरुतः क्रीडिनः । गो० उ० १।२३
 मरुतो ह वै सान्तपना मध्यन्दिने वृन्-सन्तेषुः ॥ सन्ततो-
 ऽननेव प्राणन् परिर्दानः शिदधे । श० २।५.३।३
 इन्द्रो वै मरुतः सान्तपनः । गो० उ० १।२३
 घोरा वै मरुतः स्वतवसः । कौ० ५।२, गो० उ० १।२०
 प्राणा वै मरुतः स्वापयः । ऐ० ३।६६
 सवनसतिषं मरुत्वतीयमहः । कौ० १।५।१
 पवमानं कथं वा एतयन्मरुत्वतीयम् । ऐ० ८।१ ;
 कौ० १।५।२
 तदेतदानीमप्रमेवोक्तं यन्मरुत्वतीयमेतेन हेन्द्रो वृन्महन् ।
 कौ० १।५।२

तदेतत्पुतनाजिदेव सुक्तं यन्मरुत्वतीयमेतेन हेन्द्रः वृत्तम
 अजयत् । कौ० १।५।३
 अथैव मरुत्सोम एतेन वै मरुतोऽपरिमितो मुष्टिमपुष्य-
 क्षपरिमितो मुष्टि पुष्यति य एव वेद । तां. १९ १४।१
 अन्तरिक्षालोको वै मरुतो मरुतां गणः । श० ९।४।२।६
 तद् गर्वं मरुत्वतीयं भवति । ऐ. ३।६६
 वृष्टिबन्धिपदं मरुत इति मारुतम यन्मेहे । ऐ ३।१८
 मरुत्वतीयं प्रथायं शंसति, मरुत्वतीयं सुक्तं शंसति,
 मरुत्वतीयां निविदं दधति, मरुतां सा भक्तिः
 मरुत्वतीयसुक्तं शरत्वा मरुत्वतीयया यजति ।
 ऐ० ३।२०

तन्मरुतो ध्रुवन् । ऐ० ३।३४
 तस्माद्दधानरियणिमिमारुतं प्रतिपद्यते । ऐ. ३।३५
 प्रमादधेति य आमिमारुतं शसति
 इन्द्रोऽप्यस्त्वो मरुतस्ते समजानत । ऐ० ५।६६ ;
 मरुतो यस्य हि क्षय इति मारुतं क्षेतिनदन्तल्पम् ।
 ऐ० ५।२१
 " " " पोता यजति । ऐ० ६।१०
 ए उ मारुत आपो वै मारुतः । ऐ० ६।३०
 " " शैव शंसिष्टेति । " "
 पुरस्तान्मारुतस्वाप्यस्वाथा इति । " "
 ते ऽज्ये मरुत्वने त्रयोदशरुपार्कं पुरोकाशं विर्ययेत् । ऐ० ७.९
 अमये मरुत्वते रसाहा । " "
 मरुतश्च त्वङ्घ्रिरसश्च देवा अतिष्ठन्सरा छन्दम राहन्तु ।
 ऐ० ८।१२, १७

मरुतश्चाङ्घ्रिरसश्च देवाः षड्भिरवैष पयाविशोरहोभिर-य-
 सिषन् । ऐ० ८।१४ ; १९
 मरुतः परिवेष्टारो मरुतस्वावसन् एहे । ऐ० ८।२६,
 श० १३।५।४।६
 मरुतीं दक्षिणाजामितार्यं नेत्र मारुतो भवति ।
 श० २।५।२।१०
 तद्वा मरुतः पाप्मानं विमेयिरे । श० २।५।२।१४
 प्रजानां " " विषयन्ते । " "
 स एतामेन्द्रो मरुत्वतीमजयत् । श० २।५ २।२७
 मारुत्यां तं वारुणमवदधाति । श० २।५।२।३६

मरुद्गोऽनुवृहाति । श० २१५१, ३८
 अस्थे मारुत्स्थे पयस्वायं द्विरवद्यति । ”
 मरुतो यजेति । ”
 तस्य न मरुत्सतीयान् गृहति । श० ४१३, १६, १७, ४१४
 ११०
 इन्द्रायैव मरुन्वते गृहीवान् । श० ४१३, ११०
 नापि मरुद्गोः ॥ यद्वापि मरुद्गो गृहीयात् । ”
 इन्द्रमेवातु मरुत आभजति । ”
 मरुतो वाऽइन्द्राय येऽपमन्य तस्युः । श० ४१३, ११६
 विशा मरुद्भिः स यथा विषयस्य कामाया श० ४१३, ११५
 अथ मरुद्गोः उज्जयेभ्यः । श० ५११, ३१३
 येऽएव के च मारुत्स्यौ स्याताम् । ” ”
 उ-शै मरुत उपामन्वयत । श० ५१२ ५१४
 न यदेव मारुत् अस्थस्य तदेवेतेन प्रीणाति । श० ५१४, ३, १७
 वाच पृथानीं विचित्रगर्भां मरुद्गो आलमते । श० ५१५ २१७
 आदिश्या पंच मरुत उत्तरत । श० ८१६, ३, ३
 मरुतो देवतर्षावन्ती । श० १०३, २, १०
 अन्य न्या मरुत । श० १३१, ४, १६
 विश्वे देवा मरुत इति । श० १४४, २, १४
 वा यन्मरुत स्वतवतो यजति, घोरा वै मरुतः स्वतवसः ।
 शो० उ० ११२०
 अथ मरुद्गोः सान्तपणेभ्यः । श० २१५, ३३
 ता मरुद्गो देवविष्टभ्यः । ऐ ११२०
 मरुत्वां इन्द्र म द्वा । ऐ ५१६
 मरुत्सतीयस्य प्र तीपदनुचरं । ऐ० ४१९, ३, १, ५१
 एतधन्मरुत्सतीयं पवमाने वा । ऐ० ८१२
 एतद् मरुत्सतीयं समदम् । ऐ ८१२
 मरुत्सतीयस्य गृहीत्वा । श ४१३, ३, ३
 निविद्य दधातीति मरुत्सतीयम् । श १३१, ५, ११७
 मरुत्सतीयं ह दोग्रवभूय । गो पृ ३१५
 त्रिमुभा मरुत्सतीयं प्रत्यपयत । गो. उ ३, १२२
 विश्वे देवा अद्रवन् मरुतो देन नाजहुः । ऐ० ३, १२०
 ॥ य देने यन्मरुत्सतीयस्य । ऐ. ३, १२८
 मरुत्सतीयः प्रगाथ । ऐ ४१, २७
 मरुत्सतीयस्य प्रतिपदं मह । ऐ ५१४
 मरुत्सतीयस्य प्रतिपात्रजन्यथा । ऐ ५१६

मरुत्सतीयस्य प्रतिपदन्तः । ऐ. ५१२
 मरुत्सतीयं तृतीयं सवने । गो. उ ३, १२३, ४, १८
 यद्वर्षं मरुत्सतीयात् । ”
 मरुद्गोऽमे सहस्रसत्तमः । ॥ ११४, ३, १९

(७) आरण्यक ग्रन्थ ।

वातवन्तो मरुद्गणा । तै आ १, ४, २
 इहैव चः स्वतपसः । मरुत सूर्यत्वच ।
 धर्म सप्रया आवृणे । तै आ. १, ४, ३
 वैश्वानराय विषणा मिसा मिमारुतस्य । ऐ आ १, ५, ३
 प्रयज्यवो मरुत इति मारुतं समानोदर्कम् । ”
 चतुर्विंशान्मरुत्सतीयस्याऽऽतान । ऐ आ. ५, १, १
 जनिष्ठा उग्र इति मरुत्सतीयम् । ”
 सस्थिते मरुत्सतीयं होता । ”
 मरुतः प्राणैरिन्द्र बलेन । तै आ २, १, ८, १
 प्रति हार्षे मरुतः प्राणान् वपति । ”
 अभिपून्वतामभिप्रताम् । य तवता मरुताम् ।
 तै आ. १, १, ५, १

मरुतां च विदामसाम् । तै आ १, १, ७, ६
 वातवता मरुताम् । तै आ १, १, ५, १
 सुतान एव मारुतो मरुद्भिर्दत्तरतो रोचय । तै आ ५, ५, १
 वासुकैतन्मरुत्सतीयं प्रतिपद्यते । ऐ. आ १, ७, १

(८) उपनिषदादि ग्रन्थ ।

तन्मरुत उपजीवन्ति सोमेन सुखेन । छान्दोग्य ३, १, १
 मरुतामवैकी भूत्वा । ”
 मरुतामेव तवदधिपत्या रक्षाराज्यं पयेता । ”
 विश्वे देवा मरुत इति । बृहता १, ४, १, २
 मरुद्भिः सोम पिब वृत्रहन् । महानारा २, ०, २
 मरुत्प्राप्नोति निधुतोऽसि । मैत्रा. २, १
 तस्यै नमस्कृत्या मरुदुत्तरावण गतः । मैत्रा ६, ३, ०
 मरुतः पथाद्गच्छन्ति । मैत्रा ७, ३
 सवर्षकोऽग्निमरुतो विराट् । नृ पूर्व २, १
 मरीचिर्मस्तामसि । म गी १, ०, २, १
 अदिनौ मरुतस्तथा । म गी. १, १, ६
 मरुतशोष्मपाथ । म गी. १, १, २, २

मरुतोंके मंत्रोंमें विद्यमान सुभाषित ।

वीरोंका धर्म तथा वीरोंके कर्तव्य ।



इसके पहले हम मरुतोंके मंत्रोंका सरल अर्थ दे चुके । यह अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि, उन मंत्रोंमें जो प्रमुख कहना है, उसे हम जान लें । उस केन्द्रभूत कल्पनाकी जानकारी पानेके लिए यहाँपर हम उन मंत्रोंके सर्वसाधारण प्रतिपादनोंको मूल शब्दोंके साथ देकर सरल अर्थ बताना चाहते हैं । मरुतोंका वर्णन करते हुए वीरोंके संबन्धमें जो साधारण धारणाएँ उस उस स्थानपर प्रमुखतया दीख पड़ती हैं, उन्हेंका संग्रह यहाँपर किया है । मंत्रमें पाया जाने-वाला वाक्यही यहाँ लिया है । विशेष वर्णनात्मक शब्दोंका ग्रहण नहीं किया है और जिस भौतिक वस्तुनाको व्यक्त करनेके लिए मंत्रका चयन हुआ, उसी मूलभूत कल्पना की स्पष्टता जितने कम शब्दोंमें हो सकती है, वतनेही शब्द यहाँ के लिये हैं । बहुधा प्रारम्भिक अन्वय उषोंका रत्न रत्ना गया है, पर जिससे सर्वसाधारण बोध प्राप्त होगा, ऐसा वाक्य बनाने के लिए पर्याप्त शब्द चुन लिये हैं । यद्यपि यह वर्णन मरुतोंकाही है, तथापि इन सुभाषितोंमें वह केवल मरुतोंकाही नहीं रहा है, मरुतोंका विशेष वर्णन इतानेके कारण हमें यह सर्वसामान्य उपदेश मिल जाता है । ऐसा कहा जा सकता है कि, समूचे मानवोंको हृष भौति नीतिका उपदेश दिया गया है । हमी इनसे वेदप्रतिपादित सर्वसाधारण धर्मका ज्ञान हो सकता है । इसके लिए ऐसे चुने हुए सुभाषितोंका बड़ा अच्छा उपयोग हो सकता है । पाठकोंको अगर उचित जगह, वो मंत्रोंके अन्य शब्दभी यथोचित जगहकी पूर्तिके लिए दे रखें । पाठकोंकी सुविधाके लिए मंत्रोंके क्रमांक प्रारम्भमें दिये हैं और उन मंत्रोंके श्रवणदादि वेदोंमें पाये जानेवाले पते भी आगे दिये हैं ।

हम भौति स्वर्पाय करनेसेही वेदका सच्चा आशय समझ लेना सुगम होगा, ऐसी हमारी आशा है ।

[विश्वामित्रपुत्र मधुच्छन्दा ऋषि ।]

(१) यक्षियं नाम दधाना । (ऋ. १।६।४)
पूजनीय नाम धारण करे । [उच्च कोटिका यज्ञ पाना चाहिए ।]

पुनः शर्मत्यं एरिरे । (ऋ. १।६।४)
(वीरोंको) बार बार शर्मवासमें रहना पड़ता है ।
[पुनर्जन्मकी कल्पना का आभास यहाँपर अवश्य होता है ।]

स्व-धां अनु (ऋ. १।६।४)
अपनी धारक शक्ति बढाने के लिए या मन्त्र पानेके लिए [प्रयत्न करा चाहिए ।]

(२) देवयन्तः श्रुतं विद्वद्भुं अनुपत । (ऋ. १।६।६)
देवत्व पानेकी इच्छा करनेवाले लोगोंको उचित है कि,
वे धनकी योग्यता जाननेवाले विद्वत्ता वीरोंके कल्पना
गायन करें ।

(३) अनवद्यैः अभियुभिः गणे सहस्यत् शर्वति ।
(ऋ. १।६।८)

निर्दोष एव तेजस्वी वीरोंको साथ के शत्रुदलका पराभव करनेहारि शलकी वह पूजा करता है । [देने धनको वह अपनेमें बढाता है ।]

[कण्वपुत्रा मेधातिथि ऋषि ।]
(५) पोजात् ऋतुना पियत । (ऋ. १।१५।२)
पवित्र पात्रमेंसे ऋतुकी अनुचरन्ता देखकर पीनेयोग्य
वस्तुओंका सेवन करो ।

यज्ञं पुनर्तन । (ऋ. १।१५।३)
यज्ञ से कर्म को अधिक पवित्र करो ।
[घोरपुत्रा कण्व ऋषि ।]

(६) अनवर्षणं शर्धं अभि प्र गयत (ऋ. १।३।७।१)
जो मासार्थं पारस्परिक मनोमाहिन्व या धैर्यभावको न

बदने दे उसका वर्णन करो।

(७) स्वमानवः वाशीभिः श्लथिभिः साकं अजायन्त ।
(ऋ. १।३।७२)

तेजस्वी वीर अपने दृष्टिगोचरों को साथ रखकर सुमग्न बने रहते हैं। [सदैव वटिशब्द रहना वीरोंका तो कर्तव्यही है।]

(८) यामन् चित्रं नि ऋजते । (ऋ. १।३।७३)

पुढमूमिमें हमला करते समय वीर सैनिक बड़ी विद्यमान धारता दर्शाता है।

(९) देवत्तं म्रग शार्धाय, घृप्यये, त्वेयसुसाय प्रगायत ।
(ऋ. १।३।७४)

देवताओंका स्तोत्र, बल बढ़ानेके लिए, दायुका विनाश करनेके लिए और तेजस्वी बननेके हेतु गाते रहते। [ऐसे स्तोत्र पढ़नेसे या गातेसे उपशुक्त गुणों की वृद्धि होगी।]

(१०) गोपु अच्यं दार्धः प्रशंस; वसस्य जम्भे धकृधे ।
(ऋ. १।३।७५)

गौत्रोंमें जो श्रेष्ठ बल विद्यमान है, उसकी मशहना करो, गोरसके सेवनसे मामनोंमें बह बढ जाता है।

(११) धृतयः नरः । (ऋ. १।३।७६)

कनुसेनाको विचलित करनेवाले [जो वीर हैं,] वे नेता होते हैं।

(१२) उग्रय यामाय पर्यनः जिहीत । (ऋ. १।३।७७)
शत्रुसेनापर जब भीषण धावा होता है, सब पहाड़नक हिलने लगता है। [वीर सैनिक इसी भाँति दुश्मनोंपर बरसते हैं।]

(१३) यामेषु अज्मेषु पृथिवी भिया रेजते ।

(ऋ. १।३।७८)

शत्रुदलपर चढ़ाई करते समय मूमि काँप उठती है। [वीर सिपाही इसी प्रकार शत्रुओंपर आक्रमण कर दें।]

(१४) दावः द्विता अनु । (ऋ. १।३।७९)

बलका उपयोग दो स्थानोंमें करना पड़ता है, [अर्थात् जो प्राप्त हुआ है, उसका संरक्षण तथा नये धनकी प्राप्तिके लिए शर भेजिकोंका बल श्रमक होना है।]

(१५) अज्मेषु यातवे काष्ठाः उत् अलतं ।

(ऋ. १।३।८०)

शत्रुपर हमले करनेके समय हलचल करनेमें कोई रुकावट

या बाधा न हो, इसलिये सभी दिशाओंमें भली भाँति मार्ग बनवाने चाहिए। [यदि आनेजानेके लिए अच्छी सड़कें हों, तो दुश्मनोंपर किए हुए आक्रमणोंमें सफलता मिलती है।]

(१६) यामभिः, दीर्घं पृथं अमृधं नपातं, च्याचयन्ति ।
(ऋ. १।३।७।११)

वीर सैनिक अपने प्रभावी आक्रमणोंमें बड़े, गह न होनेवाले एवं बहुतकालतक टिकनेवाले शत्रुकोभी अलग्ग विचलित तथा विकम्पित कर डालते हैं।

(१७) जनान् गिरान् अचुच्ययान्तन, (तत्) यत्नम् ।
(ऋ. १।३।७।१२)

जिसकी सहायतासे शत्रुके वीरोंको भयया पहाड़ोंकी भी अपररूप कराना संभव है, वही यत्न है।

(१८) शीमं प्रयात । (ऋ. १।३।७।१४)

शीमतासे बढे।

आशुभिः शीमं प्रयातः = वेगवान साथनोंकी सहायतासे बहुत जल्द गमन करो।

(१९) विश्वं आयुः जीवसे । (ऋ. १।३।७।१५)

एवं आयुतक जीवित रहनेके लिए प्रयत्न करना चाहिए।

(२०) पिता पुत्रं न हस्तयोः दधिधे । (ऋ. १।३।८।१)
जैसे पिता अपने पुत्रको अपने हाथोंसे उठा लेता है,

उसी प्रकार [वीर पुरुष जनताको] मानवता या आधार दे दें।

(२१) यः गावः फ्य न रण्यन्ति । (ऋ. १।३।८।२)

गुम्हामी गौर्षं किधर जानेपर दुःखी बन जाती है ? [वह देगो, वह तुम्हारे दुश्मनोंका स्थान है, ऐसा निश्चित समझ लो।]

(२२) सुम्ना कय ? सुभिता क ? सौमगर क ?

(ऋ. १।३।८।३)

आपके सुम, पैसव, ऐश्वर्य अठा कहाँ है [देखो कय वे तुम्हारे समीप हैं या शत्रु उन्हें छीन ले गये हैं।]

(२३) पृथिमामतरः मर्तासः, स्तोता अमृतः ।

(ऋ. १।३।८।४)

भूमिकी माता समझनेवाले वीर यद्यपि मरते हैं, तोभी जो उनके संग्रहमें काव्य बनते हैं, वे अमर बनते हैं। [मातृभूमिके उपामकोंका इतना महत्त्व है, वे स्वयं तो अमर बनते ही हैं, पर उनका काव्य यदि कोई पना दें, तो वे कवि भी अमर हो जाते हैं।]

(२५) जरिता यमस्य पथा मा उप गात् । (क ११२८१५)
 कवि कदापि भौतको पट्टाग्नेवाली रादमे नहीं चलेगा ।
 [जो कवि बीगोडा वर्णन करनेके लिए घोररमपूर्ण वाच्य
 का सृजन करेगा, वह अवश्य जमर बनेगा ।]

(२६) दुर्हणा निर्ऋतिः नः मो सु वर्धत् (ऋ ११२८१६)
 विनाश करनेवाली दुर्दशाके कारण हमारा नाश न होने
 पाय । [हर विपत्तमे प्रासको को अलग्ना भनक रहना
 चाहिए ।]

दुर्हणा निर्ऋतिं तृणया पर्वीष्ट । (ऋ० ११२८१७)
 विनाशका दृष्ट तृणरूपम करनेवाली दु. स्थिति भोग-
 दाहनासे बढ़ती जाती है और उमो कारण उलका विनाश
 हुआ करता है । [भोगकात्यायने सुतमाधनोको शुद्धि होती
 है और अन्तमे उसी की वजहसे ये विनष्ट होते हैं ।]

(२७) त्वेषा भमचन्तः धन्वन् मिहं रूपवन्ति ।
 (ऋ, ११२८१७)

तेजस्वी तथा बलवान बीर रोगिष्ठानमे एव मद्रस्ययामे
 भी जलको उपपन्न का दिखते हैं । [पारपसे सुलकी प्राप्ति
 हुआ करती है ।]

(२८) महतां स्वनात् पार्थिवं सन्न मानुषाः प्र भरेजन्त ।
 (ऋ ११२८१८)

मानैतक पाठे रहकर अटकेवाले बीर भैरिणोंकी दहाह
 से पृथ्वीपर विद्यमान स्थान तथा सजी मानवकोंपने बराबते
 हैं । [बीगोको चाहिए कि ये हमी भौति गूराता दशांथे ।]

(२९) धीक्षुपाणिभिः अलिङ्गयामभिः रोधस्वताः
 अनु यात । (ऋ ११२८१९)

बाह्यक घटाकर, निरग्न दूर करते हुए उरसाहपूर्वक
 प्रयाहमेंसे भी भागे बचो । [निरुत्साही बनकर चुपचाप
 हाथपर हाथ धरे न बैठो ।]

(३०) व. रथाः नेमयः अश्वासः अमीशव. स्थिराः
 सुमंस्त्रताः । (ऋ ११२८१९)

गुम्हारे सभी नाथन मुट्ट तथा धन्ते सरकारों से
 संपन्न हों [तभी गुम्हें सफलता मिलेगी ।]

(३१) गिरा ब्रह्मणः पतिं अच्छा वद् । (क. ११२/११३)
 भवनी वाणीसे ज्ञानी पुरुषोंकी सराहना करो ।

(३२) आम्बे शृङ्गाकं मिसीति । (ऋ ११२८१९४)
 शीघ्र कवि बनो, गोदीली नेमं सन ही मन छोडकरगा

ररो, [काव्यरचना हम भौति सहज ही होने पाय ।]
 गाय-धं उक्थ्यं गाय ।

त्रिपसे गानेवालेकी रक्षा हो, ऐसे कामोंका गायन करते
 रहे । [व्यर्थभी जनमाने काव्योंका गायन करना उचित
 नहीं ।]

(३५) त्वेषं पन्नस्युं शक्तिं पन्स्व । (ऋ ११२८१५५)
 तैत्रस्वी, वर्णन करनेयोग्य तथा पूज्य बीरकीही प्रणाम
 करो । [चाहे जिन नीच स्वकिंके सामने शान्त हुकाया न
 जाय ।]

अस्मे इह वृद्धाः असन् ।
 हमारे समीप वृद्ध रहें ।

(३७) वः आयुधा पराणुदे स्थिरा चीळु सन्तु ।
 (ऋ ११२९१२)

गुम्हारे हथियार शत्रुभोको मार भगानेके लिए स्थिर एवं
 पर्याप्त रूपसे सुट्ट रहें । [तुम सदैव हम विपत्तमें सतर्क
 रहो कि, गुम्हारे हथियार दुश्मनोके आयुधोंसेभी अपेक्षाहृव
 अधिक कार्यक्षम एवं प्रभावी रहें ।]

युष्माकं तविर्यां पर्यायसी अस्तु, मायिनः सा ।
 गुम्हारी शक्ति सराहनीय रहे, पर गुम्हारे कपटी शत्रुकी
 वैसी न हो । [हमेशा गुम्हारी अपेक्षा दुश्मनो की शक्ति
 घटिया दर्जेकी रहे, हमकिये भावधानीसे रहा करो ।]

(३८) स्थिरं परा दत्त, शूर वर्तयथ । (ऋ ११२९१३)
 जो शत्रु स्थिर हुआ हो, उसे दूर हटाकर विनष्ट करो । तथा
 बड़े भारी शत्रुको भी चकर खानेतक युमा धो [उसे पदच्युत
 कर दो, शत्रुको कहीं भी स्थायी बननेका अवसर न दो ।]

वनिन वि याधन, पर्यताना आशा वि याधन ।
 जगत् तोडकर बहाउी श्रुविगागोंमेंसेभी धिरोप टग की
 सउकें उन्मुक्त रहो । [यातायातके साधनोंमे वृद्धि करो ।]

(३९) रिशाद्मन्. ' श्रुध्यां शत्रुः व' न विधिदे ।
 (ऋ ११२९१४)

हे शत्रुदलके विध्वंसक बीरो ! हम श्रुमदलपर गुम्हारा
 कोई शत्रु न रहे, देया करो ।

आधुपे नविपी, तना अस्तु ।
 पर करनेवाले कोगोडा विनाश करनेका चल बढदा
 रहे ।

(४०) सर्वथा विदा प्रो भारत । (क ११२१५)

समूची प्रजाके साथ ब्रह्मतिके प्रस करो । [मघकी प्रगतिमें व्यक्ति अपनी उन्नति मान ले ।]

(४१) वः यामाय पृथिवी आ अश्रोत्, मानुष अर्थाभ्यन्त । (क ११२१६)

गुहारे आक्रमणकी भावाज सारी पृथ्वी सुन लेती है, अर्थात् एक छोरसे दूसरे छोरतक आक्रमणका समाचार पहुँचता है, अतः मानवोंको अत्यन्त भय प्रतीत होता है । [बीरोके हमलेमें इसी भाँति भीषणता पर्याप्त मात्रामें रहनी चाहिए ।]

(४२) तनाय कं अय. आवृणीमहे । (क ११२१७)

हम चाहते हैं कि, जिस सरक्षणसे बाल्यघांका सुख बचे, वही हमें मिल जाए ।

विभ्युपे जससा गन्त ।

जो भयभीत हुआ हो उसके समीप अपनी सरक्षण शक्तियोंके साथ चले जाओ । [जो भयभीत हुए हों, उन्हें तसही देनी चाहिए ।]

(४३) अभय शयसा भोजसा ऊतिभि वि युयोत ।

(क ११२१८)

शत्रुके अभूतपूर्व भीषण प्रहारोंको अपने बलसे, सामर्थ्यसे एवं सरक्षक शक्तियोंसे हटा दो, दूर कर दो ।

(४४) असामि द्द, अस्सामिभि. ऊतिभि. न आगन्तन । (क० ११२१९)

पूर्ण रूपसे दान दो, अपनी संपूर्ण, अत्रिकण शक्तियोंके साथ हमारे समीप आओ । [सरक्षण करनेके लिए जाते समय पूर्ण सिद्धता रहनी चाहिए । कहींभी अपराधन या श्रुति न रहे ।]

(४५) अस्सामि ओज. शय. विभुध । (क ११२११०)

संपूर्ण दगने अपना बल तथा सामर्थ्य बढ़ाकर धारण करो ।

द्विपे द्विपं सृजत ।

शत्रुपर शत्रुकी छोड़ो । [एक शत्रुसे दूसरे दुश्मनको लडाकर घेना प्रयत्न करो कि, दोनों शत्रु हतबल एवं परास्त हों ।

[वण्ययुज पुनर्व्यस ऊपि ।]

(४६) पर्वतंतु विराजथ । (क ८१० १)

पर्वतोंमें आनन्दपूर्वक रहो । [पहाड़ों मुक्तकोंभी

जानेजानेका अभ्यास करना चाहिए । पार्वतीय भूमिभागोंके भीहृदयसे तनिकभी न डरते हुए यहाँपर विराजमान होना चाहिए ।]

(४७) तविपीयवः । यामं अचिधं, पर्वता नि जहासत । (क ८१०२)

बलवान वीर जिस समय शत्रुसेनापर भावा करनेके लिए अपना रथसुसज्ज करते हैं, तब पर्वतभी काँप उठते हैं । [ऐसी दशामें मानव तो अवश्यही सारे डरके धरधर काँपने लगेंगे, इसमें क्या आश्चर्य ?]

(४८) पृथिमातर उदीरयन्त, विप्युर्वा इपं धुधन्त । (क ८१०३)

मातृभूमिकी सेवा करनेहारे वीर जब हलचल मचाने लगते हैं, तब वे पुष्टिकारक अन्नकी यथेष्ट समृद्धि करते हैं । (४९) यत् यामं यान्ति, पर्वतान् प्रयेपयन्ति । (क ८१०४)

जब वीर सैनिक दुश्मनोंपर आक्रमण करते हैं, तब वे मार्गपर पड़े हुए पहाड़ोंतक को दिका देते हैं [वीरोंका आक्रमण इसी भाँति प्रबल हो ।]

(५०) यामाय विधर्मणे महे शुप्माय गिरिः सिन्धयः मि येमिरे । (क ८१०५)

वीरोंके आक्रमणों एवं प्रबल सामर्थ्योंके परिणामस्वरूप सारे भयके पहाट एवं नदियाँभी नष्ट बन जाती हैं । [शत्रु शुक जायें इसमें क्या सहाय ?]

(५१) वाथाः यामेभिः स्नुना उदीरते । (क ८१०६)

गरजनेवाले वीर अपने रथोंसे पर्वतों के विशालतक पार कर चले जाते हैं । [वीरोंके लिए कोई स्थान अगाध नहीं है ।]

(५२) यातवे ओजसा पन्थां सृजन्ति । (क ८१०७)

वीर पुष्ट जानेके लिए अपनेही बल एवं सामर्थ्यके सहारे मार्गोंका सृजन करते हैं ।

ते मानुभिः वि तरिधरे ।

ये तैगोंसे युक्त होकर विशेष स्थिरता पाते हैं । [वे प्रथम वीरवी बनते हैं और तेजस्वी होनेसे स्थायी बन जाते हैं ।]

(५३) दमे मदे प्रचेतस. स्थ । (क ८१०८)

तुम अपने स्थायी आनन्दित बननेके लिए विशेष बुद्धिमें

युक्त होकर रहो । [अपना चित्त संस्कारसंपन्न करनेसे तुम्हें आनन्द प्राप्त होगा ।]

(५८) मद्च्युतं पुरुषं विश्वधायसं रयिं नः
आ ह्यर्त । (ऋ. ८।७।१३)

शत्रुका गर्व हटानेवाले, सबके लिए पर्याप्त, सबकी धारणपुष्टि करनेकी क्षमता रखनेवाले धनकी भावश्यकता हमें है । [इसके विपरीत जिससे शत्रुको हर्ष हो, सो सबके लिए अपर्याप्त एवं अल्प जैसे, सबकी धारक शक्ति को जो घटा दे, ऐसा धन यदि हमें सुपत भी मिला जाय सोभी उसका स्वीकार नहीं करना चाहिए ।]

(५९) गिरीणां अधि यामं अचिध्वं, इभुभिः
मन्दध्वे । (ऋ. ८।७।१४)

जब पर्वतोंपर जाते हो, तब वहाँ उपलब्ध होनेवाले सोमरसोंसे तुम हृष्ट बनते हो । [पहाड़ी स्थानोंमें पाये जानेवाले सोम का रस पीकर आनन्दकी उपलब्धि होती है ।]

(६०) अदाभ्यस्य मग्मभिः सुम्भं भिक्षेत ।
(ऋ. ८।७।१५)

जो वीर न दूब जाते हों, उनके संबंधमें किये कामोंसे सुख पानेकी चाह करना चाहिए । [शत्रुसे अयभीत होनेवाले मानवका बलान जिसमें किया हो ऐसे कामोंके पटनसे या मृजजनसे सुखकी प्राप्ति होगा सुवरा असंभव है ।]

(६१) पृथ्निमातरः स्वानिभिः स्तोमैः रयैः
उदीरते । (ऋ. ८।७।१७)

मातृभूमि के भक्त भाषणोंसे, यज्ञोंसे तथा श्वादि साधनोंसे ऊँचे स्थानको पाते हैं । [अपनी प्रगति कर लेते हैं ।]

(६२) पिप्युषीः इयः वः वर्धान् । (ऋ. ८।७।१९)

पुष्टिकारक अन्न तुम्हारी वृद्धि करें । [तुम्हें पौष्टिक अन्न एवं भोज्य पदार्थ सदैव उपलब्ध हों ।]

(६६) ऋतस्य शार्धान् जिन्वथ । (ऋ. ८।७।२१)

सत्यके बलों को प्रोत्साहित करो । [सत्य का बल प्राप्त करो ।]

(६७) त्ये यज्ञं पर्वशः सं दधुः । (ऋ. ८।७।२२)

वे वीर यज्ञको हर गाँठमें नहीं बाँधे जोड़कर प्रबल

तथा सुदृढ कर देते हैं । [वीर संनिक अपने हृदयारोंको प्रबल तथा कार्यक्षम बना रखें ।]

(६८) वृष्णि पौंस्यं चक्राणाः अराजिनः पुत्रं
पर्वतान् पर्वशः वि ययुः । (ऋ. ८।७।२३)

अपना बल बढानेवाले ये संघरासक [जिनमें कोई राजा नहीं रहता है, ऐसे वे वीर] शत्रुको तथा पहाड़ोंको तिलतिल तोड़ डालते हैं । पहाड़ों गडों को भी टिप्तमिन्न कर डालते हैं ।

(६९) युज्यतः शुभ्रं अनु आवन् । (ऋ. ८।७।२४)

सुद करनेवाले वीरके यज्ञकी रक्षा तुमने की है ।

(७०) विद्युदस्ताः अभिद्यवः शीर्षन् ध्रिये हिर-
ण्ययीः शिप्राः व्यजत । (ऋ. ८।७।२५)

विजलीके समान चमकनेवाले हृदयार धारण करनेवाले वीर अपने मसकोंपर स्वर्णकण्वियुक्त शिरोवेष्टन शोभाके लिए धर रहे हैं ।

(७१) हिरण्यपाणिभिः अभ्यैः उपागन्तान् ।
(ऋ. ८।७।२७)

सुवर्णके आभूषणोंसे सजाये हुए घोड़े साथ लेकर हमारे समीप आओ । [घोड़ोंपर स्वर्णके गहने लादनेतक अमीम वैभव रहे ।]

(७४) नरः निचक्राय ययुः । (ऋ. ८।७।२९)

नेताके पदको सुशोभित करनेवाले वे वीर पहियोंसे रहित [यर्कमय भूषिभागोंपर से चलनेवाली] गाड़ीमें बैठकर जाते हैं ।

(७५) नाधमानं विप्रं माडाँकेभिः गच्छाथ ।
(ऋ. ८।७।३०)

सहायताकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी दुरपके समीप सुक-
वर्षक साथन साथ ले चले जाओ । [सज्जनकोंका सुख बढ़ाओ । 'परित्राणाय साधूनां ।' गीता, ४।८]

(७७) यज्ञहस्तेः हिरण्यवाशीभिः सहो आग्निं
सु स्तुपे । (ऋ. ८।७।३२)

शस्त्रधारी एवं आभूषणों से अलंकृत वीरोंके साथ रहनेवाले आग्नि की सराहना करता हूँ ।

(७८) वृष्णः प्रयज्यन् चित्रवाजान् सुयिताय सु
आ यवृत्वाम् । (ऋ. ८।७।३३)

बलिष्ठ, पूजनीय एवं सामर्थ्यवान् वीरोंको धनप्राप्ति के [कार्यमें सहायता के] लिए बुलाता हूँ । [हमारे समीप

भा जानेके लिए उनका मन धारणित करा है]

(७९) मन्व्यमानाः पर्यानासः गिरयः नि जिहते ।
(श्र. ८।५।३४)

[इन वीरोंके सम्मुख] पड़ेजके ऊंचे शिखरवाले पहाड़ भी अपने जगह से हट जाते हैं । [वीरोंके सामने पर्वत-धनोत्कण्ठिक नहीं सखी है ।]

(८०) अन्तरिक्षेण पततः चयः धासात् आ वहन्ति । (श्र. ८।५।३५)

आकाशमार्गसे जानेवाले याहन सततगति करनेवाले घोर सैनिकोंको दृष्ट स्थानपर पहुँचाते हैं । [वीर सैनिक विमानोंमें बैठ यात्रा करते हैं ।]

(८१) ते भानुभिः वि तस्त्रिधरे । (श्र. ८।५।३६)

वे वीर सुर्य तजसे युक्त होकर स्थिर पव जाते हैं ।

[फणपुत्र सोमरि क्षपि ।]

(८२) स्थिरा चित् नमयिण्यथः मा जप स्यात ।
(श्र. ८।२०।१)

जो शत्रु अथके ढंगसे स्थायी हुए हों उन्हें भी मुकाम-वाले हम वीर हमसे दूर न हो जाओ । [किजयी वीर हमारे समीप ही रहें ।]

(८३) सुदीतिसिः वीर्युपधिभिः आ गत ।
(श्र. ८।२०।२)

आगत हीक्ष्य, प्रबल हथियार साथ ले दूधेर आओ ।

(८४) शिमीवतां उग्रं शुष्म धिप्र । (श्र. ८।२०।३)

उग्रगतीय वीरोंके प्रपण्ड गहरी गहसाकी हम भी भीति जानते हैं ।

(८५) यत् पजयं द्वीपानि वि पापतन् । (श्र. ८।२०।४)

जब वे वीरसैनिक चले जाते हैं, तब टापू [भारत आश्रय-स्थानों] का पतन हो जाता है । [शत्रु अपने स्थानसे हट जाते हैं ।]

(८६) अजमन् अच्युता पर्यतासः नानदति, यामेषु भूमिः रंजते । (श्र. ८।२०।५)

[वीरोंकी शत्रुदलपर की हुई] चढाईयोंके समय अडिग एवं अटल पर्वतक शत्रुदलमान हो उठते हैं और पृथ्वीभी विकम्पित होती है । [वीरोंके उचित हैं कि, वे हसी भाँति प्रभावशाली एवं सदा कल्याणी आक्रमणोद्योगिता लका देवें ।]

(८७) अमाय यत्तय यत्र यादोजसः नरः स्वक्षांसि-
तनूयु आ देदिशते, चांः उत्तरा जिहीते ।

(श्र. ८।२०।६)

जब सेना की हटचलके लिए अपने बाहुबलसे तुम्हारे वीर जिधर अपनी सारी ताकत केन्द्रित तथा एकत्रित करने प्रयुक्त होना का देने हैं उधर अपना जान पटना है कि, मर्नों आकाश स्वयं दूर होते जा रहा है [अर्थात् उन वीरोंकी प्रगति अबाध रूपसे करनेके लिए एक ओर सदा रुकी हो जाती है ।]

(८८) स्वेषाः अमचन्तः नरः भहि श्रियं वहन्ति ।
(श्र. ८।२०।७)

तेजस्वी, बलयुक्त तथा नेत्र बने हुए वीर अत्यधिक रूपसे घोसामयमान दीप्त पड़ते हैं ।

(८९) गोयन्धयः सुजातासः महान्तः इषे भुजे-
स्परसे । (श्र. ८।२०।८)

गौक्षे बहनके समान माननेवाले कुलीन वीर अन्न, भोग एवं शक्ति देते हैं ।

(९०) वृषप्रयासे वृष्ये शार्धोय हव्या प्रति भरुध्यम् ।
(श्र. ८।२०।९)

प्रबल आक्रमण करनेवाले बलिष्ठ वंशोंकी पर्यंत अन्न दे दो, शाकि बनकर बल वृद्धिगत हो । [बिना अन्नके सन्धका बल तथा प्रतिकारक्षमता ठिक नहीं सजेगी ।]

(९१) वृषणभ्वेन रथेन नः आ गत । (श्र. ८।२०।१०)

बलिष्ठ अथ जितको 'वीर्य' हैं, ऐसे रथपर बैठकर हमारे समीप आओ ।

(९२) एषां समानं अडि, याहुयु अष्टयः इवि-
सुतति । (श्र. ८।२०।११)

दूर वीरोंकी चरु (पण्डित) समान हैं, तथा दूरकी सुत्राभोंपर दास जगमया रहे हैं ।

(९३) उग्रासः तनूयु नकिः येतिर । (श्र. ८।२०।१२)

वीर पुरुष अपने सारोंकी पर्याप्त नहीं करते हैं, [अर्थात् बिना किसी शिष्टक या द्विकर्षवाहक के उखाड़ते पुदों में वीरतापूर्ण कार्य कर दिखलाते हैं और अपने प्राणोंका खतोंमें डाल देने हैं ।]

रथेषु स्थिरा धन्वानि, आयुधा, अनौपेयु अधि धियः॥
वीरोंके रथोंपर सुदृढ़, न हिकनेवाले एवं स्थायी धनुष्य

- भौर हथियार रखे जाते हैं तथा वेही वीर रणभूमिमें सफलता पाते हैं।
- (१२) शश्वतां त्वेषं नाम सहः एकम् । (ऋ ८।२०।१३)
इन शाश्वत वीरोंके चेज, यदा एवं सामर्थ्यमें अद्वितीय यथा पाई जावी है।
- (१५) धुनीनां चरम न । (ऋ ८।२०।१४)
शत्रुको विकरित करनेवाले वीरोंके कोई भी निरन श्रेणीका या हीन नहीं है।
एपां दाना मत्ता । = इनके दान बड़े भारी होते हैं,
[वे अपने प्राणोंका बलिदान करनेके लिए उद्यत होते हैं,
यही इनका यथा दान है। प्रणोये अपंगसे बदकर मत्ता और क्या दान हो सकता है ?]
- (१६) ऊतिषु सुभगः आसु । (ऋ ८।२०।१५)
सुश्रिततामें यथा भारी श्रीमार्ग छिया रहता है।
- (१९) वस्यसा हृदा उप आयवृध्वम् । (८।२०।१८)
उदार अन्तःकरणपूर्वक हमारा समीप आकर सत्यदि यथाभी ।
- (१००) चर्कपत् ना सु अभि गाय । (ऋ ८।२०।१९)
इस चलानेवाले क्लियान गीतोंको गिहाने के लिए सुर गीत गाया करता है।
यून वृष्ण पायकान् नरिष्ठया गिरा सु अभि गाय = नवभुक्त, तथा चलवान और पवित्रता करनेहारे वीरोंका नया काव्य मलीभौति सुगीली भावाजमें गाते रहते।
- (१०१) विश्वात् पृत्सु मुष्टिहा हृष्य (ऋ ८।२०।२०)
सभी सैनिकोंमें मुष्टिपीदा सम्माननीय होता है।
सहाः सन्ति तान् वृष्णः गिरा धन्दस्व ।
जो वीर सैनिक शत्रुबल का नाश करनेपरभी अपनी जनह अटल एवं अडिग हो खड़े रहते हैं, उन चलवान वीरोंकी सराहना अपनी वाणीसे करो तथा उनका अभिवादन करो।
- (१०२) सजात्येन सयन्धव मिय रिहते (ऋ ८।२०।२१)
सजातीय एवं बाधन परस्पर मिल जुलकर रहें।
- (१०३) मर्तं नः भ्रातृत्व्य उपायाति, आपित्वं सदा निधुवि । (ऋ ८।२०।२२)
साधारण कोटिका मनुष्य भी तुमसे भईपारेका पताय कर सकता है, क्योंकि तुम्हारी मित्रता सर्वत्र अचल एवं स्थिर रहा करती है।
मस्तु (हिं) २७
- (१०४) माहृतस्य मेवजं वा वसत । (ऋ ८।२०।२३)
वायुमें जो औषधीगुण विद्यमान हैं, वह हमें टा दो।
[वायुमें योग इतनेका वाक्ति विद्यमान है।]
- (१०५) याभि ऊतिभिः अवथ, शिवापिः मयः भूत । (ऋ ८।२०।२४)
जिन वाक्तिगोते तुम रक्षा करते हो, उन्हीं तुम वाक्ति-गोते हमारा सुख बढ़ाया।
- (१०६) सिन्धौ अक्षिपन्थां समुद्रेषु पर्वतेषु मेवजम् । (ऋ ८।२०।२५)
सिन्धु नदी, समुद्र एवं पर्वतोंमें औषधियां हैं। [उन औषधियोंकी जानकारी प्राप्त करनेके रोग हटाने चाहिए।]
- (१०७) विश्वं पश्यन्तः, तनूषु आ विश्रुय, आतुरस्य रपः क्षमाः विहुतं हृषर्त । (ऋ ८।२०।२६)
विश्वः निरीक्षण करे, तनीरोंको हृष्टपुष्ट बनाओ, रोग-से पीड़ित व्यक्तियोंके दोष दूर करो और दृढ़ हृष्ट भागको ठीक करो या जोड़ दो।
[गौतमपुत्र नोधा ऋषि ।]
- (१०८) वृष्णे, सुमराय, वेधसे, शार्थाय सुपुक्तिं प्र मत् । (ऋ १।६।४।१)
बल, मत्तमें, ज्ञान एवं सामर्थ्यका दर्शन करनेके लिए काम्य करो।
- (१०९) अप्यास उक्षण अनु राः अरेपसः पानकासः शुच्यः सत्यानः दिव जश्निरे । (ऋ १।६।४।२)
उद्य कोटिके, महान्, सत्कार्यके लिए अपने जीवनका बलिदान करनेहारे, पापराहित, पवित्र, शुद्ध एवं सत्यमान जो हो, वे स्वर्गसे वृत्तीयर आये हैं, ऐसा समझना चाहिए।
- (११०) अजराः क्षमोगघनः आग्निगायः हृह्वा चित् मज्जना प्र च्यावयान्ति । (ऋ १।६।४।३)
क्षण न होनेवाले, अनुदात शत्रुओंको हटानेवाले, शत्रु-सेनापर धटाई करनेवाले वीर सैनिक स्थिर शत्रुओंको भी अपने बलसे हिक्का देते हैं।
- (१११) असेषु ऋष्य निमिमृशुः नरः स्वधया जश्निरे । (ऋ १।६।४।४)
कथेपर शत्रु रक्षनेवाले और नेताके पदपर अधिष्ठित वीर पुरुष अपने बलसे विरुध्वात होते हैं।
- (११२) ईशानकृतः धुनय धूतयः रिशादसः पस्त्रिय

दिव्यानि ऊचः दुहन्ति । (ऋ. १।६।१५)

राष्ट्रनामकोटा सूत्रन करनेवाले, शत्रुको हिला देने, स्थापत्य करने तथा विनष्ट कर डालनेकी क्षमता रखनेवाले और उसे घेरनेवाले वीर दिव्य गौका दुग्धाशय दुहकर दूधका सेवन करते हैं । [भौतिकभौतिके भोग पाते हैं ।] (११३) सुदानयः शत्रुव्युत्थृतवत् पयः पिप्यन्ति । (ऋ. १।६।१६)

उत्तम दान देनेहारे प्रभावशाली वीर युद्धभूमिमें घुप-मिथित दूधका सेवन करते हैं । [दूधमें घी की मिलावट करनेवा वह शक्तिवर्धक एवं बलदायक पेय होता है ।]

(११४) महिषासः मायिनः स्यतयसः रघुप्यदः तविपीः अयुधवम् । (ऋ. १।६।१७)

घटे कुशल, तेजस्वी तथा वेगसे जानेहारे वीर अपने यज्ञोपवीत उपांग करते हैं ।

(११५) प्रचेतसः सुपिशाः विश्वेदेसः क्षप जिन्वन्तः शयसा अहिमन्ययः क्रपिभिः सयाधः सं ह्वत् ।

(ऋ. १।६।१८)

शानी, सुगर, धनिक, शत्रुविनाशक, सबको सुखी यगनेकी दृष्टा करनेहारे, बलवान एवं उरग्राही वीर अपने इविषार साध लेकर पीहित एवं दुःखी लोगोंको सुगममाधान देनेके लिए दृष्ट होकर चले जाते हैं ।

(११६) गणधियः नृगायः अहिमन्ययः शत्रा यन्धुरेषु रथेषु आतस्थौ । (ऋ. १।६।१९)

समुदायके कारण सुहानेवाले, जनताकी सेवा करनेहारे एवं उर्मासे भरे हुए वीर अच्छे रथोंमें बैठकर गमन करते हैं ।

(११७) रथिभिः विश्वेदेसः समोरुसः तविपीभिः संमिश्रताः विराट्पानः अस्तारः अनन्तशुष्माः वृष-त्पादयः नरः गभस्स्योः इषुं दधिरे । (ऋ. १।६।२०)

घनाय, वैभवशाली, एक घरमें निवास करनेवाले, पक्षमंथ, सामर्थपूर्ण, शक्तिमान, शत्रुघ्न, शत्रु कँकनेवाले धीर अच्छे ढंगसे अलकृत वीर अपने कर्षण वाण एवं तीर धारण करते हैं ।

(११८) अयासः सस्तनः ध्रुवच्युतः दुधकृतः भ्राजत्-क्रष्टयः पर्यन्तान् पथिभिः उज्जिह्वते । (ऋ. १।६।२१)

प्रगतिशील, अपनी दृष्टि से हलचल करनेवाले, सुदृढ दुर्मनोको भी अपदरप करनेकी क्षमता रखनेवाले और जिन्हें

कोई धर नहीं सकता ऐसे तेजस्वी शत्रु धारण करनेहारे वीर पहाड़ोंको भी अपने हाथियोंसे उडा देने हैं ।

(११९) घृपुं पावकं विचर्षणिं रजस्तुरं तयसं पृषणं गणं सञ्चत । (ऋ. १।६।२२)

युद्धमें प्रवीण, पवित्रता करनेहारे, ध्यानपूर्वक हलचलोंका सूत्रगत करनेवाले, अपनी वेगवान गतिके कारण धूलिको प्रेरित करनेवाले, वलिष्ठ एवं सामर्थ्ययुक्त वीरोंके संघको समीप बुलाओ ।

(१२०) धः ऊती यं प्रायत, सः शयसा जनान् अति । (ऋ. १।६।२३)

गुम अपने संरक्षणोन्ने जिन पुरुषको सुरक्षित बना देवे हो, वह सभी लोगोंमें श्रेष्ठ बनता है ।

अर्बुङ्गिः धाजः नृभिः घना भरते, पुप्यति । वह युद्धसवारोंकी सहायतासे अन्न प्राप्त करता है, वीरोंकी सहायतासे वीर्यपूर्ण कार्य करके भनयैभव पाता है और पुष्ट बनता है ।

आपृच्छयं क्रतुं भा क्षेति ।

धनन करनेयोग्य दृष्टार्थ करके यज्ञरथी बनता है ।

(१२१) चक्रेयः, पूस्तु दुष्टरं, युमन्तं, नृपुं घनस्पृत्तं, उक्थ्यं, विश्वेचर्षणिं तांक्तयं घन्तन ।

(ऋ. १।६।२४)

पुरुषार्थी, युद्धोंमें विजयी बननेवाला तेजस्वी, समर्थ, धनवान, धनयोग्य, समूची जनताका हितकर्ता युव होवे । (१२२) अस्मासु स्थिरं वीरवन्तं, क्रतीपाहं शूद्र्यासं रथि घन्त । (ऋ. १।६।२५)

हमें स्थिर वीरोंसे युक्त, शत्रुओंके पराभव करनेमें क्षमतापूर्ण धन प्रदान करो ।

[रहगणपुत्र गोतमक्रपि ।]

(१२३) सुदंससः ससयः सूनयः यामन् शुम्भन्ते विद्येषु मदन्ति । (ऋ. १।८।१)

सत्कर्म करनेहारे एवं प्रगतिशील वीर सुपुत्र शत्रुदलपर धावा करते समय सुगोभित शीघ्र पड़ते हैं और युद्धस्थलमें बड़े ही हर्षित हो उठते हैं ।

(१२४) अकं अचन्तः वृक्षिमातरः श्रियः अघि दधिरे, महिमानं आदात । (ऋ. १।८।२)

एकही पूजनीय देवताकी उपासना करनेहारे मातृभूमिके

भक्त धीर भयना यथा यदाते हैं और बटपनको पा लेते हैं।

(१२५) गोमातर विश्वं अभिमातिनं अप याधन्ते ।
(श्र ११८५१३)

गोकुलो माता समझनेवाले धीर सभी शत्रुओंका परामय करते हैं तथा उन्हें दूर ढटा देते हैं ।

(१२६) सुमत्तासः क्रुष्टिभिः विश्राजन्ते, मनोजुवः
दृपमातासः रथेषु पृथतीः अयुग्धं, अच्युता चित्
धोजसा प्रच्ययन्तः । (श्र ११८५१४)

अच्छे कम कानेइसारे धीर पुरुष या सैनिक अपने इति-
यासि सुहाते हैं। मनकी गाई बेगवान, सांघिक यज्ञसे
युक्त वे धीर अपने रथोंमें घोड़ियों को जोत लेते हैं और
अपनी शक्तिसे जो शत्रु भटक तथा अद्रिग प्रतीत होने हैं,
उन्हें अपश्य पर डालते हैं ।

(१२७) याजे धार्ष्टिं रंहयन्तः (श्र ११८५१५)

अन्नके लिए वे धीर पहाड़कीभी विचलित कर डालते हैं ।

(१२८) रघुव्यदः सन्तयः व. आ यहन्तु । (श्र ११८५१६)
वेगपूर्वक दौड़नेवाले घोड़े तुम धारोंको चहाँपर ले
भाँ ।

रघुपत्यानः याहुभि प्र जिगात ।
क्षीप्रतासे प्रयाण कर्त्तव्यते तुम लोग अपने बाहुपलसे
प्रगति करो ।

धः उरु सद्ः कृतं= बड़ा भर तुम्हारे लिए बना
रहा है ।

यहिं आ सीदत, मध्प्र अन्धस मादयध्वम् ।
शासनोपर बैठा और मिठासभरे अक्ष का सेवन करके
प्रसन्न बनो ।

(१२९) ते स्वतवसः अधर्घन्त । (श्र ११८५१७)
वे धीर सैनिक अपने पलसे वृद्धिगत होने रहते हैं ।
महित्यना नाकं आ तस्थुः ।

अपने यदपनसे धार पुरुष स्वर्गमें जा बैठते हैं ।

धिष्णु. वृषण मद्च्युतं थायत् ।

देव बलिष्ठ तथा प्रसन्नता धीरोंकी रक्षा करता है ।

जिसका मन आनन्दमयितामें दूयना उतरता हो उसकी
रक्षा परमात्मा करता है ।

(१३०) नूराः युमुधय श्रवस्यवः पृतनासु येतिरे ।
(श्र ११८५१८)

शूर योद्धा यथास्त्रिता पानेके लिए युद्धमें विजयार्थ
प्रयत्न करते रहते हैं ।

त्येषसंदशः नरः विश्वा भुवना भयन्ते ।

तेजस्वी धीरोंसे सभी भयभीत हो उठते हैं ।

(१३१) स्त्रपाः त्वष्टा मुकृतं वर्धं भवर्तयत्, नरि
अपांसि पतये घत्से । (श्र ११८५१९)

अच्छे कुशल कारीगरने सुवह अधिपार बना दिया और
एक अत्यन्त धीर पुरुषने युद्धमें विजय प्राप्त प्रदर्शित
करनेके लिए उसे हाथमें उठा लिया ।

(१३२) ते ओजसा ऊर्ध्वं अचतं मुमुष्टे, दृष्ट्वापं
पर्वतं विभिदु । (श्र ११८५२०)

उन धीरोंने पहाड़ोंपर विद्यमान जलको नीचे प्रदर्शित
कर दिया और उसके लिए नीचमें रुकावट पड़ी करनेवाले
पर्वतको भी तोड़ डाला ।

(१३३) तथा दिशा अचतं जिहं मुमुष्टे ।

(श्र ११८५२१)

उस दिशामें देहीदेशी गहसे वे पानी को ले गये ।

(१३४) न. सुधीरं रथिं घत्से । (श्र ११८५२२)

इने अच्छे धीरोंसे युक्त धन ले दो । [निम धनमें धीर-
भाव न हो, वह इमें नहीं चाहिए ।]

(१३५) यस्य क्षये पाथ, स मुगोपातमो जनः ।

(श्र ११८५२३)

जिसके धनमें देवतायां रक्षाका भाग उठा लगे है, वह
गौर्भाका परिपालन अच्छे ढंगसे करनेवाला बन जाता है ।
[अर्थत् पट सचक्रा भली भौति भरक्षण काता है ।]

(१३६) धिप्रस्य मनीनां धृमुत् । (श्र ११८६१२)

ज्ञानी को मुर्गा को सुन नो ।

(१३७) यस्य वाजिन-विभं अनु अतश्चत, सः गोमामि
यजे गन्ता । (श्र ११८६१३)

जिसके बल ज्ञानीके अनुकूल होने हैं वह ऐसे गोठों
चला जाता है कि, जहाँ पर गौर्भाकी भरमार हो । [वह
गोधनसे युक्त बनता है, यथेष्ट धन पता है ।]

(१३८) धीरग्य उर्ध्वं श्रम्यते ।

(श्र ११८६१४)

धीरकी सराहना की जाती है।
(१३९) यः पभिशुवः अस्य विश्वाः चर्पणीः
जाधोपन्तु। (क्र. १८६१५)

जो धीर शत्रुना पराभव करनेकी क्षमता रखता है, उस
का वाश्य सभी लोग मुन हैं।

(१४०) चर्पणीनां अघोभिः वयं वदादिम।
(क्र. १८६१६)

दिसानोंकी संरक्षणआधोपनाओं से पण्डित बनकर
हम दान दिया करते हैं। [यदि कृपक सुरक्षित रहें, तो
सभी प्रगतिशील हो सकते हैं, दरिद्रताको दूर गया सकते
हैं।]

(१४१) यस्य प्रयांसि पर्यथ, सः मर्यः सुभगः
पस्तु। (क्र. १८६१७)

जिसके प्रयासोंसे तुम भोग भोगते हो, वह मनुष्य
सीमापयवान एवं धन्य है।

(१४२) दशमानस्य स्पेदस्य येनतः कामस्य विद्।
(क्र. १८६१८)

शोषनापूर्वक भीरुपमीनेसे सर हो जानेतक जो कार्य
करना हो, उसकी आकांक्षाओंको तुम जान लो। [उसकी
उपेक्षा न करो।]

(१४३) यूयं तत् आविष्कृतं, विद्युता महित्वना रक्षः
विधयन्। (क्र. १८६१९)

तुम अपने उस बलसे प्रकट करो और विद्युत् जैसी
घडी शक्तिसे हुराहा बिनाश करो।

(१४४) गुप्तं तमः गृहत्, विभ्यं अग्निर्णं वि यात,
उयोसिः कर्तुं। (क्र. १८६२०)

अँधेरेको हूर हटा दो, सभी पेटुओंको बाहर भगा दो
और सबको प्रकाश दिलाओ।

(१४५) प्रवृत्तसः प्रतयसः विरोदिनः ज्ञानता
पविशुताः अजीपिण जुष्टमासः नृतमासः वि
ज्ञानजे। (क्र. १८६२१)

सुखीया बिनाश करनेहारे, चलमपच, वामी, दाँत
या सुखानेवाले, निद्र, सरल, जिनकी सेवा अपवधिक
मात्रमें लोग करते हैं तथा जो अति उच्च कोटिके नेता
पननेकी क्षमता रखते हैं, ऐसे धीर तेजसे जगभगवा
करते हैं।

(१४६) केन चित्पथा ययि अचिध्वम्।
(क्र. १८६२२)

किसीभी राहसे शत्रुदलपर की जानेवाली चढाईके पथ-
पर आकर हकट्टे बनो।

(१४७) यत् शुभे युञ्जते, अजमेपु यामेपु भूमिः प्र
रेजते। (क्र. १८६२३)

तुम जब शुभ कार्य करनेके लिए तैयार होते हो, तब
शत्रुसेनापर चढाई करते समय भूमि धरपर कौप डटती है।

ते धुल्यः धूतयः आजट्टप्यः महित्वं पनयन्त।
ये शत्रुको डिका देनेवाले तथा शस्त्रधारी धीर अपनी
मडरव प्रकट करते हैं।

(१४८) सः हि गणः स्वखुन् तविपीभिः आवृतः
अया ईशानः सत्याः कृणवाया अनेद्यः घृया अविता।
(क्र. १८६२४)

वह धीरोंका मनुष्यव अपनी निजी प्रोणासे कर्म करने-
हारा, सामर्थ्यशुक्त, अधिकारी बननेयोग्य, मलनिष्ठ, कृण
शुभानेवाला, गमिन्द्रवीय एवं चलवान है, अतः सबकी रक्षा
करता है।

(१५०) ते अमीरवः प्रियस्य धाम्नः विद्रेः। (क्र. १८६२५)

वे निद्र धीर आदरका स्थान प्राप्त करते हैं।
(१५१) आष्टिमद्रिः रयोभिः आ यात, सुमायाः इया
नः आ पतत। (क्र. १८६२६)

शस्त्रोंसे सुमग्न रथोंमें बैठकर धीर सैनिक हथर पधारें
और अच्छी कारीगरी बढाकर विपुल अन्न के साथ हमारे
समीप आ जायें।

(१५२) रथतूर्भिः अर्धैः शुभे आ यान्ति, स्वाधिति-
यान् भूम जहन्त। (क्र. १८६२७)

रथ खींचनेवाले घोड़ोंके साथ धीर सैनिक शुभ कार्य
करनेके लिए आ जाते हैं और दारुणधारी बनकर घृणीपर
विद्यमान शत्रुओंका नाश करते हैं।

(१५३) श्रिये कं यः तनुपु चाशीः, मेधा ऊर्ध्वा
कृणवन्ते। (क्र. १८६२८)

जो धीर सपत्ति तथा सुख पानेके लिएही दारुण धारण
करते हैं, वे धीर अपनी बुद्धिसे उच्च कोटिकी बना देते
हैं।

(१५४) अर्कैः ब्रह्म कृणवन्तः। (क्र. १८६२९)

स्रोत्रा से ज्ञानकी वृद्धि करो।

(१५५) अयोर्द्वान् त्रिधावतः वराहन् पश्यन्,
योजनं, न अचेति । (ऋ १।८८।५)

तद्वग्न इषियार छेकर शत्रुदल्पर चढाई करनेवाले एवं प्रमुख शत्रुओंका उच करनेवाले वीरोंको देखकर जो आयो-जना की जाती है, वह मध्यमवर्गी अपूर्ण होती है ।

(१५६) गभस्वयो स्थषां अनु प्रति स्तोमति ।
(ऋ १।८८।६)

वीरोंके वाहुओंसे सामर्थ्य जिस शत्रुपाठमें हो, उन्हीं अनुपातमें इगकी प्रशंसा होती है ।

[द्वियोदासपुत्र पदच्छेष म्रथिः ।]

(१५७) तानि सना पंस्या असत् सो सु अभि भूयना
(ऋ. १।१३०.८)

वे वीरोंकी शक्ति का ही हमसे बुरा न हो ।
असत् पुरा मा जातिषु ।
हमारे नगर ऊँच न हों ।

[मिथावरुणपुत्र अगस्त्य ऋषिः ।]

(१५८) रभस्ताप जन्मने तविपाणि व तन ।
(ऋ १।१६६।१)

पराक्रमयुक्त जीवन मिके, इमलिपु पर्वोंका सम्पादन को ।

(१५९) घृष्वय विद्वेषु उपप्रीळन्ति ।
(ऋ १।१६६।२)

शत्रुओंसे संघर्ष करनेवाले वीर बुद्धिपूर्ण मंत्रोंका करते हैं । [प्रादार्मिं जिस भौति लोग आसक्त होने हैं उन्हीं परात वे वीर योद्धा रणोत्तम मंत्रों छेकर सम्पन्न बिरत होते हैं ।]

नमस्त्रिभुवनं अस्ता नश्नन्ति, स्वतवस एविष्टतं न मर्धन्ति ।

अपने परसे, नष्ट होनेवालों की रक्षा करनेवाले वे वीर शत्रुओंके सामर्थ्यके सहारे अस्त्रदान करनेवाले का आदर नहीं करते ।

(१६०) ऊमासः द्वाशुभे रायः पोषं अरासत ।
(ऋ १।१६६।३)

रक्षक वीर दाताओंको अन्न एवं पुष्टि प्रदान करते हैं ।

(१६१) एवासः त्रिषीभिः अन्वयत, स्वयतासः प्राध्र-
जन्, प्रयतासु ऋषिषु विभ्रा मयन्ते, व. याम. चिरः
(ऋ १।१६६।४)

योगपूर्वक आक्रमण करनेवाले वीर अपनी शक्तियोंसे सशक्य प्रतिपालन करते हैं अपने आपको सुरक्षित रखकर शत्रुदल्पर धावा करते हैं । जिस समय वे अपने द्विधाओंको सुयुक्त करते हैं, तब सभी सहम जाते हैं क्योंकि इनका आक्रमण पडाही भोषण होता है ।

(१६२) त्वेषयामाः नर्यां. यत् पर्वतान् नदयन्त द्विच-
पृष्ठं अचुच्यतुः, न अजन्मन्विध्व. धनस्पाति भयते ।
(ऋ १।१६६।५)

वेगसे हमले करनेवाले तुम लोग, जोकि जनताके हितके विपु आक्रमण कर बैठते हो, जिस समय पर्वतपर से गजते हुए गमन करते हो, तब दर्या का पृष्ठभाग स्पन्दित हो उठता है और सुझारी ह्व पडाईके नीचेपर समूचे वनशक्ति भी अचभित हो जाते हैं ।

(१६३) या यः त्रिविर्दती विद्युत् ग्वत्ति, (तत्र)
शूयं सुचेतुना अरिषुग्रामाः न सुमति पिपर्तन ।
(ऋ १।१६६।६)

जब तुम्हारा तीव्र एवं दम्भानेदार द्विधियार शत्रुसे टुकट टुकट कर देता है, तब भीषण सम्प्राप्तमें तुम अपने विषय गाँव रबकर और अपने नगर सुरक्षित रखकर हमारी बुद्धि की शक्तिसे बढाते हो ।

(१६४) प्रनयधराधस. अलातुणामः अहं प्रार्चन्ति,
(तानि) वीरस्य प्रथयानि पंस्या विदुः ।
(ऋ १।१६६।७)

जिनके धनको कोई लीन नहीं सकता, जो बुद्धिमत्ता को पूरा तरह से बिरत कर डालते हैं, ऐसे वीर उपासनीय देवताकी पूजा करते हैं और उन वीरोंके प्रशुभ यक्ष एवं वीर्य उन्हीं समय प्रकट होते हैं ।

(१६५) य अभिदुनेः अघात् प्रायत, तं दातभुजिभिः
पूर्मिं रक्षत । (ऋ १।१६६।८)

जिसे नाश या पापसे तुम बचाते हो उन्हींकी रक्षा सेकड़ों उपनोगमायनोंसे युक्त गड या दुर्गोंसे तुम करते हो । [उन्हीं पूर्वतया निर्भय बना देते हो ।]

(१६६) वः स्वपु विभवानि मत्रा, वः अंसेषु त्रिपाणि
आदिता, प्रप्येषु रा द्य, व अक्ष चक्रा समया
त्रिययुने । (ऋ १।१६६।९)

तुम्हारे रक्षकोंके वस्त्राणकारक साधन रात हैं, तुम्हारे कंधोंपर आयुध हैं, प्रवास करते समय तुम अपने सभी

खानेकी चीजें रखते हो; तुम्हारे रथोंके पहिये उचित अवसरपर उचित ढंगसे घूमते हैं। [तुम शत्रुओंपर ठीक मौके पर ठीक तरह हमले करते हो।]

(१६७) नर्येषु गह्रुषु भूरीणि भद्रा, वक्षसु रुक्माः, असेषु रभसासः जङ्गमः, पविषु अधि क्षुराः, अनुधियः वि धिरे। (ऋ. १११६६११०)

मानवोंके हितकर्ता बीलोंके बाहुओंमें बहुतसी शक्तियाँ हैं, जो कि कश्यपकाक हैं, वक्षस्वरूप सुहृदोंके हार हैं, कर्षोंपर धीरभूषण हैं इनके चर्मों की घास अत्यन्त तीक्ष्ण है। ये सभी चीजें बीलोंकी सुन्दरता बढ़ाते हैं।

(१६८) विष्म विभूतय दूरेददाः मन्द्राः सुजिह्वा भासभिः स्वरितारः परिस्तुभः। (ऋ. १११६६१११)

ये धीर सामर्थ्यसंपन्न, ऐश्वर्यशाली, दूरदर्शी, हर्षित, सुन्दर वक्ता हैं, अतः अत्यन्त सराहनीय हैं।

(१६९) दूर्न दीर्घं मत्तं, सुहृते जनाय त्वजसा धराध्वम्। (ऋ. १११६६११२)

दान देना बीलोंका यदा प्रवृत्त है, पुण्यकर्मकर्ता को ये धीर दान देते हैं।

(१७०) जामित्यं शंसं, साकं नरः मनये शंसनैः श्रुष्टिं भाष्य, आ चिकिषिरे। (ऋ. १११६६११३)

बीलोंका यद्यप्येव अत्यन्त सराहनीय है। ये धीर एकत्रित रहकर अपने प्रयत्नों से सपना सरक्षण करते हैं और दोष दूर करते हैं।

(१७१) जनास. घृजने आ सतनम्। (ऋ. १११६६११४)

धीर बुद्धिश्रेष्ठमें भवना सैन्य फैलाते हैं।

(१७२) इया तन्ये यया आ यासिए। (ऋ. १११६६११५)

आशसे शरीरमें सामर्थ्य बढ़ा दो।

इयं घृजनं जीरदानुं विद्याभि।
ॐ, बल एव शीघ्र विनय मिल जाए।

(१७३) सुमाया अवोभिः आ यान्तु। (ऋ. १११६६११६)

कुशल धीर अपने सरक्षणके साधनोंसे युक्त हो घातों।
एषां नियुतः समुद्रस्य पारे धनयन्त।
इनके पीछे (सुदलकार) समुन्द्रके पार चले जाकर
पग प्राप्त करें।

(१७४) सुधिता क्रष्टि. सं मिम्यक्ष। (ऋ. १११६६११७)

अपनी पहचान इन बीलोंके समीप रहती है।

मनुष्यः योषा न गुहा चरन्ती विद्व्या सभायती।
मानवोंकी महिलाओंकी नाईं वह परदेमें रहा करती है।
(मियानमें छिपी पड़ी रहती है), या उचित अवसरपर
(सभायती) वह सामानमें प्रकट होती है, वैसेही वह तलवार युद्धके समय बाहर आ जाती है।

(१७८) एषां सत्यः महिमा अस्ति, वृषमनाः अहंयुः सुभागाः जर्नाः वहते। (ऋ. १११६६११८)

इन बीलोंकी महिमा बहुत बड़ी है। उनपर जिसका विल कैम्पन हुआ हो, ऐसी अहमहमिकापूर्वक आगे बढ़नेवाली और सांभारवसे युक्त ही जीरप्रजाका सृजन करती है।

(१७९) अत्युता धृगणि च्यवन्ते, अमशस्तान् चयते क्षातिवारः वयुधे। (ऋ. १११६६११८)

ये धीर शिवरीभूषण शत्रुओंको डिला देते हैं, अमशस्तान्को एक ओर हटा देते हैं और शान्तिपन बढ़ा देते हैं।

(१८०) शयस अन्तं शान्ति आरात्तात् नहि आपुः। (ऋ. १११६६११९)

धीरोंके बलकी धाड़ समीप या दूरसे नहीं मिलती है। धृष्णुना शयसा शत्रुघातः धृपता द्वेषः परिस्थुः। शत्रुः श्वयस, उत्साहपूर्ण मनसे वृद्धगत होनेवाला धीर

यपनी प्रचण्ड सामर्थ्य से शत्रुओंको घेर लेते हैं।
(१८१) अथ यय इन्द्रस्य प्रेष्ठा, ययं श्वः। (ऋ. १११६६११०)

आज हम परमरिता परमात्माके प्यारे हैं, वही प्रकार बल भी हम प्यारे बनकर रहें।

पुरा ययं महि अनु दून् समयै वोचमहि।
पहले से हमें बहुरूप मिले, इसद्विष्ट हार्दिकके संग्राममें

घोषणा करते भाये हैं।
श्रुशुक्षाः नरां नः अनु स्यात्।
वह ययु अशुची मानवजातिमें हमारे अनुदून् बने।

(१८२) यक्षायज्ञा समना तुतुर्घाणिः। (ऋ. १११६६११९)

हर कर्ममें मनही सन्तुष्टि दना (सिद्धिके निष्कट) श्वरा-पूर्वक पहुँचानेवाली है।

धियं धियं द्वयया दधिधे।
हर विधा में द्वयताविषयक प्रेम प्राप्त करो।

सुजिनाय अशसे सुपुक्तिभि. आ ययुः याम्।
मयकी सुदिवतिके लिए तथा सुरक्षाके लिए अष्ट मार्गों

से शत्रुओंको बाहरवार घुलता हूँ।

(१८४) ये स्वजाः स्वतवसः घृतयः, इषं सर
अभिजायन्त । (ऋ. ११६८१२)

जो इयंरहृति से कार्य करते हैं, अपने बलसे युक्त
होने हैं और शत्रुको विचलित करा देनेकी क्षमता भवते
हैं, वे धनधान्य एवं तेजस्विता पानेके लिएही उत्तरा
होते हैं ।

(१८५) अंसेपु रारभे, दस्तेपु कृतिः संदधे ।

(ऋ. ११६८१३)

(बीरंकि) शंघोर हथियार तथा हाथोंमें तलवार रहती है ।

(१८६) स्वयुक्ताः दिवः अथ आ ययुः ।

(ऋ. ११६८१४)

स्वयं ही शकर्ममें शुद्ध जानेवाले वीर स्वयं से भूमडल-
पा उतर पड़ते हैं ।

अरेणवः तुयिजाताः भ्राजदृष्टयः दृढहाणि
अच्युच्ययुः । (ऋ. ११६८१४)

निष्कलंक, बलिष्ठ, तेजस्वी भायुष धागन करनेवाले
धी सुदृढ शत्रुओंको भी पराजय कर डालते हैं ।

(१८७) ऋषिचिद्युतः इषां पुण्ड्रिणाः । (ऋ. ११६८१५)

बाहों से सुगोशित शीत पड़नेवाले वीर अक्षप्रसक्तके
लिए बहुतही श्रेण्य करनेवाले होते हैं ।

(१८९) घः सातिः रातिः अमघती स्वर्घती त्रेषा
यिपाका पिपिष्यती भद्रा वृथुजयी जजती ।

(ऋ. ११६८१७)

तुम्हारी सेवा एवं देन बलवान, सुरदायक, तेजस्वी,
परिवक्त्र, शत्रुरक्षक विघ्नम करनेवाली, कषयाणकारक,
अधिष्णु तथा दुःखमोक्ष से जुप्रनेवाली है ।

(१९१) पृश्निः महेते रणाय अयासां त्वेषं अतीकं
असूत । (ऋ. ११६८१८)

मापृभूमिने बड़े भारी युद्धके लिए धूर्तोंके तेजस्वी
सैन्यका सृजन किया ।

सप्सरासः अन्यं अजनयन्त ।

संघ बनाकर हमले चढ़ानेवाले वीरोंने बड़ी भारी एवं
अनोखी शक्ति प्रकट की ।

(१९३) तुराणां सुमतिं भिद्ये । (ऋ. ११७१११)

शीघ्रही विजयी बननेवाले वीरोंकी सबकुछ की इच्छा
या चाह में करता हूँ ।

हेळः नि घत्त =

द्वेष एक ओर करो । वैरकी शक्तिमें रस दो ।

(१९५) यामः चित्रः, ऊर्वा चित्रा । (ऋ. ११७२११)

वीरोंका शत्रुरूप जो व्याकरण होता है, वह अच्छा
है और उनका संरक्षण भी अच्छा अनोखा है ।

सुदानवः अहिभानवः ।

ये वीर बड़े ही उत्कृष्ट दानी हैं तथा इनका तेज भी
कमो नहीं घटता ।

(१९७) छणस्कन्दस्य विश परि वृत्तः । (ऋ. ११७२१२)

विनके की नाई अपनेभाव विनष्ट होनेवाली प्रजाका
विनाश न होने पाय, ऐंगी भाषोजना करो ।

जीवसे ऊर्ध्वान् फर्तः ।

शीघ्रकालतक जीवित रहनेके लिए उन्हें सघपदपर
अधिष्ठित करो ।

[शुनरुपुज गृत्सप्रद क्षपि ।]

(१९८) दैव्यं शर्धः उप मूये । (ऋ. २।२।११)

दिव्य बलरी में प्रशाम करता हूँ ।

सर्वयोरं अपरयसाचं श्रुयं रयिं दिवे दिवे
नशामहे ।

सभी वीर तथा अपरयोसे युक्त और वीरों प्रदान करने-
वाला धन हमें प्रति दिन मिलना रहे ।

(१९९) घृण-भोजसः सविपीभिः अर्थिनः शुशुचानाः
गाः अप अवृण्यत । (ऋ. २।३।१५)

शत्रुका पराभव करनेहारे, सामर्थ्यके कारण पूरा बने हुए
तेजस्वी वीर गौओंके (शत्रुके कारागृह से) छुड़ा देते हैं ।

(२०१) अभ्यान् उक्षन्ते, गाशुभिः आजिपु तुरयन्ते ।
(ऋ. २।३।१६)

वीर वैदिक घोड़ोंको बलिष्ठ बनाते हैं और घोड़ोंपर बैठ-
कर वे युद्धमें शत्रुपूर्वक चले जाते हैं ।

हिरण्यशिप्राः समन्वयः दविष्यतः पृश्नं याध ।

स्वर्णिल शिरोवेष्टन पहननेवाले, लामाही तथा शत्रुको
त्रिकम्पित करनेवाले वीर अक्षको प्राप्त करते हैं ।

(२०२) जीरदानवः अनवधराधसः ययुनेपु धूर्णदः
विश्रा सुयना आ वयश्चिरे । (ऋ. २।३।१४)

शीघ्र विजयी बननेहारे, ऐसा धन समीप रखनेहारे
कि जिसको कोईभी छीन नहीं सकता ऐसे वीर पुरय
सभी कर्मोंमें प्रयुक्त जगह बैठकर सबको आश्रय देते
हैं ।

(२०३) इन्धन्वाग्निः रक्षादृष्यभिः धेनुभिः आ गन्तवः ।
(ऋ २३४।५)

द्योतमान और बड़े बड़े धनवाली गौबोकें ह्रुडकीं साथ
लिये हुए हुए धर आओ ।

(२०४) धेनुं ऊधनि पिप्यत, वाजपेदासं धियं कर्तं ।
(ऋ २३४।६)

गौके ह्रुडकीं मात्रा बटाओ और देव्य कर्म करो कि
आससे बुद्धि पाकर सुरक्षा बड़े ।

(२०५) ह्यं दात, घृजनेपु कारये सर्नि मेधां अरिष्टं
दुपरं सहः (दात) । (ऋ २३४।७)

अन्नका दान करो । सुदमं कुतकामापूर्वक कर्तव्य करने-
हारेको देन, बुद्धि और विनष्ट न होनेवाली अजेय शक्तिका
प्रदान करो ।

(२०६) सुदानया रुषमवक्षस, भगे अश्वान् रयेपु
आ घृजते अनाय । ह्यं इप पिन्वते । (ऋ २३४।८)

उत्तम दान देनेहारे, छातीपर स्वर्णहार धारण करनेवाले
वीर मैत्रिक देशर्षके लिये जब अपने रथोंकी अश्व जोतते हैं
[सुदके लिए तैयार बनते हैं] तब उनकाको विपुल अन्नका
दान देते हैं ।

(२०७) रिपः रक्षत, तं तपुया चक्रिया अभि वर्तयत,
अदासः धघः आ हन्तन । (ऋ २३४।९)

दशुभोंसे हमारी रक्षा करो, उन दानुभोंको तप वे हुए
चक्र नामक दाखसे बिल्द करो और बंदूक सुदमनका बध कर
वालो ।

(२०८) तत् चित्रं याम चेतिते । (ऋ. २३४।१०)

बह अनूठा आक्रमण एतद रूपसे वीर पढता है ।
आपयः पृथ्व्याः ऊधः दुहु ।
मित्र गौके धनका दोहन करते हैं [और उस दुग्धका पान
करते हैं] ।

(२११) क्षोणीभिः अरणेभिः अग्निभिः क्रतस्य सद्नेपु
वयुषु । अत्यन प्राज्ञसा सुबुध्दं सुपेदासं वणे
दधिरे । (ऋ २३४।१३)

केनरिया घरदीं पहने हुए वीर ब्रह्मदण्डमें सम्मानपूर्वक
घैरते हैं और अपने विनोय बरसे सुदरा छवि धारण कर लेते
हैं [अर्थात् सुदाने लगते हैं] ।

(२१२) अवरान् चक्रिया अयसे अमिष्टये आ वर्तत ।
(ऋ २३४।१४)

अधे वीरोंको मनये रक्षणार्थं और अभीष्ट कर्मकी पूर्तिके
लिए समीप जाता हूँ ।

ऊतये मदि चरुयं इयानः ।
अपने रक्षणके लिए वीर बड़े स्थान या गृहको प्राप्त होता
है ।

(२१३) अंहः याति प रयथ, निद मुञ्चथ, ऊतिः
अर्वाची सुमतिः धो सु जिगानु । (ऋ २३४।१५)

पापसे बचाओ, निश्चय न घुटाओ । परक्षण तथा सुबुद्धि
हमारे निकट आ पहुँचे ।

[गार्ग्यपुत्र शिष्यामित्र ऋषि ।]
(२१४) याजाः तविगीभिः प्र गन्तु, शुभं संमिन्नाः
पृपतीः अयुक्षत, अद् भ्याः विन्वयेदसः पृहदुक्षः
परैताम् प्र वेपयन्ति । (ऋ २३४।१६)

बलिष्ठ वीर अपने बलोंके साथ दानुदलपर चढाई करें,
लोकदण्डाणके लिए इच्छु होकर वे अपने घोड़ोंको रथमें
जोत दें (वे तैयार हों) । न दधनेवाले वे वीर सब धनों
एव बलोंसे युक्त हो परंतुतुव स्थिर दानुभोंकीनी कँपा देते
हैं ।

(२१५) वयं उग्रं त्वेयं अयः आ ईमहे । (ऋ २३४।१७)

हम उग्र, नेजरी संरक्षक सामर्थ्यकी हज्जा करते हैं ।
ते वर्णनिर्णिजः स्वामिनः सुदानयः ।
वे वीर स्वदशी बरही पहननेवाले हैं और बड़े भारी वक्ता
तथा विद्वान्त दानी हैं ।

(२१६) गणे गणं प्रातं प्रातं भामं भोजः ईमहे ।
(ऋ २३४।१८)

हर वीरसमुदायमें सांविद्ध बल तथा भोज पनपने लगे
यही हमारी चाह है ।

अनवभ्रारधसः धीराः चिदयेपु गन्ताटः ।
विनका धन कोईभी ऊँच नहीं सकता, ऐसे वे वीर रण-
भूमिमें जानेवाले ही हैं ।

[अग्निपुत्र शिष्यामित्र ऋषि ।]
(२१७) यक्षियाः धृष्णया अनुष्वधं जद्रोघं श्रयः
मदन्ति (ऋ. ५।५२।१)

वृद्धांश धीर, वृद्धदलका वरान्त करनेहारी शक्तिसे
सुक शोकर, पैरभारहित बस पाकर प्रमत्तचेता हो जाते
हैं।

(२१८) ते धृष्ट्याया स्थिरस्य शचसः सखायः सन्ति।

(ऋ ५।५२।२)

वे धीर वृद्धदलकी धर्मियों वरानेवाले तथा स्वामी
बलके सहायक हैं।

ते यामन् शम्भतः धृपद्भिः रमनां वा पान्ति।

वे शत्रुपर आक्रमण करते समय शम्भत धिजयी सामर्थ्य
से स्वयं ही चारों ओर रक्षाका प्रबंध करते हैं।

(२१९) ते स्पन्द्रासः लक्षणः शर्धरीः आति म्बन्दि।

(ऋ ५।५२।३)

वे शत्रुदलको मारे डारके शम्भित करनेवाले तथा बलिष्ठ
है धीर धीरताके कारण शम्भके समक भी सुदुर्गोपर घावा
कर देते हैं।

महः मग्गहे।

इन धीरोंके सेत्रका मगन करते हैं।

(२२०) विभ्ये मानुया युगा मर्त्य रिपः पान्ति,
धृष्ट्याया स्तोमं वर्धामहि। (ऋ ५।५२।४)

समी धीर मानधी स्वर्धामिं शत्रुओं से मानधको
सुरक्षित रखते हैं, इतीक्षिषु हम उग धीरोंके शौर्यपूर्ण
काय स्मरणमें रखते हैं।

(२२१) अर्धन्तः मुदानयः अस्वामिशपसः दिवः नर।

(ऋ ५।५२।५)

वृद्धवीर, दानधूर तथा संपूर्णतया बलिष्ठ धीर वे स्व-
सुख स्वर्गके नेता धीर हैं।

(२२२) रफमैः युधा क्रम्याः नरः क्षर्षीः प्लान्
अरुक्षत, आनुः रमना अर्त। (ऋ ५।५२।६)

हारा तथा शुद्ध शक्तिमेंसे विभूषित बड़े भारी नेता
धीर अपने शत्रु इन शत्रुओंपर छोड़ते हैं, स्व स्वका उज
स्वयं ही उनके निकट चला जाता है। [वे सेत्ररही दीख
पड़ते हैं।]

(२२३) सत्यशयसं क्रम्यसं शर्धः उञ्छंस, स्पन्द्राः

नरः शुभे रमना प्रयुक्षत। (ऋ ५।५२।७)

सत्य बल से युक्त, आक्रामक सामर्थ्यकी सराहना करो।
शत्रुको विकम्पित करनेवाले वे धीर अच्छे क्रमोंमें स्वयंही
सुद जाते हैं।

मरः (दि.) १८

(२२४) रथानां पन्था भोक्तासा आति विन्दन्ति।

(ऋ ५।५२।८)

अपने स्वयंके पादियों से तीन मार्गके स्वयंकोभी शिष्ट-
बिच्छिन्न कर छोड़ते हैं।

(२२५) आपयय. विपययः कन्त पथाः अनुपथा-

विस्तारः पथं भोहते। (ऋ. ५।५२।९)

समीवर्धी, त्रितीय, गुह तथा अहकूक इत्यादि विभिन्न
मार्गोंसे प्रयोग करनेवाले धीर अपना बल विरुद्ध करके
सुम कर्मके लिए प्रकटा बदन करते हैं।

(२२७) नरः निवृत्तः परावृत्ताः ओहते, चित्रा रूपाधि
वृथया। (ऋ. ५।५२।११)

नेता धीर समीव वा दूर रहकर बहके लिए शत्रु छोकर
जाते हैं, उन समक उमके धीरके रूप बदरी स्वर्गीय
वीर पड़ते हैं।

(२२८) कुमभ्ययः उत्सं आनुत्तुः, ऊया उति रिचे
भासन्। (ऋ. ५।५२।१२)

शत्रुभूमिकी पूजा करनेहारे धीर जलाशयोंका उल्लस
करते हैं; वे संरक्षक धीर शत्रुओंको शोधितकरते हैं।

(२२९) ये क्रम्याः क्षाधिचिद्युतः कययः वेधस उन्ति,
नमस्य, गिरा रमय। (ऋ ५।५२।१३)

जो धीर बड़े सेत्ररही शत्रुव्य धारण करनेहारे, लानी
तथा कथि है, इनका शक्तिधारण वा मगन करना धीर
मयनी वाणी से उन्हें शक्ति रखना चाहिए।

(२३०) ओजसा धृष्णयः धीमिः स्तुताः।

(ऋ ५।५२।१४)

अपनी सामर्थ्यके शत्रुका विनाश करनेहारे धीर सुदि-
पूर्णक प्रशंसित होनेयोग्य हैं।

(२३१) पूर्णां देवान् उञ्छ सूरिभिः यामभुतेभिः
अजिभिः दाना सचेत। (ऋ ५।५२।१५)

इन देवी धीरोंके समीव जानी तथा आक्रमणकी वेशमें
बिख्यात धीर गणवेश से विभूषित धीर दान छेदर पड़-
ते हैं।

(२३२) गां पृश्निं मातरं प्रवोचन्त। (ऋ ५।५२।१६)

वे धीर कह चुके हैं कि, गौ तथा श्रुमि हगारी माना
है।

(२३३) भुतं गव्यं राघः, अदव्यं राघः निमृजे।

(ऋ ५।५२।१७)

विद्यवात गोक्षत तथा अक्षयकको मर्छां मूर्ति घोकर
सुखश्च स्वता ह ।

(२३६) मर्याः अरेपसः नरः पदयन् स्तुधि ।

(ऋ. ५।५।११)

इत मानवी निशेष वीरोंको देखकर प्रथमा करो ।

(२३७) स्वमानयः अजिषु याजिषु अशु रुक्मेषु

दाविषु रेषु धन्वसु ध्यायाः (ऋ. ५।५।१४)

तेजस्वी वीर गणवेश पवनकर घोड़े, माका, हार, जकं-
कार, रथ एवं धनुष्यका आश्रय करते हैं ।

(२३८) जीरदानयः मुदे रथान् अनुदधे ।

(ऋ. ५।५।१५)

स्वतित विजयी बननेहार वीर आश्रयके लिए रथोंपर
बैठते हैं ।

(२३९) सुदानयः नरः द्वाभ्युपे सं कोशं आ अशु-
क्यसुः, धन्वना अनुयन्ति । (ऋ. ५।५।१६)

दानी एवं नेता वीर उदार युद्धके लिए जो बनभावहार
संकर करते हैं, इन्हींका साथ वे अनुकारी बनकर प्रमाण
करते हैं ।

(२४४) शर्षे शर्षे मारतं-मारतं गणं-गणं सुशालिभिः
धीतिभिः अनुक्रामेम (ऋ. ५।५।११)

प्रत्येक सेनाके विभातके साथ अच्छे अनुशासनसहित
अच्छे विचारों से युक्त होकर हम लड़ाई चलाते हैं ।

(२४६) सौकाय तनयाय अक्षितं धान्यं वीजं धहृष्ये,
धिभ्वायु सौमगं अस्मभ्यं धत्सन् । (ऋ. ५।५।१२)

बाह्यपक्षोंके लिए नष्ट न होनेवाला धान्य तुम कामो
और दीर्घ जीवन तथा सौभाग्य इमें प्रदान करो ।

(२४७) स्वस्तिभिः अययं हित्वा, अरानी- तिरः निदः
जतीयाम, योः सं उखि भेषजं स्रह स्वाम ।

(ऋ. ५।५।१३)

पदपात्रकारक भावनेसे शेष दूर करके सन्तुष्टों तथा
गुप्त निम्नों को दूर दहा दें और वृत्तसे पाये जानेवाला
सौभाग्य एवं तेजस्विता बढ़ानेवाला औषध हम प्राप्त
करें ।

(२४८) यं प्रायष्ये, सः मर्त्यः सुदेयः समह, सुवीरः
धसति । (ऋ. ५।५।१४)

ये वीर निमका संरक्षण करते हैं, बहु जलन्व तेजस्वी,
महायुक्त वीर बन जाता है ।

ते स्वाम= हम प्रभुके प्यारे हों
(२४९) पूर्वान् कामिनः सर्वान् ह्य । (ऋ. ५।५।१५)
पदसे परिचित प्रिय मित्रोंको हम अपने समीप बुलाते
हैं ।

(२५०) स्वमानय शर्षाय चायं प्रानज ।

युस्रभ्रवसे महि नृम्णं आर्चत (ऋ. ५।५।११)

तेजस्वा बलका वर्णन करो और तेजस्वी वश पामेवाके
वीरोंको बड़ी मारी देन देकर इनका संकार करो ।

(२५१) तविषा- वयोधुषः अश्वयुजः परिजयः ।

(ऋ. ५।५।१२)

बलिह, बयोवृद्ध एवं घोड़ोंको रथोंमें बोलनेवाले वीर
प्रायं और संचार करते हैं ।

(२५२) नरः मद्मदिष्यतः पर्यतःपुतः ह्राहुनिवृतः
स्तनयदमाः रभसा उदोजसः मुहुः चित् ।

(ऋ. ५।५।१३)

इतिवारोंसे चमकनेवाले वीर नेता पर्यंतोंकीमी हिकाने-
वाकं तथा बलसे युक्त और वर्णतीव सामर्थ्यसे पूर्ण एवं
बेगवान हैं इनके लिए विशेष बलिह होकर बारबार हमके
करते हैं ।

(२५३) धूमयः शिकसः यत् अफत्स् अहानि अन्त-
रिक्षं रजांसि अजान् दुर्याणि वि, न रिप्यय ।

(ऋ. ५।५।१४)

सन्तुष्टोंकी हिकानेवाकं वीर बलवान हो जब रातदिन
अन्तरिक्ष, बृहिसभ भूमिभाग एवं बीडह स्थलोंमें से पके
पाते हैं, तब वे धकावटकी अशुभूति म कें । [इतनी शक्ति
जन्में वह काय ।]

(२५४) तत् योजने वीर्यं दीर्घं महित्वनं ततान, यत्
यामे अगुर्भातशोचियः अतभवदां गिरिं नि अयातन ।

(ऋ. ५।५।१५)

युद्धगी आयोजना, बराकम, बहा मारी वीर्य बहुतही
केल युक्त है, जब तुम सन्तुष्ट पदाईं करते हो, तब पक्ष
युद्धात् तेज घटता नहीं, किन्तु त्रिधर बोधेपर बैठकर सामा
भी वृद्ध प्रतीत हो उधर भी, बिहट पहावपरभी तुम
आक्रमण करही सकते हो ।

(२५५) शर्षेः अश्राजि, अरमतिं अनु नेयथ ।

(ऋ. ५।५।१६)

युद्धात् बह विद्योतित हो बडा है, भाराम न करते हुए

पुत्र अनुकूल मार्गसे अपने अनुयायियोंको के बढो ।

(१५६) यं सुपूढथ स न जीयते, न हन्यते, न क्षेपति, न व्यथते, न रिप्यति । (श्र. ५।५४।७)

धीर जियको सहायता पहुँचाने हैं, यह न पछाजित होता है, न किसी से माराही जाता है, न बिनष्ट होता है, न दुर्भाग्य बनता है और न क्षीणभी होता है ।

(१५७) प्रामजितः नरः हनासः अस्वरत्न ।

(श्र. ५।५४।८)

शत्रुके दुर्गोंको क्षीणकर अपने अर्थात् करनेवाले धीर सब बेगले दुहमनोंपर बडाई कर डाकते हैं, तब वे बड़ी भारी गर्जना करते हैं ।

(१५८) इयं पृथिवी अन्तरिक्ष्याः पथ्याः प्रयत्नतीः ।

(श्र. ५।५४।९)

धीरोंके सिद्ध हुए वृत्तीपरके तथा अन्तरिक्षके मार्ग साक्ष होते जाते हैं ।

(१५९) समरसः स्वर्नरः सूर्ये उदिते मद्ध्य. क्षिपतः अग्नाः न अधयन्त, सद्यः अध्वनः पारं अद्रनुध ।

(श्र. ५।५४।१०)

बहिरु धीर सूर्योदय होनेपर प्रसन्न होते हैं । उनके शीतनेवाले घोड़े जबतक थक नहीं खाते, तभीतक वे अपने स्थानपर पहुँच जायें ।

(१६०) अंतेषु क्रष्टयः परसु खाद्ययः, यक्षःसु रुफमा, गभस्तयोः विद्युतः शीर्षसु शिप्राः । (श्र. ५।५४।११)

धीर सैनिकोंके कंधोंपर आँके, पैरोंमें तोड़ बलरथरूपपर सुवर्णहार, हाथोंमें तलवार और मखरुपर तितोवेक्षण विद्यमान हैं ।

(१६१) अगृभीतशोचियं रुशत् पिप्पलं विधूनुध, पुजना समकथन्त, अतिवियमन्त । (श्र. ५।५४।१२)

अक्षत लेखसी, परिपक्व फलको घूस दिहाकर प्राप्त करो, (प्रयत्नपूर्वक कष्ट वा क्षामो) बर्छोंका संहरण करो और वेगली बनो ।

(१६२) रथ्यः वयस्वन्तः रायः स्याम, न युच्छति सहस्रिणं ररन्त । (श्र. ५।५४।१३)

हमारे मार्ग अथ तथा अनोके सुक हो, न नष्ट होनेवाला हजारोंगुना धन दे दो ।

(१६३) न्यूनं स्फार्हीरं रथिं, सामविषं क्रथिं अवयः, भरताय अर्थन्तं चाजं, राजानं छुष्टिमन्तं धत्य ।

(श्र. ५।५४।१४)

बर्णन करनेयोग्य वीरोंके सुक धन हमें दो, सामगानन करनेवाले तलवारोंकी रक्षा करो, लोगोंके पोषणकर्तारोंके घोड़े देकर पयांस नष्टभी दे दो और उनी प्रकार नरसको बैभववाजी बना दो ।

(१६४) यत् प्रविणं यामि, येन नूनं धमि ततनाम ।

(श्र. ५।५४।१५)

यह धन चाहिए, जो सभी लोगोंमें विभक्त किया जा सके ।

(१६५) ध्याजहृष्टयः रुफमवक्षसः वृद्धत् वयः वधिरे, सुयमंभिः आनुभिः अश्वैः ईयन्ते । (श्र. ५।५४।१६)

अमकीक इषियार धारण करनेहारे और यक्षरथरूपर अणुमुद्रा रखनेवाले धीर बहुतया अन्न समीप रगत हैं और अमी भाँति मित्राये हुए घोड़ोंपर बैठकर जाते हैं ।

रथाः शुभं यातां अनु अन्तस्तत ।

गुहारे रथ शुभ कार्य के लिए जानेवालोंके मार्गोपा अनुपगण करो ।

(१६६) यथा विद्. स्वयं त्रिपिं वधिष्ये, महान्तः उर्विया वृद्धत् विराजय । (श्र. ५।५४।१७)

जैक तुम ज्ञान पाकर स्वयंही बलका धाम टारते हो, अतः तुम सखसुख बढे हो और अपनी मातृभूमिकी सेवा के लिए जागृत रहकर बहुत ही सुदारे हो ।

(१६७) सुभ्यः साकं जाताः साकं उक्षिताः नरः

अिये प्रतरं वावृषुः । (श्र. ५।५४।१८)

अच्छे कुडीन, सबमें रहकर सामुदायिक ढंगसे अपना बल प्रकट करनेहारे धीर सबकी प्रगतिके लिएही अपनी लक्षि बढाते हैं ।

(१६८) वः महित्वनं आभूयेष्यं, अस्वान् अमृतत्वे द्ध्यातन । (श्र. ५।५४।१९)

तुमहारा बहरवन गुहारे किए भूयणावद है, हमें तुममें रखो ।

(१६९) यत् अश्वान् धूर्णुं अयुग्मं हिरण्ययान् अत्कान् प्रत्यमुग्मं विश्वाः स्फुध- वि अस्वयथ । (श्र. ५।५४।२०)

अब तुम घोड़ोंको रथके अग्रभागमें जोतते हो और अपने सुवर्ण कवचोंको पहनते हो, तब तुम ममूचे हाथोंको सुदूर अगा बेटे हो ।

(१७०) वः पर्वताः नद्यः च न वरन्त, यत्र अदिध्वं तत् गच्छथ. चावापृथिवीं परि चायत ।

(श्र. ५।५४।२१)

तुम धीरोंके मार्गमें पढ़ाई या नविर्षी रजकवट नहीं छाक
बन्दगी है। बिबर तुम्हें बड़ाई करनी दो, उधर मजमें चले
जाओ। भावाकसे के मूभितक मन चाहे उधर तुम ब्रमते
चको।

(१७२) पूर्व, नूतनं, यत् उच्यते, दास्यते, तस्य नचे-
दसः प्रचय। (ऋ. ५।५।५८)

जो छुडगी बढिया और घरारपीब है, चाहे यह सुराना
बा गया हो, तुम उससे डीक डीक परिचित रहो।

(१७३) असम्भयं बहुलं द्रामं वियन्तन, वः मृज्जत।
(ऋ. ५।५।५९)

इमें बहुत सुख से दो और इमें भावन्दिह करो।

(१७४) पूर्वं अस्मान् अंहतिभ्यः यस्याः अल्ल निः
नयत। दर्थे रयीणां पतयः स्वामि (ऋ. ५।५।६०)

इमें तुम्हारे तुम्हारेके लिए तुम, उपभिवेद बताने योग्य
हमर की मोर इमें के चको और ऐसा प्रबंध करो कि, हम
धनके बाविपति हों।

(१७५) शार्ङ्गन्तं रुक्मेभिः क्षालिभिः पिष्टं गर्णं भय
यिदा। भव ह्यय। (ऋ. ५।५।६१)

घुनुपुत्रक और बासूणको धुंछन धीरोंके दक्षकी
प्रजाके हितके लिए इधर लुकाओ।

(१७६) प्राशरः भीमसंक्षदाः कृदा धर्षे।
(ऋ. ५।५।६२)

धर्षणके योग्य और भीषण शरीरत्वाके इन धीरोंको
अंतःकरणपूर्वक हृदिगत करो, [दिखे भीमकाय तथा सराह-
नीय धीर विम प्रकार बढने लगे, ऐसी लगन से बंदखरा
करो।]

(१७७) मीळहुम्नती पराहता मवन्ती अस्मत् आ
पति। (ऋ. ५।५।६३)

इनेदुष्टक और जिसे कृश पराभूत नहीं कर सके, ऐसी
बद सेना सदर्थ हमारी मोरही बढगी चली जा रही है।

यः अमः दिर्मावान् दुष्टः भीमयुः।
हुम्हारा वह भीषण है, क्योंकि कार्यकुशल जग्य भी तुम्हें
भेर नहीं उढते।

(१७८) ये योजस्ता यामभिः अदमानं गिरिं स्वयं
पर्यन्तं प्रस्थापयन्ति। (ऋ. ५।५।६४)

जो धीर अपने यामर्थ से आत्ममय दारके पर्यन्तके मोर
अदमानको घुनेवाले पडाइको घोट देवे है।

(१७९) समुक्षितानां एषां पुङ्गवम् अपूर्व्यं ह्ये।

(ऋ. ५।५।६५)

इकट्टे षडे हुए इन धीरोंके इस षडे अपूर्व दृढकी मैं
सराहना करता हूँ।

(१८०) रथे अर्याः, रथेषु रोहितः अजिरा वहिष्ठा
हरी वोळहवे धुरि पुष्टमध्यम्। (ऋ. ५।५।६६)

तुम रथमें छाक रंगवाली हिनियाँ, रथोंमें छुणासार
और बेगवान, खींचनेकी क्षमता रखनेवाले घोड़े रथ होनेके
लिए रथमें जोतते हो।

(१८१) अरुपः सुविस्वनिः दशतः वाजी इह धायि स्म
यः यामेषु विरं मा कर्त्तु, तं रथेषु प्रचोदत।
(ऋ. ५।५।६७)

रुक्मण्डा, दिनदिनानेवाका सुन्दर घोडा यहाँपर जोत
रखा है। अब भाकमल करनेमें देरी न करो, रथमें बैठकर
उसे हाँकना शुरू करो।

(१८२) यस्मिन् सुरणानि, अवस्युं रथं ययं धा
हुषामहे। (ऋ. ५।५।६८)

जिसमें रमणीय वस्तुएँ रखी हैं ऐसे पदारथी रथकी
सराहना हम कर रहे हैं।

(१८३) यस्मिन् सुजाता सुभगा मीळुपी महीयते,
तं यः रथेषु त्वेषं पनभ्युं शर्षे आहुषे।
(ऋ. ५।५।६९)

जिसमें अथडे भावयुक्त तथा प्रसन्ननीय शकिका महारथ
प्रकर होता है, उस तुम्हारे रथमें शोभायमान, मेजरवी, हतुल्य
बलकी मैं सराहना करता हूँ।

(१८४) सजोपस्तः हिरण्यरथाः सुचिन्ताय आगन्तन
(ऋ. ५।५।७०)

तुम पृच्छी क्याउसे प्रभावित होकर और तुवर्षके
रथमें बैठकर हमारा हित करनेके लिए इधर पधारो।

(१८५) पृष्टिमातरः वारीमन्तः प्राष्टिमन्तः मनीषिणः
सुधन्वानः इपुमन्तः निपङ्गिणः स्वध्याः सुरथाः सु-
आयुधाः शुभं वियायान। (ऋ. ५।५।७१)

मृगिको प्राणाकी नाई अ दारपूर्वक खेलेहारे धीर हुडार
तथा अले लेटर, मननशील धनकर, बढिया धनुष्यबाण
एवं धूर्णर सधमें बैठकर उकूट घोड़े, रथ और हथियार
प्राण कर धनशका हिय करनेके लिए चके जाते हैं।

(१८६) यसु दाशुपे पर्वतान् धूलुथ । वः यामनः भिया धना निजिहते । यत् शुभे उत्राः पूषतीः अयुष्मन्, पृथिवीं क्रोपयथ । (श्र. ५।५।५३)

उद्गार मानसोंको भन देनेके लिए तुम यदासोंके फे डिवा देते हो, तुम्हारी चपडोंके भय से सब कोंपने लगते हैं, उस यदप्राण करनेके लिए तुम जैसे शूर वीर अपने रथको घन्नेवालों हिरनियों जोड़ देते हो, सब समूची पृथ्वी धोलका बहती है ।

(१८७) वातस्वियः स्रुतददाः सुपेदासः पिशङ्गाभ्याः श्रदणाभ्याः श्रेरेपसः प्रत्यक्षसः मदिना उरयः । (श्र. ५।५।५४)

वेपस्था, ममात रूपवाले, श्राद्धरूपक रूपवाले, भूरे और काङ्कामय बोडे रखनेवाले, होषरहित तथा दस्तुवी विनष्ट करनेवाले धीर अपने महारामके बहूत चडे हैं ।

(१८८) शक्तिमन्तः सुदातवाः त्येप-संष्टवाः अन्वयश्र-राघसः जलुवा सुजातासः हफमवक्षसः अर्काः अमृतं नाम भेजिरे । (श्र. ५।५।५५)

गणवेश परतकर उद्गार, सैजस्वी, घन सुरक्षित रखनेवाले, कुशील परिवारमें पैदा हुए, गलेमें रत्नसुमामित्त डार शाले हुए, सूर्यतुल्य तेजस्वी प्रघोत होनेवाले, धीर भयर यदा वाले हैं ।

(१८९) वा अंसयोः क्रष्टयः, चरहोः सटः ओजः बले अधिहिते, शौर्यं तु वृग्णा, रथेषु विग्णा आयुष्ठा, तदुपु श्रीः आधि पिपिशे । (श्र. ५।५।५६)

तुम्हारे कंधोंपर भाले, कोंडोंमें बल, नारर गार्के, रथोंमें सभी शायुष और शरीरपर शोभा है ।

(१९०) मोमन् अध्वयत् रधनत् सुधीरं चन्द्रयत् राधः नः दद, नः प्रशस्ति कुलत, वः तयसः अर्क्षीय । (श्र. ५।५।५७)

गौभों, मोर्धों, रथों, धीरयुक्तों से युक्त और विशुद्ध सुवर्ण से पूर्ण अन्न हर्गों हो, हमारे वैभवको बढ़ानी और तुम्हारा संरक्षण हमें मिलता रहे ।

(१९१) तुविमघासः क्रुतदाः सत्यश्रुतः फनयः युवानः पृष्टिदुक्षमाणाः । (श्र. ५।५।५८)

बहूत मेघवर्णवाले, सत्य जाननेवाले, ज्ञानी, युवक तथा बडवाग पत्नी ।

(१९२) खराजः आश्वभवाः भगवत् वदन्ति, उत अमृतस्य ईशारे, एषां नन्यसीवां तविर्मानन्तं गणं म्नुये । (श्र. ५।५।५९)

स्वर्भसासक होते हुए ये धीर जदर जानेवाले घोडोंपर बडकर वा गेले घोडे जोतकर पैमपूर्वक प्रयाण करते हैं, भगवन्त पाते हैं । इनके स्तुत्य और भडवान (संपकी स्तुति करता है) ।

(१९३) ये मयोभुवः, महित्वा धमिताः तुविराघसः नूनं तवसं खादिहस्तं शुनिवतं भायिनं दातिवारं त्येषं गणं घंदस्य । (श्र. ५।५।६०)

सुप्त देनेवाले, त्रिगडा बडप्यन वालीन हो ऐसे, सिद्धि पानेवाले धीर हैं उनके बलिष्ठ भाभूपणयुक्त, बलुको दिका देनेवाले, कुतक, उद्गार, तेजस्वी संपकी प्रणाम करते ।

(१९५) यूयं जनाय इयं विभ्रतसं राजानं जनयथ युष्मत् सुपिहा वाहुजुतः पतिः युष्मत् सद्भ्यः सुवीरः पति । (श्र. ५।५।६१)

तुम जनताके लिए ऐसे बरेसफा सुजन करते हो, जो घडे बडे प्रयतिजोड कायं करनेका भाही भवे । तुम जैसे धीरोंमें से ही वितेप वाहुयलते युक्त सुधियोदा (Boser) शूर, विषयाव हो उठता है और तुममें से ही अष्टे घोडोंको सभीप रखनेवाला ग्रेह धीर जनताके सम्मुख भा उपस्थित होता है ।

(१९६) अन्तरमाः शरुवाः उपमासः रभिष्टाः पृष्टोः पुवाः स्वयं मत्या सं मिमिभ्रुः । (श्र. ५।५।६२)

समान स्वामं रदनेवाले, सवपंनीव, समान कदवाले, बेगाताकी और मातृभूमिके सुवृत्र होने हुए ये धीर अपने विघातोंसेही परवर मेरसे पर्याय रखते हैं ।

(१९७) यत् पूषताभिः शर्यैः वल्लुपविभिः रथेभिः मायसिष्ट, आपः शोदन्ते, वनानि रिपन्ते, धीः अचन्द्रन्दतु । (श्र. ५।५।६३)

जब घन्नेवाले मोडे जोगकर सुदक परिवॉले युक्त रथोंमें श्राद्ध हो तुम नाकमण शुरू करते हो, उत समय पानीमें नगी सज्जकी हो जाती हैं, वन विनष्ट होते हैं और आकाशभी दहाने लगता है ।

(१९८) एषां यामन पृथिवीं प्रयिष्ट, स्यं द्रायः पुः अश्वान् धुरि वायुयुग्ने । (श्र. ५।५।६४)

इसके अर्थ है कि यामन पृथिवीं प्रयिष्ट, स्यं द्रायः पुः अश्वान् धुरि वायुयुग्ने ।

इनके आक्रमणोंके फलस्वरूप मातृभूमिकी उन्नति तथा प्रसिद्धि हो चुकी या भूमि समस्तक हो गयी । इनका एक प्रकट हुआ और हमेशा चरानेके समय उम्होंने अपने घोड़े रथोंमें बाँधे थे ।

(३००) सुविताय दायने प्र यफन्, पुथिव्यै श्रतं प्रभरे, अध्वान् उक्षन्ते, रजः आ तरयन्ते, स्वं मानुं अर्णयः अनुभ्रयन्ते । (ऋ ५।५।११)

सबका द्वित तथा सषष्ठी मद्द करने के द्विप् हस कार्यका प्रारंभ हो चुका है । मातृभूमिका कोर पदों, घोड़े जोत रको, अग्निशक्तिसे दूर चले जाओ और अपना तेज समुद्र यात्राओंसे चारों ओर फैलाओ ।

(३०१) एषां अमात् भियसा भूमिः पजति । दूरेददा ये एमभि जितयन्ते ते नरः विद्वथ अन्तः महे पतिरे (ऋ ५।५।१२)

इन धीरोंके बलसे उत्पन्न नयाद्वक भावसे यूमण्डक धारां बरता है । जो दूरदर्शी धीर अपने पेशोंसे पदचाने पाते हैं, ये बुद्धिमें महारथ पानेके द्विप् प्रथम फलते रहते हैं ।

(३०२) रजसः विसर्जने सुभ्यः धियसे चेतथ । (ऋ ५।५।१३)

अंधेरा दूर करनेके द्विप् मण्डे धीर बाकर वे वैश्वर्य तथा वैभव बढ़ानेके द्विप् प्रयत्नशील बनते हैं ।

(३०३) सुविताय दायने प्रभरथे, यूय भूमिं रेजथ । (ऋ ५।५।१४)

अच्छे वैश्वर्यका दान करनेके द्विप् तुम उसे बढाते हो । इसद्विप् तुम पृथ्वीकोभी विचकित कर टाकते हो ।

(३०४) सपन्नयः प्रयुधः प्रयुधुः । नरः सुवृधः पयुधुः । (ऋ ५।५।१५)

परास्वर आत्मावसे रहकर बड़े अच्छे घोड़ा सवारोंमें निरत होते हैं और ये नेता हमेशा बढते रहते हैं ।

(३०५) ते अज्येष्ठा अकनिष्ठासः अमध्यमासः उम्रिदः नदसा विवापृधुः । जनुपा सुजातासः पृश्निमातरः दिवः मर्या नः अच्छ आजिगातन । (ऋ ५।५।१६)

इन धीरोंमें कोईभी अक्ष नहीं है, कोई निष्पक्ष द्वेषका नहीं और न कोई मँहरी अणीका है । उद्यतिके द्विप् सख्योंके जाहपो तोड़नेवाले ये धीर अपने अद्भुत विद्यमान बटपनसे बढते हैं, कुशल परिधाममें उत्पन्न और मातृभूमिकी उपादान करनेवाले दिव्य मातृप हमारे मध्य आकर

निवास करें ।

(३०६) ये श्रेणीः भोजसा अन्तान् गृहृतः सानुनः परिपन्तुः । एषां यश्यासः पर्यतस्य नमनून् प्राचुच्ययुः । (ऋ ५।५।१७)

ये धीर कतारमें रहकर वेगपूर्वक पृथ्वीके दूसरे कोणतक या बड़े बड़े पहाड़ोंपरमी चले जाते हैं । इनके घोड़े पहाड़-केभी टुकड़े कर टाकते हैं ।

(३०७) एते दिव्यं कार्यं आचुच्ययुः । (ऋ ५।५।१८)

ये धीर दिव्य भाण्डारोंको चारों ओर उलटके देते हैं, बाने सारे धनका विभजन चतुर्दिक् कर देते हैं, ठाकि कदाभी विषमता न रहे ।

(३०८) ये एकदकः परमस्याः परावतः आयय । (ऋ ५।५।१९)

ये धीर लकड़ेही अल्प सुपूरवतीं प्रदोषोंसे चले आते हैं ।

(३१०) एषां जघने चोदः, नरः सफयानि धिययुः । (ऋ ५।५।२०)

जब इन घोड़ोंकी जवापर चासुक छगता है (तब वे अपनी जींघे लानेके लगते हैं) परन्तु ऊपर बैठनेवाले धीर उनका विशेष निमन करते हैं, (उन घोड़ोंको अपनी जींघोंसे एकद रखते हैं) ।

(३१२) ये आशुभिः चदन्ते, अत्र श्रवांसि दधिरे । (ऋ ५।५।२१)

जो धीर घोड़ोंपर बहकर द्राघ शनुभोंपर हमका कर देते हैं, वे बहुत संपत्ति धारण करते हैं ।

(३१३) धिया रथेषु आ विभ्राजन्ते । (ऋ ५।५।२२)

ये धीर अपनी सुपमासे रथोंमें चारों ओर चमकते रहते हैं ।

(३१४) स गणः युवा त्येपरथः, अनेचः, शुर्मयावा, श्रापतिष्कृतः । (ऋ ५।५।२३)

यह धीरोंका संख नवयौवनसे पूर्ण, तेजस्वी और आभामय रथमें बैठनेवाला, अर्निद्वीय, अच्छे कार्यके द्विप् इच्छक करनेवाला तथा सर्वय विजयी है ।

(३१५) धृतयः ऋतजाताः अरेपसः यत्र मदन्ति कः घेद ? (ऋ ५।५।२४)

धनुको दिव्या देनेवाले, सारके द्विप् मघेष्ट निर्याप धीर किम अगद सहयं रहते हैं, बड़ा कोई कह सकता है ? या कोई घान केता है ?

(११३) यूयं इत्था मत्तं प्रणेताः यामहृतिषु धिया धोताः ।

(ऋ. ५।६।११५)

तुम इस भाँति मानकोंकी टीक राहसेके चकनेवाले हो। मतः इसका करते समय अगर तुम्हें पुकारा जाय, तो तुम जानबूझकर लपक प्यार हो।

(११७) रिशावसः काम्या घसूनि नः आवपृत्तन ।

(ऋ. ५।६।११६)

बहुविनाशकर्ता तुम वीर हमें अभीष्ट धन कौटा दो।

[अत्रियुध एययामरुत् अयि ।]

(११८) यः मलयः महे विष्णोयं प्रयन्तु ।

(ऋ. ५।८।७१)

तुम्हारी हृदियों बड़े भारी व्यापक देवकी भीर प्रवृत्त हों।

सद्यसे धुनिप्रताप शयसे शर्धायं प्रयन्तु ।

बिसने ब्रत किया हो कि, मैं बकिइ तनुओंकी डिहाकर लदेक वृंगा ऐसे वीरके भेगपूर्ण सामर्थ्यका भंगन करनेके लिए तुम्हारी बालियों प्रवृत्त हों।

(११९) ये महिना प्रजाताः, ये च स्वयं विद्यना प्रजाताः, (तेषां) तत् शयः क्रत्या न आयुषे, महा अपृष्टासः ।

(ऋ. ५।८।७२)

वे वीर महारथके कारण प्रसिद्ध हुए हैं, अपने ज्ञानसे विवशत हुए हैं। उनके बड़े पराक्रमके कारण उनके बलकी कोई परास नहीं कर सकता है और अपने अन्दर निवर्तमान महारथके कारण शत्रु उनका हमसे करनेका साहस नहीं कर सकते।

(१२०) सुनुकानः सुभ्यः, येषां सधस्ये इरी न आ ईष्टे, अन्नयः न स्वधियुतः धुनिनां प्र स्पन्द्रासः ।

(ऋ. ५।८।७३)

वे वीर अत्यन्त तेजस्वी एवं बड़े हैं, उनके घरमें (अपने क्षेत्रमें) जगता अधिकार प्रस्थापित करनेवाला कोई नहीं। वे अश्रितुष्य तेजस्वी हैं और अपने तेजसे मारक शत्रुओंकी भी डिहाकर गिरा देते हैं।

(१२१) सः समानस्मात् सदसः निःचक्रमे, विमहसः शोवृधः विस्पर्थसः जिगाति ।

(ऋ. ५।८।७४)

यह वीरोंका संघ अपने समान निवासस्थलसे एकही समय बाहर निकल पाया, मुझ बढानेकी भारी शक्तिसे

बुझ पे वीर पारसक होइ वा सर्षी कोटकर पराक्रम करके छिपे धाने बढने फगे।

(१२२) यः अमवान् वृषा त्वेयः ययिः तविपः सनः न रेजयत्, सहन्तः सरोचिपः स्यारदमानः क्षिरण्यः यः सु-आयुधासः इष्मिणः श्रजत ।

(ऋ. ५।८।७५)

तुम वीरोंका बलबुझ, समर्थ, तेजस्वी, वेगवान, प्रभावशाली शत्रु तुम्हारे अनुवाचियोंकी भयभीत न करे। तुम शत्रुका पराभव करनेदार, तेजस्वी सुवर्णाढकालोंसे शिभूषित, बलिबा दवियार रकनेवाले तथा लक्षभाण्डार साथ रखनेवाले वीर प्रकृतिके लिए प्रगतिशील बनते हो।

(१२३) यः महिमा अपारः, स्वेपं शयः अपतु, प्रसितौ संदधि स्वाचारः स्यन, शुगुफांसः नः निदः उदृष्यत ।

(ऋ. ५।८।७६)

तुम्हारी महिमा अपार है, तुम्हारा तेजस्वी बल हमारी रक्षा करे, शत्रुका डगफा दो जाय, तो तुम ऐसी जगद रहो कि, हम तुम्हें देख सकें, तुम तेजस्वी वीर हो, स्वल्पिन्दु कौसे हमें बचाओ।

(१२४) सुमहाः सुविद्युम्नाः अपन्तु, दीर्घं पृथु पाथीयं सल पप्रथे । अद्भुत-एनसां अजमपु महः शर्धांसि धा ।

(ऋ. ५।८।७७)

बलके कर्म करनेदार, महातेजस्वी वीर हमारी रक्षा करें। नूनमद्वपर विद्यमान हमारा वर तुम्हें वीरोंके कारण विवशत हो चुका है। हम पावले सेतों वर रहनेवाले वीरोंके आक्रमणके समय बड़े बल दिखाई देने लगते हैं।

(१२५) समन्वयः विष्णोः महः सुयोतन, ईसना सनुतः द्वेषांसि थप ।

(ऋ. ५।८।७८)

इत्याही वीर व्यापक परमात्माकी शक्तिसे अपनी संबंध जोड़ दें, अपने पराक्रमसे गुप्त शत्रुओंकी दूर हटा दें।

(१२६) यि-ओमनि ज्येष्ठसः प्रचेतसः निदः दुर्धतयः स्यात ।

(ऋ. ५।८।७९)

विशेष रक्षाके अवसरपर श्रेष्ठ उद्दरनेवाले ज्ञानी वीर निर्वृक शत्रुओंके जिय भजेय हों।

[बृहस्पतिपुत्र शंयुत्रयि ।]

(१२७) सवहुर्धां धेनुं उप आ मजध्वं, अनपस्फुरां स्रजध्वम् ।

(ऋ. ६।१४।११)

उत्तम वृध देवेदायी गौको प्राप्त करो और दुष्टसे समय दकबन न करनेवाली गौको वन्मुक छोड़ दो।

(३२८) या स्वभानवे शार्थाय अमृत्यु भवः पुत्रत, मुराणां मूर्च्छाके सुम्नेः एवयावरी । (ऋ. ६।४।१२)

जो गौ, तेजस्वी बीरोंके संघको अमर शक्ति देनेवाला दूध देती है, वह शीघ्रतया कार्य करनेवाले बीरोंके सुराके लिए अनेक प्रकारसे संरक्षण करनेवाली बनती है ।

(३२९) भरद्वाजाय विभ्यवोहसं धेनुं चिपमोजसं हृपं च अवधुक्षत । (ऋ. ६।४।१३)

जो अन्नका दान पूर्णतया करता है, उसे चडिया हुआध गौ और पुष्टिकारक अन्न पधेदे दो ।

(३३०) सुक्रतुं मायिनं मन्द्रं सृप्रमोजसं आदिशे स्तुपे । (ऋ. ६।४।१४)

अपने काम करनेहारे, कुशल, आनन्दचंचक, अन्न देनेवाले बीरकी मैं स्तुति करता हूँ, ताकि वह हमारा अन्नापच-प्रदर्शक धने ।

(३३१) त्वेयं अनर्वाणं शर्धः वसु सुधेवाः, यथा चर्याणिभ्यः सद्गुहा आकारिणत्, गूळहा वसु आधि-कारत् । (ऋ. ६।४।१५)

तेजस्वी शत्रुद्विष बरु तथा धन मिळ जाय, उसी प्रकार सारे मानवीयोंको इजातों प्रकारके धन मिळें और लिया पना धन मकट हो ।

(३३२) यामस्य प्रनीतिः सनुता धामी । (ऋ. ६।४।१६)

धन प्राप्त करेकी प्रणाली सत्य एवं प्रशस्त रहे, तोही ठीक ।

(३३३) त्वेयं दायः घृत्रहं ज्येष्ठं । (ऋ. ६।६।१)

तेजस्वी यह शत्रुका मारक इतरे, तोही यह पेट है ।

[घृहस्पतिपुत्र भरद्वाज ऋषि ।]

(३३५) अरेणयः नृगणैः पांस्थेभिः साकं भूयन् । (ऋ. ६।६।२)

निष्पाय बीर बुद्धि तथा सामर्थ्योंसे पूर्ण बने रहते हैं ।

(३३७) अन्तः सन्तः अवघानि पुनानाः अयाः अनुपः न ईपन्ते, धिया तन्वं अनु उक्षमाणाः शुक्यः जापं अनु नि दुहे । (ऋ. ६।६।४)

समाजमें रहकर दोषोंको इटाते हुए पवित्रताका भूजन करते हुए भी अपनी हलचलोंसे जनतासे दूर नहीं जाते हैं। वे धनसे अपने शत्रुओंको बलिष्ठ बनाते हुए, घृह पवित्र होते हुए सचका आनन्द बघाते रहते हैं ।

(३३८) येषु घृष्णु, मक्षु अयाः, त उग्रान् अवयासत् । (ऋ. ६।६।५)

जिनमें शत्रुविनाशक बरु है और जो शत्रुपक्षी हमला करते हैं, ऐसे बीर सैनिक शत्रुओंको पदद्विज कर देते हैं। उनके ही ये भीषण हों ।

(३३९) ते शयसा उग्रा घृष्णुसेनाः युजन्त इत् । एषु अमवत्सु ररयोचिः रोकः न आ तस्थी । (ऋ. ६।६।६)

वे अपने बरुसे बड़े घृह तथा साहसी सैनिक साथ लेकर हमला करनेवाले बीर हमेशा तैयार रहते हैं। इन बलिष्ठ बीरोंकी शक्तिमें दबावट टार सके, ऐसा तेजस्वी प्रति-स्पर्धी कोईभी नहीं मिलता ।

(३४०) यः यामः अनेनः अनभ्यः अरथीः अजति । अनयसः अनभांशः रजस्तुः पथ्याः विपाति । (ऋ. ६।६।७)

गुहारा रथ निर्दोष है और घोड़ों तथा सारथिकों न रहने-परमी वेगपूर्वक जाता है। रक्षकों साधन या लगामके न रहनेपरमी वह रथ गर्द बघावा हुआ राहपरसे चला जाता है ।

(३४१) वाजस्राती यं अवध, अत्य यतां न, तरुता नास्ति । सः पायं वती । (ऋ. ६।६।८)

बडाईमें जिसे गुम बघाते ही, उसे घेरनेवाला कोई नहीं, विनष्ट करनेवालाभी कोई नहीं और यह सुदमें शत्रुओंके गधोंको फोट देता है ।

(३४२) ये सहसा सहांसि सहन्ते, मखेभ्यः पृथिपी रेजते, स्वतयसे मुराय विभ्रं अर्धं प्रमरधम् । (ऋ. ६।६।९)

जो अपने बलोंसे शत्रुदलके आक्रमणोंको रोकते हैं, उन पृथ्वी बीरोंके सामने यह पृथिवी परधर कौचने लगती है। इन बलिष्ठ तथा वेगपूर्वक कार्य करनेवाले बीरोंकीही बरादना करो ।

(३४३) त्विपीमन्तः तृपुच्यवसः विघ्नत् अर्धत्रयः शुनयः भाजत्-जन्मानः अघृष्टाः । (ऋ. ६।६।१०)

तेजस्वी, वेगपूर्वक जानेवाले, प्रकारमान, पृथ्वी, शत्रुको दिखावेबाळे बीर हैं, जिनका पराभव करना शत्रुके लिए घृमर है ।

(३४४) वृधन्तं भ्राजदृष्टिं आधिवसि । शर्धाय उग्राः
शुचयः मनीषाः अस्पृधन् । (ऋ ६।१६।११)

बढ़नेवाले तथा तेजःपूर्ण इधियार धारण करनेवाले वीर
स्वागतके लिए संबंधी योग्य हैं । बल बढ़ानेका हेतु सामने
रक्त के वीर पवित्र बुद्धिसे युक्त हो, पारस्परिक होष वा
शर्धाभिं जने रहते हैं ।

[मित्रावरणपुत्र चोत्तिष्ठन्नापि ।]

(३४५) स्वपृथिः मिथः अभियपन्त । घातस्वनलः
अस्पृधन् । (ऋ ७।५६।३)

अपने पवित्र विचारोंके साथ ये वीर दृढ़ते होते हैं और
भीषण गर्जना करते हुए एक दूसरेसे शर्धा करते हैं ।

(३४६) धीरः तिण्या चिकेत, मही पृथि ऊच जभार
(ऋ. ७।५६।४)

बुद्धिमान धीर गुप्त धारोंको घाट सकता है। बड़ी गौ अपने
कैचेके दूधसे इन वीरोंका पोषण करती है ।

(३४७) सा विद् ह्यधीरा सनात् सहन्ती नृम्यं पुष्य-
मती अस्तु । (ऋ ७।५६।५)

यह प्रजा अपने वीरोंसे मुक्त होकर हमेशा जगुका
पराभव करनेवाली तथा बल बढ़ानेवाली हो जाय ।

(३५०) यामं येषाः, शुभा शोभिष्ठाः, भिया संमिदलाः,
भोजोभिः उग्राः । (ऋ ७।५६।६)

ये वीर हमला करनेके लिए जानेवाले, अलंकारोंसे
विभूषित, कांतियुक्त तथा सामर्थ्य से भीषण हैं ।

(३५१) धः भोजः धर्मः, शर्धासि स्थिरा, गणः तुधि-
मान् । (ऋ ७।५६।७)

गुप्त धीरोंका बल भीषण है, तुम्हारी शक्तिर्थां स्थायी हैं
और सब सामर्थ्यवान हैं ।

(३५२) धः शुभः, धृष्टः, मनांसि क्रुध्मी, धृष्योः दार्ध-
स्य शुनिः । (ऋ. ७।५६।८)

तुम्हारा बल दोषरहित तुम्हारे मन क्रोधयुक्त और
तुम्हारी शत्रुनाश करनेकी शक्ति वेगयुक्त है ।

(३५५) सु-आयुधास इभिष्ठाः मुनिष्ठाः स्वयं तन्वः
शुभमानाः । (ऋ ७।५६।११)

बड़िया इधियार धारण करनेवाले, वेगपूर्वक जानेहार
और अपने शरीरोंको बनावसिनावार द्वारा तुमोभिष्ठ करने-
वाले ऐसे ये वीर महत् हैं ।

(३५६) ऋतसाप. शुचिजग्मानः शुचयः पावकाः
ऋतेन सत्यं आयन् । (ऋ ७।५६।१२)

सत्यसे चिपकनेवाले, पवित्र जीवन धारण करनेवाले
पवित्र, शुद्ध वीर सरल रहते सचाई प्राप्त करते हैं ।

(३५७) अंस्यु खादयः, वक्षःसु रुक्माः उपशिधि-
याणाः, रुक्षानाः आयुधैः स्वर्धां जनुयच्छमानाः ।

(ऋ ७।५६।१३)

कंधोंपर आभूषण, छातियोंपर हार पहनानेवाले, वे तेजस्वी
वीर इधियार लेकर अपना बल बढ़ाते हैं ।

(३५८) धः मुच्या महर्षिः प्रेरते, नामानि प्र तिरथ्यं,
एतं सहस्रियं धर्म्यं गृहमेधीयं भागं युपध्वम् ।

(ऋ ७।५६।१४)

गुप्त वीरोंके भौतिक बल प्रकट होते हैं, अपने यज्ञांशों
बढ़ाने, इन सहस्रों गुणोंसे युक्त धरेतू वातिक प्रसादका
सेवन को ।

(३५९) वाजिनः विप्रस्य सूर्यार्यस्य राधः मक्षु दात ।
अन्यः अराया यं गावधत् । (ऋ ७।५६।१५)

बलवान ज्ञानीको पवित्र धीर्यबुद्धि धन गुप्त दे दो,
नहीं तो दूसरा कोई शत्रु शायद उसे छीन के जाय ।

(३६०) सु-अञ्च. शुभ्राः प्रकीळिनः शुभयन्त ।
(ऋ ७।५६।१६)

ये वीर गतिमान, शोभायमान, सारकमुयो वीर छिन्नाई
पने हुए हैं ।

(३६१) दग्धस्यन्तः शुभके परिचस्यन्तः मृळयन्तु ।
(ऋ ७।५६।१७)

सत्रुविनाशक, शर्धा सद्गारा देनेवाले वीर जगतको
मुक्त दे दें ।

(३६२) ईधतः गोपा अस्ति, सः अद्रुपायी ।
(ऋ ७।५६।१८)

जो प्रगतिशील जोगोंका परक्षण करनेवाला हो, वह
मनमें एक बात वीर बाहर कुञ्ज वीर ऐसा धर्तार नहीं
करता है ।

(३६३) सुंर रमयन्ति, इमे सह. सहस्रः आनमन्ति,
इमे शसं चनुष्यतः नि परमन्ति, अरुणे सुस डेयं
दधन्ति । (ऋ ७।५६।१९)

ये स्वसपूर्वक कार्य करनेवालोंको भाग्यद देते हैं, अपने
सामर्थ्य से नलिष्ठोंको मुक्त करते हैं, धीरगाथाभोंके गावन-
कोंको बचाते हैं और दशाते हैं कि, वे शत्रुपर भारी
क्रोध करते हैं ।

(३६४) इमे रथं जुनन्ति, भूमिं जुपन्त, तमांसि
अपसावध्वम् । (ऋ. ७।५६।२०)

ये वीर पत्थियोंके निरुद्ध जैसे जाते हैं, उसी प्रकार भीष्म-
सैन्धवे समीप भी पहुँचे जाते हैं । ये भीष्म वृत् करते हैं ।

(३६५) यः सुजातं यत्तु ह्यस्ति, स्थाह्ये यसव्ये नः
भामजतन । (ऋ. ७।५६।२१)

तुम्हारे समीप जो ठहरे कोठिया घन है, उस रथद्वयोंके
संघट्टमें हमें सहभागी करो ।

(३६६) यत्तु शूराः जनान्स्वः यहाँयु ओषधीषु विह्वु
मन्धुभिः सां हनन्त, अथ पृतनायु नः वासारः भूत ।
(ऋ. ७।५६।२२)

जब वीर सैनिक नदियोंमें, वनोंमें तथा जनताके मध्य
बड़े छायाहट्टे वायुद्वयपर दृढ़ पड़ते हैं, तब इन युद्धोंमें तुम
दुनारे रक्षक बनो ।

(३६७) उग्रः पृतनासु साब्धहा, लर्षा वाजं सनिता ।
(ऋ. ७।५६।२३)

जो उग्र स्वरूपवाला वीर है, वह कर्णोंमें शत्रुओंको
जोतवा है और घोडोंकी पुच्छमें अपना ब्रह्म दर्शाता है ।

(३६८) यः वीरः अमु-र जनानां विधत्तां शूयमी
अस्तु । येन क्षुद्रितये श्वपः तरेम, अध ह्यं ओकः
शभि स्याम । (ऋ. ७।५६।२४)

जो वीर अपना जीवन वापिस करके जनताका संरक्षण
करता है, वह ब्रह्मदान बन जाता है । इसकी सहायतासे
प्रजाका अन्धरा विभाव हो, इन्धुमिष्ट समुद्रकीभी धैर्यकर
पक्षे जाई वीर अपने धरपर सुखपूर्वक रहे ।

(३६९) यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात ।
(ऋ. ७।५६।२५)

तुम हमारा रक्षा हमेशा कल्याणकारक मागोंसे करते
रहो ।

(३७०) यत्तु उग्राः धयासुः, ते लर्षा रेजयन्ति ।
(ऋ. ७।५७।१)

जो उग्र दृढनर्णपर धावा करते हैं, वे लर्षाकी दिशा देते
हैं ।

(३७१) रुक्मैः वायुधैः तनूभिः यथा आजन्ते न
पलायन्त धन्ये । विश्वपिशाः पिशाणाः शुभे समानं
आग्निं कं वा धरुजन्ते । (ऋ. ७।५७।२)

माझाओं, दधियारों तथा शरीरोंसे ये वीर सैनिक
मित उरर मुझसे जाते हैं, जैसे दूधसे कोडूभी नहीं जग-
नागधे हैं । मजी भाँजे साभ्रवित्कार करनेवाले वे वीर

अपनी शोभाके लिए समान वीरभूषा सुखपूर्वक कर लेने
हैं ।

(३७४) अनवघामः शुचयः पायकाः रणन्त, नः
सुमतिभि प्रावन, न चाजेभि- पुष्यसे प्र तिरत ।
(ऋ. ७।५७।५)

प्रशमनार्थ, शुद्ध, पवित्र बनकर वीर समान होते हैं ।
अपने अण्डे विनाहोने हमारी रक्षा कीजिए और अज्ञोंसे
दुष्टि मिक जाए, इन्धु सारे संघट्टोंसे पार ले चलो ।

(३७५) नः प्रजायै अमृतस्य प्रदात, सूनृता रायः
मघानि जिगृत । (ऋ. ७।५७।६)

हमारी संतानके लिए अमृतरूपी भक्ष दे दो, मानव-
दारक बन तथा सुखवैभवका भी दान करो ।

(३७६-विश्वे सर्षताता सूरिन् अच्छ ऊती भाजिगात ।
ये रमना शतितः वर्धयन्ति । (ऋ. ७।५७।७)

ये सारे वीर इस यज्ञमें ज्ञानियोंके यमीर नीचे अपनी
संरक्षक शक्तिशालित्व भा जायें, क्योंकि ये स्वयंही सैकड़ों
गामोंका संवर्धन करते हैं ।

(३७७) यः दैव्यस्य धाम्नः तुयिष्मान्, साकं-उक्षे
गणाय प्रार्चत, ते अयंशात् निर्भेताः क्षोदन्ति ।
(ऋ. ७।५८।१)

जो दिव्य स्थान धारता हैं, उस सामुदायिक बलसे
शुद्ध वीरोंके रक्षकी पूजा करो । वे वीर धंशनासरूपी भीरण
भावलिसे हमें बचाते हैं ।

(३७९) गतः अधवा जन्तुं न तिराति । नः स्थाह्याभिः
ऊतिभिः प्र तिरेत । (ऋ. ७।५८।३)

जिस मार्गपर वीर एक जुके हों, वहाँ किर्माकोभी कष्ट
नहीं पहुँचता है, (सभी उपर प्रसन्न हो उठते हैं) । शत्रु-
नीच रक्षणों से हमारा संवर्धन करो ।

(३८०) युष्मा-ऊतः विप्रः शतस्थी सहस्री, युष्मा-
ऊतः अथां सहस्रि, युष्मा-ऊतः सम्राट् वृषं हन्ति,
सत्तु देष्णं प्र अस्तु । (ऋ. ७।५८।४)

वीरोंके संरक्षणमें सहकर जानी पुरुष सैकड़ों तथा सह-
स्रायि बनगो प्राप्त करता है, वीरोंका संरक्षण मित्रनेपर
शोका विजयी बनता है वीर धीरोंकी रक्षा पानेपर नरेशकी
शत्रुका परामथ करता है । वीर पुरुष हमें यह दान हैं ।

(३८१) श्रेयः आरात् चित् युयात (ऋ. ७।५८।५)
पचक शत्रु दूर है, तभीतक उसका विनाश करो ।

(१८४) यः द्विषः तरति, सः क्षयं प्रतिरते ।

(श्र. ७।५।१२)

जो शत्रुका परामय करता है, वह अपने विनाशके परे चले जाता है, माने सुरक्षित बन जाता है ।

(१८५) यस्यै अराध्व, धः ऊतिः पृतनासु नष्टि मर्घति ।

(श्र. ७।५।१८)

जिसे तुम अपना संरक्षण देते हो, उनका विनाश बुझाने तुम्हारे संरक्षणोंसे नहीं होता है ।

(१८६) तन्व्यः शुभ्रमनाः ह्यमासः मदन्यः आ अपसन्नः,

विश्वे शार्धः मा अभितः निसन्द । (श्र. ७।५।७)

अपने शरीरोंका सुहानेवाले ये वीर हंसपंछियोंकी नाई कतारमें रहकर प्रसन्नतापूर्वक संचार करते आ पहुँचे हैं । उनका घट नारा बल मेरे चारों ओर संरक्षणार्थ रहे ।

(१९०) यः दुर्हृणायुः न चित्तानि अभि जिघांसति

सः दुहः पाशान् प्रतिमुच्येष्ट, तं ह्यमना ह्यमन ।

(श्र. ७।५।१८)

जो कुछ शत्रु हमारे अन्त करणोंमें घोट पहुँचना है तथा पारस्परिक क्रोधके भाव हममें फैलावेगा, उसे तुम मार बाढो ।

(१९१) युष्माकं ऊती आगत. मा अपभूतन ।

(श्र. ७।५।१०)

तुम अपनी संरक्षक शक्तियोंके साथ हमारे समीप आओ और हमसे दूर न हो जाओ ।

(१९४) विन्दु वितिष्ठयं, ये वयः भूयः नकमिः

पनयन्ति, ये रिपः दधिरे, रक्षसः इच्छत, गृभायत,

संविनष्टन । (श्र. ७।१०।१८)

प्रजाओंके मध्य विघ्नण कर्म, जो वेगवान बनकर शत्रुओंके समय हमके चढते हैं, तथा जो हत्याकारि मन्त्रा देते हैं, उन राक्षसों को दूँकर पत्रह को और उनका विनाश कर्म ।

[विन्दु वा अंगिरस्त्वत्र पृतदक्ष ऋषिः ।]

(१९५) माता गौः धयति, युक्ता रथानां वक्तिः ।

(श्र. ८।१।१)

गोमाता दूध बिकाती है, उस दूधसे संतुष्ट हो वीर रथोंके संचालक बनते हैं ।

(१९७) नः विश्वे शार्धः कारधः सदा तन् सु धा

गृणन्ति । (श्र. ८।१।२)

हमारे सभी शंभु कारीगर सदैव हम उत्तम बलवादी मन्त्री भीति सराहना करते हैं ।

(४००) प्रात मोमतः अस्य सुतस्य जेपं महसति ।

(श्र. ८।१।११)

सुपथ गौका दूध बिकाकर तपार भिये हुए इस सोमरमका पान करनेपर भानन्दयुक्त उरसाह घटाता है ।

(४०२) पृतदक्षसः सूर्यः मिधः शर्यन्ति ।

(श्र. ८।१।१७)

बलवान, ज्ञानवान तथा शत्रुविनाशक धीर हमारी भीर भाते हैं ।

(४०७) दुस्मयर्चतां महानां अयः अद्य पुणे ।

(श्र. ८।१।१८)

सुन्दर युयं बड़े वीरोंकी रक्षाकी मे आज वाचना करता हूँ ।

(४०९) ये विश्वा पार्थिवानि आपप्रयन्, मोमपीतये ।

(श्र. ८।१।१६)

जिन्होंने सारे पार्थिव क्षेत्रोंका विस्तार किया है, उन वीरोंको सोमपानके लिए मैं बुलाता हूँ ।

(४०४) पृतदक्षसः सोमस्य पांतये ह्ये ।

(श्र. ८।१।१०)

बलिष्ठ वीरोंकी योगपानके लिए बुलाता हूँ ।

[भृगुपुत्र स्वूमरदिम ऋषिः ।]

(४०७) अर्द्धेने अस्तोपि, न मोमसे । (श्र. १०।१।१)

जो बोध है, उनवाड़ी स्तुति करता हूँ, विधि पादरी दीमटग वा मजबूतके कारण कभी सराहना न करूँगा ।

(४०८) मर्यातः शिथे अञ्जनि अकणतत, पूर्वाः क्षयः

न अति । (श्र. १०।७।२)

वे वीर सोमाके लिए मणेश पदते हैं । पदतेसेदी धानक वा हथारि, शत्रु हथै पराएन नहीं कर सकते ।

(४०९) ये रथना वर्षणा प्ररिरेत्रे, पातस्वन्तः पतस्यः

धः रिदावस अभिधवः । (श्र. १०।७।३)

जो अपनी शक्तिके बने धन भाते हैं, वे वीर बलवान, बलसमीप शत्रुविनाशक एवं वेमहरी होते हैं ।

(४१०) युष्माकं पुत्रे मही न विपुर्षति, धयर्षति,

प्रयस्वन्तः सन्नाचः आगन । (श्र. १०।७।४)

तुम्ह वीरोंके पैरोंके नीचेकी भूमि धिकं हॉगयीदी नहीं, किन्तु सन्ध्याय हो उठती है । उदात्तेता धीरोंके एषन तुम सभी हृदये हो धर पधारो ।

(४११) यूयं भव्यदासः रिदादसः परियुपः
प्रसितासः । (ऋ. १०।७।५)

तुम यदास्त्री, द्यूनाशरु, पोपक तथा हमेदा पैवार रट-
नेवाले वीर हो ।

(४१२) यूयं यत् पराकात् प्रवहध्वे, महः संघरणस्य
राध्यस्य चस्वः विदानासः, सनुतः द्वेषः आरात्
खिन् युयोत् । (ऋ. १०।७।६)

तुम जब दूरसे वेगपूर्वक भाते हो, तो बड़े स्वविराने-
भोग्य बहिषा धनका दान करो और दूर रहनेवाले द्वेषाभों-
को दूरसेही खदेड़ ढाड़ो ।

(४१३) यः मानुषः द्वादाशत्, स्वः रेवत् सुधीरं धयः
वृषते, देवानां अपि गोपीये अस्तु । (ऋ. १०।७।७)

जो मानव दान देता है, वह धन एवं धीरोंसे पूर्ण भक्त-
को पात्रा है और वह देवोंके गौरवपानके मौकेपर उपस्थित
रहनेयोग्य बनता है ।

(४१४) ते ऊमाः याज्ञियासः शंभविष्ठाः, रथतूः महः
चकामाः नः मनीषां अथन्तु । (ऋ. १०।७।८)

वे रक्षा करनेहारे वीर पूजनीय तथा सुख देनेवाले हैं ।
रथमेंसे त्वरापूर्वक जानेहारे वे वीर महत्त्व पाते हैं । वे
हमारी भाकांक्षाओंकी रक्षा करें ।

(४१५) विप्रासः सु-आध्यः सुभ्रसः सुखंष्टशः
धरेपसः । (ऋ. १०।७।९)

वे वीर ज्ञानी, अच्छे विचारवाले बड़िया कर्म करनेहारे,
प्रेक्षणीय और निष्पाप हैं ।

(४१६) ये रुक्मयक्षसः स्ययुजः सद्युक्तयः, ज्येष्ठाः
सुवामाणः क्रतं यते सुनातयः । (ऋ. १०।७।१०)

जो बलःशक्तिपर माका धारण करनेवाले, भयनी अन्ता-
स्फूर्तिसे काममें लूटनेवाले, तुरन्त रक्षाका भार उठानेवाले
तथा श्रेष्ठ सुख देनेवाले वीर होते हैं, वे सीधी राहपरसे
चटनेवालेको उरुच कोटिबा मार्ग दिखाते हैं ।



(४१७) ये धुनयः, जिगत्नवः, विरोकिणः, चर्मण्वन्तः, शिमीवन्तः, सुरातयः । (ऋ० १०।७८।३)

ये धीर दानुदलक्षे विकंपित करनेहारे, वेगसे आगे बढ़नेवाले, तेजस्वी, कवचधारी, शिरोवेष्टनसे युक्त हैं तथा बड़े अच्छे दानी भी हैं ।

(४१८) ये सनाभयः, जिगीवांसः शूराः, अभिचयः, वरेययः सुस्तुभः । (ऋ० १०।७८।४)

ये धीर एकही केंद्रमें कार्य करनेहारे, विजयेंस्तु शूर, तेजस्वी, अभीष्ट प्राप्त करनेहारे हैं, इसलिए स्तुतिके संबंधमें योग्य हैं ।

(४१९) ये ज्येष्ठासः, आशयः, दिधिपयः सुदानयः, जिगल्लयः विदयरूपाः । (ऋ० १०।७८।५)

ये धीर श्रेष्ठ, स्वरापूर्वक कार्य करनेहारे, तेजस्वी, उदार, बड़े वेगसे जानेवाले हैं तथा अनेक रूप धारण करनेवाले भी हैं ।

(४२०) सूरयः, आदर्विरासः, विश्वहा, सुमातरः, क्रीड्ययः यामन् त्रिपा । (ऋ० १०।७८।६)

ये धीर विद्वान्, शत्रुको फाड़नेवाले, सभी दुश्मनोंका वध करनेवाले, अच्छी माताके पुत्र लिलाकी तथा बड़ाई करतेसमय सुहावे हैं ।

(४२१) अञ्जिभिः वि अश्रियतन्, ययियः, आजहृष्टयः, योजनानि ममिरे । (ऋ० १०।७८।७)

धीरभूयों से सुहावेवाले, वेगपूर्वक जानेहारे, तेजस्वी इधियार धारण करनेहारे ये धीर कई योजना दौड़ते चले आते हैं ।

(४२२) अस्मान् सुभगान् सुरत्नान् कृणुत । (ऋ० १०।७८।८)

हमें उलूह भाग्यसे युक्त तथा अच्छे रत्नोंसे पूर्ण करो । (धीर भली भाँति रक्षा करके जनताको धनधान्य से युक्त करें ।)

(४२३) रिशादसः ह्वामहे । (वा. य. ३।४४)

शत्रुके विनाशकर्ता धीरोंकी सराहना करते हैं ।

मल्ल (हिं.) २९ (अ)

(४२४) धृश्रिमातरः, शुभं-यावानः, विद्वेषु जग्मयः मनवः, सूरचक्षसः, अवसा नः इह आगमन् ।

(वा. य. २।५।२०)

मातृभूमिके उपासक, अच्छे कार्यके लिए जानेवाले, युद्धोंमें आगे बढ़नेवाले, विचारशील, सूर्यतुल्य तेजस्वी, अपनी शक्तिके साथ हमारे निकट इधर आ जायें ।

(४२५) यदि आशयः रथेषु आजमानाः आवहन्ति, तत्र श्रवांसि कृण्वते ।

(साम० ३।५६)

अर्धपर स्वराज्ञीक रथी धीर चले जाते हैं, वहाँ वे भाँति-भाँतिके धन प्राप्त करते हैं ।

(४२६) नः तनूभ्यः तोकेभ्यः मयः कृधि । (अथर्व० १।२६।६)

हमारे धारीरोंको और पुत्रपौत्रोंको सुखी करो ।

(४२७) धृश्रिमातरः उग्राः यूयं शानून् प्रमृणीत । (अथर्व० १।३।१।३)

मातृभूमिके उपासक धीरों ! तुम शत्रुओंका विनाश करो !

(४२८) उग्राः यूयं ईदशे स्य, अभि प्र इत, मृणत, सहृभ्यं, इमे नाथिता- अमीमृणान् । एषां विद्वान् दूतः प्रत्येतु ।

(अथर्व० ३।१।२)

तुम शूर हो और ऐसे बड़े युद्धमें कार्य करते रहते हो, शत्रुपर आक्रमण करो, दुश्मनका वध करो, उसे परास्त करो, सेनापति से युक्त ये धीर दुश्मनोंका वध कर बाँटें । इनका जो दूत विद्वान् हो, वही शत्रुसेना के समीप चला जाए ।

(४२९-३०) सेनां मोहयन्, अजसा मन्तु, चक्षूंषि आदत्तां, पराजिता यन्तु ।

(अथर्व० ३।१।६)

शत्रुसेनाको मोहित करो, वेगपूर्वक हमले करो, शत्रु-सेनाकी दृष्टिके पेर लो, वह परास्त होकर पीड़ती चली जाए ।

(४३५) असौ परेषां या सेना ओजसा स्पर्धमाना
अस्मान् अभ्येति, तां अपद्रतेन तमसा
विध्यत, यथा एषां अन्ये न जानात् ।
(अथर्व० ३।२।६)

यह जो दानुसेना वेगपूर्वक घटाकपरी करती हुई हम-
पर दृढ़ पड़ती है, उसे तमस्-अच्छसे विध डालो, जिससे वे
किंकर्तव्यमूढ़ होकर एक दूसरेको पहचान न सकें। (इस
भाँति दानुसेनापर हमले करने चाहिए।)

(४३६) पर्वतानां अधिपतयः अस्मिन् कर्मणि मा
अवन्तु । (अथर्व० ५।२।१६)
पर्वतोंके रक्षणकर्ता वीर इस कर्मके अवसरपर मेरी
रक्षा करें।

(४३७) यथा अयं अरया असत्, प्रायन्ताम् ।
(अथर्व० ५।३।१५)
जिस प्रकारसे यह मानव निर्दोषी होगा, उसी ढंगसे
इसका संरक्षण करो।

(४३८) यत् पृजध, तत्र ऊर्जे सुमतिं पिम्यध ।
(अथर्व० ६।२।१२)
जिधरभी तुम चले जाओ, उधर बल तथा सुमतिकी
वृद्धि करो।

(४३९) ते नः अंहसः मुञ्चन्तु, हमं पाजं अवन्तु ।
(अथर्व० ५।२।७१)
वे वीर सैनिक हमें पापसे बचाएँ और हमारे इस बल-
का संरक्षण करें, (बलको बढ़ावें)।

(४४१) पृथिमातृन् पुरो वृधे । (अथर्व० ५।२।७२)
मातृभूमिकी उपासना करनेहारे वीरोंको मैं अग्रपूजाका
सम्मान देता हूँ।

(४४२) ये कवय भेनुर्ना पयः ओषधीनां रसं श्रवतां
अयं हन्यथ ते नः शग्माः स्योनाः भवन्तु ।
(अथर्व० ५।२।७३)

जो ज्ञानी वीर गौरुघ और औषधियोंका रस पी लेते
हैं तथा घोड़ोंका सेग पाते हैं, वे वीर हमें सामर्थ्य देकर
शुल्ल देनेवाके हों।

(४४३) ते ईशानाः चरन्ति । (अथर्व० ५।२।७४)
वे वीरसैनिक अधिपति या स्वामी बनकर संसारमें
सञ्चार करते हैं।

(४४४) ते कौलोलेन घृतेन च तर्पयन्ति ।
(अ० ५।२।७५)
वे अघरस और घृतसे सबको तृप्त करते हैं।

(४४६) तिग्मं अर्नीकं सहस्वत् विदितं, पृतनासु
उग्रं स्तोमि । (अथर्व० ५।२।७७)
दुरोंकी सेना विरोधियोंका पराभव करनेमें विरपात है;
युद्धके समय वह पराक्रम कर दिखलाती है, इसलिये मैं
उनकी सराहना करता हूँ।

(४४७) ते सगणाः, उरक्षयाः, मानुषाः सान्तपनाः
मादयिष्यथः । (अथर्व० ७।८।१३)
वे वीरसैनिक संघ बनाकर रहते हैं, बड़े घरमें निवास
करते हैं, मानवोंका हिस करते हैं, दानुधर्मोंको परित्याग देते
हैं और अपने कोशोंको प्रसन्नता प्रदान करते हैं।

(४५०) ये सुलेषु रथेषु आतस्थुः, वः भिया पृथिवी
रेजते । (अ० ५।६।०।२)
वे वीर सुलदायी रथोंमें बैठकर यात्रा करते हैं और इन
के अगले पृथ्वीतक काँप उठती है।

(४५१) ऋष्टिमन्तः यत् सध्वञ्चः क्रीळ्य, धवध्वे ।
पथंतः विभाय । (अ० ५।६।०।३)
उत्कृष्ट जैसे हथियार लेकर जब तुम दृकट्टे हो खेकना
शुरू करते हो, तब तुम दौड़ते हो, ऐसी क्षणोंमें पहाड़तक
अवनीत हो जाता है।

(४५२) रैवतासः यदा इय हिरण्ये तन्वः अभिपिपिधे,
धेयांसः तवसः धिये रथेषु, सत्रा तन्पु महांसि
चक्षिरे । (अ० ५।६।०।४)

अनयुक्त दूरदोषी नाईं वे वीर अपने दारों सुशर्णा-
कषाओं से विभूषित करते हैं, तब श्रेय, बल और परा
रथमें बैठनेपर इनके धारोंपर दीस पड़ते हैं।

(४५३) अज्येष्ठासः अकनिष्ठासः एते भ्रातरः
सौमगाय सं वावृधुः । (ऋ० ५।६०।५)

ये वीर परस्पर भ्रातृभाव से बर्ताव रखते हुए अपना
प्रेमयुक्त बचानेके लिए मिलजुलकर प्रयत्न करते हैं और यह
हसोलिए संभव है चूँकि इनमें कोईभी श्रेष्ठ नहीं या कनिष्ठ
भी नहीं, अर्थात् सभी समान हैं ।

(४५४) यत् उत्तमे मध्यमे अयमे स्थ, अतः नः ।
(ऋ० ५।६०।६)

उत्तम, मध्यमे या निम्न स्थानमें जहाँ कहींभी तुम हो,
वहाँसे तुम हमारे निकट चले आओ ।

(४५५) ते मन्दसानाः धुनयः रिदाद्सः यामं घत्त ।
(ऋ० ५।६०।७)

ये हर्षित रहनेवाले वीर, शत्रुको पदग्रह करते हैं और
उनका ध्वज करते हैं । वे हमें श्रेष्ठ धन दे दें ।

(४५६) ह्यभयद्विः गणभिभिः पाद्यक्रेभिः विश्व-
मिन्वेभिः आयुभिः मग्दसानः । (ऋ० ५।६०।८)

बोनायमान संघके कारण सुबोधित होनेवाले वीर
सबको पवित्र करनेहारे, ढालाहृपूर्ण एवं दीर्घ जीवनसे
सुख होकर सबको आनन्दित करो ।

(४५७) अदारसूतु भयन्तु । (अथर्व० १।२०।११)
शत्रु अपनी पानीके निकटनी न चला जाए, (श्रीमदी
विनष्ट हो ।)

नः मृडत= हमें सुख दो ।

अभिमाः नः मा विदत् । शत्रु हमें न मिले ।

अशस्तिः द्वेष्या वृजिना नः मा विदन् ।

अकीर्ति और निन्दनीय पाप हमारे समीप न आवें ।

(४६७-४७२) अद्रुहः, उग्राः, ओजसा अनापृष्टासः,
शुभ्राः, घोरवर्षसः, सुक्षत्रासः, रिदाद्सः ।
(ऋ. १।१९।३-८)

ये वीर किसीसे विद्रोह नहीं करते, दूर हैं, बहुत बल-
वान होनेके कारण कोई उन्हें पराभूत नहीं कर सकता है,
गौर वर्णवाले तथा वृहदाकार शरीरवाले हैं, अच्छे क्षात्र-

बलसे युक्त होनेके कारण ये शत्रुका पूर्ण विनाश कर
देते हैं ।

(४७९) दुःमंसः नः मा ईशात । (ऋ. १।२३।९)
दुरात्माका शासन हमपर कभी प्रस्थापित न हो ।

(४८०) सवयसः सनीळाः समान्या वृषणः शुभा
शुष्म अर्चन्ति । (ऋ. १।१६।११)

समान अक्षरवाके, एक धरमें रहनेवाले, समान ढंगसे
सम्माननीय होते हुए वे बलवान वीर शुभ इष्टासे बलकी
पूजा करते हैं ।

(४८४) वयं अन्तमेभिः स्वस्त्रेभिः पुजानाः,
तन्वं शुभ्रमाभाः महोभिः उपयुज्महे ।
(ऋ. १।१६।५)

हम वीर अपनेमें विद्यमान निजी शूरतासे युक्त होकर
अपने शरीरोंको शोभायमान करते हैं तथा सामर्थ्यका
उपयोग करते हैं ।

(४८५) अहं हि उग्रः, तथिपः शुचिष्मात्
विश्वस्य शत्रोः वधस्त्रैः अममम् ।
(ऋ. १।१६।६)

मैं शूर तथा बलिष्ठ हूँ, इसलिये मैंने सारे शत्रुओंको
छुड़ा दिया है। इस कार्यको इधियातंसे पूर्ण कर ढाका
है ।

(४८६) युज्येभिः पँस्येभिः भूरि चक्रयं ।
(ऋ. १।१६।७)

उचित सामर्थ्यके सहारे तुमने बहुत सारे पराक्रम कर
दिसाने हैं ।

क्रत्वा मूरीणि कृणवाम द्वि= उरुबाण एवं प्रयत्नों
की सहायतासे हम बहुत कार्य करके दिखलायेंगे ।

(४८७) स्वेन भामेन इन्द्रियेष तथिपः यभूवान् ।
(ऋ. १।१६।८)

अपने तेजसे और इन्द्रियोंकी शक्तिसे मैं बलवान हो
सुका हूँ ।

(४८८) ते अनुत्तं नकिः नु आ, त्वावान् विदानः
न अस्ति; यानि करिष्या कृणुहि न जायमानः
न जातः नदाते । (ऋ. १।१६५।९)

बेरी प्रेराणाके बिना कुठभी नहीं अस्तित्वमें आता
तेरे समान दूसरा कोई ज्ञानी नहीं है; जिन कर्तव्योंको
रू करता है, उन्हें पूर्ण करना किसी भी जन्मे हुए तथा
जन्म लेनेवाले मानवके लिए असंभव है ।

(४८९) मे एकस्य ओजः विशु, या मनीषा दृष्टुष्यान्,
कृण्वै नु । अहं हि उग्रः विदानः । यानि
द्वयं, पयां ईद्रे । (ऋ. १।१६५।१०)

मेरे अकेलेका सामर्थ्य बहुत बड़ा है । जो इच्छा मनमें
उठ सही होती है, उसीके अनुसार कार्य करके दशांता हूँ ।
मैं शूर और ज्ञानी भी हूँ तथा जिनके समाप पहुँचता हूँ
उनपर प्रभुत्व प्रस्थापित करता हूँ ।

(४९४) विभ्या अहानि नः कोम्या यनानि सन्तु ।
जिगीषा ऊर्ष्या । (ऋ. १।१७१।३)
इनेशा हमारे लिए ये वन कमनीय हों तथा हमारी
विनाशेच्छा ऊधी हो जाए ।

(४९६) उग्रभिः स्थविरः सहोदाः नः श्रवः घाः ।
(ऋ. १।१७१।५)
शूर वीर सैनिकोंसे युक्त होकर और हमें बल देकर
हमारी कीर्ति बढ़ा दे ।

(४९७) त्वं सहार्थमः नूनं पाहि । (ऋ. १।१७१।६)
तू बलवान वीरोंका संरक्षण कर ।

अथयातहेळाः सुप्रकेतेभिः ससहिः दधानः इयं
घृजनं जीरदानुं विद्याम ।

क्रोध न करते हुए उत्तम ज्ञानी वीरोंसे सामर्थ्यवान
बनकर हम अन्न, बल तथा दीर्घ आयुष्य प्राप्त करें ।

(४९८) आजौ युध्यत । (ऋ. ८।१६।१४)
युद्धमें लड़ते रहो (पीछे न दौबो) ।

यहाँतक हम देख चुके हैं कि, मरुतोंका वर्णन करते हुए
मरुदेवताके मंत्रोंमें सर्वसाधारण क्षात्रधर्मका चित्रण किस
रूपमें हुआ है । पाठक इस विवरणसे जान सकेंगे कि,
मरुतोंके मंत्र पढ़नेसे क्षात्रधर्मकी जानकारी कैसे प्राप्त हो
सकती है । इसी वर्णनको ध्यानमें रखते हुए इस मरुतोंके
काव्यमें वीरोंका जो स्वरूप बतलाया गया है, उसका बहुरूप
प्रस्थावनामें किया है, उसको यहाँ पाठक देख सकते हैं ।

मरुत्-देवताके मंत्रोंमें नारी-विषयक उल्लेख ।

(२८) वारसं न माता सिपक्ति । (ऋ. १।३।८।८)

माता जिस प्रकार बाह्यक को अपने समीप रखती है, उसी प्रकार (बिजली भेद्युक्तके समीप रहती है) ।

(१२३) प्र ये शुभ्रमग्ने जनयो न संसयन (ऋ. १।८।५।१)

प्रागतिशोक एवं भागे घटनेकी पूर्ण क्षमता रखनेवाले वीर मरुत् (बाहर यात्राके विष्ट जाले समय) नारियोंके मुख अपने भापको सुबोधित तथा अलङ्कृत करते हैं ।

(१४७) प्र एयामग्नेषु (भूमिः) विधुरेव रेजते ।

(ऋ. १।८।७।१)

इन वीरोंके भविष्यवान् हमलोंमें भूमितक बनाय एवं सतदाय महिष्काके समान धरधर फँप उठती है ।

(१६१) रथीयन्तीष प्र जिहीते ओपधिः ।

(ऋ. १।१३।९।५)

सारी ओपधियाँभी रथमें बैठी वारीके समान निर्दोषित हो उठती है ।

(१७४) सुहा चरन्ती मनुषो न योषा । (ऋ. १।१६।७।४)

शाक्तपुरमें संचार करती हुई मानवी महिष्काकी नाई (वीरोंकी लक्ष्यार कभी कभी अहव्यभी रहती है ।)

(१७५) साधारण्या इव मरुत् सं भिमिक्षुः ।

(ऋ. १।१६।७।५)

साधारण फोटिकी नारीके साथ मानव जिस तरह व्यवहार रखते हैं, उसी प्रकार (मनुष्यों की जमीनवर) मरुत्में व्यवहार कर जाती ।

(१७६) विसितस्तुफा सूर्या इव रथं आ गात् ।

(ऋ. १।१६।७।५)

केच सँचारकर भौँ भौँति नृषा भौँती हुई सूर्यासाधिकाके समान (रोदसी=भूमि या विद्युत्) [वीरोंकी पत्नी] रथके निकट आ पहुँची ।

(१७७) धा अस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमि-
त्सं विदधेषु पजां । (ऋ. १।१६।७।६)

तुम वययुवक वीर सदैव सद्घासमें रहनेवाली, बलिष्ठ युवतीको- निज पत्नीको- शुभ मार्गमें- यज्ञमें स्थापन करते हो- के भाते हो ।

(१७८) यत् इं युवमनाः अहंसुः स्थिरा खिन्व जनीः
घदन्ते सुभागाः । (ऋ. १।१६।७।७)

यह पृथ्वीतक इनके पीछे चढ़नेवाली, बलिष्ठोंपर मन केन्द्रित करनेवाली पर वीरपत्नी होनेकी तीव्र कालता करनेवाली सौम्ययुक्त प्रजा धारण करती है- उपरान्त करती है ।

(२२०) मित्रं न योषणा (मारुत्ं गणं अच्छ) ।

(ऋ. ५।५२।१५)

युवती जिस प्रकार प्रिय मित्रके समीप चली जाती है, ठीक उसी प्रकार (वीर सैनिकों के संपर्क समीप चले जाओ ।

(२९८) भर्ता इव गर्भे स्वं इत् शवः पुः ।

(ऋ. ५।५।८।७)

पति जिस भाँति स्त्रियों गर्भकी स्थापना करता है, पैसेही इन वीरोंने अपना निजी बक (शहमें) प्रस्थापित किया है ।

(३३०) वि सक्थालि नरो यमुः, पुत्रकृषे न जनयः ।

(ऋ. ५।६१।७)

पुत्रको जन्म देने समय नारियोंकी अँबाएँ जिस प्रकार धानी जाती हैं, वैसेही वानी हुई अहव्यपाओंका नियमन वे वीर करते हैं ।

(४१०) शिक्षलाः न क्रियाः सुमातरः ।

(ऋ. १।०।७।६।१)

उत्कृष्ट माताओंके विरोधी बालकोंकी नाई वे वीर सैविक शिक्षाही भावने पूर्ण हैं ।

(४६२) माता इव पुत्रं छन्दसि विपुल ।

(अथर्व० ५।३६।५)

माता जिस प्रकार अपने बालकोंका संगोपन करती है, उसी प्रकार हमारे मंत्रोंका- इच्छाओंका संगोपन करो ।

(४३९) तुन्दाना रत्नहा, मुष्ठा कम्पा इव, परं पत्या इव जाया एजाति । (अथर्व० ६।२३।३)

कञ्चनेवाकी बिजली, नवयुवती युवकको प्राप्त करती है उसी प्रकार तुम और पतिने आर्कितित वारीके समान विकंपित होती हैं ।

(४५७) अदारस्युत् भवतु देव सोम । (अथर्व० १।२०।१)

हे तेजस्वी सोम । हमारा वयु अपनी जीबेनी न भिरे, वेमा प्रबंध कर दो ।

मरुद्देवता-पुनरुक्त-मन्त्राः ।

मरुत्पुनरुक्तमन्त्राः

मधुच्छन्दा वैशामित्रः । मरुतः । गायत्री (क. ११६१९)

[४] मरुतः परिचमनाऽऽ गहि द्वियो वा रोचनादधि ।
रुद्रस्मिन्नुग्रते गिरः ॥ १ ॥

प्ररुद्रवः काव्यः । उषा । मनुष्युर् । (क. ११५११)

रुद्रो भद्रेभिःऽऽ गहि द्विवस्त्रिद् रोचनादधि ।

रुद्रगवराण्यव ७५ त्वा सोमिनो युद्धम् ॥ १ ॥

रुद्र वाथ काव्यः । मरुतः । बृहती । (क. १५२११)

[१७५] धामे वापंस्तथा कर्म विदं रुद्रैर्भिराजिभिः ।
विद्यो मधु मरुतामप इये द्विपस्त्रिद् रोचनादधि ॥ १ ॥

सर्वतः काव्यः । अग्निर्वी । अनुष्युर् । (क. ८१८१७)

द्विपस्त्रिद् रोचनादधि भा नो गन्तं सर्बिदा ।

गीमिर्व उ प्रवेतसा स्त्रेमेभिर्गवधुता ॥ ७ ॥

मेधातिथिः काव्यः । मरुतः । गायत्री (क. ११५१७)

[५] मरुतः विर १ कुरुता घोत्राद् वक्तं पुनीताम ।

सूर्यं हि छा सुदानयः ॥ २ ॥

सुवर्षवाः काव्यः । मरुतः । गायत्री (क. ८१७१२)

[५७] सूर्यं हि छा सुदानयो रमा कुरुतामो दमे ।

उत्त प्रचतसो मरे ॥ १२ ॥

कुरुतामो भरद्वाजः । विधेयताः । उष्णिक् (क. ६५१११५)

सूर्यं हि छा सुदानय इन्द्रज्येष्ठो अमिषयः ।

कतो नो अपरा । सूर्यं नो भा अमा ॥ १५ ॥

सुवर्षवाः काव्यः । विधेयताः । गायत्री (क. ८१८११५)

सूर्यं हि छा सुदानय इन्द्रज्येष्ठो अमिषयः ।

अपा विद उत भुवे ॥ ९ ॥

रुद्रो घोरः । मरुतः । गायत्री (क. ११३७७)

[९] प्र वः कर्षाव दृष्यवे स्त्रेयुश्राव शुभिये ।

देवत्वं प्रह्ला गायत ॥ ४ ॥

मेधातिथिः काव्यः । इन्द्रः । गायत्री (क. ८१२२२७)

प्र व उमाव निदुरेऽप्याद्याव प्रथ भिजे ।

देवत्वं प्रह्ला गायत ॥ २७ ॥ (क. २०६)

रुद्रो घोरः । मरुतः । गायत्री । (क. ११३७१-१)

[६] श्रौत्वं वः कर्षाव मादतं अनर्षाव रथेऽभुम् ।

कथ्या मग्नि प्र गायत ॥ १ ॥

[१०] प्र शंसा गोम्वत्वं श्रौत्वं यच्छयौ मादतम् ।

जग्मे रक्तस्य कृष्टम् ॥ ५ ॥

रुद्रो घोरः । मरुतः । गायत्री (क. ११३७८)

[१३] वेपामग्नेषु पृथिवी जुहुवौ दव विदरतिः ।

धिया यामेषु रेजते ॥ ८ ॥

घोमरिः काव्यः । मरुतः । सुक्लृ (क. ८१२०५)

[८६] अष्टयुता विष्णो यमका कालदति पर्वतातो मन्वरातो ।

शूमिषामेषु रेजते ॥ ५ ॥

रुद्रो घोरः । मरुतः । गायत्री (क. ११३७११)

[१३] त्वं विद् वा दीषे वृषं विद्यो नगतमशुषम् ।

प्र च्यावयन्ति यामग्निः ॥ ११ ॥

रुद्रवाथ काव्यः । मरुतः । बृहती (क. ५५६५५)

[१७८] नि ये रिणन्त्योवता युषा यानो न दुर्गुर ।

अन्मानं चित्तवर्षे पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामग्निः ॥ ४ ॥

रुद्रो घोरः । मरुतः । गायत्री (क. ११३७१२)

[१७] मरुतो यद्द घो वक्तं जज्ञौ अनुच्ययीतन ।

गिरीरच्युच्ययीतन ॥ १२ ॥

सुवर्षवाः काव्यः । मरुतः । गायत्री (क. ८१७११)

[१५६] मरुतो यद्द घो दिवः शूरायन्तो इवामहे ।

आ ह न उष मरुत ॥ ११ ॥

रुद्रो घोरः । मरुतः । गायत्री (क. ११३८१)

[२१] कन्द नूनं कथयिष्ये विता पुत्रं न हतयोः ।

दधिये वृक्षद्वियः ॥ १ ॥

सुवर्षवाः काव्यः । मरुतः । गायत्री (क. ८१७११)

[७५] कन्द नूनं कथयिष्ये यदित्रमजहातन ।

घी वः सखिल ओदते ॥ ३१ ॥

कम्बो घोरः । मरुतः । वृहती (अ. १।३।५)

- [४०] प्र घेपयन्ति पर्वतान् वि विञ्चन्ति वनस्पतीन् ।
श्री भारत मरुतो दुर्मदा इव देवास्तः सर्वया विद्या ॥५॥
सम्भव आत्रियाः । विधेदेवाः । गायत्री (अ. ५।२।६।५)
एवं मरुतो अधिना मित्रः सोदन्तु वरुणः ।
देवास्तः सर्वया विद्या ॥ ९ ॥

पुनर्वसतः काव्यः । मरुतः । गायत्री (अ. ८।७।५)

- [४१] वपन्ति मरुतो मिहं प्र घेपयन्ति पर्वतान् ।
यद् वामं ज्ञानित वायुभिः ॥ ४ ॥

कम्बो घोरः । मरुतः । सतोवृहती (अ. १।३।५)

- [४१] उपो रथेषु पृथ्वीर्युग्ध्वं प्रथिव्यं हति रोहितः ।
आ वो वामाव पृथिवी विदभ्रौद अवीभवन्त मानुषाः ॥६॥
गोतमो राष्ट्रगणः । मरुतः । त्रिष्टुप् (अ. १।८।५।५)

[४३] प्र वद् रथेषु पृथ्वीर्युग्ध्वं वाजे अदि मरुतो रंहयन्तः ।
उदारुषस्य वि वपन्ति धाराः चर्मैवोदभिर्धुन्दन्ति भूम ॥५॥
पुनर्वसतः काव्यः । मरुतः । गायत्री (अ. ८।७।२।८)

- [७३] वरेशो वृषती रथे प्रथिव्यं हति रोहितः ।

वाग्नि मुद्रा रिणकपः ॥५८॥

कम्बो घोरः । मरुतः । सतोवृहती (अ. १।३।५)

- [४२] आ वो मरु तनाम कं ददा अयो वृणीमहे ।
गन्ता नूनं नोऽपसा यथा सुरेश्या कम्बाव भिष्मुये ॥७॥
कम्बो घोरः । पृषा । गायत्री (अ. १।५।३।५)
आ ता ते वल मनुमः पूषन्नयो वृणीमहे ।
येन वितुनचोदवः ॥५॥

नोधा गौतमः । मरुतः । जगती (अ. १।६।५।५)

- [१११] विद्विरभिभिर्भवयुये वनशते वरु-सु रुफमां अधि वेतिरे
द्युभे । अंतेधेवां नि मिमृशुर्भृष्टयः साकं जशिरे स्वधर्मा
दिवो नरः ॥४॥

इवावाद्य आत्रेयः । मरुतः । जगती (अ. ५।५।५।५)

- [१६०] अंतेषु ष ऋष्टयः पल्ल यादवो वरु-सु रुफमा मरुतो
द्युभः । धामिप्राजसो विमुतो नमरुत्वोः शिप्राः शीपेयु
र्यं वितता हिरण्ययोः ॥११॥

नोधा गौतमः । मरुतः । जगती (अ. १।६।५।६)

- [११३] विञ्चन्वयो मरुतः मुद्राजयः पयो वृषवद् विदधेपामुषः ।
अलं न मिहे विनमन्धि वादिनुगुगं वृहन्ति स्तनय-
न्तमक्षितम् ॥६॥

हरिभन्त आत्रिस्ताः । पुनवानः शोमः । जगती

(अ. ९।७।१६)

अनुं वृहन्ति स्तनयन्तमक्षितं यथ पयथोऽपयो
मनीषिणः । रगी यतो मतयो यन्ति संयत ऋतस्य योना
रादने पुनर्गुपः ॥६॥

नोधा गौतमः । मरुतः । जगती (अ. १।६।५।२)

- [११९] शृणुं पावकं धनिं विचर्याजि रंभ्रस्य सृणुं हृषसा
गृणीमसि । रजरतुरं तपसां भावसां गणयुजीषिणं शृणुं
हायत त्रिये ॥१३॥

वाहृस्पयो भारद्वाजः । मरुतः । त्रिष्टुप् (अ. ६।६।५।५)

- [१४४] तं वृषधनं मासत भ्राजदधि वृष्टस्य सृणुं हृषसा
विचये । दिवाय वाप्याय शुचयो मनीषा गिरयो नाप
रुप्रा शरभुधन् ॥१२॥

नोधा गौतमः । मरुतः । जगती (अ. १।६।५।२)

- [१२०] प्र नू स मतो वावसा जनीं अति तरयीं ष कनी मरुतो
यमावत अर्बक्रियां मरुतो धना नृभिः राष्ट्रधर्मं
धनुसा शेति पुष्यति ॥१३॥

वयस्त्रो मंत्रावरुणिः । मरुतः । जगती (अ. १।१।६।८)

- [१६५] शतभुभिभिरामिभुतेरपाव पुना रक्षता मरुतो
यमावत । जनं यमुपास्वचो विरश्चानः यथना संताप
राजस्यस्य पुषियु ॥८॥

गृगमदः शौवकः । शत्रुणरपतिः । जगती (अ. ९।२।६।२)

स हृषनेन स विशा ॥ जग्मना स पुत्रैर्याजं मरुतो
धना नृभिः । देवानो यः पितरमा विवासाति ध्रमातना
हविषा प्रदाणरपतिषु ॥३॥

शुवेदाः शीरीषिः । इन्द्रः । जगती (अ. १।०।१।५।४)

स इन्तु रायः सुगृतस्य चावनगर्दधो अर्य रथं धिपेगति ।
त्याहयो मधवन् दाश्वकरो मरु स घाजं मरुते धना
नृभिः ॥४॥

ने तमो राष्ट्रगणः । मरुतः । जगती (१।८।५।२)

- [१२४] त उक्षित खे मदिमानमाशत शिदि द्वागो जधि
चकिरे नदः । अर्नन्तो जर्नं जनवन्त इन्द्रियगति प्रियो
परिरे वृध्रिमातरः ॥२॥

शुवकः वाग्दः । इन्द्रावदनी । जगती

(अ. ८।५।५।५।२)

निषिचरीशेषी (एव आस्ताभिन्नायकना मदिमानमाशत ।

या सिञ्चन् रजसः पारे आचनो ययोः शुभुर्नकिराश्च
 ओदृते ॥२॥

ने तमो राहुगणः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ. १।८५।५)
 [१२७] प्र यद् रथेषु पृथतीर्युग्धं चावे धादि मरुतो
 रंहयन्तः ।

हताश्वस्य विध्यन्ति धाराश्चर्मोदभिर्गुन्दमित भूम ॥५॥

कृष्णो धंरः । मरुतः । सतोवृहतीः (ऋ. १।३१।६)
 [४१] उषो रथेषु पृथतीर्युग्धं प्रष्टिर्वहति रोहितः ।
 आ वो यामाय पुषिवी चिदधोद् अभीभवन्त मानुषाः ॥६॥
 पुनर्वसतः कावः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।२८)

[७१] वरेषां पृथती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः ।
 दान्ति गुप्ता रिणमपः ॥९८॥

गोतमो राहुगणः । मरुतः । जगती (ऋ. १।८५।८)

[१३०] शरा इवेद् युगुधयो न जम्भयः श्वस्वयो न पृतनाशु
 वेतिरे । भयन्ते विभ्या भुघना मरुदयो राजान इव
 श्वेपसंरतो नरः ॥८॥

भगस्त्वो मैत्रावरुणः । मरुतः । जगती (ऋ. १।१६६।४)

[१६१] आ वे रजासि सविषीभिरव्यत प्र च एवासः स्वपतायो
 भाप्रमन् । भयन्ते विभ्या भुघनानि हर्मा चित्रो
 वो याम प्रयताश्चष्टिपु ॥४॥

गोतमो राहुगणः । मरुतः । जगती (ऋ. १।८५।९)

[१३१] त्वष्टा यद् बभ्रं गुह्यत हिरण्यं सहस्रमष्टि स्वपा अयतं यत् ।
 पत इन्द्रो नर्यपासि कर्तव्येऽहन् पूत्रं निरपामौञ्जव-
 लौघम् ॥५॥

राव्य आश्रितः । इन्द्रः । जगती (ऋ. १।५६।५)

वि दन्तिरो धरणमच्युतं रजोऽतिशयो दिव आवाशु वर्हणा
 स्वर्गाहिके वन्दे इन्द्र हर्षात्तुन् पूत्रं निरपामौञ्जो
 अणौघम् ॥९॥

गोतमो राहुगणः । मरुतः । गायत्री (ऋ. १।८६।३)

[१२७] उत वा सस्य बाजिनोऽनु विपमससत ।
 स गन्ता गोमति प्रजे ॥३॥
 बभ्रतो मैत्रावरुणि । इन्द्रः । सतोवृहती

नासः मुदासो रथं पर्योच न रोमस्य । (ऋ. ७।३२।१०)
 इन्द्रो वस्याविभ्या यस्य मरुतो यमन् स गोमति प्रजे ॥१०॥

यशोऽश्व्य । इन्द्रः । सतोवृहती (ऋ. ८।४६।९)

यो हुष्ट्रो विधवार अवाप्सो वाजेध्वरि तरता ।
 स नः शविष्ठ सवना वसो गदि गमेम गोमति प्रजे ॥९॥

श्रुष्टिः कावः । इन्द्रः । वृहती
 (ऋ. ८।५१ [वाच. ३] । ५)

यो नो दाता वसुभिर्नद्रं तं द्रुमये वयम् ।
 विप्रा हास्य सुमति नवीवर्षो गमेम गोमति प्रजे ॥५५

गोतमो राहुगणः । मरुतः । गायत्री (ऋ. १।८६।४)

[१३८] अस्य वारस्य वादपि सुतः सोमो विविष्टिपु ।
 उक्थं मदश्च दास्यते ॥ ४ ॥

कुरुतिः कावः । इन्द्रः । गायत्री (ऋ. ८।७।९)

विबेन्द्र मरुसला सुतं सोमं विविष्टिपु ।
 वभ्रं शिशान ओजसा ॥ ९ ॥

चामदेवो गौतमः । इन्द्रावृहत्यतिः । गायत्री (ऋ. ४।४२।१)
 इदं चामादेवो हविः प्रियमिन्द्रावृहत्यति ।
 उक्थं मदश्च दास्यते ॥१॥

गोतमो राहुगणः । मरुतः । गायत्री (ऋ. १।८६।५)

[१३९] अस्य श्रेण्यस्यामुषो विभ्या यक्षर्षणीरमि ।
 सुतं चित् सङ्गुपीरिषः ॥ ५ ॥

चामदेवो गौतमः । अग्निः । अनुष्टुप् (ऋ. ४।७।५)

आशुं दूतं विवस्वतो विभ्या यक्षर्षणीरमि ।
 आ जम्भः केतुमायवो भृगुवागं विशेविरो ॥ ४ ॥

पुत्रो विधचर्षणिराजैयः । अग्निः । अनुष्टुप् (ऋ. ५।२३।१)
 अग्नि सहन्तसा भर पुमन्स्य प्रासदा रयिम् ।
 विद्या यक्षर्षणीरभ्यासा वाजेयु सापहत् ॥१॥

गोतमो राहुगणः । मरुतः । जगती (ऋ. १।८७।४)

[१४८] अ हि स्वधश्च श्रुपदयो युषा गणोऽया र्श्वानसत्विषिभि
 राश्वतः । असि सस्य ऋणयावानेयोऽस्या धियः
 प्राविताभ्या वृषा गणः ॥४॥

गृहमदः क्षीनकः । ब्रह्मणस्पतिः । जगती (ऋ. २।२३।११)
 अनानुदो वृषवो जम्भिराहवं निष्पन्ता वाशुं पृतनाशु सात्तदिः ।
 असि सस्य ऋणया ब्रह्मणस्पत उमस्य चिहमिता वोलु-
 हार्षिणः ॥ ११ ॥

अगरसो मैत्रावरुणः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ. १।१६८।९)

[१९६] अन्त पृथिर्मदते रणाय श्वेपमयासां मरुतामनिकम् ।

उत्तमोऽप्यनन्ताऽनमादिस्त्वस्वामिधिरां पर्य-
 पद्यन् ॥ ९ ॥
 भुवन धाप्य, साधनी वा भीवनः । विधेयवाः ।
 द्विपदा त्रिपुष् (श्र २०।१५५।५)
 प्रत्ययमसंनयन्त्वाभिरादिस्त्वस्वामिधिरां पर्यप-
 द्यन् ॥ ५ ॥

भगरसो भैत्रायवणिः । मरुतः । त्रिपुष् (श्र. १।१६८।१०)
 [११२] एष घः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्धार्यस्य
 मान्यस्य फारोः ।
 एषा यासीष्ट तन्धे पपां विद्यामेघं पूजनं जीर-
 दातुम् ॥ १० ॥
 [१७९] एष घः ... जीरदातुम् । (श्र. १।१६९।१५)
 [१८९] एष घः ... जीरदातुम् । (श्र. १।१७०।११)
 भगरसो भैत्रायवणिः । मरुत्वाभिन्नाः । त्रिपुष्
 एष घः ... जीरदातुम् ॥ १५ ॥ (श्र. १।१६५।१५)

गृहमदः (भाद्रिरसः शीनहोत्रः पश्चाद् भार्गवः)
 शौनकः । मरुतः । जगती (श्र. २।२०।११)
 [११८] तं घाः शार्धं मारुतं ह्यनुनिरोष मुवे नमता दैव्यं
 जनम् ।
 यथा रथि सर्ववीरं वरामहा भवत्यथार्धं धूमं विधे विधे ॥ ११ ॥
 द्यावाप्य धात्रेवः । मरुतः । ककुप् (श्र. ५।५२।१०)
 तं घाः शार्धं द्यावा रथेयं वणं मारुतं नव्यधीनाम् ।
 अनु प्र वन्ति बृहवः ॥ १० ॥

गृहमदः (भाद्रिरसः शीनहोत्रः पश्चाद् भार्गवः)
 शौनकः । मरुतः । जगती (श्र. २।२०।११)
 [१०९] पृथे ता विधा भुवना ववक्षिरे मित्राय वा यदमा
 वीरवानवः । पृषददवासो अनवधराधस ऋजिप्यावो
 न ययुनेषु धूपदः ॥ ४ ॥
 ग भिनो विधाभिन्ना । मरुतः । जगती (श्र. ३।२६।६)
 [११६] मातंमातं गणगणं गुणरितभिरमेर्मां मरुतामोज
 र्दमेह ।
 पृषददवासा अनवधराधसो गन्तारो यज्ञं विदधेपु
 वीरा ॥ ६ ॥

वाभिर्ना विधाभिन्ना । मरुतः । जगती (श्र. ३।२६।६)
 [११६] मातंमातं गणगणं गुणरितभिरमेर्मां मरुतामोज
 र्दमेह । पृषददवासो अनवधराधसो गन्तारो यज्ञं
 विदधेपु वीराः ॥ ६ ॥
 गृहमदः (भाद्रिरसः शीनहोत्रः पश्चाद् भार्गवः)
 शौनकः । मरुतः । जगती (श्र. २।२०।११)
 [१०९] पृथे ता विधा भुवना ववक्षिरे मित्राय वा यदमा
 वीरवानवः । पृषददवासो अनवधराधस ऋजिप्यावो
 न ययुनेषु धूपदः ॥ ४ ॥
 द्यावाप्य धात्रेवः । मरुतः । शतुष् (श्र. ५।५२।१०)
 [१२०] मरुतु यो र्धामदि स्तोमं यज्ञं च धृष्टयुया ।
 विधे ये मानुषां युवा यन्ति मरुं रिवाः ॥ ४ ॥
 नरदाजो वार्दस्पतवः । वासि । वायनी (श्र. ६।१।१२)
 प्र घ सन्नायो भग्ये स्तोमं यज्ञं च धृष्टयुया ।
 यज्ञं वाय च वेयसे ॥ ११ ॥
 द्यावाप्य धात्रेवः । मरुतः । यदुष् (श्र. ५।५२।१०)
 [११३] तं वः शार्धं रगानो त्वेव वणं मारुतं नव्यसि-
 नाम् ।
 अनु प्र वन्ति बृहवः ॥ १० ॥ (श्र. ५।५८।१)
 [१११] तनु नूनं तविचिदमश्यामेवां स्तुवे गणं मारुतं नव्य-
 सीनाम् ।
 न वापया भमवद वदन्त उवेक्षिरे वापुनरव तारवः ॥ १ ॥
 द्यावाप्य धात्रेवः । मरुतः । स्तोपृथो (श्र. ५।५३।१६)
 [११५] छुदि मीवानस्तुवतो बस्य वासि रणन् गाधो
 न यधसे ।
 नत पूर्वो हव सन्नास्तु ह्य गिरा गुर्धं दि क्रामिनः ॥ १६ ॥
 निमद वेदः प्राजाप्यवो वा, वल्लुहता नामुक्त ।
 वीमः । भास्तरावृष्कि (श्र. १०।२५।१)
 मरु वो वापि वातय मनो दशमुत क्रतुम् ।
 गधा रो सन्वे भन्वथो वि यो मदे
 रणन् गाधो न ययसे विवधे ॥ १ ॥
 द्यावाप्य धात्रेवः । मरुतः । जगती (श्र. ५।५८।११)
 [१६०] अथेषु घ क्रतुयः पत्यु स्यादयो बध मु रफमा मरुतो रथे
 युम धामिप्राञ्जतो विद्युतो गभरयोः ।
 सिमाः शिर्षसु वितता द्विरण्यथीः ॥ ११ ॥

सुपर्णः सः पान । मरुतः । श्वती (ऋ ७।७।१५)
 त्रिभुवस्ता आभियथ शिष्याः शीर्षेण दिरण्ययी ।
 सुधा वन्दत भिषे ॥१५॥

इत्याथ आत्रेयः । मरुतः । श्वती (ऋ ५।५।५१)
 [२५५] प्रदत्तवो मरुतोऽभ्राजद्वयो बृहद्वयो दधिरे कर्मवक्षसः ।
 इयन्ते भूषे सुयमेभिरासुभिः शुभं यातामनु रथा
 अमृतसत ॥१७

[२६६] श्वष षषिष्वे...
 शुभं यातामनु रथा अमृतसत ॥१७

[२६७] अ न जातः
 = शुभं यातामनु रथा अमृतसत ॥१७

[२६८] अ भूषेय वो
 शुभ यातामनु रथा अमृतसत ॥१७

[२६९] उदारवयः मरुतः
 शुभ यातामनु रथा अमृतसत ॥१७

[२७०] यदयार धूर्षुः
 शुभ यातामनु रथा अमृतसत ॥१७

[२७१] १ पर्वता न मदी
 शुभ यातामनु रथा अमृतसत ॥१७

[२७२] य ए पू रं
 शुभ यातामनु रथा अमृतसत ॥१७

[२७३] मृता नो ..
 शुभ यातामनु रथा अमृतसत ॥१७

इत्याथ आत्रेयः । मरुतः । श्वती (ऋ ५।५।५३)

[२६७] अ न जातः सुभ्य व कमुष्ठिता भिषे विदा प्रतर
 वनुधुर्नरः ।

विरेकिण् धूर्षस्येव ररमय जुभ यातामनु रथा
 अनुचत ।

मरुतो वैनद्वयः । श्वतिः । श्वती (ऋ १०।१।१४)

प्रप नशमे तथ दानिष्टीवयमिले दाह्यदेधृतय तमासाद ।

• १ ते चित्रित उषसामिवतये ऽपवष सूर्यस्येव

ररमयः ॥३॥

इत्याथ आत्रेयः । मरुतः । श्वती (ऋ ५।५।५९)

[२७३] मरुत नो मरुतो मा षषिष्वानाऽस्सम्य शर्म बहुल
 वि यन्तन ।

वाधि स्तोत्रस्य सख्यस्य वातन शुभ यातामनु
 रथा अमृतसत ॥१७

श्विवा आरदाथः । भिषे देवाः । त्रिष्टुप् (ऋ १।५।१५)
 संपित पृथिधि मातरसुगमे भ्रातर्वसवे मृकता नः ।
 भिषे आदित्या आदिते वनोवा वासाम्यं शर्म बहुलं
 वि यन्तन ॥५॥

स्युमरीमर्गागंधः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ १०।७।८)

[२७२] सुभागाणो देवाः कृशुता सुतरानस्मान्स्तौतुर् मरुतो
 वासुधानाः ।

वाधि स्तोत्रस्य सख्यस्य वातन सगाधि वो
 एनधेयानि सन्ति ॥८॥

इत्याथ आत्रेयः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ ५।५।१०)

[२७३] वृमस्मान् नयत वसो अष्ठा निरहतिभ्यो मरुतो
 यृषानाः ।

उषस्य नो इन्वदाति वज्रा वयं स्याम पतयो
 रयीणाम् ॥१०॥

वामदेवो रं तम । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् (ऋ. १।५।१६)
 द्वा वित्रे विषदेवच वृष्ये यज्ञैर्वेधेन नमसा इषिभिः ।

बृहस्पते सुभजा शीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयी-
 णाम् ॥६॥

इत्याथ आत्रेयः । मरुतः । बृहती (ऋ. ५।५।११)

[२७५] अमे धर्षन्तमा ण्य विह कर्मभिरक्षिभिः ।
 विशो अय मरुतामव ह्ये दिघभिद्रोचनादधि ॥१॥

प्ररश्म्यः कश्यः । उषा । अनुष्टुप् (ऋ १।४।११)
 उषो अश्रमिरा गदि दिघभिद्रोचनादधि ।

वहन्यहण्यस्य उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥१॥

इत्याथ आत्रेयः । मरुतः । बृहती (ऋ ५।५।१४)

[२७८] नि वे रिणन्त्योऽस्य नृवा गाथो न दुर्धरः ।
 अमन चित्र खर्वं पर्वत गिरी प्रच्यावन्ति
 यामभिः ॥४॥

कञ्जो रं रः । मरुतः । श्वती (ऋ १।२।११)

[२६] एव चिद्र वा र्दं रं पुषु मिदो नपातम्भम् ।
 म कयावयन्ति यामभिः ॥११॥

इत्याथ आत्रेयः । मरुतः । बृहती । (ऋ ५।५।१६)

[२८०] सुष्यस्य ह्यारुपी रथे सुदस्य रथेयु रोहित ।
 सुष्यस्य ही अजिष्य पुरि घाह्वे वधिष्ठा पुरि
 पोह्वे ॥६॥

मेघातिथिः काम्यः । विधे देवा (विधेदेवै हरितोऽग्निः) ।
गायत्री (ऋ १११५१२)

युक्ता ह्यरुषी रथे हरितो देव रोहित ।
ताभिर्देवो हवा वद ॥१२॥
पदच्छेपो वैशेषादि । वायु । मत्स्ये (ऋ १११३४३)
वायुयुक्ते रोहिता वायुररुणा वयू रथे अजिरा धुति
घोळ्द्वये चक्षिष्ठा धुति घोळ्द्वये ।
प्र बोधया पुरधि जार आ सततामिष ।
प्र चक्षय रोवही पासयोषसः ॥१३॥

इत्यायाश्च आग्नेयः । मरुत । त्रिष्टुप् (ऋ ५५७५७)
[११०] गोमन्थावद् रथवन् हनार अन्वयत् राधो मरुतो द्वा
नः ।

प्रशस्ति नः कृणुत रश्मिासो भक्षोऽय घोऽवसो
द्वैव्यस्य ॥७॥
वामदेवो गौतमः । इन्द्र । त्रिष्टुप् (ऋ ५१२११०)
द्वा वायु इन्द्र रास्य रासाद्यन्ता वृत्र खरिवः पूषेव ।
पृथुत्त मन्वा नः शशि राधो भक्षोऽय तेऽवसो
द्वैव्यस्य ॥१०॥

इत्यायाश्च आग्नेयः । मरुत । त्रिष्टुप् (ऋ ५५७५८)
[१११] इये नरो मरुतो मृळता मस्तुर्वामघासो
अमता ऋतज्ञा ।
सत्यश्रुतः कचयो शुघानो बुद्धिरियो वृद्धु
क्षमाणा ॥८॥

[११२] इये नरो मरुतो
• मृद्धुक्षमाणाः ॥८॥

इत्यायाश्च आग्नेयः । मरुत । त्रिष्टुप् (ऋ ५५८५१)
[११३] एमु नून तविष मन्तमेषा रतुष गण मायत नव्यसी
नाम् ।

य अथथा गमवद् बहन्त उतेषिरे अमृतस्य स्वता ॥१
वचुप् (ऋ ५५९३१०)

[११४] स वः शर्ष रवाना खेप गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
अनु प्र वन्ति वृष्टयः ॥१०॥

एववामरुताग्नेव । मरुत । अतिप्रमती (ऋ. ५८७११)
[११५] अ ये जता मदिना ये अ उ खय प्र निष्णा मुवत
एववामरुत ।

मन्वा तद्द भो मरुतो नाशे शेषो दाना मद्वा तदेवा
अध्वतो गायत्र ॥१॥

घोमारे ऋण्यः । मरुतः । सतो विराट् (ऋ ८१००१४)
[१५५] ताव यन्दस्य मरुतस्तो उपरुद्रि तेषा दि धुनं नाम् ।
अराणा न चरमस्तदेवा दाना मद्वा तदेवाम् ॥१४॥

एववामरुत् वाग्नेवः । मरुतः । अतिप्रमता (ऋ ५८७५५)
[१५६] एववो न भोऽमवान् रथवद्द्वया त्वेभो दायिराविष
एववामरुत ।

वेना बहन्त इत्यतोऽपि क्वाःरमनो द्विरुभयः
स्वायुधास इग्निमणः ॥२॥

मैत्रावरुणवसिष्ठ । मरुत । द्विपदा विराट् (ऋ ७५५१११)
[१५५] स्वायुधास इग्निमणः गुणिवा वन एवव त प
शुभमानाः ॥११॥

बाईरुपलो मरुदाणः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ ६१६११)
[११४] वरुतं त अकिरुव विददुः समान मम धनु प यमात्म् ।
मर्त्येवन्द दोहते पीपाय मरुच्छुक्र दुद्रुह पृश्निरुध ॥१
वामद्वेषो गौतम । अग्नि । त्रिष्टुप् (ऋ ७१३११०)
ऋतेन दि य्मा वृषभधिरुक् सुमो अग्नि पयसा वृष्टयेन ।
अस्पन्दमानो अथरुद्रयाथा वृषा शुकु ड्रुद्वे पृश्निरुधः
॥१०॥

बाईरुपलो मरुदाणः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ ११६६१८)
[११४] नास्य वरुता न तयता अरित मरुता यमनथ
वाजसानो ।
तोके ना गोषु तनये यमन्तु च मज वरुता पाय धान
यो । ८५

वर्णा कौर । ब्रह्मणस्पते । सते वृहती (ऋ १५००८)
उप धन पूषीत इति रागभिर्भये चिन् मुक्ति दधे ।
नास्य वरुता न तयता मरुधन गार्भे अरित वणिग ॥८॥
दृशा धानाकः । विधे देव । त्रिष्टुप् (ऋ १०१२५१४)
य देवासाऽव्यथ वाजसातौ य शाय न य विपुषालवद् ।
भो वा गार्भीधे न भवस्य नेद ते स्वाम दवधातव तुरासः
॥ १३ ॥

वयः प्रतः । विधे देवा । जगती (ऋ १०१२३१०)
यं देव घोऽव्यथ वाजसातौ य शरणाता मरुतो हितं धने ।
प्रातर्वाणाय एयमिन्द्र धान विपरिष्वन्ना रुद्रमा स्वहोत्रे ॥१४॥

मरुदाणो बाईरुपल । इन्द्र । त्रिष्टुप् (ऋ ६२५५४)
श्रीरो वा गृत् वनेते शरैरतेनृद्धा तदधि यत् वृष्टयेत ।
तोके वा गोषु तनये यदपन्तु वि न्दवी उर्वरातु
अर्भेते ॥ ४ ॥

मार्हस्पत्यो भरद्वाजः । मरतः । त्रिष्टुप् (ऋ. ६।१६।११)
 [३४४] तं वृष्यन्मं मास्तं भ्राजदधिं रद्रस्य सूनुं ह्यवसा
 विवये ।

दिनः क्षयार्थं पुनश्चो मनोवा विरचो वाप उमा ऋष्यधन्
 ॥ ११ ॥

नोषा गौतमः । मरुतः । जमती (ऋ. १।१४।१२)
 [३४५] ऋतुं वावर्षं वनिनं विवर्षाणि रद्रस्य सूनुं ह्यवसा
 गृणीमधि ।

रजस्तुरं तवन्न मास्तं गणानुर्जं विमं वृष्यं सधत् धिये ॥११॥

मैत्रावरुणिर्वशिष्ठः । मरुतः । द्विपदा विराद्
 (ऋ. ७।५६।११)

[३४५] स्त्रासुभास इधिमिणः मुनिष्ठा उत स्वर्गं तन्नः
 सुम्भम नाः ॥११॥

एवधामरन् भ जेयः । मरुतः । ऋति धमती (ऋ. ५।८७।५)

[३४६] स्त्रजो न धमवान् रेजवद् वृषा ज्येभो यमिस्तविष
 एवधामरन् ।

वेनाः सइन्त ऋजत स्त्रोविषः स्त्रारदमानोः द्विरधमयाः
 स्वायुध्यास इधिमिणः ॥५४॥

मैत्रावरुणिर्वशिष्ठः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ. ७।५६।२३)

[३४७] मृदि ऋतु नरतः पिशाचुनयानि या नः सस्वन्ते पुरा
 चित् ।

मरश्रुत्तमः वृत्तनासु सद्धा महद्रिरिस् सनिता
 धाजमर्षा ॥११॥

सुगहोत्रो भारद्वाजः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् (ऋ. ६।१२।२)
 त्वा ह्यिन्द्राये विवाचो हवन्ते वर्षग्यः मरुतसौ ।

स्वं विभ्रेभिभि पर्णारणामस्वे त इन् सनिता धाजमर्षा
 ॥११॥

मैत्रावरुणिर्वशिष्ठः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ. ७।५६।२५)

[३४८] सत्र इन्द्रो वरुणो मित्रोऽत्रिराप ओषधीर्षं
 निनो जुपन्त
 शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे न्यूनं पात स्वस्तिभि
 सदा नः ॥११॥

मैत्रावरुणिर्वशिष्ठः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् (ऋ. ७।३४।२५)
 तन्न इन्द्रो ..

.. सदा नः ॥११॥

वसुक्तो वागुक्तः । विश्वे देवा । जमती (ऋ. १।१६।११)
 यावापृथिवी अनवजाभि घृताप ओषधीर्वनिनानि
 यक्षिदाः ।

भन्तरिक्ष स्वरा पमुद्गन्धे नद्यं देवासस्तन्वी नि मास्तुः ॥१०॥

मैत्रावरुणिर्वशिष्ठः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ. ७।५७।५)

[३४९] ऋषक् या वो मरुतो दिशुदस्तु यद् घ आगः
 पुरुषता कराम ।

ना वस्तस्वामि युमा वज्रना अस्मे घो अस्तु
 सुमतिध्वनिष्ठा ॥४॥

छह्यो कामवनः । वितरः । त्रिष्टुप् (ऋ. १।१५।६)

आर्या आनु दक्षिणतो निपद्येमं यज्जमाभि गृणीत विश्वे ।
 मा द्विषिड वितरः केन चिचो यद् घ आगः पुरुषता
 कराम ॥६॥

मैत्रावरुणिर्वशिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् (ऋ. ७।७०।५)

पुत्र्यासा विदधिनो पुरुषपभि मद्भाणि चध्याये ऋष्यणाम् ।
 प्रति प्र नातं नरमा लनयास्वे धामस्तु सुमतिध्व-
 निष्ठा ॥५॥

मैत्रावरुणिर्वशिष्ठः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ. ७।५७।७)

[३५०] शा स्रतागो मरुतो विश्व ऊती अरुधा सर्वसूरी-
 नः सर्वतासा मिगत ।

वे नरामना क्षतिनो वर्षयन्ति यूयं पात सस्तिभिः
 सदा नः ॥७॥

अत्रिर्मम । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् (ऋ. ५।४३।१०)

शा नामभिर्मरुतो बशि विषाना रूपेभिर्जातिवेदो हुवानः ।
 वन गिरो वरिष्ठः सुदृतिं च विश्वे गन्त मरुतो विश्व
 ऊती ॥१०॥

मैत्रावरुणिर्वशिष्ठः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ. ७।५८।१)

[३५१] श्वेद् पवो मयवन्नो दधात जुजोषभिर्गमरतः सुदृति
 नः ।

गतो नाष्वां वि विरातिो जन्तुं म णः स्पर्हाभिर्रुतिभि-
 स्तिरेत ॥३॥

मैत्रावरुणिर्वशिष्ठः । इन्द्रावरुणौ । त्रिष्टुप् (ऋ. ७।८४।३)

हृतं नो यत् किद्वेषु वारुं हृतं मद्भाणि सूरिषु प्रसारता ।
 उपो रथिदेषन्तो न एतु प्र णः स्पर्हाभिर्रुतिभिर्दित-
 रेतम् ॥ ३ ॥

मैत्रावरुणिर्षतिष्ठः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ. ५।५।६६)

[३८२] प्र या याधि सुदुतिर्मैत्रोनामिदं स्रफं मरुतो जुषन्त ।
आराधिद् द्वेषो वृषणे युवोत न्यं पात खरितभिः
यदा नः ॥६॥

गयो भारद्वाजः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् (ऋ. ६।४।१३)

तस्य वयं सुयतो वसिष्ठस्यापि अद्रे सौमने स्नाम ।

स युनामा स्वर्वा इन्द्रो भस्मे आराधिद् द्वेषः सयुतयु-
योतु ॥६१॥

मैत्रावरुणिर्षतिष्ठः । मरुतः । सतोवृद्धो (ऋ. ७।५।१२)

[१८४] युष्माके देवा अवसादनि मिय हंजमस्तरति
क्षिपः ।

म स क्षयं तिरते धि महीरियो यो वो वराय
दासति ॥ २ ॥

कुम्भ आश्रितः । ऋमयः । जगती (ऋ. १।१।१०)

ऋमुर्न इन्द्रः दासता नवीवावृमुफभिर्भुभिर्भुवृदिः ।

युष्माकं देवा अवसादनि मियोनि तिष्ठेन वृष्टतिरि-
सुम्भताम् ॥७॥

मर्त्यवरायतः । विश्वे देवाः । सतो वृद्धो (ऋ. ८।१।११)

म स क्षयं तिरते धि महीरियो यो वो वराय
दासति ।

प्र प्रज गिर्जावते धर्मगरपरिष्ठः तर्ष एषते ॥१६॥

पुनर्वसतः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।१)

[४६] प्र गच्छिष्टुषं गह्यो निमि भयत्त ।
वि पर्वतेषु राजय ॥१॥

शिवमेध आश्रितः । इन्द्रः । अगुष्टुप् (ऋ. ८।६।११)

मम वास्त्रिष्टुभमिषं मन्वडांरावेन्दवे ।

पिषा यो मेधस्यतये पुरंषा विषासति ॥१॥

पुनर्वसतः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।२)

[४७] यदङ्ग तविपीयवो यामं शुभ्रा अविध्यम् ।
नि पर्वता अदासत ॥१॥

पलाः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री (ऋ. ८।६।१६)

यदङ्ग तविपीयस इन्द्र प्रजगति क्षितीः ।

गह्यो भयत्त योनामा ॥१६॥

पुनर्वसतः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।१४)

[५९] अधीव वद् गिरिणा यामं शुभ्रा अविध्यम् ।
युनर्नमन्दध दन्दुभिः ॥१४॥

पुनर्वसतः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।२)

[४८] वशेरवन्त ऋयुभिराश्रितः सुदिमातरः ।

शुभ्रन्त पिप्पुपीमियम् ॥३॥

नारदः काण्वः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् (ऋ. ८।१।३५)

वर्षस्या सु पुरुषत ऋयिदुतामिहृतिभिः ।

शुभ्रस्य पिप्पुपीमियमथा च नः ॥१५॥

मशरिश्वा काण्वः । इन्द्रः । वृद्धो (ऋ. ८।५।४।१०)

यन्ति ह्ययं आश्रित इन्द्र आशुर्नानाम् ।

जाम्नातस्य मभवन्मुपावसे शुभ्रस्य पिप्पुपीमियम् ॥७॥

ममहीयुराश्रितयः । पवमानः सोमः । गायत्री

(ऋ. ९।६।१।१५)

अश्रितः सोम सं गये शुभ्रस्य पिप्पुपीमियम् ।

वषां वसुप्रसुक्थम् ॥१५॥

पुनर्वसतः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।४)

[४९] पपश मरुतो मिहं प्र वेषयन्ति पर्वतान् ।

यद् यामं वासि तपुभिः ॥४॥

कण्वो वीरः । मरुतः । वृद्धो (ऋ. १।२।१५)

[४०] प्र वेषयन्ति पर्वतान् वि विषन्ति पनस्वतीन् ।

श्रो आरत मरुतो ह्यर्षदा द्य देवासः सर्वथा विद्या ॥५॥

पुनर्वसतः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।८)

[५३] सजन्ति रदिमोजसा पन्था सुर्वथं वातवे ।

ते भानुभिर्वि तस्त्रिरे ॥८॥

पुनर्वसतः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।३६)

[८१] अमिहिं ज्ञानि पूर्व्यच्छन्दो न सुरो अषिषाः ।

ते भानुभिर्वि तस्त्रिरे ॥३६॥

पुनर्वसतः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।१०)

[५५] श्रोणि सराधि वृभयो दुदुहे वज्रिणे मयु ।

जयं वज्रमयुदिग्मम् ॥१०॥

त्रिकण्वेभ्य आश्रितयः । इन्द्रः । गायत्री (ऋ. ८।१।१६)

इन्द्राय गाय आश्रितं दुदुहे वज्रिणे मयु ।

यद् गीमुपहृदे विन्द ॥६॥

- पुनर्वसः काश्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।११)
 [५६] मरुतो यद्द घो दिवः सुम्नायन्तो दधानादि ।
 आ तु न उप गन्तव ॥११॥
 कश्चो घोरः । मरुतः । गायत्री (ऋ. १।१।५२)
 [१३] मरुतो यद्द घो बलं जगौ अजुच्यवोतन ।
 गिरोरिषुच्यवोतन ॥१३॥

- पुनर्वसः काश्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।१२)
 [५७] यूयं हि धा सुदानयो ददा क्तमुद्युगो दमे ।
 उत प्रचेतसो मदे ॥१३॥
 मेघातिथिः काश्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. १।१।५२)
 [५] मरुतः पिपत क्तुना पोवाह यणे पुनीतन ।
 यूयं हि धा सुदानयः ॥१३॥

- पुनर्वसः काश्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।१३)
 [५८] आ नो रयिं मयच्छुतं पुरुक्षुं विश्वघायसम् ।
 इदतां मरुतो दिवः ॥१३॥
 मरुतदिभिः काश्वः । कश्चिन् । गायत्री (ऋ. ८।५।३५)
 अस्ते आ बहतां रयिं शतवन्तं सश्रिणम् ।
 पुरुक्षुं विश्वघायसम् ॥१५॥

- पुनर्वसः काश्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।१५)
 [६०] एतापतदिचदेयां सुम्नं भिक्षेत मरुतैः ।
 भद्राभ्यस्व मन्मभि ॥१५॥
 हरिम्बिठैः काश्वः । आदित्याः । चण्डिन् (ऋ. ८।१।८१)
 इह ह मन्मेयां सुम्नं भिक्षेत मरुतैः ।
 आ दित्यानामर्ष्यं सवीमति ॥१॥

- पुनर्वसः काश्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।२०)
 [६५] अ नूनं भुदानयो मयध्वं युच्यवर्हिषः ।
 प्रह्ला को वा सपर्यति ॥२०॥
 प्रभायः काश्वः । इन्द्रः । गायत्री (ऋ. ८।१।४७)
 अ स उपभो युवा तुभिप्रोवो भवानतः ।
 प्रह्ला कस्तां सपर्यति ॥७॥

- पुनर्वसः काश्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।२२)
 [६७] ससु त्थे महतीरयः सं शोणी ससु सूर्यम् ।
 सं यज्ञं फर्षणे द्यु ॥२२॥

आशुः काश्वः । इन्द्रः । सतोवृहती ।
 (ऋ. ८।५२ [बाल. ५] १०)
 समिन्त्रो रामो वृहतीरघुवृत्त सं शोणी ससु सूर्यम् ।
 सं शुकासः मुचयः सं गवाधिरः सोमा इन्द्रममदिदुषुः
 ॥२०॥

- पुनर्वसः काश्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।२१)
 [६८] वि वृचं पर्वशो यमुर्बि पर्वतो अराजिनः ।
 चवाणा वृषि पौस्वम् ॥२१॥
 काश्वः काश्वः । इन्द्रः । गायत्री (ऋ. ८।६।१३)
 यदस्व मन्नुष्वन्दिदि वृचं पर्वशो रजन् ।
 अयः समुदमैरयम् ॥१३॥

- पुनर्वसः काश्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।२५)
 [७०] विवृक्ष्ण भविष्यवः शिप्राः क्षीपेन् विरण्यवीः ।
 नुप्रा भवन्नत त्रिये ॥२५॥
 दशावाद्यु काश्वः । मरुतः । जगती (ऋ. ५।५।११)
 [२६०] वंशेषु व काश्वः पत्तु खाद्यो वधःसु दन्मा मरुतो
 रथे युवाः ।
 अमिज्रालक्षो विवृतो यमत्सो शिप्राः क्षीपेन्नु विरता
 विरण्यवीः ॥११॥

- पुनर्वसः काश्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।२६)
 [७१] उशना यत् पराद्यत वरुणो रत्नप्रमदातन ।
 दोने षक्कदृभिया ॥२६॥
 पृच्छेयो द्वैशोदसिः । इन्द्रः । अत्यष्टिः (ऋ. १।१३।०९)
 सूर्यचक्रं प्र वृद्धजात भोवश्र पतिव्ये वाचनरुणो मुषा-
 यतीशान आ सुकायति ।
 उशना यत् पराद्यतोऽजगन्तव्ये वषे ।
 सुम्नाभि विरवा मनुषेव तुर्वागिरहा विदेवप दुर्वणिः ॥१॥

- पुनर्वसः काश्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।२८)
 [७३] यदेषां वृषती रथे प्राद्विर्वहति रोहितः ।
 यानि श्रुणा रिणजयः ॥२८॥

- कश्चो घोरः । मरुतः । वृहती (ऋ. १।३।१६)
 [७१] जपो रथेषु वृषतीरयुग्मे प्राद्विर्वहति रोहितः ।
 आ नो कामान शुभिवी चिदधोदनीममन्त मापुषाः ॥६॥

पुनर्वसतः काष्णः । मरुतः । गावत्री (ऋ. ८।७।३१)

[७६] कच्छ नूनं कघप्रियो यदिन्द्रमज्जातान् ।

को वा सखित्वं शोहते ॥३१॥

कषो यौरः । मरुतः । गावत्री (ऋ. १।३।८।१)

[११] कच्छ नूनं कघप्रियः पिता पुत्रं न द्रव्ययोः ।

दक्षिणे वृषभर्हिषः ॥३॥

पुनर्वसतः काष्णः । मरुतः । गावत्री (ऋ. ८।७।३५)

[८०] वादणवावानो वहन्त्यन्तरिक्षेण पततः ।

घातारः स्तुवते वयः ॥३५॥

वाजीपतिः शुनःशेषः स कृत्रिमो वैद्यामियो देवरातः ।

वहणः । गावत्री (ऋ. १।१५।७)

वेदा यो वीनां पदभन्तरिक्षेण पतताम् ।

वेद नावः सद्युप्रियः ॥७॥

सोमरिः काष्णः । मरुतः । ककुप् (ऋ. ८।१०।५)

[८६] वाचमुता चिद् नो अजमघा नाजदति परंतासो धनरपतिः ।

भूमियमिषु रेजते ॥५॥

कषो यौरः । मरुतः । गावत्री (ऋ. १।३।७।८)

[१३] वैशामज्जेषु वृषिषी जुसुर्वीं इव भिरपतिः ।

भिवा धामेषु रेजते ॥८॥

सोमरिः काष्णः । मरुतः । सतोवृहती (ऋ. ८।१०।८)

[८९] गोभिर्वागो अज्यते शोभरीणां रथे कोशे द्विरप्ययो

गोवन्धवः सुजाताम् इवे भुजे मरुन्तो नः स्वरते जु ॥८

सोमरिः काष्णः । अश्विनी । ककुप् (ऋ. ८।१२।१९)

धा हि वृहत्तमश्विना रथे कोशे द्विरप्यये वपन्तु ।

हुषाथां वीवरीरिवः ॥९॥

सोमरिः काष्णः । मरुतः । सतोवृहती

(ऋ. ८।१०।१४)

[९५] तान् वन्दस्व महमस्तौ उप स्तुहि तेषां हि धुननाम् ।

भराणां न चरमस्तदेषां दाना महा तदेषाम् ॥३३॥

एवनामरुदत्रेयः । मरुतः । अतिज्यती (ऋ. ५।८।७।२)

[३१९] प्र ये जाता महिना ये च तु स्वयं प्र विद्या हुषत

एवनामरु ।

कषा तद् वो महतो नाशृषे श्वो दाना महा तदेषा-

मवृषासो नात्रयः ॥१५॥

सोमरिः काष्णः । मरुतः । सतोवृहती (ऋ. ८।१०।१४)

[१०७] विषं पश्यन्तो विषया तन्पूमा तेना नो अथि

योचत ।

शना रथो मरुत आतुरस न इष्कर्ता विहुतं पुनः

॥ १६ ॥

मरुतः वाग्मदाः, गान्धो मैत्रावरुणः, बह्वो ना मरुता

जालनदाः ।

आदित्याः । गावत्री (ऋ. ८।९।७।९)

यद्गः श्रान्ताय सुम्बते षडपमसि मरुछर्दिः ।

तेना नो अथि योचत ॥३॥

मेधाविधि-मेधातीर्थी वाग्धो । इन्द्रः । वृहती

(ऋ. ८।१।१९)

न श्वते विरभिश्रिषः पुरा जग्मुश्च आतुदः ।

संघाता बर्हि मघवा पुष्वसुरिष्कर्ता विहुतं पुनः

॥१९॥

विन्दुः पूतपथो वा आत्रिरवः । मरुतः । गावत्री

(ऋ. ८।९।५।२)

[३१७] तत् सु नो चिम्बे अयं आ सदा गुणन्ति

कारवः ।

मरुतः सोमपतिषे ॥३॥

शंभुनाईस्पयः । मरुतः । धनुष्टुप् (ऋ. १।५।१।३)

तत् सु नो विश्वे अयं आ सदा गुणन्ति कारवः ।

शुभुं सदृशदातमं सूरि सदृशसातमम् ॥३३॥

मेघातिथिः काष्णः । विषे देवाः । गावत्री (ऋ. १।१२।१।०)

विद्यान् देवाः इवाथवे मरुतः सोमपतिषे ।

उषा हि वृधिसातरः ॥३३॥

विन्दुः पूतपथो आत्रिरवः । मरुतः । गावत्री

(ऋ. ८।९।५।९)

[४०३] धा ये विश्वा पार्थिवानि पश्यन् रोचना दिवः ।

मरुतः सोमपतिषे ॥९॥

विन्दुः पूतपथो वा आत्रिरवः । मरुतः ।

गावत्री (ऋ. ८।९।५।४)

[३१८] अथि सोमो अयं सुतः विबन्धस्य मरुतः ।

उत खरातो अथिना ॥३॥

पुनर्वसुः काव्यः । मरुतः । गावत्री (ऋ. ८।७।११)
 [५६] मरुतो यद्द घो दिवः हुम्नायन्तो ह्यमभे ।
 आ तू न उय गन्तव ॥११॥
 कश्चो घोरः । मरुतः । गावत्री (ऋ. १।३।७।१२)
 [१७] मरुतो यद्द घो वत्तं जतो असुच्यवर्तन ।
 गिरोरसुच्यवर्तन ॥११॥

पुनर्वसुः काव्यः । मरुतः । गावत्री (ऋ. ८।७।१२)
 [५७] यूयं हि द्या सुदानवो रता कमुसुगो दमे ।
 उत प्रवेतसो महे ॥११॥
 मेधातेभिः काव्यः । मरुतः । गावत्री (ऋ. १।१।५।२)
 [५] मरुतः पिपत कमुना फेनाद् वत्तं पुनातन ।
 यूयं हि द्या सुदानवः ॥११॥

पुनर्वसुः काव्यः । मरुतः । गावत्री (ऋ. ८।७।१२)
 [५८] धा नो रयि मरुच्युतं पुरुष्टुं विश्वधापसम् ।
 ददतां मरुतो दिवः ॥११॥
 मरुतेभिः काव्यः । गावत्री (ऋ. ८।५।५।५)
 भस्ते धा वदतं रयि शतवन्त सहस्रिणम् ।
 पुरुष्टुं विश्वधापसम् ॥१५॥

पुनर्वसुः काव्यः । मरुतः । गावत्री (ऋ. ८।७।१५)
 [६०] एतावद्विचक्षेयां सुमं मिशेते मरुतः ।
 भवाभ्यस्य मन्मभि ॥१५॥
 दशिमिभिः काव्यः । गावत्री (ऋ. ८।१।८।१)
 दद ह नृगमेयां सुमं मिशेते मरुतः ।
 गावित्यानामपृथ्वी खनीमनि ॥११॥

पुनर्वसुः काव्यः । मरुतः । गावत्री (ऋ. ८।७।१६)
 [६५] न नूनं मुदानवो मरुतः सूवर्गाह्वयः ।
 प्रह्ला को वा सपर्यति ॥७०॥
 प्रगायः काव्यः । इन्द्रः । गावत्री (ऋ. ८।१।१।७)
 न स्य इषभो युवा तुविशोषो भगवतः ।
 प्रह्ला कस्तं सपर्यति ॥७०॥

पुनर्वसुः काव्यः । मरुतः । गावत्री (ऋ. ८।७।१२)
 [६७] ससु त्वे महतीरघः सं खोणी ससु सूर्यम् ।
 सं प्रजं पर्वतो द्यु ॥६१॥

गायुः काव्यः । इन्द्रः । सतोद्दृती ।
 (ऋ. ८।५।३ [वा. ४] । १०)
 तमित्री यवो वृहतीरघुष्टा सं खोणी ससु सूर्यम् ।
 सं गुहासः पुनवः सं गवाधिरः सोसा इन्द्रममन्दिपुः
 ॥१०॥

पुनर्वसुः काव्यः । मरुतः । गावत्री (ऋ. ८।७।१२)
 [६८] वि वृष्टं पर्वशो वसुभिं पर्वतो अरिजिनः ।
 पराणा वृष्ण पौंसम् ॥१२॥
 वसुः काव्यः । इन्द्रः । गावत्री (ऋ. ८।६।११)
 वदस्य मनुवर्षानिद्वि वृष्टं पर्वशो रजन ।
 वपः ससुदमेरयत् ॥१२॥

पुनर्वसुः काव्यः । मरुतः । गावत्री (ऋ. ८।७।१५)
 [७०] विपुडला भविषवः शिप्राः शीपेन् दिरण्ययोः ।
 शुभ्रा म्रकत श्रिये ॥१५॥
 दत्तावप्य काव्येयः । मरुतः । जगती (ऋ. ५।५।५।११)
 [१६०] अंशेषु व कण्वयः पत्तु खादयो वसुः शुभ्र स्तना मरुतो
 रये शुभ्रा ।
 नमिप्राजयो विपुतो वसुस्यो शिप्राः शीपेन् विपुता
 दिरण्ययोः ॥११॥

पुनर्वसुः काव्यः । मरुतः । गावत्री (ऋ. ८।७।१६)
 [७१] उशाना यत् परावत उदयो रभ्रममातन ।
 धोन् चक्रदृनिषा ॥१६॥
 पदच्छेपो दीवोदासिः । इन्द्रः । अलाष्टिः (ऋ. १।१३.०।१)
 सूर्यवर्गं न प्रहृज्जात ओजसा श्रित्वे वाचमहणो सुषा-
 यतोषान का सुषायति ।
 उदाना यत् परावतोऽजगन्मृतये क्वे ।
 सुम्नानि विदता मनुषेव तुर्वेणिरता विरेषेव तुर्वेणः ॥१६॥

पुनर्वसुः काव्यः । मरुतः । गावत्री (ऋ. ८।७।१८)
 [७३] वदेवां पृथ्वी रये प्राष्टिर्वहति रोहितः ।
 गन्ति सुभ्रा रिमलपः ॥७८॥
 कश्चो घोरः । मरुतः । वृहती (ऋ. १।३।१।६)
 [८१] उषो रयेषु पृथ्वीरयुषं प्राष्टिर्वहति रोहितः ।
 धा नो गगाव पृथिवी विदधोऽपीमवन्त माधुवाः । दि॥

पुनर्वसः काश्वः । महतः । गायत्री (ऋ. ८।७।३१)

[७३] कद्ध नूनं कधमियो यदिन्द्रमजशतन ।

को वः सखितव ओहते ॥३१॥

कण्वो घौरः । महतः । गायत्री (ऋ. १।३।८१)

[११] कद्ध नूनं कधमियः पिता पुत्रं न इत्तयोः ।

एभिषे वृक्षवर्दिषः ॥१॥

पुनर्वसः काश्वः । महतः । गायत्री (ऋ. ८।७।३५)

[८०] धादणयाधानो वइन्द्रयन्तरिक्षेण पततः ।

घातारः शतुवते वयः ॥३५॥

भाजीर्गतिः जुम रोपः स इत्रिमो भंगामित्रो देवरातः ।

वहणः । गायत्री (ऋ. १।३।५०)

देवा वो बीनो पद्मन्तरिक्षेण पतताम् ।

बेद नावः समुद्रियः ॥७॥

सोमरिः काश्वः । महतः । ककुप् (ऋ. ८।३।०१)

[८६] श्च्युतो चिद् वो अजमला नागदति पर्वतासो ववरपतिः ।

भूमिर्गामेषु रेजते ॥५॥

कण्वो घौरः । महतः । गायत्री (ऋ. १।३।७८)

[१३] देवामजमेषु पृथिवी जुजुवां इव विशपतिः ।

भिया यामेषु रेजते ॥८॥

सोमरिः काश्वः । महतः । सतोवृहती (ऋ. ८।३।०८)

[८९] गोभिर्गणो अजयते सोमरीणां रथे कोशे द्विरण्यये ।

गोबन्धवः सुजातास इषे भुजे महापतो नः स्परते नु ॥८

सोमरिः काश्वः । अथिनी । ककुप् (ऋ. ८।३।१९)

आ हि वदतमथिना रथे कोशे द्विरण्यये वषमनू ।

जुजाथां गोबरीदिषः ॥६॥

सोमरिः काश्वः । महतः । सतोवृहती

(ऋ. ८।३।१५)

[९५] ताव वन्दल महतस्तौ उप स्तुहि तेषां हि धुननाम् ।

भराणां न धरमसदेर्षा दाना मद्वा तदेपाम् ॥१६॥

एषयामरुधात्रेयः । महतः । अतिजगती (ऋ. ५।८।७।२)

[३२९] प्र ये जाता महिना ये न नु स्वयं प्र विद्याना जुवत

एववामरु ।

कल्पा तद् वो महतो नारुषे णवो दाना मद्वा तदेपा-

मधुघासो नाद्रवः ॥९॥

सोमरिः काश्वः । महतः । सतोवृहती (ऋ. ८।३।०१)

[१०७] विश्वं पश्यन्तो विमुषा तनुषा तेना नो अथि

योचत ।

शमा रषो महत आतुरम्य न इधकर्ता विहुतं पुनः

॥ २६ ॥

मन्सः शम्भदः, मान्वो मैजानरुणः, बह्वो वा मत्स्वा

जालनदाः ।

आदिस्थाः । गायत्री (ऋ. ८।६।०।६)

वदः आन्ताव मुन्वते धकधमसि यच्छदिः ।

तेना नो अथि योचत ॥३॥

मेधातिथि-मेध्यातिथी कण्वो । इन्द्रः । वृहती

(ऋ. ८।१।१२)

न ऋते विवभिर्भ्रमः पुरा जमुभ्य आतुवः ।

संधाता अन्धि मयथा पुक्कसुरिष्कर्ता विहुतं पुनः

॥११॥

विन्दुः पूतदक्षो वा आतिरसः । महतः । गायत्री

(ऋ. ८।९।४।३)

[३१७] तत् सु नो विश्वे अयं वा सदा गृणन्ति

कारवः ।

महतः सोमपतिथे ॥३॥

शंभुर्वाइस्तयः । महतः । अतुहुप् (ऋ. ६।४।५।३३)

तत् सु नो विश्वे अयं वा सदा गृणन्ति कारवः ।

शुवं सदसदातमं सुरिं शदक्षसातमम् ॥३३३॥

मेधातिथिः काश्वः । विश्वे देवाः । गायत्री (ऋ. १।२।३।१०)

विद्यान देवान् इवामदे महतः सोमपतिथे ।

उमा हि वृधिमत्तरः ॥३३३॥

विन्दुः पूतदक्षो आतिरसः । महतः । गायत्री

(ऋ. ८।९।४।९)

[३०६] आ ये विद्या पार्यिवाति पश्यन् रोचना दिवः ।

महतः सोमपतिथे ॥९॥

विन्दुः पूतदक्षो वा आतिरसः । महतः ।

गायत्री (ऋ. ८।९।४।४)

[३१८] अलि स्तोमो अयं सुतः विवन्त्येव महतः ।

उत खराजो अथिना ॥३॥

भनेमौमः । इन्द्र । उष्णि- (ऋ १।२०।२)
इषा यन्वा इषा मने इषा सोमो धाय सुत ।
वपदिन्द्र इषामर्चुवरात्म ॥३॥

विन्दु पृतन्धा वा आरिरस । मरत ।
तावर् (ऋ ८।१५।८)

[४०१] इषा अय महाना दत्त नाम्नो घृणे ।
तन्वा च इन्द्रवर्षम म् ॥८॥
इषाया इ अत्रा । इन्द्रायो । वपत्रा (ऋ १।३८।१०)
भाह्व गरन्त मत्ताः । इन्द्राचो घृणे ।
वाभ्या गायत्रमध्यत ॥१०॥

विन्दु पृतन्धा वा भनेरस । मरत ।
वपत्रा (ऋ ८।१५।१०-१२)

[४०४] स्यान् तु पृतन्धम वा भ मरतो हुवे ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥२०॥
[४०५] स्यात्तु प । व रोदध तन्वमुर्मयतो हुवे
अस्य सोमस्य पीतये ॥११॥

[४०६] व जु भाद्र गण गिरेश वषण हुव ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥१२॥
मेष तिथि काण । मरत । गायत्र (ऋ १।२२।१)
प्रतनुना वि षध वनायद् गच्छताम ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥११॥
मघा तये काण । इन्द्रायुः गायत्रा (ऋ १।२३।२)
उगा दव दिविष्टात्प्रताम् हवामद ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥१२॥

नामदवो गीम । इन्द्रावृदस्वतो ।
गायत्रा (ऋ ४।४१।५)

इन्द्रावृदस्वत वप सुत गा महवामदे ।
अस्य सोमस्य पीतये । ॥
गरान्तो वाहस्य व । इन्द्रा । अन्वुष्टु (ऋ १।११।१०)
इन्द्रा ग वपमव हमा त्वाभर्चुवराधुता ।
विद्राभिर्गभिरा यन्मस्य सोमस्य पीतये ॥१०॥
इन्द्रमनि वषण । इन्द्रा । गायत्रा (ऋ ८।१५।१६)
इन्द्र प्र नन मानत् माभन्त इन्द्रमदे ।

अस्य सोमस्य पीतये । ६॥
वाहुवृक्त भजेय । मित्रानदगौ । व वषा (ऋ ५।७१।१)
उप न सुतामा तस वरण मित्र द सुधमः ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥६॥

स्वमरादसमापय । मरत । त्रिष्टुप् (ऋ १।०।७।१२)
[४१९] प वद् वदधे मरत पराकाद् मूत महः सवरणस्व वल ।
विदानामा वधवो रावस्याऽऽराधिद् द्वेष सनुत-
सुंघोत ॥६॥
गगा भारद्रव्य । इन्द्र । त्रिष्टुप् (ऋ ६।४७।१३)
तस्य वय हुमती यद्विषस्या प भदे र्भ मनसे स्वाम ।
व सुत्रामा स्वर्षो इन्द्रो भरने आराधिद् द्वेष सनुत
सुंघोत ॥११॥

स्वमरेमर्मागव । मरत । त्रिष्टुप् (ऋ १।०।७।१८)
[४१४] ते हि यषेषु यमियास ऊमा अदि देन नाम्ना
शमविष्ठा ।
त मोऽवतु रव्युर्धन वा महध वापजप्यरे चकानाः ॥८॥
वसिष्ठो मैत्र वराणि । विद्रे दधा । त्रिष्टुप् (ऋ ७।३१।४)
ते हि यषेषु यमियास ऊमा वषण विधे भमि
साति देवा
तौ अन्वर उरतो वा यणे शुधी भग नावत्या पुरविम् ॥८॥

स्वमरेमर्मागव । मरत । त्रिष्टुप् (ऋ १।०।७।१८)
[४२२] सुमायासा दवा कृत उरन्मानस्मात्सोतून् मरतो
वापृधानाः ।
अधि स्तोत्रस्य सार्यस्य गात सन दि वो ररत
वेयानि स ॥८०॥

इषाया उषात्रेय । मरत । लयाती (ऋ ५।५५।१)
[४२३] मृतत नो मरतो मा पविष्टनाऽऽमभ्य वहुत् शम वि
वपान ।
अधि स्तोत्रस्य सार्यस्य गाततं शुभ यातामनु
इषा सवृसत ॥९॥